386

सोना और खून

पूर्वार्द्ध—दूसरा भाग

आचार्य चतुरसेन शास्त्री

सोना और खून

दूसरा भाग

(पूर्वार्द्ध)

उपन्यासकार

आचार्य चतुरसेन

राजहंस प्रकाशन

सदर बाज़ार, दिल्ली-६.

प्रकाशक—
राजहंस प्रकाशन,
सदर बाजार, रुई मण्डी,
दिल्ली-६ ।

सर्वाधिकार सुरक्षित

● ● ●

मूल्य आठ रुपये

● ● ●

२६ जनवरी १९५९

मुद्रक—
अमरचन्द्र जैन,
राजहंस प्रेस,
सदर बाजार, रुई मण्डी,
दिल्ली-६ ।

राजकीय संग्रहालय पुस्तकालय, लखनऊ
विभाग
पुस्तक क्रम संख्या 380
Museum Library, Lucknow

सोना और खून

दूसरा भाग--पूर्वार्द्ध

संख्या *विषय* *पृष्ठ*

प्रथम खण्ड :

संख्या	विषय		पृष्ठ
१.	अजनबी मेहमान	....	११
२.	आलू की खेती	....	१६
३.	साझे का कारोबार	....	१८
४.	ब्राह्मण की नजर	....	२२
५.	मछली का शिकार	....	२५
६.	गोरा संत	....	२६
७.	साहूकार बन्धु का घराना	....	३२
८.	जल-समाधि	....	३५
९.	भयानक इरादा	....	३९
१०.	गुप्त श्रोता	....	४५
११.	डाका और खून	....	४९
१२.	असामान्य विवाह	....	५३
१३.	नैनीताल का विस्तार	....	५८
१४.	सन्तपाल का चर्च	....	६०
१५.	शाही हलालखोर	....	६२
१६.	नई मुलाकात	....	६६
१७.	नया शागिर्द	....	६८

संख्या	विषय		पृष्ठ
१८.	गूजरबाड़े के चोरों का मेला	....	७२
१६.	शवनब	....	७५
२०.	खुश आमदीद	....	७८
२१.	निमंत्रण	....	८२
२२.	नाश्ता	....	८५
२३.	यूसुफ मियां की बारात	....	६२
२४.	शबनम की शादी	....	६३
२५.	एक नए बराती	....	६८
२६.	बेटी की बिदाई	....	१०३
२७.	शाही पालकी	....	१०५
२८.	बादशाह के रूबरू	....	१०७
२६.	शाहजादी के हुजूर में	....	१०८
३०.	मेहतर को भात	....	११०
३१.	मुग़ल तख्त का भाग्य	....	११५
३२.	लाहौर की छाती पर	....	११८
३३.	भीषणता भरी रात	....	१२१
३४.	बड़ा लाट कहाँ है ?	....	१२३
३५.	देशी राज्यों की लाश	....	१२५
३६.	मुर्ग़ी अण्डे दे या जिबह की जाय	....	१२७
३७.	तोपों का युद्ध	....	१३०
३८.	बर्मा का युद्ध	....	१३३
३६.	भूतों वाली मस्जिद	....	१३४
४०.	सोने के वर्क में लिपटी हुई गिलौरी	....	१३६
४१.	पान वाली	....	१३६
४२.	अंतिम प्याली	....	१४२

संख्या	विषय		पृष्ठ
४३.	कबूतर और बिल्ली	....	१४६
४४.	मटिया बुर्ज में	....	१४७
४५.	गुनाहों का लबरेज प्याला	....	१४८
४६.	खतरे की घंटी	....	१५३
४७.	निराले दम्पति	....	१५५
४८.	गिरजे की मुलाक़ात	....	१६१
४९.	विद्रोह का सूत्रधार	...	१६४
५०.	बारकपुर छावनी में	....	१७३
५१.	कथा और उसकी पृष्ठ भूमि	....	१७७
५२.	ब्राह्मण और ब्राह्मण की बेटी	....	१८१
५३.	पिता और पुत्री	....	१८९
५४.	अवसाद की छाया	...	१९२
५५,	सत्तावन का नया दिन	....	२०४

दूसरा खण्ड :

१.	नाना साहब धोंडूपन्त	....	२१५
२.	राजनैतिक डकैती	....	२२०
३.	तूफान के आसार	....	२२३
४.	लाहौर की गुप्त मीटिंग	....	२३७
४.	दो ज्वाला मुखी	....	२४०
५.	शक्ति परीक्षा	....	२४४
७.	क्रीमिया की लड़ाई	....	२४९
८.	फ्लोरेन्स नाइटिंगेल	....	२५३
९.	स्वयं सेविका	...	२६१
१०.	स्कुटारी अस्पताल	....	२६२

संख्या	विषय		पृष्ठ
११.	कुस्तुन्तुनिया में	....	२७१
१२.	अजनबी दर्शक	....	२७५
१३.	तीन में न तेरह में	....	२८०
१४.	तलवारा और खून	....	२८४
१५.	अफीम का गोला	....	२८५
१६.	सूरज का देश	....	२८८
१७.	मुकुट धारी प्रजापति	....	२८९
१८.	छठी-सत्ता	...	२९२
१९.	ब्रिटेन का जनतंत्र	....	३०१
२०.	डारविन और मिल	....	३०३
२१.	चिड़िया की नजर	....	३०६
२२.	हिन्दुस्तान	...	३०९
२३.	वफादारी की सनद	....	३१४
२४.	इन्फील्ड-राइफल के कारतूस	....	३२१
२५.	मंगल पाण्डे	....	३२६
२६.	पादरी लेफ्टीनेण्ट	....	३३०
२७.	हींदन	....	३३३
२८.	महारानी रासमणि	....	३३८
२९.	अनोखा ब्राह्मण	....	३४१
३०.	देवी और पुजारी	....	३४४
३१.	ब्रह्मभोज	....	३४७
३२.	शुभदा और ब्राह्मणी	....	३४९
३३.	भारतीय नारी और अंग्रेज पुरुष	....	३५३
३४.	फाँसी और उसकी प्रतिक्रिया	....	३५६
३५.	बिठूर में नई हवाएं	....	३६१

संख्या	विषय		पृष्ठ
३६.	बिठूर के महाराज	....	३६४
३७.	बिठूर के राजमहल में	....	३६८
३८.	अजीमुल्ला खाँ का तर्क	....	३७३
३९.	हिन्दुस्तानी कूटनीति	....	३८०
४०.	बदले की मुलाकात	....	३८४
४१.	हेनरी लॉरेन्स और उनका असिस्टेन्ट	....	३८६
४२.	लखनऊ में नाना	....	३९१
४३.	त्रिकूट	....	३९३
४४.	सूरज नहीं डूबता और खून नहीं सूखता	....	३९६

तीसरा खण्ड :

१.	बुलबुल हजार दास्तान	....	४०१
२.	उर्दू शायरी	....	४०५
३.	ज़फर	....	४११
४.	उस्तादे शहनशाह	....	४१२
५.	हकीम मोमिन	....	४१५
६.	नौशे मिया	....	४२०
७.	अमीर जान के कोठे पर	....	४२६
८.	रमजान	....	४३०
९.	ईद	....	४३१
१०.	जश्ने ईद	....	४३५
११.	नौ मई	....	४३८
१२.	काला-इतवार	....	४४३
१३.	विद्रोह फैला	....	४४७
१४.	धन्नासिंह कोतवाल	....	४४९

संख्या	विषय		पृष्ठ
१५.	ब्राह्मण का आत्मयज्ञ	....	४५२
१६.	दिल्ली की ओर	....	४५४
१७.	जमुना तीरे	....	४५५
१८.	बरा साब	....	४५६
१९.	लाल सोमवार	....	४६१
२०.	कलकत्ता दर्वाजे से	....	४६४
२१.	किले में हलचल	....	४६५
२२.	राजघाट की राह से	....	४६८
२३.	प्रिंसिपल टेलर	....	४७०
२४.	लाल किले में	....	४७२
२५.	बादशाह के रूबरू	....	४७३
२६.	मेगजीन का धड़ाका	....	६७६
२७.	शाहे वजीफाखार	....	३७८
२८.	नवाब माशूक महल	....	४८१
२९.	साहब की जान	....	४८'
३०.	इब्राहीम के घर में	....	४७९
३१.	शाह हक़ानी की खानकाह	....	४९०
३२.	पिंजरे का पंछी	....	४९३
३३.	सत्तावन की आग	....	४९५
३४.	डगमग दिल्ली	....	४९६

सोना और खून

दूसरा भाग--प्रथम खण्ड

: १ :

अजनबी मेहमान

सूरज की आड़ी-तिरछी किरणें देवद्रुम की सघन छाया में छन कर समूची घाटी में सोना बिखेर रही थीं। तल में नैनीताल का तरल नील-हरित जल मरकत राशि सा चमक रहा था। सामने की ऊँची पर्वत-श्रृंखलाओं पर खड़े सीधे सुबुक-साधन देवद्रुम गगन स्पर्श की स्पर्धा कर रहे थे।

नूना एक शिलाखण्ड पर बैठी थी। एक बड़ा-सा घास का गट्ठर उसकी बगल में रखा था। उसकी सफेद बकरी चुपचाप उसके चरणों में खड़ी पूँछ हिला रही थी। उसने पीली ओढ़नी ओढ़ी थी—और लाल मखमल की कुर्ती। उस पर आसमानी घाघरा बहुत सुन्दर लग रहा था। कण्ठ में गुँजा-पोत और सोने के दानों की पचलड़ी उसके वक्ष पर खेल रही थी। दिन-भर के कड़े परिश्रम के कारण उसके माथे की इंगुर की श्री कुछ धूमिल हो गई थी—पर वह उसके स्वस्थ स्वर्ण मुख पर बहुत प्रिय प्रतीत हो रही थी। उसका एक हाथ अपनी प्रिय बकरी के गले पर था और दूसरा वक्ष पर। वह उच्च स्वर में गा रही थी।

बेड़ू पाको चार मास, काफल पाको चैत। मेरे छैला।
रूड़ा-भूना दिन आया हो नरेण, पुजा मेरा मैत।
रोको रौनेली लै माछो मारो गीड़ा,
तेरा खुटा काना बुड़ो मेरा खुटा पीड़ा।

सवाई की बाल ;
मेरी हिया भरी ऊंछ जसो नैनीताल,

पहाड़ के दूसरी ओर से किसी ने गाया—

बाकरे की बसी,
दिखा है छै पारा डाना, ब्याण-तारा-जसी,
लड़ी-मरी के हुंछ, लड़ाई छ धोखा।
हरी-भरी रई चैंद्द धरती की कोखा।

("गूलर चौमासे में पकता है और काफल चैत में, मेरे छैला। ग्रीष्म के उदास दिन आ गए, नरेण, मुझे मेरे मैके पहुँचा दे। रोतेली ने मच्छी मारी, तेरे पैर में काँटा चुभा, पीड़ा मेरे पैर में हुई। सवाई की बाल, मेरा हृदय नैनीताल की भाँति भर-भर आता है॥")

बकरी की वसा ; उस पार के पर्वत पर तुम भोर के तारे सी दीख पड़ती हो। लड़ाई-झगड़े से क्या काम ? लड़ाई धोखा है। धरती की कोख हरी-भरी ही रहनी चाहिए।

नूना का मुख सूरजमुखी की भाँति खिल उठा। उसने उच्च-स्वर से पुकारा—होऽहोऽहोऽ

घाटी में उसकी आवाज गूंज उठी। बकरी ने पूंछ हिला कर कहा—मैंऽऽऽ। इसी समय उसके कान में एक अपरिचित शब्द सुनाई दिया—"फेअर लेडी ?"

नूना ने मुँह फेर कर देखा—एक फिरंगी था। लाल लाल मुँह, कंजी आँखें, लाल बाल, मुँह पर छोटी-सी दाढ़ी, अधेड़ उम्र, लम्बा कद, अंग पर टखनों तक ढीला-ढाला अंगा, हाथ में लम्बी पहाड़ी लकड़ी, पैर में भारी जूते। फिरंगी न जाने कब से खड़ा मुग्ध-भाव से नूना का गीत सुन रहा था।

"हे कोण !" नूना ने धड़कते हुए हृदय से कहा। वह एक झटके के साथ उठ खड़ी हुई।

फिरंगी और दो कदम आगे बढ़ गया, उसने सामने आकर कहा—"फेअर लेडी. एक्सक्यूज़ मी, प्लीज़।"

"तुम कौन हो ?"

"अम परडेसी हाय।"

"पर यहाँ क्यों आया ?"

"शाम हो गया, फेअर लेडी, अम भूका और टायर्ड हाय। अम खाना और रात भर पनाह मांगता।"

नूना ने क्षण भर उस आगन्तुक की ओर देखा। और कहा—"मेरे पीछे आओ।" उसने घास का गट्ठर सिर पर रखा, और तेजी से नीचे को चल दी। उसके पीछे-पीछे बकरी और बकरी के पीछे वह फिरंगी।

सूरज अस्त हो रहा था। घाटी में अन्धकार फैल रहा था। जब नूना अपने घर के सामने पहुँची तो मानसिंह घर के बाहर पौर में बैठा तमाखू पी रहा था। फिरंगी को देख कर बोला—

"इस बन्दर को कहाँ से ले आई नूना ?"

"यह जंगल में घूम रहा था। कहता है, भूखा हूँ।"

तब तक फिरंगी ने आगे बढ़कर कहा—"अम दोस्त हाय बाबा, भोत ठक गया है, अम मनी दे देगा टुम कू।"

उसने जेब से कुछ सिक्के निकाले। मानसिंह ने कहा—"पैसा रहने दो साब, आओ यहाँ बैठो। तमाखू पीते हो ?"

नूना घर के भीतर चली गई। फिरंगी अलाब के पास पैर पसार कर बैठ गया। उसने अपना पाइप निकाला और बढ़िया वर्जिनिया तमाखू निकाल कर मानसिंह को देकर कहा—"यह टम्बाकू पिओ, बाबा।"

मानसिंह ने हंस कर तम्बाकू लेकर चिलम चढ़ाई। फिरंगी ने भी पाइप भरा। दोनों मजे में तमाखू पीने और गप्पें उड़ाने लगे। मानसिंह ने पूछा—

"तुम्हारा नाम क्या है साब ?"

"अम फ्रेजर साब, हाय।"

"यहाँ पहाड़ में तुम क्यों आया ?"

"सैर करने आया। अम कैलकटा से आटा हाय। ये पहाड़ का मुलुक ठंडा हाय, कैलकटा भौत गरम—अम मर गया। यहाँ अमारा मुलुक जैसा ठंडा हाय, अम यहाँ रहना मांगटा।"

मानसिंह ने हंस कर कहा—"यहाँ रह कर क्या करेगा साब ?"

"अम यहाँ खेती करेगा। बाबा लोग का माफक।"

"काहे का खेती ?"

"पोटाटो का खेती।"

"पोटाटो क्या होता है ?"

फिरंगी ने झोली से थोड़े आलू निकाल कर मानसिंह के हाथ में रख दिए। मानसिंह ने उलट-पलट कर आलुओं को देख कर कहा—

"यह क्या है ?"

"पोटाटो हाय।"

"इसे क्या करते हैं।"

"खाता हाय।"

मानसिंह ने एक आलू दाँत से काटा—फिर थूक दिया। उसने कहा—"बिल्कुल फीका है।"

"ऐसा नहीं बाबा, आग पर पका कर खाना होता हाय।"

मानसिंह ने नूना को पुकार कर वे आलू उसे देकर कहा—'नूना, यह फिरंगी कहता है—इसे आग पर पका कर खाते हैं—ले, पका कर देख।" नूना ने भी आलुओं को हाथ में लेकर उलट-पलट करके देखा। फिर वह हँसती हुई भीतर चली गई।

मानसिंह ने कहा—"तुम अपने मुल्क में क्या काम करते हो, साब ?"

"अम खेती करता टुमारा माफक। इहाँ रह कर अम खेती करना मांगटा।"

"तुम जमीन खरीदोगे ?"

'अलबट खरीडेगा। अम पैसा देगा।"

"तुम्हारे मुल्क में किस-किस चीज की खेती होती है ?"

"पोटाटो, टम्बाकू का श्रम खेटी करता हाय।"

"गेहूँ नहीं बोता ?"

"नई बाबा, हमारा मुलुक भौत ठण्डा हाय। गेहूँ वहाँ नहीं होता।" दोनों आदमी देर तक गप्पें लड़ाते रहे। तमाखू पीते रहे। सरल तरल हृदय तरुण मानसिंह तुरन्त इस आगन्तुक फिरंगी का दोस्त बन गया। नूना गर्मागर्म रोटियाँ और दाल ले आई। दोनों आदमी खाने बैठे। आलू को भी उसने उबाल कर नमक मिला कर उन्हें दिया। मानसिंह ने खाकर कहा— 'मजेदार तरकारी है यह, क्या नाम है इसका ?"

"पोटाटो।"

"मैं तो इसे आलू कहूँगा। नूना थोड़ा आलू और दे। मजे की तरकारी है।"

"तुम अपना खेत में इसका खेती करो बाबा। अम बीज देगा। साथ काम करेगा। भोत फायदा होगा।"

"बाबा से पूछ कर कहूँगा साब, बाबा नीचे हल्द्वानी गया है; कल आएगा।"

"भौत फायदा का खेती होगा बाबा, अम तुम साथ काम करेगा।"

मानसिंह ने कहा—"तुम हल चलाएगा साब ?"

"जरूर चलाएगा। अम टुमको एपिल पीच का बीज देगा।"

"वह क्या होता है ?"

"फ्रूट होता। भोत अच्छा। भोत फायदा।"

खाना खाकर दोनों नए दोस्त फिर वर्जिनिया तमाखू का मजा लेते रहे और गप्पें उड़ाते रहे। इसके बाद मानसिंह ने बाँसुरी निकाली। वह बाँसुरी बजाने लगा। फिरंगी ने झोले से एक बाजा निकाल उसके साथ बजाना आरम्भ किया। उस अनोखे बाजे को देख कर नूना आ खड़ी हुई। अभी कुछ ही घंटे फिरंगी को यहाँ आए हुए थे, परन्तु इसी बीच वह इस परिवार का मित्र हो गया था—मानसिंह और नूना दोनों बहुत खुश

थे। बहुत रात तक उनका गाना बजाना चलता रहा। फिरंगी ने भी एक अंग्रेजी गीत गाया। सुनकर तूना बहुत हँसी। मानसिंह ने कहा—"अब सो जाओ साहेब, पहर रात बीत गई।" वह उसे अपनी कोठरी में ले गया। जहाँ पुआल पर उसका बिछौना लगा था। उसी कोठरी में फिरंगी ने भी अपना कम्बल बिछाकर पैर फैला दिए।

: २ :

आलू की खेती

गुमानसिंह समझदार और जहाँदीदा आदमी था। दूसरे दिन आकर उसने नए मेहमान को देखा। देखकर उसका माथा ठनका, वह बेटे को एकान्त में ले गया और उससे बात की। उसने कहा—

"मानू, तूने यह क्या इल्लत गले बाँधी, निकाल इस बंदर को घर से।"

"लेकिन बाबा, साब, आदमी अच्छा है। उसके पास रुपया भी बहुत है। वह कहता है—रुपया हम देंगे। जी चाहे जितनी जमीन खरीद कर नए ढंग से खेती करो। वह रुपया भी लगाएगा, काम भी करेगा और आधा मुनाफा भी हमें देगा।"

"अरे तू इन फिरंगियों को नहीं जानता. पक्के लुच्चे और उठाईगीर होते हैं। मैंने दिल्ली में इनकी बदमाशी देखी है। पास बैठाने के लायक नहीं होते ये।"

"बाबा, पाँचों उंगलियाँ एक-सी नहीं होतीं। घर आई लक्ष्मी को क्यों लात मारी जाय?"

"लक्ष्मी के लालच में घर जमीन भी न खो बैठना।"

"वह क्या घर जमीन को सिर पर उठा ले जायगा?"

"तूने देखा नहीं था, उस फिरंगी को। उस जमींदार की लड़की को चुरा लाया था। बड़ी मुश्किल से हमने उसके पंजे से उसे छुड़ाया था।"

"खैर तो इसने बदमाशी की तो मार भगाएंगे। यह अकेला हमारा क्या कर लेगा ?"

"तूने क्या सुना नहीं। इन लोगों ने नैपाल की सरकार को हराकर ये सब इलाके हथिया लिए हैं, और अब तो यहाँ भी इनका ही राज होने वाला है।"

"तो यह और भी अच्छा है। इसके भाई-बन्द राज करेंगे, तो यह हमारे बहुत काम आएगा।"

"तेरा नया खून है। समझ की तुझमें कमी है। मेरी बात सुन, मैंने बाल धूप में सुखा कर सफेद नहीं किए हैं। इस बन्दर को दूर भगा।"

"बाबा, तुम भी क्या पुराने जमाने की बात करते हो। भला सोचो तो, रुपये पैसे की हमें कितनी तंगी रहती है। रुपया होगा तो हम सुमेरसिंह के सब खेत खरीद लेंगे। और हम इस इलाके के सबसे बड़े जमींदार बन जाएंगे।"

"तू अच्छी-अच्छी ही बात सोचता है, बुराई को नहीं देखता।"

"और तुम बुरी बुरी बात ही सोचते हो—अच्छी बातों का खयाल ही नहीं करते।"

"अच्छी बात इसमें क्या है ?"

"उसके पास बहुत रुपया है ?"

"तो वह इतना सीधा नहीं है कि रुपया लुटा देगा।"

"लुटाने की क्या बात है। यह तो साझे का कारोबार है। उसके पास कई नई चीजें हैं। उनकी तरकारी उम्दा बनती है। वह नए फल उगा सकता है। गुणी आदमी है। भगवान् ने भेजा है—बाबा, चिन्ता न करो। हम उससे बहुत लाभ उठाएँगे।"

बूढ़ा गुमानसिंह देर तक चुप बैठा तमाखू पीता रहा। फिर उसने कहा—"अच्छा बेटे, तुम जवान हो, नए जमाने के नए आदमी हो। नया तुम्हारा खून है—जो दीखे सो करो। सुख दुख तुम भोगोगे। मैंने

अपना धर्म निबाह दिया—ऊंच-नीच समझा दिया, अब आगे तुम जानो, तुम्हारा काम जाने।"

और इस प्रकार अब साझे का कारोबार चला। आलू बोए गए। नये खाद बनाए गए, फसल अच्छी हुई। मेरठ, मुरादाबाद और दिल्ली के बाजारों में इस तरकारी की अच्छी मांग हुई। पहले फिरंगी खाते थे—अब सब कोई खाने लगे। नाम पोटाटो मशहूर नहीं हुआ—आलू ही मशहूर हुआ।

अगले साल आलू और अधिक बोया गया। कमाई के रुपयों से और जमीन खरीदी गई। इस बार भी फसल अच्छी हुई। माल की मांग भी बढ़ी। काम पर नए आदमी बढ़ाए ही गए। पहाड़ में इस नई तरकारी की धूम मच गयी। बहुत लोग बीज मांगने आए। बीज के भी अच्छे दाम उठे। देखते ही देखते मानसिंह ने अब एक पक्का बंगला बंधा लिया। उसे साहब ने सजाने में योग दिया। साहब के संसर्ग से उसका रहन-सहन भी बदल गया। अब साहब मजे से हिन्दुस्तानी बोलने लगा और मानसिंह और नूना बहुत से अंग्रेजी शब्द तथा वाक्य सीख गए थे। यथा अवसर साहब उन्हें ईसू मसीह के संदेश भी देने लगा। दिन दिन भर मानू और साहेब कड़ा परिश्रम करते, रात को बाँसुरी-अलगोजा बजाते-गाते, मोज करते। कभी मछली का शिकार करते, कभी बन्दूक से चिड़िया मार लाते। हर फसल पर रुपए बढ़ते चले गए मानसिंह ने बहुत सी जमींदारी खरीद ली। सारे पहाड़ में मानसिंह आलू वाला मशहूर हो गया। परन्तु अब बहुत लोग आलू की खेती करने लगे थे। हर साल इस नई तरकारी की खेती बढ़ती गई। और पांच वर्ष होते न होते वह इस पहाड़ी प्रान्त की मुख्य पैदावार हो गई।

: ३ :

साझे का कारोबार

धीरे-धीरे पांच साल बीत गए। फ्रेजर अब इस घर का ही एक अंग

बन गया था। नूना और मानसिंह दोनों के ब्याह खूब धूमधाम से हुए। नूना और उसका आदमी भी अब इस साझे के कारोबार में लग गए थे। वे बहुत खुश थे। रुपया बढ़ रहा था। बढ़िया बंगला बन गया था। नाम और इज्जत बढ़ गई थी। साहब की ईमानदारी—परिश्रम—सुजनता और बुद्धिमानी तथा मिलनसारी ने सबके मन में घर कर लिया था। सब लोग खुश थे; किन्तु बूढ़ा गुमानसिंह बैठा घण्टों तमाखू पीता रहता था। उसे अब कोई पूछता न था—और वह अब उसके किसी काम में दखल न देता था। मानसिंह और फ्रेजर दोनों ही उसकी आवभगत करते थे—मानसिंह की भाँति फ्रेजर भी उसे दद्दा कहता था, और हमेशा उसकी खुशामद और चापलूसी में लगा रहता था। पर गुमानसिंह इन सब बातों से भी उदासीन रहता था। कभी-कभी वह नैना देवी के पुजारी के पास जा बैठता। दोनों समान वयस्क बूढ़े थे। पुजारी महाराज धर्म-कर्म पूजा-पाठ में पक्के थे। वे बहुधा गुमानसिंह को पुराण-महाभारत की कथा-वार्ता सुनाते—घर-गृहस्थी की बातें पूछते, परन्तु फिरंगी की बाबत पुजारी महाराज की राय भी गुमानसिंह से मिलती-जुलती ही थी।

एक दिन एक नई घटना घटी। एक और अजनबी फिरंगी वहाँ आया। बड़ा सुन्दर प्रभात था। सुनहरी धूप खेतों में फैली हुई थी। मानू और फ्रेजर दोनों खेतों में काम कर रहे थे। इस नवागन्तुक ने फ्रेजर से बहुत-सी बातचीत की। बातचीत से ज्ञात हुआ कि वह भी पहाड़ में किसी काम की तलाश में आया है। उसने बताया कि वह काफी रुपया साथ लाया है। वह चाहता है कि पहाड़ में बाग लगाए जायं, और नए फल उगाए जायं। उसने यह भी इच्छा प्रकट की—कि वह इन लोगों से मिलकर साझे में कारोबार करना चाहता है।

फ्रेजर ने भी अब अपना अलग बंगला बना लिया था। वह नवागन्तुक को अपने बंगले में ले आया। दोनों ने एकान्त में बहुत-सी बातचीत की—फिर फ्रेजर ने मानू से बात की। फ्रेजर ने कहा—"तुमने सुना है मानू, टाम साहब भी हमारे साथ काम करना चाहते हैं।"

'क्या वे हमारी नौकरी करेंगे ?"

"नौकरी नहीं, साझे का कारोबार। उनके पास बहुत रुपया है। वह रुपया लगाने को राजी हैं।"

हमें उनके रुपये की क्या जरूरत है। हमारे पास भगवान् का दिया बहुत है।"

"तुम समझे नहीं मानू। टाम साहब के पास बड़ी-बड़ी स्कीम हैं। वे बाग लगाना चाहते हैं—खेत नहीं।"

"सेब, आड़ू, खुमानी, पीच और ऐसे ही फल-जो हमारे मुल्क में बहुत होते हैं। मैंने तुमसे कई बार कहा था—पर इस काम के लिए बहुत रुपया और मेहनत दरकार है। इसी से अब तक हम यह काम न कर सके—अब टाम साहब बहुत-सा रुपया लेकर आए हैं। इस काम में इनकी जानकारी भी बहुत है, हमें इनके साथ काम में साझा करने का मौका नहीं चूकना चाहिए।"

'क्या वे हमारे खेतों में भी साझा करेंगे ?'

"नहीं, वे तो बाग लगाना चाहते हैं।"

'पर जिस काम को हम नहीं जानते, हम उसमें रुपया नहीं लगाएंगे। हमारी तो यह आलू की खेती ही अच्छी है।"

"वह तो है ही। परन्तु टाम साहब हमारा रुपया नहीं लेंगे। रुपया अपना लगाएँगे—पर साझा हमारा भी रहेगा।"

"बिना रुपये का कैसा साझा ?"

"सब काम रुपये से ही थोड़े होता है मानू। टाम साहब यहाँ अजनबी हैं। कोई उसे जानता नहीं है। बिना हमारी मदद के वह नहीं जम सकता। हमारा क्या हर्ज है, रुपया हम लगाएंगे नहीं, और मुनाफा हमें मिलेगा बराबर। तब क्यों न साझा कर लें।'

"रुपया नहीं लेगा तो अच्छा है। मैं साझा कर लूंगा। पर तीनों का बराबर का साझा रहेगा ?"

"बेशक बराबर का।"

ग्रौर ग्रब यह बाग़ान का नया कारोबार ग्रारम्भ हुग्रा। टाम साहब के साथ इस पहाड़ी के बहुत-से नक्शे थे। उसने चारों ग्रोर घूम-फिर कर इलाके भर का सर्वे करना ग्रारम्भ किया। जगह-जगह की मिट्टी की जाँच की, हर जगह की मिट्टी में पौद लगाई। ग्रनेक प्रकार के खादों की जाँच की। ग्रन्त में उसने नैनीताल से बाईस मील दूर रामगढ़ में बागान का तय किया। उन दिनों रामगढ़ एक छोटा-सा गाँव था। ंगल खौफ-नाक था। शेर ग्रौर बाघ रात-दिन घूमते रहते थे। उसने वहाँ के पहाड़ों ग्रौर जमीनों के पट्टे लिखने शुरू किए। बड़े-बड़े पहाड़ी खेत उसे सस्ते दामों से मिल गए। उन दिनों यहाँ बहुत कम ग्रौर साधारण खेती —केवल घाटी में नदी किनारे ही पर होती थी। जमीन खरीदने में उसकी बहुत मदद मातू ने की। रुपया टामस का लगता था। ग्रतः जमीनों का पट्टा भी उसी के नाम होता था। परंतु वहाँ जो बागान लगाने का काम होता था—उसमें ग्रादमी जुटाना, जंगल साफ करना, पौदे रोपना ग्रौर दूसरे कामों में फ्रेजर ग्रौर मातू से सहयता ली जाती थी। ग्रब सैकड़ों ग्रादमी इस काम में लगे थे। टामस ने यहीं एक बंगला बंधाया, ग्रास-पास की जगह साफ की—फूलों की क्यारियाँ लगाईं, ग्रौर उसे एक मनोरम स्थान बना दिया। जो लोग बागान में काम करते थे बाल-बच्चों सहित वहीं ग्रा बसते थे। देखते हीं देखते रामगढ़ एक ग्रच्छी बस्ती बन गई। उसमें बाजार भी लग गया। कुमायूँ के कमिश्नर ने भी उनकी योजना स्वीकार कर ली। ग्रब नाना प्रकार की मिट्टी की खोज की जाने ग्रौर नई-नई जाति के सेबों को उगाने के प्रयत्न होने लगे। देखते ही देखते पाँच साल में रामगढ़ में टामस की स्टेट एक बहुत भारी स्टेट हो गई। ग्रब मातू को प्रतीत हुग्रा-कि बागान के इस कारोबार के ग्रागे ग्रालू की खेती की कोई हैसियत न थी, ग्रभी तक भी तीनों ग्रादमी मुनाफे में शरीक थे। पर टामस ने कभी उनसे घाटे की बात ही नहीं की। मुनाफा यद्यपि ग्रभी कम था—पर उन्हें बराबर मिलता जाता था। टामस ने ग्रपने रुपये, मिलनसारी ग्रौर परिश्रम से फ्रेजर से ग्रधिक मान-

प्रतिष्ठा अर्जित कर ली। पहाड़ी इलाके में वह 'रामगढ़ का बड़ा साहब' के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

उसने एक पहाड़ी लड़की से शादी कर ली, और सद्गृहस्थ की भाँति रहने लगा। उसने पहाड़ी बोली भी जल्द सीख ली। फ्रेजर की अपेक्षा वह पढ़ा-लिखा भी अधिक था—धनवान था ही, अतः उसने आसपास के इस पहाड़ी इलाके में खूब नाम कमा लिया। उसने रामगढ़ और नैनीताल में एक अस्पताल और एक स्कूल भी वहाँ के लोगों के लिए खोला। कलकत्ते से उसने ईसाई डाक्टर और मास्टर बुलाए। वे लोगों का इलाज करते, दवा देते, बच्चों को पढ़ाते और उनका मन ईसाइयत की ओर फेरते थे—परन्तु अभी पहाड़ में कोई हिन्दू ईसाई नहीं बना था। टामस की पत्नी भी हिन्दू रिवाज ही मानती थी। वह यद्यपि दो बच्चों की माँ बन चुकी थी। उसका रहन-सहन भी परिवर्तित हो चुका था, पर आत्मा से वह हिन्दू ही थी। ईसाइयत के प्रचार के महत्व की ओर सीधे-सादे लोग ध्यान नहीं देते थे—वे अस्पताल और स्कूल को अच्छा काम समझते थे। इसके लिए टामस को वे धर्मात्मा फिरंगी कहने लगे थे।

टामस की देखादेखी और भी कई फिरंगियों ने यहाँ खेती और बाग का काम आरम्भ कर दिया। और दस ही साल में रामगढ़ फिरंगियों का अड्डा प्रसिद्ध हो गया।

: ४ :

ब्राह्मण की नजर

पुजारी महाराज और गुमानसिंह में बातचीत हो रही थी। पुजारी कह रहे थे, "जसजस सुरसा बदन बढ़ावा। तासु दून कपि रूप दिखावा। अब तो पटेल, तुम्हारे यहाँ फिरंगियों की खूब बढ़ती हो रही है। सुना है रामगढ़ में तो अब बहुत फिरंगी आ बसे हैं।"

"आ क्या बसे हैं, उन्होंने तो हमारी बापदादों की सभी जमीन-

जायदाद ही हथिया ली है। यही हाल रहा तो वे ही इस देश के मालिक हो जाएँगे, हमारे बाल-बच्चे उनके द्वार पर भीख मांगेंगे।"

"यह तो होगा ही पटेल, देश और धर्म के शत्रु को घर में आसरा देने से यही तो होता है। रामगढ़ में तो अब खूब चहल-पहल हो रही है। बड़े-बड़े बाग लगे हैं। पर देखो, इन फिरंगियों की अक्ल, कैसे-कैसे फल उपजाए हैं। जिनका हमें सुपने में भी गुमान न था। तुम अपनी आलू की खेती ही लो। पहाड़ भर में आलू की ही खेती हो रही है, फिर भी मांग इतनी है कि पूरा नहीं पड़ता। रुपया तो आता है पटेल, यह तो तुम मानोगे।"

"पर पुजारी महाराज, ऐसा मालूम होता है कि यह रुपया शैतान का वासा है। रुपया आता जाता है और धरम करम छूटता जाता है। देखो मेरे मानू को, सोने का लड़का था—मिट्टी हो गया। उस फिरंगी के साथ दारू पीता है, शिकार करता है, जुआ खेलता है। भला ये बातें कभी हमारे पहाड़ पर थीं?"

"तो पटेल, अभी तो यह पहला ही चरण है। ये फिरंगी सब लोगों को क्रिस्तान भी तो करते हैं—सुना है—उधर रामगढ़ में कुछ चमार और ढेड क्रिस्तान हो गए हैं। अब वे हमारे देवताओं को सरे-आम गालियाँ देते हैं।"

"सो तो देंगे ही। ढेड-चमार हैं। देवताओं ने उनकी कभी कोई मदद तो की नहीं, बेचारे बेगार ढोते और मुर्दा मांस खाते रहे। अब इन फिरंगियों ने उन्हें उबारा तो उनके देवता तो फिरंगी ही हैं। वे तो उन्हीं के गीत गाएँगे ही।"

"जरूर गाएँगे। पर बात यहीं तक नहीं रहेगी। वे हमारे कुओं पर भी चढ़ेंगे, और तुम्हारे मन्दिर में भी घुसेंगे।"

"म्लेच्छ क्रिस्तान कैसे हमारे मन्दिर में घुसेंगे?"

"कुएँ पर चढ़ गए तो मन्दिर में आने में क्या शेष रह गया। उस दिन वह डोमड़ा आया था—निश्शंक मेरे पास बैठ गया। मेरी हिम्मत न

हुई कि उसे दूर भगाऊँ। भला डोम कमबख्त हमारे बराबर बैठे ? हिन्दू-धर्म कहाँ रहेगा भला।"

"तो पटेल, हिन्दू धर्म रख लो-या पक्का बंगला बना लो, और रुपयों से थैली भर लो।"

"मैं तो अपने झोंपड़े में खुश था पुजारी महाराज, लेकिन मानू को क्या कहूँ—दीन से बेदीन बन रहा है—मालूम है—उस डोमड़े ने मुझ से क्या कहा ?"

"क्या कहा— ?"

उसने कहा—"हमारे ईसा मसीह तुम्हारे देवताओं के समान नहीं हैं, जो मर मिटे। बेचारा रामचन्द्र लक्ष्मण के शोक में सरजू में डूब मरा, कृष्ण को भील ने तीर से मार गिराया। ब्रह्मा का सिर शिव ने काट लिया, ये देवता तुम्हारी मुक्ति कैसे कर सकते हैं ?"

"राम राम, वह साला डोमड़ा ऐसा बकता है ? उसकी जबान नहीं कट कर गिरती।"

"मेरा मन होता है कि पाजी की जबान चिमटे से खींच लूं। पर लाचार हूँ—उसने तो और भी बुरी-बुरी बातें कही हैं।"

"और क्या-क्या कहा है ?"

उसने कहा—"हमारे ईसा महीस तुम्हारे ब्रह्माजी से अच्छे हैं जिन्होंने बेटी से मुँह काला किया। वे विष्णु से भी अच्छे हैं जो पराई औरतों को बिगाड़ते फिरते हैं। न हमारे ईसा मसीह तुम्हारे इन्द्र के जैसे लुच्चे हैं—जिसने गुरु की पत्नी को भ्रष्ट किया।"

"तो पटेल, यह तो उसे सिखाया गया है, हरामी डोमड़ा क्या जाने हमारे देवताओं का सार। जो सिखाया, सीख गया।"

"अजी, वह तो सीखा सो सीखा। मेरे मानू की बेहयाई तो देखो बैठा-बैठा सुनता और हँसता रहा।"

"क्यों न हँसेगा, सोहबत का असर तो होता ही है।"

"सो कम असर नहीं हुआ है। नालायक कहता है—पुराणों में गप्पें

भरी हैं। जनेऊ, चन्दन, कण्ठमाला, चोटी सब ढकोसला है।"

"हाँ भाई, कलियुग जो ठहरा। लड़का जब फिरंगी के साथ बैठकर शराब पिएगा तो ये बातें तो कहेगा ही। पर पटेल, अब तुम लड़के पर लगाम दो। वरना देख लेना लड़के से हाथ धोना पड़ेगा।"

"सो तो है, वह अब मेरे कहे का नहीं रहा। रुपया उसने क्या कमाया, अब तो वह मुझे बाप ही नहीं समझता। मेरा बाप बना हुआ है, बोलता हूँ तो कहता है—तुम बैठे-बैठे चुपचाप माला फेरो—और बातों से तुम्हें क्या मतलब। देखो नालायक की बात, तुम्हीं कुछ समझाओ।"

"इधर तो वह अब कभी झाँकता ही नहीं।"

"काहे को आएगा गुलाम। भगवान की दया है कि बहुरिया बहुत सुघड़ है, बड़ी धर्मात्मा है। बिना स्नान पूजा-पाठ पानी की बूंद भी उसके मुँह में नहीं जाती। बड़ी मिहनतिन और भलीमानस है। बस घर की बरकत उसी से है।"

"बड़ी बात है पटेल, अब धर्म तो सती के सत के ही सहारे है। मंदिर में वह हर मंगलवार को आती है।"

"तो महाराज उस नालायक को तुम्हीं समझाओ। मैं तुम्हारे पास भेजूंगा।"

"जरूर भेजना। देखूं पत्थर में जोंक लगती है कि नहीं?"

"जाऊँ अब पूजा का वक्त हुआ।"

'मैं भी जाता हूँ। वहू घर में अकेली है।"

दोनों बूढ़े अपनी राह लगे।"

: ५ :

मछली का शिकार

जिस समय दोनों बूढ़े अपनी बातें कर रहे थे—उसी समय फ्रेजर और टामस दोनों नैनीताल के एक किनारे पर पत्थर के टीले पर बैठे

मछली के शिकार का आनन्द लूट रहे थे। टामस के झोले में काफी बड़ी-बड़ी मछलियाँ एकत्र हो चुकी थीं। वह बहुत खुश था। दोनों दोस्त मछली की बंसी पानी में डाले—दिल की घुण्डियाँ खोल रहे थे। टामस ने कहा—

"मुल्क का यह हिस्सा निहायत दिल पसन्द है। मैंने तो अब यहीं कब्र बनाने का इरादा कर लिया है।"

"क्यों नहीं। तुम तो अब आधे हिन्दुस्तानी बन चुके। हिन्दुस्तानी बीवी से शादी करली। बच्चे भी पैदा हो गए। अब तुम कहाँ जा सकते हो ?"

"सचमुच जिस तरह यहाँ की आबोहवा पुर-लुत्फ है, वैसी ही यहाँ की औरतें भी मजेदार हैं। निहायत खुश मिजाज—फर्माबर्दार और मिहनती। तिस पर तुर्रा यह—कि अपने हकों से बेखबर। खिदमत ऐसी करती हैं कि कोई जर-खरीद गुलाम भी नहीं कर सकता।"

"मुबारकबादी देता हूँ दोस्त, जरूर उम्दा बीवी मिली है तुम्हें। तभी इस क़द्र बढ़-बढ़ कर तारीफें कर रहे हो।

"हकीकत तो यह है कि तारीफ कर ही नहीं सकता। उसकी जैसी सूरत है वैसी ही सीरत भी है। मगर दोस्त, क्या वजह कि तुमने यहाँ हिन्दुस्तान में आकर शादी नहीं की ?"

"शादी तो कुछ मुश्किल न थी। लेकिन मैंने इस इल्लत से दूर ही रहना पसन्द किया।"

"मैं समझता हूँ—वह लड़की नूना भी कुछ कम गुणी न थी।"

"निहायत हौसले की लड़की थी, लेकिन मुझे बहुत-सी बातें सोचनी पड़ीं। पहली बात तो यह—कि मैं यहाँ अकेला इन्हीं लोगों के रहमो-करम पर था। दूसरे मेरी उम्र भी ज्यादा थी। तीसरे लड़की की मंगनी पहले ही हो चुकी थी। चौथे वह लड़की बराबर मेरे साथ खाने-पीने का परहेज करती रही। उस बूढ़े पुजारी के असर में थी, इन सब बातों का विचार करके, और अपनी नेकनीयती की धाक कायम रखने के लिए मैंने

यह इरादा ही तर्क कर दिया।"

"खैर, शायद अच्छा किया। लेकिन अभी तुम्हारी उम्र कुछ ज्यादा भी नहीं है। इस मुल्क के बूढ़े-बूढ़े लोग तक बच्चियों से शादी कर लेते हैं, कुछ मुश्किल नहीं। यदि अब भी तुम चाहो तो मैं ही कोशिश करूँ। मेरी बीवी मेरी मदद कर सकती है।"

"नहीं दोस्त, इस बात को जाने दो। यहाँ के लोगों के तो चालचलन ही निराले हैं, और ब्याह-शादी का तो उनका दृष्टिकोण ही अनोखा है।"

"हाँ, वह मैं देखता हूँ। घर में जितने भाई होते हैं, एक ही औरत से साझे में शादी करते हैं। एक ही औरत सब भाइयों की जोरू बन जाती है। यूरोप में यह बात कही जाय तो लोग विश्वास ही न करें।"

कैसे कर सकते हैं, वहाँ स्वाधीनता-समानता की हवा बह रही है। लेकिन यहाँ, जहाँ औरतें गुलाम समझी जाती हैं—यह रिवाज बुरा नहीं है।"

"क्या इसमें कोई भलाई का दृष्टिकोण भी है?"

"काफी महत्वपूर्ण है। मैंने इस सम्बन्ध में यहाँ के लोगों से बातें की हैं। वे कहते हैं—इस रिवाज में भी फायदे हैं—प्रथम तो भाइयों में जायदाद का बटवारा ही नहीं होता, क्योंकि उनके उत्तराधिकारी सम्मिलित होते हैं। दूसरे इस गरीब मुल्क के इस हिस्से में जहाँ पैदावार बहुत कम होती है, यह रीति अच्छी है। इससे आबादी ज्यादा नहीं बढ़ती।"

"दलील तो बुरी नहीं। पर रस्म अजीब सी लगती है।"

"खैर, तो अब असल मुद्दे की बात करो। नैनीताल के बैनामे के सम्बन्ध में मैंने मानू से बात कही थी। वह कहता है—अच्छा दाम मिल जाय तो मैं बेच दूंगा। लेकिन एक बाधा है।"

"वह क्या?"

"गुमानसिंह। वह किसी हालत में नैनीताल बेचने को राजी नहीं

होता। कहता है, यह हमारी पुस्तैनी जायदाद है, बाप-दादों की, इसे कैसे गंवा दे।"

"गँवाना कहाँ हुआ, जब हम उसे उसकी असल कीमत से दस गुना दे रहे हैं।"

"पर ये हिन्दुस्तानी रुपए-पैसे में अपनी जमीन-जायदाद का मूल्य नहीं आंकते।"

"यह तो जहालत है। फिर हमने और भी तो जायदाद खरीदी है। इसके अलावा कमिश्नर साहब का इरादा नैनीताल में एक अच्छी कालोनी बसा कर उसे यूरोपियनों के लिए इलाके का सदर मुकाम बनाना है।

"मैं उनसे मिल चुका हूँ। मेरा नक्शा उन्होंने मंजूर फर्माया है। अब समय आ गया है—कि इस खुशनुमा इलाके में यूरोपियनों की बस्तियाँ बस जांय।"

"तो बेतहर हो, तुम खुद एक बार गुमानसिंह से बात करो।"

"अच्छी बात है। मैं बात करूँगा। लेकिन उसके मन की टोह तुम लेते रहना। मैं कोई कोशिश बाकी नहीं छोड़ूंगा। मानू को बराबर उकसाता रहूँगा कि वास्तव में इस इलाके से और इन पहाड़ियों से उसे कुछ भी फायदा नहीं है। वह रुपये का लालची भी है और हमारा दोस्त भी।"

"तो दोस्त, उससे फायदा उठाओ। इस सौदे में हमारा तुम्हारा बराबर का मुनाफा रहा। अब तुम से क्या छिपाऊं? मेरा इरादा है कि सस्ते में इस सारे ताल और आसपास की पहाड़ी को खरीद कर सरकार के हाथ बेच दूं। साहब कमिश्नर ने मुझे आश्वासन दिया है—कि सरकार अच्छे मुनाफे पर इलाका खरीद लेगी। साहब कमिश्नर बहादुर भी मुनाफे में हमारे हिस्सेदार रहेंगे। बस समझ लो, सब बातें तयशुदा हैं।"

"तो मैं भी पूरी कोशिश करूँगा।"

"जरूर करो। और जैसे मुमकिन हो काम बनाओ।"

इसके बाद दोनों साहबों ने मछलियों से भरे अपने-अपने झोले उठाए और अपनी राह लगे।

: ६ :

गोरा संत

ये बातें सन् १८४१ की हैं। इन्हीं दिनों वसन्त ऋतु में एक अधेड़ उम्र का अंग्रेज कहीं से आ कर नैनीताल के पहाड़ों में चक्कर काटने लगा। उम्र इस की पचास के पार होगी। कद लम्बा, शरीर पतला, कमर किसी कदर झुकी हुई, चेहरे पर भूरे रंग की छोटी सी दाढ़ी, नाक नोकदार और आँखें नीली थीं, जिन में एक विशेष प्रकार की चमक थी। यह आदमी नीले रंग का एक ढीला-ढाला लबादा पहने रहता था, और एक ऊँचा नोकदार कनटोप सिर पर रखता था। उसके पैरों में भारी जूते थे तथा हाथ में वह एक लम्बी पहाड़ी लकड़ी रखता था। उस के कन्धे पर एक बड़ा सा झोला लटका रहता था। जिस में वह बहुत सी जड़ी-बूटियाँ और दवाइयाँ रखता था। जड़ी-बूटियों का उसे शौक था। वह बहुधा पहाड़ों में जड़ी-बूटियों की तलाश में चक्कर काटता, कभी-कभी कोई बूटी उखाड़ कर चखता। कभी वह एकान्त में किसी पहाड़ी झरने के निकट किसी पेड़ के तने से ढासना लगा कर बैठ जाता और एक मोटी सी नोट बुक में घण्टों तक कुछ लिखता रहता। कभी वह किसी रम्य-स्थली में सघन देवदार वृक्षों की छाया में पैर पसार कर बैठ जाता और घण्टों चुपचाप बैठा रहता।

वह टूटी-फूटी हिन्दी बोल लेता था। पर वह बहुत कम बोलता था। कभी किसी से कुछ माँगता न था। राह-बाट चलते बटोहियों से वह कभी-कभी जड़ी-बूटियों की चर्चा करता। पहाड़ी इलाके के लोग यदि उस से किसी नई बूटी की चर्चा करते तो वह उसे अपनी नोट बुक में लिख लेता था। कभी उस की मौज होती तो नैनीताल की झील के किनारे घण्टों तक बैठा रहता, देर तक उस गहरे निर्मल, स्वच्छ सरोवर के नीले जल को देखता—कुछ होठों ही में बुदबुदाता—और मन होता तो मछली का शिकार करता था। प्रतिदिन प्रातःकाल वह किसी बस्ती में पहुँच जाता,

कभी नैनीताल की बस्ती में, कभी किसी दूसरे पहाड़ी गाँव में। वहाँ पहुँच कर कहता—"बाबा लोग, मैं डाक्टर हूँ, रोग का इलाज करता हूँ। तुम्हारे घर-गाँव में कोई बीमार है तो चलो मैं देखूंगा, दवा दूंगा। मैं खुदा के नाम पर दवा देता हूँ और खुदा से बीमार के चंगे होने की दुआ माँगता हूँ—रुपया-पैसा मैं किसी से नहीं लेता।" गाँव देहात के लोग उस से परचने लगे। उस ने कुछ रोगियों को चंगा भी किया, इस से लोग उस की आवभगत करने लगे। उस की अटपटी भाषा, विचित्र साधुओं का सा वेश, विनम्र वाणी, साधु स्वभाव, परोपकार वृत्ति, तथा निर्लोभ व्यवहार से सीधे-सादे पहाड़ के निवासी आबाल-वृद्ध प्रभावित होने लगे। उस का आदर सत्कार करने लगे। बहुत लोग उसे रुपया-पैसा देना चाहते, बहुत लोग उसे खाना देना चाहते—पर वह कभी किसी से कुछ नहीं लेता। हंस कर कोमल भाव से अस्वीकार कर देता। बहुधा वह ईश्वर और उसके पुत्र की बातें करता। उस की बातें सुनने को लोग उस के पास आ जुटते, तो वह अपने झोले से बाइबिल निकाल कर सब को दिखा कर कहता—यह ईश्वरीय पुस्तक है। इस में ईश्वर का वचन है, इस में ईश्वर ने सब की भलाई की बातें लिखी हैं। सुनो तुम्हारा भी इस से भला होगा। फिर वह पुस्तक बांच कर सुनाता। उसका भावार्थ समझाता, सब लोग शान्ति और धैर्य से सुनते, प्रसन्न होते थे। उस की दवाइयों और जड़ी-बूटियों पर सब का विश्वास बढ़ता गया। अब लोग बीमार होने पर उसे ढूंढ कर बुलाते और उस का इलाज कराते।

दोपहर बाद वह फिर जंगल में लौट जाता। या तो जड़ी-बूटी की खोज में भटकता, या फिर कहीं वृक्ष की छाया में बैठ कर नोट बुक में कुछ लिखता। या नैनीताल के सरोवर के किनारे बैठ कर चुपचाप जल की लहरों को देखता रहता।

प्रत्येक रविवार को वह बच्चों को बताशे बाँटता था, कभी इस बस्ती में, कभी उस में। वह उस दिन अपनी झोली में बहुत से खाँड के बताशे खरीद कर भर लेता, फिर बच्चों को बाँटता। बच्चे उस से परच गए

थे। वे उसे घेर, बताशे लेते—खाते और उसे नाना विधि तंग करते थे। बच्चों के तंग करने पर वह खीझता न था। खुश होता था। उनके साथ वह स्वयं भी बच्चा बन जाता था। कभी वह उनके साथ नाचने लगता, कभी गाना सुनाता। गाने की एक किताब उसके पास थी। उसी के वह गीत गाता—बच्चे भी उस के साथ लय मिला कर गाते, खेलते और खुश होते थे।

दूर-दूर तक उस की चर्चा पहाड़ में होने लगी। उस ने अपना नाम किसी को नहीं बताया। पर इस इलाके में वह 'गोरा संत' के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

इस समय जो स्थान ब्रुकहिल के नाम से नैनीताल के ऊपरी अंचल में चाइना पीक नामक प्रसिद्ध पर्वतशृंग की तलहटी में प्रसिद्ध है, और जहाँ अब सरकारी उच्च अधिकारियों के बंगले और सेक्रेटरिएट की भव्य और आलीशान इमारतें खड़ी हैं, वहाँ उन दिनों गहन वन था। उधर ऊपर के पार्वत्य प्रदेशों को जाने वाले यात्रियों के अतिरिक्त बहुत कम लोग जाते थे। हिंस्र जन्तु भी वहाँ रहते थे। नैनीताल की बस्ती सरोवर के इसी पार थी—वह भी बहुत विरल। परन्तु इस गोरे सन्त ने अपना निवास उसी ऊपरी वनश्री के अंचल में चुना था। उस ने अपने हाथों पत्थर के ढोकों से एक छोटी सी कुटी बनाई थी। कुटी के सामने उसने धीरे-धीरे बहुत सी धरती साफ कर के उस में कुछ फल-फूल लगाए थे। अपनी फुर्सत का बहुत सा समय वह अपने इसी खेत में व्यतीत करता था। फल-फूल के अतिरिक्त उसने बहुत सी जड़ी-बूटियाँ भी बोई थीं। धीरे-धीरे लोग उस की कुटी पर भी आने लगे। वे उससे दवा-दारू लेते, सलाह-मशविरा करते, सुख-दुःख की बातें करते और वह सब को उन की भलाई की बात बताता। उस ने कुछ बकरियाँ भी पाली थीं। वह अपने हाथ से उन का दूध दुहता। बकरी के बच्चों को लाड़-प्यार करता। प्रेम से उन्हें चराता। धीरे-धीरे उसने अपनी कुटिया का और विस्तार कर लिया। उस में अब अच्छे-खासे दो-तीन कमरे बन गए। यहाँ कभी-

कभी वह राहगीर अतिथियों को ठहराता, उन्हें बकरी का दूध पिलाता, या चावल, आटा-ईंधन देता। वे उस की कुटी में विश्राम पाते, आहार पाते, और सन्त का गुण-गान करते अपनी राह जाते। कभी-कभी वह किसी आगन्तुक से गम्भीर वाणी से कहता—देखो, यहाँ घर है, बकरी है, खेत है, मैं हूँ—पर औरत नहीं है। औरत के बिना आदमी की जिंदगी अधूरी है। गोरे सन्त की इस बात को सुन कर कुछ लोग हँसते, कुछ कहते—बाबा, एक औरत से तुम ब्याह कर लो। यह सुन कर सन्त भी हँस कर कहता—मैं बूढ़ा हूँ—परदेशी हूँ, सन्त हूँ—मुझ से कौन औरत ब्याह करेगी। इस गोरे सन्त ने कभी किसी वस्तु की किसी से याचना नहीं की थी। पर उस की यह स्त्री की याचना या अभाव की अभिव्यक्ति प्रभावशाली थी। धीरे-धीरे गोरे सन्त की यह बात भी उस अंचल में प्रसिद्ध हो चली। गोरा सन्त किसी स्त्री से ब्याह करना चाहता है। इस चर्चा के साथ स्त्रियों में उस के प्रति उत्सुकता भी बढ़ चली। अब वह जब किसी बस्ती में जाता तो स्त्रियाँ उसे खास चाव से देखतीं, हँसतीं, इशारेबाजी करतीं। परन्तु सन्त की दृष्टि निर्दोष थी, हृदय शुद्ध था। वह निस्सन्देह एक जीवन संगिनी की कामना करता था। परन्तु लम्पट न था। इस कामना से उसके साधु-चरित्र में कोई अन्तर न आया। फिर भी अब कोई-कोई उस के समवयस्क अधेड़ व्यक्ति उस से स्त्री की चर्चा करने लगते। कहते—बाबा, कोशिश करो तो पहाड़ में तुम्हें कोई लड़की मिलनी कौन मुश्किल है। परन्तु गोरा सन्त यह सुन कर भी हँस देता था। इस प्रसंग में बातचीत को प्रोत्साहन नहीं देता था। ऐसे ही इस विदेशी सत्पुरुष के दिन बीत रहे थे। और अब उसे हिमाचल प्रदेश में रहते तीन बरस बीत चुके थे।

: ७ :

साहूकार बन्धु का घराना

इन्हीं दिनों दो साहूकार नैनीताल में रहते थे। दोनों सगे भाई थे।

उनके नाम थे—झण्डूशाह और गण्डूशाह। परन्तु पिता के मरने के बाद दोनों अलग-अलग रहने लगे थे। धन-सम्पत्ति सब का बटवारा हो चुका था। दोनों के घर पास-पास थे। घर पक्के और बहुत विशाल थे। झण्डूशाह बड़ा भाई था और गण्डूशाह छोटा। इनके पिता चन्दूशाह बड़े भारी नामी-गरामी साहूकार थे। देश-देशान्तरों में इन की हुण्डी चलती थी। नैपाल, तिब्बत, भूटान और चीन तक इन के कारोबार फैले थे—इन पहाड़ी प्रदेशो से कस्तूरी, केसर, खालें, कीमती पत्थर, जहरमोहरा और नमदे पट्टू, शाल, गर्दे और कम्बल हजारों की संख्या में इनके यहाँ आते और नीचे मैदान में सब शहरों में भेजे जाते थे। मैदानी माल सूती कपड़ा, नमक, सोना, चाँदी के जेवर, दवाइयाँ और दूसरी जीवन यापन की कीमती वस्तुएँ ये ऊपर पहाड़ी प्रदेशों में भेजते थे। अनेक शहरों में उन की कोठियाँ थीं, गुमाश्ते थे, आढ़तें थीं। चन्दूशाह का लाखों का कारोबार था। पर अब समय बदल चुका था। मुल्क में कम्पनी बहादुर का अमल फैल चुका था। और यह इलाका कुमायूँ डिवीजन बन गया था—जहाँ एक कमिश्नर का हुक्म सब पर चलता था। कम्पनी बहादुर ने ये इलाके नेपाल से छीन लिए थे, और अब नेपाल, तिब्बत, भूटान और चीन तक का अबाध व्यापार यहाँ निरन्तर युद्ध और विग्रह होते रहने के कारण छिन्न-भिन्न और अस्तव्यस्त हो चला था। इन पहाड़ी प्रदेशों का सांस्कृतिक सम्बन्ध नैनीताल से लगभग टूट चुका था। इसी बीच चन्दूशाह की मृत्यु हो गई। और दोनों भाइयों ने आपस में बटवारा कर के अलग-अलग रहना और अपना-अपना कारोबार करना आरम्भ कर दिया था। परन्तु अब वह पुरानी शानो-शौकत और धूमधाम न थी। जहाँ चन्दूशाह के द्वार पर हाथी-घोड़े, झप्पान, डाँड़ी, नौकर, गुमाश्ते, मुनीमों का ठठ लगा रहता था, वहाँ अब ये सब बातें उल्का हो चुकी थीं। फिर भी झण्डूशाह बड़ा भाई किसी कदर शरीफ, मिलनसार, बुद्धिमान और कारोबारी आदमी था, परन्तु गण्डूशाह आवारागर्द, दुश्चरित्र, फजूलखर्च, शराबी और जुआरी हो गया था। उस ने देखते ही देखते पिता के

मरने के चार साल बाद ही अपने हिस्से का सब धन फूंक डाला, रियासत, जायदाद बेचनी और रहन रखनी आरम्भ कर दी। शीघ्र ही उस का बाल-बाल कर्ज से बिंध गया और उस का कारोबार चौपट हो गया। पूंजी चुक गई साख उठ गई, नेकनामी जाती रही। लुच्चों, गुण्डों, जुआरियों की सोहबत में वह या तो फिरंगियों की शराब पीता—या चण्डू के दम लगाता, या इधर-उधर दूसरों की बहू-बेटियों पर हाथ डालता। कितनी ही बार उस की पिटाई हुई, बेइज्जती हुई पर उसे इस की परवाह न थी। बड़े भाई से भी उसने लड़ाई कर डाली। वह उस का जानी दुश्मन बन बैठा। नौबत यहां तक पहुँची कि दोनों में बोलचाल भी बन्द हो गई, और वह हर बात में भाई की काट करने लगा। दूसरे उसे मुकदमेबाजी का चस्का लगा। असामियों पर जाल बना कर झूठे-सच्चे मुकदमे उस ने खड़े कर लिए, और आए दिन वह अदालत-कचहरियों की धूल फाँकता फिरने लगा। दुर्भाग्य से उस की स्त्री भी वैसी ही लड़ाकू और खटपटी थी। आए दिन दोनों में कलह होती रहती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि उस के दोनों लड़के आवारागर्द और बेकहे हो गए। अभी वे छोटे ही थे कि घर से चीज-वस्तु चुरा ले जाते। न स्कूल जाते, न पढ़ते-लिखते।

झण्डूशाह की स्त्री का नाम गोमती था। वह पति ही के समान साधु स्वभाव-हंसमुखी और भली थी। वह अति सुन्दर स्त्री थी। धर्मभीरु भी वह बहुत थी। कभी किसी ने उसे कड़ी बात कहते नहीं सुना था। इस समय इसके विवाह को सात बरस बीत चुके थे—पर भगवान् ने उसकी गोद नहीं भरी थी। इसके लिए न जाने कितनी मानताएँ देवताओं की की गईं। कितनी दवा-दारू, जादू-टोने किए गए; तब भगवान् की कृपा हुई—और अब इतने दिन बाद एक पुत्र से उसके घर का सूनापन दूर हुआ। पुत्र-जन्म की बहुत-बहुत खुशियाँ मनाई गईं। दान-पुण्य किए गए। नैना देवी के मन्दिर में चाँदी का छत्र चढ़ाया गया, दावतें हुईं, गाना-बजाना हुआ। बालक बहुत सुन्दर और स्वस्थ था—देख कर माता-पिता नहीं अघाते थे। परन्तु यह देख गण्डूशाह और उसकी स्त्री जल-

भुन कर राख हो रहे थे, और कोई ऐसा काम करने से नहीं चूकते थे कि जिससे बड़े भाई का अनिष्ट हो।

झण्डूशाह ने बहुत बार भाई को मनाने और मेल करने की चेष्टा की—परन्तु इसका कोई परिणाम न निकला। उसका क्रोध बढ़ता ही गया और इस प्रकार यह साहूकार का घराना चौपट होता गया।

: ८ :

जल-समाधि

इस समय तक भी पहाड़ का कोई व्यक्ति न तो नैनीताल की झील में तैरता था, न किसी ने उसमें किश्ती डाली थी। सर्वप्रथम फ्रेजर ने एक किश्ती छोटी-सी पाल वाली बना कर झील में डाली। इस बात का अनेक देशी लोगों ने विरोध किया। कहा—"नैना देवी की आन है कि झील की छाती पर किश्ती नहीं चलेगी। पर वह अब वह फ्रेजर नहीं था, जो भूखा, एक टुकड़ा रोटी और आश्रय की भीख मांगने नैना देवी की शरण में आया था। अब वह यहां का प्रतिष्ठित जमींदार था, उसका बंगला था—अनेक खेत फार्म और बागान थे। इसके अतिरिक्त अब वह अकेला फिरंगी इस गिर्द में न था। उसके बहुत से जात-बिरादरी के यूरोपियन लोग पहाड़ों में बस गए थे। उन्होंने पहाड़ों में भिन्न-भिन्न स्थलों में अपनी बस्तियाँ कायम कर ली थीं, वे शान से रहते तथा लाखों रुपये बागान और आलू की खेती से कमाते थे। सरकार का उन पर हाथ था। वे सरकार की नीति के आदमी थे। रहन-सहन और शान-शौकत में वे अद्वितीय थे, और दरिद्र, अपढ़, असंगठित पहाड़ी, अनायास ही उनसे प्रभावित हो कर उनकी दासता स्वीकार करते जाते थे।

फ्रेजर ने जो किश्ती ताल में डाली तो इसका बहुत विरोध पुजारी ने और गुमानसिंह ने किया। पर मानसिंह की शह पा कर फ्रेजर ने उनकी बात पर कान नहीं दिया। सभी को विश्वास था कि किश्ती पानी

में नहीं तैरेगी, डूब जायगी। परन्तु किश्ती नहीं डूबी—तैरती रही और फ्रेजर अपने इष्ट मित्रों सहित स्वच्छन्द जल बिहार करने लगे। इसके लिए गुमानसिंह को एक रकम सालाना टैक्स के रूप में पाने को राजी कर लिया गया।

झील पर अब भी गुमानसिंह का अधिकार था। फ्रेजर और टाम उसे सब प्रकार का प्रलोभन दे कर हार गए थे। पर वह उसे बेचने को राजी न होता था। सरकार खुल्लम-खुल्ला इस सौदे में पड़ना नहीं चाहती थी, पर वह टाम और फ्रेजर की पीठ पर थी। समूचा कुमायूँ और गढ़-वाल का इलाका अंग्रेजी उपनिवेश बना लिया जाय, यह सरकार की निश्चित स्कीम थी। इसी से सरकार पट्टे-परवाने और दूसरी सुविधाएँ दे कर यूरोपियनों को वहाँ बसाने में सहायता दे रही थी। हल्द्वानी से अलमोड़ा तक का मार्ग चौड़ा कर दिया गया था। और अब वहाँ से निरन्तर खच्चर-घोड़ा आते जाते थे।

टाम और फ्रेजर ने मिल कर एक योजना तैयार की। अभिसन्धि गुप्त रखी गई। पहले वे मानसिंह को साथ ले कर पुजारी के पास आए और यह इच्छा प्रकट की—कि अंग्रेज बाल-बच्चे और अफसर झील में जल बिहार करते हैं, अतः वह नैना देवी की पूजा बलि ताल में चल कर करा दे। पुजारी को भारी दक्षिणा का प्रलोभन दिया गया। और अन्ततः वह किश्ती में बैठ कर ताल के बीचोबीच जा कर पूजा कराने को राजी हो गया। उसने यह भी वचन ले लिया कि पूजन गुमानसिंह करेंगे। फिरंगी पूजा के पदार्थ नहीं छुएँगे। पुजारी को राजी कर के अब टाम और फ्रेजर एक कीमती शाल और सौ रुपये का नजराना ले कर गुमानसिंह की सेवा में पहुँचे और कहा—"आप हमारे जमींदार हैं ताल के मालिक हैं। पुजारी महाराज नैना देवी और नैनीताल की पूजा कराएँगे। पूजा आप को करनी होगी। आप क्षत्री हैं। पुजारी महाराज फिरंगियों को पूजा की सामग्री छूने नहीं देंगे। इसलिए आप ही पूजा करा दीजिए। बेचारा बूढ़ा गुमानसिंह सौ रुपये की शाल और फिरंगियों

की मीठी चापलूसी भरी बातें सुन कर उनके फंदे में फंस गया। उसने कुछ अर्द्ध निश्चय के स्वर में कहा—"लेकिन नैनीताल में आज तक कोई हिन्दुस्तानी आदमी नाव पर नहीं चढ़ा। नाव उलट गई तो ?"

परन्तु अंग्रेजों ने उसे विश्वास दिलाया कि वे भी रोज ही नाव पर सैर करते हैं, फिर पुजारी महाराज खुद ही नाव पर रह कर पूजा कराएँगे। अन्ततः पुजारी से सलाह कर के गुमानसिंह भी राजी हो गया।

अनन्तचौदस का दिन इस शुभ काम के लिए नियत किया गया और उस दिन भोर ही नाव को फूलों से सजा कर लाया गया। उस पर पूजा का सामान रखा गया। नाव पर पुजारी, गुमानसिंह, मानसिंह और दोनों अंग्रेज बैठे। पुजारी के अनुरोध से अंग्रेजों ने जूते उतार दिए। धीरे-धीरे किश्ती बीच धार पहुँच गई। कुछ लोग किनारे पर खड़े हो कर यह दृश्य देखने लगे। यह पहला ही समय था जबकि एक हिन्दुस्तानी नाव पर चढ़ कर ताल में गया था।

ताल के मध्य भाग में पहुँच कर नाव ठहरा दी गई। किश्ती को खुद फ्रेजर खे रहा था। पुजारी ने पूजन के मन्त्र पढ़ने आरम्भ किए। गुमानसिंह हाथ जोड़ कर सामने बैठा। इसी समय टाम ने एक कागज जेब से निकाल कर उसे गुमानसिंह के आगे बढ़ाते हुए कहा—"पहले इस पर दस्तखत करो ठाकुर !"

"यह क्या है ?"

"यह दस्तावेज है। यह झील और आसपास की पहाड़ियाँ तुम ने तीन हजार रुपयों में हमें बेच दी हैं।"

"नहीं, मैंने नहीं बेची हैं।"

"लेकिन इस कागज़ पर दस्तखत कर दो ठाकुर।"

"मैं दस्तखत नहीं करूँगा, तुम ने मुझे धोखा दिया। पूजा के बहाने यहाँ ले आए। अब मैं पूजा भी नहीं करने का।"

"पूजा करो, या न करो तुम्हारी मर्जी है, पर इस कागज पर दस्तखत अभी करो।"

"दस्तखत क्यों करूँ, क्या कोई जबरदस्ती है ?"

"हम तुम्हें रुपया देते हैं।"

"पर हम नहीं बेचते।"

"तुम बेच चुके ठाकुर। खैरियत यही है कि दस्तखत कर दो।"

"नहीं तो तुम क्या करोगे ?"

"यह तुम्हें अभी मालूम हो जायगा।"

गुमानसिंह ने मानसिंह की ओर आँखें तरेर कर कहा—"मानू, क्या तू भी इस धोखेबाज सफेद शैतानों के साथ है ?"

"नहीं दद्दा, मुझे तो कुछ मालूम नहीं।"

इसी समय कोई ठण्डी चीज मानसिंह की कनपटी में आ लगी। उसने मुँह फेर कर देखा—फ्रेजर पिस्तौल ताने बैठा है, मानू ने कहा—"यह क्या बात है साब ?"

"अपने बूढ़े बाप से कहो कि दस्तखत कर दे।"

"नहीं करते दस्तखत, क्या जबरदस्ती है ?"

"पहले तो तुम राजी हो गए थे।"

"पर दद्दा तो राजी नहीं है। फिर यहाँ तो तुम धोखे से हमें ले आए हो ? दस्तखत नहीं होंगे।" उसने हाथ बढ़ा कर फ्रेजर के हाथ से पिस्तौल छीनना चाहा। इसी समय गोली उसकी खोपड़ी में घुस गई और वह धम से पानी में गिर गया। बूढ़ा पुजारी थर-थर काँपने लगा। गुमानसिंह के भी होश बाख्ता हो गए। टाम ने आग-सी जलती हुई आँखें उस पर जमा कर कहा—"दस्तखत करता है बुड्ढ़े, या बेटे के साथ जहन्नुम जायगा ?"

गुमानसिंह ने देखा—यह कोरी धमकी नही है। फ्रेजर की पिस्तौल उसकी ओर तनी आ रही है।

पुजारी ने कहा—"दस्तखत कर दो गुमानसिंह। वाह, भला यह भी कोई बात हुई, शिव-शिव।"

गुमानसिंह ने काँपते हाथों से कागज पर दस्तखत कर दिया। कागज

को यत्न से जेब में रख टाम ने कुल्हाड़ा उठा किश्ती के पेंदे में तीन करारे वार किए। पुजारी ने कहा—"यह क्या ? यह क्या ?" पर किश्ती में पानी तेजी से भरने लगा और किश्ती मझधार में डूबने लगी। पुजारी और गुमानसिंह हाथ उठा-उठा कर चिल्लाने लगे। किनारे पर खड़े लोग भयभीत हो किश्ती को डूबता हुआ देख रहे थे। ज्योंही किश्ती के किनारे तक पानी पहुँचा—तो अंग्रेज कूद कर तैरने लगे। किश्ती दोनों बूढ़ों को ले कर देखते-देखते अतल जल में समा गई। दोनों बूढ़ों की इस प्रकार जल-समाधि हो गई। किसी को भी वास्तविक घटना का पता न लगा। यह घटना नैना देवी के कोप से मानी गई। इसमें दोनों अंग्रेजों की कुछ अभिसन्धि थी—इस पर किसी को विश्वास भी नहीं हुआ। यद्यपि गोली चलते और मानसिंह को पानी में गिरते हुए लोगों ने देखा था। पर वे बहुत दूर थे। ठीक-ठीक देख-समझ नहीं सके। और अब इस घटना के सच्चे गवाह केवल वे दोनों अंग्रेज थे—जो वास्तव में एक भयानक डाकू और हत्यारे थे। ऊपर अन्तरिक्ष के देवता अवश्य सब बातें देख रहे थे।

: ६ :

भयानक इरादा

नैनीताल की आबादी से कोई डेढ़-दो मील नीचे घाटी में पातालेश्वर महादेव का एक मन्दिर था। सच्चे अर्थों में इसे मन्दिर न कह कर गुफा कहना ठीक होगा। गुफा बहुत अंधेरी और तंग थी। उसमें आदमी सीधा खड़ा हो कर नहीं जा सकता था। गुफा के उस छोर पर शिवलिंग था। शिवलिंग भी एक अनगढ़ पत्थर की शिला के रूप में था। लिंग पर झरने से जो जल गिरता था, वह गुफा में भीतर ही भीतर गायब हो जाता था। यह गुफा अति प्राचीन थी। गुफा के बाहर एक मनोरम झरना था जिसमें काफी ऊँचाई से जल गिरता था। कुछ दिन

पूर्व एक अवधूत महात्मा यहाँ आ कर रहे थे। उन्होंने एक कुटिया बनाई थी—और कुछ गौएँ पाली थीं। महात्मा के पास आसपास के गाँवों के बहुत स्त्री-पुरुष आते—भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम करते और उनके उपदेश तथा आशीर्वाद प्राप्त करते थे। महात्मा बहुत बूढ़े थे और कहीं आते जाते न थे, तथा केवल दुग्ध-आहार करते थे। भक्त-जन उन्हें दूध दे जाते या गाय का दूध वे दुह लेते थे। परन्तु वे किसी से कुछ माँगते न थे। सब लोग उन्हें दुग्धाहारी बाबा करते थे। उनके आने से प्रथम इस गुफा के संबंध में कोई कुछ न जानता था। यहाँ भयानक गहन वन था, तथा वह राह-बाट से बहुत हट कर था। यहाँ तक आने की राह न थी। महात्मा जी ने गुफा को साफ किया, आम रास्ते से एक पगडण्डी की राह बनाई और नियमित रूप से शिवार्चन आरम्भ किया। पहले कुछ गडरियों ने उन्हें देखा—फिर उनके द्वारा आसपास के गाँवों में उनकी चर्चा हुई, और इस प्रकार भक्त लोग उनके पास आने-जाने लगे, तथा पातालेश्वर भगवान् की पूजा करने लगे। शिवरात्रि को यहाँ एक मेला भी लगने लगा। बहुत से स्त्री-पुरुष जुटने लगे। चन्दूशाह ने महात्मा की पक्की कुटिया बनवा दी थी, और एक बारहदरी बनवा कर उस पर छप्पर डाल दिया था—जिसमें भक्त-जन आ कर बैठते, चिलम-तमाखू पीते और भगवान् पातालेश्वर पर जल चढ़ाते थे। गुफा और लिंग की बनावट तथा उस पर निरन्तर जल गिरना और लोप होना एक प्राकृतिक संयोग था, कि भोली-भाली ग्रामीण जनता उसे चमत्कार समझती थी। धीरे-धीरे पातालेश्वर और दुग्धाहारी बाबा की चर्चा सारे नैनीताल और आसपास के गाँवों में होने लगी थी। शिवरात्रि पर वहाँ सौ दो सौ आदमी आ जुटते थे।

कुछ दिन बाद बाबा कैलाशवास कर गए। कुटी सूनी हो गई। लोगों का आना-जाना भी बन्द हो गया। धीरे-धीरे कुटिया टूट-फूट गई—बारहदरी का छप्पर भी सड़-गल गया। किसी ने उसकी मरम्मत नहीं की। अतः वह स्थान फिर गहन भयानक जंगल में परिणत हो गया। वन्य पशु वहाँ चरने लगे। रात की बात तो दूर, दिन में भी लोग उधर

जाते भय खाते थे। गडरिए अलबत्ता कभी-कभी बकरियाँ चराते हुए उधर आ निकलते थे, और वे पातालेश्वर को प्रणाम कर एकाध विल्वपत्र चढ़ा देते थे। परन्तु शिवरात्रि का मेला वहाँ अवश्य होता था। यद्यपि उसकी वह धूमधाम न थी, और उसे मेला भी कठिनाई से कहा जा सकता था; परन्तु दस-बीस जन वहाँ आते, स्थान को साफ करते, नारियल फोड़ते, झरने में स्नान करते और पातालेश्वर बाबा को प्रणाम कर सूर्यास्त से प्रथम ही अपने घरों को प्रस्थान कर देते थे। रात को वहाँ रहने का साहस किसी को न होता था। कुछ लोगों ने तो यह भी कहना आरंभ कर दिया था कि रात को वहाँ भूत-प्रेत वैतालों की चौकड़ी बैठती है। उसके बीच बैठ कर साक्षात भूतनाथ पातालेश्वर भंग-धतूरा छानते हैं। ऐसी ही और भी किम्वदन्तियाँ प्रचलित होती जा रही थीं।

जिस दिन की बात हम कह रहे हैं, उस दिन अमावस की अंधेरी रात थी—और इस भयानक स्थान पर आधी रात के समय दस-ग्यारह मनुष्य एकत्रित थे। उनकी आकृति और वेशभूषा भी भयानक थी। वे चुपचाप किसी की प्रतीक्षा कर रहे थे। हवा बड़े जोरों से चल रही थी। पहाड़ों में हवा के टकराने का बड़ा भयानक शब्द होता था। चारों ओर का वातावरण ऐसा भयावह था—कि अच्छे-अच्छे वीर पुरुषों का भी कलेजा दहल जाय। परन्तु ये लोग अवश्य ही जीवट के आदमी थे। जो इससमय यहाँ एकत्रित थे, अवश्य ही उनका कोई भयानक इरादा था, और वे अवश्य ही अपने से अधिक किसी भयानक आदमी के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

परंतु उन्हें अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। एक अति विकराल पुरुष ने वहाँ प्रवेश किया। उसके आते ही जो लोग धीरे-धीरे बात कर रहे थे, वे सहम कर पंक्ति बाँध कर खड़े हो गए, और उस भयानक आगन्तुक की ओर देखने लगे। यह आदमी कद में इन सब से लम्बा था। इसके अतिरिक्त वह बहुत मजबूत आदमी था। उसमें साँढ़ को मार गिराने की ताक़त थी। उसके कन्धे पर एक कुल्हाड़ी थी, जिसका

तेज धार वाला लोहा अंधेरे में भी चमक रहा था। उसकी कमर में एक लम्बी तलवार लटक रही थी, और एक बड़ा-सा छुरा उसकी फेंट में खुसा था। उसका खूंखार चेहरा घनी काली दाढ़ी से घिरा हुआ था। जिसमें लाल-लाल आँखें इस अंधेरे में भी बड़ी डरावनी मालूम हो रही थीं। उसने आते ही एक-एक कर के प्रत्येक आदमी के शरीर से कुल्हाड़ा छुआया। और प्रत्येक आदमी ने कुल्हाड़े को दोनों हाथों में थाम कर 'जय माँ काली—तेरा वार कभी न जाए खाली' कह कर सिर झुकाया।

फिर सब लोग चुपचाप इस भयानक आदमी की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे। उसने भेद भरी दृष्टि से एक-एक की ओर देखा—फिर उनमें से एक की ओर देख कर कहा—

"कहाँ है?"

"हाजिर है सरदार!"

"लाओ!"

वह आदमी भीतर कोठरी में चला गया। और हाथ-पैर बंधे हुए एक आदमी को ढकेलता हुआ ले आया। यह गण्डूशाह था। उसकी ओर दो कदम आगे बढ़ कर उस भयानक पुरुष ने कहा—

"क्यों बे हरामी बनिए, क्या तुझे उस पेड़ से लटका दूँ?"

"सरदार, मुझ पर रहम करो, बाल-बच्चेदार हूँ मैं!"

"तो ला, पाँच तोड़े गिन दे?"

"दुहाई, इतना रुपया मेरे पास नहीं है।"

"तो जालिमसिंह, डाल इसके गले में फंदा।"

वही साथी जो उसे लाया था—आगे बढ़ा। उसने रस्सी का फंदा उसके गले में डाल दिया। गण्डूशाह गिड़गिड़ा कर सरदार के पैरों में गिर पड़ा—और कहने लगा—

"सरदार, भगवान् की कसम है झूठ नहीं बोलता। इतना रुपया मेरे पास नहीं है।"

"तुझे तो पन्द्रह दिन की मोहलत दी गई थी।"

"लेकिन लाऊँ कहाँ से ? मेरा तो सारा कारोबार ही चौपट हो रहा है।"

"झूठा, दगाबाज़, कपटी, चोर, हमेशा रुपये की धेली देता है। वह बारह हजार का माल था, लेकिन तूने पाँच दिए और अंगूठा दिखा दिया। बाकी तेरे मोटे पेट में गया कि नहीं ?"

"कसम भगवान् की सरदार, उस सौदे में तो मुझे कुछ भी नहीं मिला। तमाम माल खोटा था।"

"खैर, तो अब या तो पाँच तोड़े गिन, या मर।"

"इतने बेरहम न बनो सरदार। हमारा-तुम्हारा साबका बरसों का है। मैंने कभी तुम्हें धोखा नहीं दिया।"

"मैं नहीं जानता। पाँच तोड़े गिन और लम्बा बन। अब मैं यह जंगल छोड़ने वाला हूँ। वह साला अंग्रेज कमिश्नर मेरे पीछे पड़ा है। और मेरे पास धेला नहीं। मुझे रुपया दे।"

"तो सरदार, ऐसा करो, कि साँप मरे न लाठी टूटे।"

"सूअर, कोई गहरी चाल खेलना चाहता है।"

"कसम भगवान् की सरदार, मेरी बात तो सुन लो। फिर पाँच क्या पचास हजार पर हाथ साफ करो।"

"तो जल्दी कह, क्या कहना चाहता है, माल कहाँ है ?"

"मेरे भाई के घर।"

"वहाँ मुझे फँसाने का जाल फैलाया है तू ने। मैं ऐसी कच्ची गोली नहीं खेला। जालिम, लटका दे साले को।"

"नहीं सरदार, सुनो तो—मेरा भाई मेरा जानी दुश्मन है। मेरी बहुत सी रकम हड़प किए बैठा है। रुपया नकद इस वक्त उसके घर में है, कल परसों ही दिल्ली से आया है। यह अवसर मत चूको, सरदार। रुपया कहाँ रखा है—वह मैं जानता हूँ।"

"दगा तो नहीं करता।"

"बस मेरे तुम्हारे बीच गंगा है सरदार।"

"अगर दगा की तो घर-बार में आग लगा दूँगा। जीता एक को न छोड़ूँगा।"

"सरदार, तुम्हारा काम बनेगा, मेरे दिल का काँटा निकलेगा। दगा मैं नहीं करूँगा।"

"खैर, तो कब?"

"बस परसों!"

"इतनी जल्दी?"

"रुपया फिर उठ जायगा। हाथ कुछ नहीं लगेगा!"

"तो परसों ही सही, उस घर में आदमी कितने रहते हैं?"

"परसों रात सिर्फ तीन-चार रहेंगे। भाई, उसकी औरत और नौकर।"

"हथियार है उसके पास?"

"तलवार है। तमंचा, बन्दूक कुछ नहीं है। भाई मेरा दब्बू है। लड़ेगा नहीं।"

"और तू?"

"फाटक तुम्हें खुला मिलेगा। आगे का काम तुम संभालना।"

"देखा जायगा। अब तू क्या देता है?"

"मुश्किल से पाँच सौ दे सकता हूँ।"

"बाम्हन नहीं हूँ रे साले, वह काम तो परसों होगा, पर तू तो आज ही मर, जालिम निबटा इसे।"

जालिमसिंह उसे घसीट कर पेड़ के नीचे ले गया, और फाँसी का फंदा उसके गले में डाल दिया। गण्डूशाह बहुत रोया-गिड़गिड़ाया, अन्त में एक हजार देने को राजी हो गया। सरदार ने कहा—"अच्छा, एक हजार ही सही। जालिमसिंह तेरे साथ जायगा, रुपया इसे ही दे देना। काम रातोरात होना चाहिए, और परसों तीसरे पहर मेरे दो आदमी मौका-मुहाल देखने तेरे घर आएँगे, उन्हें सब मौके दिखा देना, और अपने घर में छिपा रखना। खबरदार, चूकना नहीं, नहीं तो जान नहीं बचेगी।"

"इत्मीनान रक्खो सरदार, तुम्हारा हुक्म पूरी तौर पर बजा लाया जायगा "

इस पर सरदार ने फिर एक बार अपनी खूंखार नजरों स सब साथियों की ओर भेद-भरी नजर से देखा, और कुछ इशारा किया। सबने अपने-अपने बल्लम के लोहे के फल लाठियों से निकाल कर अंटी में छिपा लिए और एक बार उस भयानक पुरुष के कन्धे पर रखी कुल्हाड़ी को छू-छू कर 'जय माता काली 'तेरा वार न जाय खाली' कहा। तब उस पुरुष ने भी कुल्हाड़े का फल निकाल कर कपड़ों में छिपा लिया और अब सब के हाथों में केवल लाठियाँ और सरदार के हाथ में एक डंडा रह गया। सरदार ने कहा—"सब कोई अलग-अलग जाओ और परसों पहर रात गए यहीं मिलो।"

बिना एक शब्द बोले—एक-एक आदमी चुपचाप वहाँ से चल दिया। जालिमसिंह ने गण्डूशाह के हाथ-पैर खोल दिए, और वह भी उसे लेकर एक ओर चल दिया। सरदार अकेला उस भयानक स्थान पर रह गया। वह कुछ देर चुपचाप वहीं खड़ा रहा और फिर वह भी तेजी से एक ओर को चल खड़ा हुआ।

: १० :

गुप्त श्रोता

परन्तु यह किसी को नहीं मालूम हुआ—कि किसी गुप्त श्रोता ने उनकी सारी बातें सुन ली हैं। जब सरदार भी वहाँ से चला गया तो वह गुप्त श्रोता एक चट्टान के पीछे से निकला और धीरे-धीरे उस अंधेरी रात में तंग पथरीली पगडंडी पर चलने लगा। सब लोगों का रुख गहन जंगल की ओर था, और वे यद्यपि भिन्न-भिन्न दिशा में गए थे—पर नीचे की ओर ही गए थे। परन्तु यह पुरुष बिना शब्द किए नैनीताल की ओर ऊपर चढ़ने लगा। इस समय तीन पहर रात जा चुकी थी। बस्ती

में सन्नाटा था—एकाध कुत्ता बीच-बीच में भूंक उठता था। वह व्यक्ति बस्ती को पार कर ताल के किनारे-किनारे चलता चला गया, और फिर वह ऊपर पहड़ी पर चढ़ने लगा।

यह पुरुष वही गोरा सन्त था, जिसकी चर्चा हम पिछले परिच्छेद में कर आए हैं। जिस समय वह अपनी कुटी में पहुँचा—पौ फटने लगी थी और पूर्व में आसमान पर सफेदी छाती जाती थी। उसने एक दृष्टि पूर्व दिशा पर डाली और फिर अपनी बकरी और उसके बच्चों को देखा। फिर वह कुटी में जाकर अपने कम्बल पर लेट गया।

जब वह सोकर उठा तो पहर दिन चढ़ गया था। यह इतवार का दिन था। आवश्यक कृत्यों से फारिग होकर उसने बकरी का दूध दुहा, और उन्हें चरने को छोड़ दिया। इसके बाद वह बैठ कर एकाग्र चित्त से अपनी नोट बुक में कुछ लिखता रहा--जैसा कि उसका दस्तूर था। फिर वह उठा, बकरियों को बाड़े में बन्द किया। झोला कन्धे पर डाला और हाथ में लाठी लेकर बस्ती की ओर चल खड़ा हुआ। बस्ती में आकर उसने बताशे बाँटे—और फिर धीरे-धीरे चल वह गण्डूशाह के द्वार पर जा खड़ा हुआ।

गोरे सन्त को गण्डूशाह अच्छी तरह जानता था। उसने उसका हंस कर स्वागत किया। गोरा सन्त उसके पास बैठकर इधर-उधर की बातें करने लगा। बातचीत पहले साधारण विषयों पर हुई। पीछे काम-धंधे रोजगार की बाबत बातें होने लगीं। गण्डूशाह ने कहा—

"बाबा, काम-धन्धा रोजगार कहाँ है अब, जब से कम्पनी सरकार का राज हुआ है सब चौपट हो गया।"

"लेकिन तुम्हारा भाई तो खूब खुशहाल नजर आता है।"

गण्डूशाह को साधु का यह कहना अच्छा न लगा। उसने सफाई से कहा—

"अपनी-अपनी तकदीर है साहब।"

"लेकिन साधु ने कहा—"सफाई और ईमानदारी से कारोबार करने से उसमें जरूर लाभ होता है।"

गण्डूशाह ने बिगड़ कर कहा—"क्या मैं बेईमानी और झूठ का कारोबार करता हूँ ?"

"मेरे दोस्त, मैं यह बात कैसे जान सकता हूँ !"

"तो तुम्हें साहब, इस पंचायत से क्या काम है ? तुम अपना काम देखो।" हकीकत यह थी कि इस समय गण्डूशाह किसी से बात-चीत करने के मूड में न था। अनेक प्रकार की चिन्ताएँ उसे बेचैन कर रही थीं। रात की भयानक घटना का असर भी उसके चेहरे पर अभी था। उसके चेहरे का रंग उड़ा हुआ था। वह मौत के घाट उतरने से बाल-बाल बचा था। उस पर हजार रुपए की चपत पड़ी थी और अब एक भयानक जिम्मेदारी उसके ऊपर सवार थी।

सन्त ने कहा दोस्त, सब लोगों की भलाई करना मेरा काम है।"

"तो तुम मेरी क्या भलाई कर सकते हो ?"

"देखता हूँ, आज तुम परेशान हो। तुम्हारा मन अच्छा नहीं है, क्या तुम बीमार हो ?"

"मैं बीमार नहीं हूँ !"

"तो फिर तुम किसी फिक्र से परेशान हो।" इतना कहकर गोरे संत ने तेज नजरों से साहु को देखा। संत की बातों से साहु के चेहरे का रंग उड़ गया। उसने कुछ शंकित चित्त से संत की ओर देखा—और कहा—

"मैं गृहस्थ हूं—मुझे हजार चिन्ताएँ रहती हैं। तुम किस-किस का बन्दोबस्त करोगे ?"

"कर सकूँगा तो जरूर करूंगा दोस्त। मैंने कहा न, सबकी भलाई करना ही मेरा काम है। बताओ, आज तुम खुश क्यों नहीं हो।"

"कौन कहता है कि मैं खुश नहीं हूँ ?"

"तुम्हारी ही चेष्टाएँ। तुम कोई बात छिपाने का यत्न कर रहे हो।" गण्डूशाह घबरा गया और तेज नजरों से साधु की ओर देखने लगा। पर

साधु ने शान्त वाणी से कहा—"वे आदमी खुश हैं जो चिन्ताओं से मुक्त हैं। प्रभु यीशु मसीह ने कहा है—ऐ नेक आदमी, नेकी कर और नेक बन। कितना अच्छा है नेक बनना। नेक आदमी को कभी किसी बात का खतरा नहीं होता, न वह दूसरों के लिए खतरा बनता है। वह सब लोगों की भलाई करता है और अपना भी भला करता है।"

इतना कह कर संत वहाँ से उठ खड़ा हुआ। गण्डूशाह के मुँह से एक शब्द भी न निकला। उसके दिल में चोर बैठा था। परन्तु जब साधु चला गया—तो उसने आप ही आप कहा—ओह, वह एक पागल फिरंगी हैं। उसका क्या? उसने मुँह फेर कर साधु की ओर देखा—जो अब उसके भाई के द्वार पर खड़ा उसे हाथ उठा कर आशीर्वाद दे रहा था। गण्डूशाह का मन हुआ कि वह छिप कर उसकी बातें सुने। एकाध बार वह उन दोनों के निकट होकर निकला। उसने सुना कि साधु उस के भाई से भी वैसी ही बात कर रहा है। उसका भाई साधु से अत्यन्त नम्रतापूर्वक बातें कर रहा था। वह साधु से कह रहा था—"मेरा बच्चा दो सप्ताह से बीमार है। जरा बाबा, चल कर देख लो। तुम्हारी दवा से बहुतों को लाभ होता है मेरा भी भला करो।'

गण्डूशाह ने भाई के ये उद्‌गार सुने। साधु ने कहा—सबकी भलाई करना मेरा काम है। यह भी सुना। फिर उसने देखा—कि वह झण्डूशाह के पीछे-पीछे उसके घर में चला गया है। गण्डूशाह अब साधु की ओर से अपना मन हटा कर अपने आवश्यक कामों में जुट गया।

घर के भीतर जाकर सन्त ने बालक को देखा। बच्चा ज्वर में बेसुध पड़ा था, और झण्डूशाह की स्त्री उसके निकट बैठी व्याकुल भाव से पुत्र का मुँह निहार रही थी। एक दासी घर का काम-काज करती फिर रही थी। बालक का मुँह पीला पड़ रहा था, और वह कष्ट से धीरे-धीरे साँस ले रहा था। सन्त को देख कर झण्डूशाह की स्त्री अधीर होकर रोती हुई सन्त के पैरों में लोट गई। उसने कहा—बाबा, चाहे जितना रुपया खर्च हो जाय मेरा लाल बच जाय।" संत ने करुणा के भाव से स्त्री को

देखा और प्यार से बालक के शरीर पर हाथ फेरते हुए कहा—"कर्म फल सभी को भोगना पड़ता है। तुम्हारी गीता की पोथी में यही तो लिखा है। पर तुमने मुझे पहले नहीं बुलाया और बच्चा इतना कमजोर हो गया। इसके फेफड़े खराब हो गए हैं। देखो, साँस कितनी तकलीफ से आ रही है। पर चिन्ता न करो, यत्न करो। मैं दवा देता हूँ। दवा दो पथ्य करो। ईश्वर भला करेगा। वह हमारा दयालु पिता है। प्रभु यीशु मसीह कृपा करें।"

इतना कहकर उसने झोले से एक जड़ी निकाल कर और उसमें कुछ दूसरी दवा मिलाकर उसे दी। और कहा—"यह दवा दो—मैं फिर कल सुबह आऊँगा।"

स्त्री ने रोते हुए कहा—"बच्चा, मेरा बच्चा अच्छा हो भी जायगा?"

"मैं ईश्वर से प्रार्थना करूँगा। तुम भी करना। उसी की कृपा से तुम्हारा बच्चा अच्छा होगा।'

इतना कहकर सन्त उठ कर कमरे से बाहर आया। उसके साथ ही झण्डूशाह भी आया। सन्त ने एक दृष्टि उसके घर पर डाली और बिना कुछ कहे-सुने वहाँ से चल दिया। उसने निश्चय कर लिया था कि आने वाली विपत्ति से वह उसकी रक्षा करेगा।

: ११ :

डाका और खून

सन्त ने चुपचाप ही झण्डूशाह की सहायता करने का संकल्प कर लिया। उसने सोचा उसके घर में बच्चा सांघातिक रोग में पड़ा हुआ है। इसके अतिरिक्त वह भीरु पुरुष है। डाकुओं का भेद उसे बता दिया जायगा तो सम्भव है वह डर जाय। वह यह भी जानता था कि पुलिस ऐसे अवसरों पर कोई खास सहायता नहीं करती। साधु प्रकृत महात्मा और परोपकारी जीव था। अतः उस ने अपने जीवन को भी खतरे में डालने

का निश्चय कर लिया । गण्डूशाह से मिल कर उस ने उस के मन में पश्चाताप उत्पन्न करने की चेष्टा की थी । पर कुछ तो स्वभाव दोष से और कुछ परिस्थिति के कारण गण्डूशाह विवश हो रहा था । सन्त ने समझ लिया कि डाका अवश्य पड़ेगा और वह यथासम्भव झण्डूशाह की रक्षा करेगा । दूसरे दिन उस ने अपने नित्य कर्म से निवृत्त हो कर यत्न से छिपाई हुई पिस्टल निकाली । उस की भली-भाँति जाँच की, और उस में गोलियाँ भरीं । और भी कुछ गोलियाँ उस ने अपने झोले में डाल लीं । और वह दोपहर होने के कुछ बाद ही घर से निकल पड़ा । बस्ती में घूमता हुआ वह सन्ध्या से कुछ पूर्व ही गण्डूशाह के द्वार पर जा पहुँचा । उस ने एक बार छिपी नजरों से उसे देखा और गम्भीर स्वर में कहा—"कर भला होगा भला ।"

गण्डूशाह इस समय किसी से बात करना नहीं चाहता था । उस ने कहा—"बाबा, तुम अपना रास्ता नापो, मुझे तुम से फिजूल बात करने की फुर्सत नहीं है ।" परन्तु सन्त ने उस की रुखाई की परवाह नहीं की और कहा—"तुम्हारे भाई का लड़का बहुत बीमार है, कल मैंने उसे दवा दी थी । बेचारे उस के माँ-बाप बहुत दुखी हैं, क्या तुम ने उसे देखा, अपने भाई-भावज को तसल्ली दी ?"

"तसल्ली दी या नहीं, तुम्हें इस से क्या ?"

"भाई-भाई का खून एक होता है । तुम्हारे जाने से वे प्रसन्न होंगे । तुम दोनों भाई सुख-दुःख में एक हो कर रहो, यह कितना अच्छा है ।"

"क्या भाई ने कुछ कहा है ?"

"नहीं, मैं ही कह रहा हूँ ।"

"तो मुझे तुम्हारे उपदेश की आवश्यकता नहीं है ।"

इसी समय साधु ने देखा—कि दो अजनबी आदमी आ कर सामने बड़ की छांह में खड़े हो गए । निस्सन्देह साधु ने उन्हें पहचान लिया, वे अवश्य ही रात वाले डाकू थे । परन्तु उस ने ऐसा भाव प्रकट किया जैसे उस ने उन्हें देखा ही नहीं । उस ने झण्डूशाह के घर की ओर बढ़ते हुए

कहा—"आओ, आओ, अपने भाई के बीमार बच्चे को देख आओ।"

परन्तु गण्डूशाह तेजी से घर के भीतर घुस गया। और सन्त ने झण्डूशाह के द्वार पर जा कर कुण्डा खटखटाया। झण्डूशाह ने आ कर द्वार खोला और आदरपूर्वक सन्त को भीतर ले गया। बच्चे की दशा में कोई सुधार न था। वह रह-रह कराह रहा था। सन्त ने उसे दवा दी। और कहा आज रात भर मैं तुम्हारे घर रहूँगा। तुम्हारे बच्चे को देखूंगा।

कृतज्ञता से झण्डूशाह गद्गद् हो गया। रात हो आई। सन्त ने शाह के साथ भोजन किया और द्वार के पास एक चटाई पर सो रहा। घर में झण्डूशाह के अतिरिक्त दो नौकर और थे। दोनों जवान आदमी थे। वे दोनों भी काम-धन्धे से निवृत्त हो कर सन्त के पास ही सो रहे।

रात बीतती गई और सन्त सचेत रहा। बच्चा रह-रह कर कराह रहा था और झण्डूशाह की पत्नी उस के बिछौने पर चुपचाप बैठी कभी-कभी आँसू बहा लेती थीं।

आधी रात हुई और सन्त ने उठ कर प्रथम बच्चे को ध्यान से देखा, और दवा दी। इसी समय झण्डूशाह भी उठ बैठा। उस ने कीतर कण्ठ से पूछा—"कैसा है मेरा बच्चा ?"

परन्तु सन्त अभी उत्तर न दे पाया था कि द्वार पर एक खटका हुआ। किसी ने किवाड़ों पर कुल्हाड़े का प्रहार किया था। झण्डूशाह ने चौंक कर कहा—"यह कैसा शब्द हुआ ?"

"अभी हम देखेंगे। तुम उन दोनों नौकरों को जगा दो।"

"क्या कुछ खतरा है ?"

"रात अन्धेरी है। हो सकता है। पर डरने की कोई बात नहीं। तुम्हारे पास शस्त्र हैं ?"

"दो तलवारें हैं।"

"तो एक तुम ले लो। एक उस जवान को दो। और चुपचाप देखो क्या होता है।"

झण्डूशाह घबरा गया। नौकरों ने तलवार और लाठी सम्हाली और ललकारा—"फाटक पर कौन है ?"

इसी समय फाटक टूट गया और द्वार खुलने का शब्द हुआ। साथ ही दो आदमी धमाधम सहन में आ कूदे।

सन्त झण्डूशाह को खींच कर आड़ में ले गया और वस्त्रों से अपना पिस्तौल निकाला। परंतु झण्डूशाह एकदम चिल्ला कर सामने की ओर दौड़ा कि एक डाकू का भाला उस के पेट में घुस गया। इसी समय सन्त ने गोली दाग दी। झण्डूशाह और डाकू एक साथ गिरे।

झण्डूशाह के गिरते ही उस की पत्नी रोती-चीखती उधर दौड़ी। इधर सन्त ने और एक गोली दागी। एक और डाकू ढेर हो गया। उधर दोनों नौकर लाठी और तलवार घुमाते हुए चोर-चोर चिल्लाने लगे।

डाकुओं के पैर उखड़ गए। उन्हें विश्वास नहीं था कि यहाँ उनका इस प्रकार स्वागत होगा। वे भाग निकले।

सन्त ने भागते हुओं पर एक और गोली दागी। और वह झपट कर झण्डूशाह के निकट पहुँचा। भाला उस के पेट में पार हो गया था। भाले के फल के साथ ही उस की आँतें भी बाहर निकल आईं। झण्डूशाह उल्टी साँसें लेने लगा। उस की स्त्री जोर-जोर से रोने लगी।

शीघ्र ही गण्डूशाह और दो-चार पड़ौसी आ गए। सन्त की चेष्टाएँ कारगर न हुईं। और झण्डूशाह ने दम तोड़ दिया। गण्डूशाह ने बहुत फूँ-फाँ की। भाई के लिए रोने का भी अभिनय किया। झण्डूशाह की स्त्री रोते-रोते बेहोश हो गई। उसे गण्डूशाह की पत्नी की मदद से पलंग पर लिटा कर सन्त ने उस का उपचार किया। फिर वह चुपचाप बच्चे की चारपाई के पास आ बैठा। गण्डूशाह डाकुओं को गालियाँ दे रहा था। बदला लेने की बात कह रहा था। सन्त चुप था। वह सत्य बात देख चुका था। वह सोच रहा था अब इस बदनसीब औरत का क्या होगा ?

दिन निकल आया। पास-पड़ौस के बहुत आदमी आ जुटे। पुलिस भी आ गई। पुलिस वाले झण्डूशाह की लाश को थाने उठा ले गए। उस

की पत्नी का हाल-बेहाल था। बच्चा सांघातिक स्थिति में पड़ा था। अब सन्त कभी बच्चे की और कभी उस की माँ की शुश्रूषा कर रहा था।

पुलिस ने डाकुओं का पता लगाते हुए यह भी सुराग निकाला कि गण्डूशाह के घर में डाकू छिपे थे। सन्त ने पुलिस को सब हाल बता दिया। पुलिस गण्डूशाह को पकड़ ले गई।

झण्डूशाह की पत्नी को ढारस बंधा कर तथा बालक की शुश्रूषा की ओर ध्यान दिला कर सन्त धीरे-धीरे घर से बाहर हो गया।

: १२ :

असामान्य विवाह

यद्यपि भारतीय जन सन्त का नाम नहीं जानते थे और सब कोई उसे गोरा सन्त ही कहते थे, पर उसका नाम सेण्टजान था। सन्त की कोई कोशिश कारगर नहीं हुई और झण्डूशाह का वह बालक भी मर गया। घर में असहाय झण्डूशाह की विधवा स्त्री रह गई। उस के दुःख-दर्द का अन्त न था। उस के घर का चिराग गुल हो चुका था। यद्यपि डाके की लूट से उस का घर सन्त की कृपा से बच गया था, परन्तु वह तो लुट चुकी थी। उस का हृदयधन उस का पति मर चुका था और उस की आँखों का सहारा पुत्र भी उस से छिन चुका था। परन्तु विपत्ति का यहीं खात्मा नहीं हुआ। पुत्र के मरते ही गण्डूशाह ने भाई की सम्पत्ति पर अपना दावा किया। उस का कहना था : भाई का कोई कानूनी वारिस नहीं है, अतः मैं ही उस के सब धन-दौलत का स्वामी हूँ। मुकदमा साहब कमिश्नर बहादुर के इजलास में चला। उन दिनों एक पण्डित और एक मौलवी अदालत में मजहबी कानून में जज की सहायता करने को हाजिर रहता था। पण्डित ने धर्मशास्त्र की रू से कहा : दोनों भाइयों में विधिवत बटवारा नहीं हुआ। बटवारे का कोई प्रमाण उपस्थित नहीं है इस लिए भाई की सम्पत्ति पर भाई का अधिकार है। स्त्री रोटी, कपड़े, पाने

की हकदार है, बशर्तेकि उस का चालचलन खराब न हो और वह मृत पुरुष की विधवा की भाँति विधवा के सब धर्मों और नियमों का पालन करे।

परन्तु गण्डूशाह उस असहाय स्त्री को रोटी कपड़ा भी देना नहीं चाहता था। अतः उस ने उस के चाल-चलन पर भी गंदे आरोप लगाए। सन्त ने उस की बहुत सहायता की। बहुत दौड़-धूप की। पर गण्डूशाह ने सन्त की यह दौड़-धूप ही उस भाग्यहीन स्त्री के विरुद्ध प्रमाण रूप में उपस्थित की। उस ने कहा यह गोरा बदमाश ही सन्त बन कर उस का धर्म नाश कर रहा है। वास्तव में उस का उसी से गुप्त सम्बन्ध है। इस अपवाद से खिन्न हो कर सन्त ने उस के घर आना-जाना भी छोड़ दिया। अब बेचारी स्त्री का यह सहारा भी गया। और एक दिन सरकारी प्यादों की मदद से गण्डूशाह ने अपने भाई की विधवा को घर से निकाल बाहर कर दिया। उस का सब माल-मत्ता हथिया लिया। एक प्रतिष्ठित साहूकार की सुशीला धर्मपत्नी निरपराध अपना सब कुछ गंवा कर पथ की भिखारिणी बन गई।

प्रभात का समय था। सूर्योदय हुए काफी देर हो गई थी। पर अभी कोहरा चारों ओर छा रहा था। सर्दी बहुत थी। सन्त अपना लबादा अंग से लपेटे आग के सामने बैठा कुछ लिख रहा था। उस ने अनुभव किया—कोई आया है। उस ने आँख उठा कर देखा एक स्त्री बहुत धीरे-धीरे उस की कुटी की ओर आ रही है। सन्त खड़ा हो गया। पास आने पर उस ने देखा—झण्डूशाह की स्त्री थी। लाज और संकोच से वह मरी जा रही थी और दुःख से उस का चेहरा मुर्झा कर सूख गया था।

सन्त ने कहा—"तुम आई हो ?"

"आ गई मैं।"

"मैं तुम्हारी कुछ सेवा कर सकता हूँ ?"

"बहुत सेवा की आपने। अब मैं आपकी सेवा करने आई हूँ ?"

"क्या कहा ?"

"क्या आपने नहीं कहा था कि आप का घर है, बकरी है, खेत है पर स्त्री नहीं है ?"

"ओह वह तो हंसी की बात थी।"

"तो अब एक स्त्री सचमुच आपकी शरण आ गई है। आपकी यह कमी पूरी हो गई।"

"लेकिन क्या तुम···"

"मैं यहाँ आपके साथ रहने आई हूँ।"

"परन्तु मैं एक साधु हूँ। मेरे पास रुपया-पैसा नहीं।"

'मैं अपने परिश्रम से अपना पेट भर लूंगी। आप पर मेरा कोई भार नहीं होगा।"

"लेकिन तुम्हारा घर-बार ?"

"सब मेरे देवर ने छीन लिया।"

"पर वह तुम्हें खाना—कपड़ा दे सकता था।"

"इससे बचने के लिए ही उसने आपके साथ मेरा सम्बन्ध जोड़ा था।"

"यह तो बिल्कुल झूठ बात है। खुदा गवाह है।"

"तो अब वह सच्ची होगी। मेरा भी भगवान् है। भगवान् ने मुझे जो राह दिखाई है, मैं उसी पर चली हूं।"

"लेकिन यह मुमकिन कैसे हो सकता है ?"

"हो ही गया। मैं आ गई। अब यहाँ से जाऊँगी नहीं।"

"तुमने बहुत जल्दी में बिना सोचे-विचारे यह फैसला किया है। मेरे साथ चलो, मैं गण्डूशाह को समझाऊँगा। तुम अपने घर में रह सकती हो।"

"तो आप एक अभागिनी स्त्री को शरण नहीं दे सकते ?"

"न, न यह बात नहीं है। मेरा मतलब है·······"

" आप का मतलब जो कुछ भी है। मैं आपकी शरण आई हूँ, किंतु आप पर भार बन कर नहीं। एक बार पुरुष की भांति यदि आप मुझे शरण में रखते हैं तो ठीक है, वरना मैं अभी नैनीताल में जाकर डूब मरूंगी।

गंङ्गूशाह के घर नहीं जाऊँगी।"

"समझाने से गंङ्गूशाह मान जायगा। मैं गाँव के और तुम्हारी बिरादरी के पंच बुलाऊँगा।"

"आपको शायद यह नहीं मालूम कि गंङ्गूशाह ने मुझसे क्या कहा है?"

"क्या कहा है?"

"वह मेरे साथ अपना बुरा सम्बन्ध कायम करना चाहता है। उसका कहना है कि यदि यह बात मंजूर हो तो वह मुझे रख सकता है। प्रथम तो मेरा धर्म मेरे साथ है। दूसरे मुझे और आपको भी मालूम है कि मेरे पति की हत्या का जिम्मेदार तो वही है। खुद उसने मेरा सर्वस्व भी हरण किया है। भला उस पशु के साथ मैं रह सकती हूँ?"

"किंतु यहाँ मैं अकेला हूँ। मेरे यहाँ दूसरी कोई स्त्री नहीं है, यहाँ तुम कैसे रह सकती हो?"

"दूसरी स्त्री की यहाँ क्या जरूरत है? यहाँ तो एक ही स्त्री की कमी थी, वही कमी मैं पूरी कर रही हूँ। बस, आप और मैं दोनों यहाँ रहेंगे।"

"मगर किस तरह? मेरा खुदा मुझे न बख्शेगा।"

"क्यों नहीं। मेरा भगवान् तो मेरी इच्छा से सहमत है। आपका खुदा क्यों नहीं है।"

"तो क्या तुम चाहती हो कि तुम......"

"हम पति-पत्नी की भाँति रहेंगे, कहाँ है आपका खुदा, मुझे बतलाइए। मेरा परमेश्वर यह है।" उसने छाती में छिपी छोटी-सी शालिग्राम की मूर्ति निकालकर दिखाई। आइए, अब हम भगवान और आपके खुदा के सामने खड़े होकर प्रतिज्ञा करें कि हम परस्पर पति-पत्नी हैं। और जब तक जिन्दगी है, हमें कोई ताकत एक दूसरे से अलग नहीं कर सकती।"

"माई गाड, यह तुम क्या कह रही हो। मैं सर्वत्यागी साधु हूँ।"

"साधु तो सज्जन को कहते हैं। आप साधु हैं, तभी तो मैं यहाँ आई हूँ। मेरे साथ रहने से आपका साधु व्रत भंग नहीं होगा। हम गृहस्थ

साधु बनेंगे। दोनों मिलकर दीन-दुखियों की सेवा करेंगे। आप औषध बाँटना, मैं उनकी सेवा करूँगी।"

सन्त के दिल की धड़कन बढ़ गई। बहुत देर तक वह गहरे सोच में खड़ा रहा।

झंडूशाह की पत्नी ने कहा, "क्या सोच रहे हैं आप ?"

"यहाँ मेरे दोस्त ब्रुक साहब हैं, मैं उनकी सलाह लूँगा।"

"तो उन्हें अभी यहीं बुलाइए।"

सन्त ने संक्षेप में ब्रुक साहब को जाकर सब हाल सुना दिया। सुन कर ब्रुक साहब उठकर सन्त की कुटिया में आ गए। क्षणभर उन्होंने गौर से साहूकार की पत्नी की ओर देखा। पतिव्रता की आभा से उसका मुँह जगमगा रहा था। ब्रुक साहब के होंठों पर मुस्कान फैल गई। उन्होंने कहा—"तुम दोनों मेरे साथ आओ, मेरे बच्चो।"

और वह सन्त सचमुच एक बच्चे की भाँति ब्रुक साहब के पीछे आ खड़ा हुआ, उसके पास ही वह स्त्री भी। ब्रुक साहब ने उन्हें ईसामसीह के क्रास के सम्मुख खड़ा करके दोनों के हाथ मिला दिए, और कहा—"आज से तुम दोनों खुदा मसीह और दुनिया के आगे पति-पत्नी की भाँति रहो, जब तक जीवित रहो।"

सन्त घुटनों के बल मसीह के क्रास के सम्मुख झुक गया और उस स्त्री ने अपने ठाकुर की स्थापना क्रास के निकट करके धरती पर माथा टेककर भगवान् को प्रणाम किया।

ब्रुक साहब ने इस शुभ विवाह के उपलक्ष्य में सन्त की कुटिया में बैठकर मीठे टुकड़े खाए, और इसके बाद इस अद्‌भुत नव दम्पति की नवीन दिनचर्या शुरू हुई। दूसरे दिन नैनीताल में भारतीय और अभारतीय सभी लोगों में इस विवाह के संबंध में भाँति-भाँति की चर्चा होने लगी।

: १३ :

नैनीताल का विस्तार

पुजारी, गुमानसिंह और मानसिंह की जल समाधि एक दैवी दुर्घटना मान ली गई। दोनों अंग्रेजों ने भी खूब रंग-रंगा कर ऐसे समाचार प्रसारित किए—कि लोग सुनकर डर गए। शीघ्र ही सरकार ने ताल और पहाड़ियों को अपने अधिकार में कर लिया। तेजी से अंग्रेज अफसरों के बंगले बनने लगे। तालाब के चारों ओर ऊँची पहाड़ियों पर भव्य कोठियाँ नजर आने लगीं। सड़क, पगडंडियाँ और राह-बाट निर्मित होने लगे। इधर-उधर से भारतीय व्यापारी, किरानी, नौकरी पेशा लोग वहाँ आ आकर बसने लगे। देखते ही देखते वहाँ अच्छा खासा बाजार बस गया। खासकर गर्मियों में बहुत से अंग्रेज अफसर बाल-बच्चों सहित आ जाते थे। वे घुड़सवारी करते विविध खेल खेलते और देशी कुलियों को दिल खोलकर इनाम-इकराम और तनखाह देते थे। खास कर भंगियों की बन आई थी। वे साहब के बैरा—खानसामा बनकर झकाझक वर्दी पहन और सुनहरी चपरास लगा अपने को लाट साहब का भतीजा ही समझने लगे थे। गरीब—अपढ़ और असंगठित पहाड़ी लोग अपना आत्म-सम्मान भूल इन गोरे देवताओं की तन मन से पूजा करने लगे। अब वे गर्मियों का इन्तजार बड़ी उत्सुकता से करते रहते—जबकि नीचे के मैदानों की लू से झुलसे हुए साहब बहादुर और उनकी मेम साहिबाएं पहाड़ पर आकर शाहखर्ची से अपना दबदबा कायम करती थीं। अब पहाड़ी लोग उनके खिदमतगार बनना और अंग्रेजों की नौकरी बजाना प्रतिष्ठा की बात समझते थे। बहुत से साहब लोग बाबा लोगों के साथ पहाड़ पर मौज मजा करने आते, और इन गरीब पहाड़ियों से पैसे के लालच में कुलीगिरी कराते थे। स्वभाव से ही पहाड़ी लोग मितव्ययी, परिश्रमी और सरल होते हैं। उनके इन गुणों का इन चतुर अंग्रेजों ने खूब फायदा उठाया। बस्ती अब बहुत बस गई थी। और भी बसती जाती थी।

चीना चोटी की तलहटी में, जहाँ केवल अकेले संत की कुटिया थी, वहाँ अब बहुत से अफसरों के बंगले बनते जा रहे थे। उसका नाम ब्रुक साहब के नाम पर ब्रुक हिल पड़ गया था। ब्रुक साहब यहाँ इंजीनियर तैनात होकर आए थे। सैंकड़ों देशी मजदूर उनकी देख-रेख में कोठी, बंगले, पुल, सड़क मैदान बना रहे थे। गर्मी के दिनों में अंग्रेज परिवारों के साथ बहुत से भारतीय व्यापारी भी नैनीनाल आ जाते थे, और गर्मी भर वहीं रहते थे। धीरे-धीरे डाकखाना, कचहरी और थाना बन गया। अंग्रेज लड़के और लड़कियों के स्कूल खुल गए। भारतीय बालकों के लिए भी ईसाई मिश्नरियों ने स्कूल खोल दिए। सरकारी अस्पताल में सबको मुफ्त दवा बंटने लगी। इस प्रकार देखते ही देखते नैनीताल एक सुरम्य पहाड़ी नगर बनता चला गया। सरकार ने बड़ी सरगर्मी इस दिशा में दिखाई। सड़कें पुल बनाए और तार भी लगा दिए। तथा नैनीताल के साथ ही रामगढ़, रानीखेत, अल्मोड़ा, भुवाली आदि पहाड़ी आबादियाँ भी नगर का रूप धारण करती चली गईं। अब नैनीताल गरीब पहाड़ियों का गाँव नहीं, अंग्रेजों का नगर बन गया था। वहाँ अंग्रेज शानदार कोठियों में रहते, नाच–रंग–दावत करते, जश्न मनाते, और उनकी मिस साहबा घोडों पर सवार होकर पहाड़ियों में सरपट दौड़तीं। मेम लोगों के झुरमुट स्वच्छन्द विचरण करते और इनके पीछे-पीछे कुली या खिदमतगार की भाँति बेचारे तरुण पहाड़ी नंगे पाँव—शरीर पर चिथड़े पहने दौड़ लगाते। साहबगोल्फ्स खेलने जाते तो ये नौकर उनका सामान लाद पीछे-पीछे चलते। मिस बाबा घोड़े पर हवाखोरी करतीं—तो ये तरुण उनके घोड़े की दुम पकड़कर पीछे दौड़ते।

साहब लोग जबान मरोड़ कर—अकड़ कर हिन्दुस्तानी लोगों से काम कराते। ब्लडी-डाग, उनकी जबान से सदा निकलता। लात और बेंत भी चल जाता, किस भारतीय की ताकत थी—कि चं करे। वे शराब पीते, मदमस्त होकर बीच राह बेहूदी हरकतें करते, पर उन्हें रोकने-टोकने वाला दुनिया में कौन था ?

पर वह एक गोरा सन्त था जो उनकी जाति का व्यक्ति था। उनके साथ रहता था, पर उनसे अलग-थलग। वह बहुत कम अंग्रेज सोसायटियों में शरीक होता। वह अपना अधिकांश समय पूर्ववत् जन-सेवा में—या चिन्तन में व्यतीत करता। केवल एक अंग्रेज था, जिससे उस ने दोस्ती की थी। और यह थे मिस्टर ब्रुक, जिनका डेरा संत की कुटी के पास ही था। वे बहुधा संत की कुटी में आकर विविध धार्मिक बात-चीत करते और कभी-कभी संत को अपने डेरे पर भोजन के लिए बुलाते थे। वे एक सज्जन अंग्रेज थे। उन्होंने विवाह नहीं किया था यद्यपि उनकी आयु पचास के लगभग पहुँच गई थी, परंतु उनका स्वास्थ्य अच्छा था। वे हसमुख, उदार और दयालु थे। यहाँ पहाड़ में इन पहाडी गृहस्थों की दरिद्रता और दीनावस्था देख वे सदा दुखी होते और यथा सम्भव उनकी सहायता करते रहते थे। इसी से सन्त के साथ उनका सौहार्द हो गया था।

: १४ :

सन्तपाल का चर्च

नैनीताल ही में नहीं, दूर-दूर तक इस सन्त दम्पत्ति का यश विस्तार हो गया। ब्रुक साहब के उद्योग से उस के पति की बहुत सी सम्पत्ति उसे मिल गई, तथा सरकार ने भी उन्हें यथेष्ट सहायता दी। ब्रुक साहब ने आर्थिक सहायता ही न दी, सन्त की कुटिया को एक विशाल गिरजे के रूप में परिवर्तित कर दिया। अब प्रति रविवार को वहाँ उपासना होती। स्वयं सन्त धर्मोपदेश देते। उन की दृष्टि उदार थी। भारतीय और यूरोपियन दोनों उन की उपासना में समान भाग लेते। गिरजे के साथ एक अच्छा अस्पताल और एक प्रसूति-गृह भी स्थापित हो गया। जहाँ गरीबों की मुफ्त दवादारू, जच्चागीरी और अन्य उपचार होते थे। इस अस्पताल की ख्याति सरकारी अस्पताल से भी अधिक बढ़ गई। दोनों

सन्त दम्पत्ति दिन-रात दीन-दुखियों की सेवा करते, उन के दुख-दर्द सुनते, और उन्हें धर्म का उपदेश देते। यद्यपि वह स्त्री अभी भी अपने ठाकुर पर श्रद्धा रखती थी; पर अब बहुत से हिन्दुस्तानी लोग ईसाई बन चुके थे और बनते जा रहे थे। वे सब उन के गिरजे में आते और सन्त की भाँति उन की पत्नी को भी श्रद्धा भाव से देखते थे। यूरोपियन पादरियों ने इस विवाह का निषेध किया था—परन्तु वह शीघ्र दब गया। दोनों ने अपनी सर्वसम्पत्ति चर्च के अर्पण कर दी थी और अब चर्च की अपनी आमदनी भी बहुत बढ़ गई थी। ब्रुक साहब ने बड़ी लगन से उसका नक्शा बनवाया और उस की इमारत खड़ी की।

यद्यपि सन्त एक ईसाई मिश्नरी थे, परन्तु उन के विचार उदार थे। वे लोगों को ईसाई बनने की ओर प्रेरणा नहीं देते थे, वे उन्हें भलाई की ओर लगाते थे। भले बनने का उपदेश देते थे। गण्डूशाह को करनी का फल शीघ्र मिल गया। उस के घर डाका पड़ा और उस का सब मालमत्ता लुट गया। बाद में एक जाल के मामले में उसे जेल हो गई।

नैनादेवी के पुजारी और गुमानसिंह तथा मानसिंह की हत्या यद्यपि बहुत छिपाई गई थी, पर अन्त में उस का भेद भी खुल गया। और टाम तथा फ्रेजर पर कत्ल का मुकदमा चला। कलकत्ते की सुप्रीम कोर्ट से उन्हें फाँसी का दण्ड मिला।

गुमानसिंह के परिवार में अब मानसिंह की पत्नी और उस का नवजात पुत्र रह गया था। उस ने बड़े धैर्य का परिचय दिया। सरकार ने बालक के बड़े होने पर उसे एक अच्छी जमींदारी दी, और अपनी आयु पा कर वह बालक बहुत होनहार निकला। उस का नाम हिम्मतसिंह था। उस ने अपने पिता और दादा की सम्पत्ति को बहुत बढ़ाया। नूना अपने पति और बच्चों को ले कर अब हिम्मतसिंह के पास ही आ गई थी। बड़े होने पर नूना के लड़के भी नैनीताल के अच्छे जमींदार बने।

सन्त का प्रभाव यूरोपियनों और भारतीयों पर समान था। पर वह भारतीय दलितों ही का सदा पक्ष लेते और उन की सेवा करते थे। हिन्दू

भी इस ईसाई सन्त और उस के चर्च को देखने दूर-दूर से आते थे; जहाँ सब को भोजन और विश्राम मिलता था।

आज भी यह सन्तपाल का चर्च, ब्रुकहिल की ऊँची पहाड़ियों में ऊँचे-ऊँचे देवद्रुमों की स्पर्धा सी करता हुआ इस गोरे सन्त की यशोगाथा मूक मौन भाषा में बखानता है।

: १५ :

शाही हलालखोर

चाँदनी चौक में घण्टाघर बना भी और ढह भी गया। लाल किले पर यूनियन जैक खूब फहराया और फिर एक दिन चुपचाप तिरंगे राष्ट्र-ध्वज को अपना गौरव प्रदान कर खिसक गया, सात समन्दर पार। तब से अब तक, लाल किले के नीचे—जमुना का कितना पानी बह गया—इस का लेखा-जोखा रखा किस ने? परन्तु हमारी कहानी इन सब चलते-फिरते दिनों को पीछे धकेल कर कुछ भूले-भटके बीते हुए दिनों पर जा अटकती है। आज देश-देश के राजदूत, कूटनीतिज्ञ, शुगर कोटेड और क्लीन शेव्ड आलू बुखारे, चुकन्दर, कलन्दर हवा में उड़ कर आते-जाते, चाय-टोस्ट, मक्खन उड़ा कर—टा-टा—कह कर फुर्र हो जाते हैं। रह जाते हैं. धवलधजधारी मिनिस्टर और कनिस्टर, उड़ जाने वालों से मिलाए हाथों को मलते हुए, चुचके गालों पर हाथ फेरते हुए। अपनी शान, इज्जत-आबरू की एकमात्र अधिष्ठात्री ग्राण्डील कार में थके से—परेशान से, आँखें बन्द किए मौन, मुग्ध, समाधिस्थ।

अब उन बातों को सौ साल बीत रहे हैं। चाँदनी चौक में जहाँ घण्टा-घर था—वहाँ एक बड़ा भारी लाल पत्थर का हौज़ था—जहाँ बहुत से स्त्री-पुरुषों ने धोबी घाट लगाया हुआ था। लोग साबुन लगा कर कपड़े धो रहे थे—और दुनिया भर के क़जिए चुका रहे थे। तीतर-बटेर लड़ाने वाले. रमल फैंकने वाले, ज्योतिष से भूत-भविष्य का हाल बताने वाले

इधर-उधर वृक्षों की सघन शीतल छाया में बैठे अपना धन्धा चला रहे थे—उन के चारों ओर सब उम्र के स्त्री-पुरुषों की भीड़ लगी हुई थी। बुर्का मुँह पर डाले बहुत सी पर्दानशीन खातूनें बड़े चाव से इन ज्योतिषियों से अपने भूत-भविष्य का हाल-चाल पूछ रही थीं। उन दिनों चाँदनी चौक का आज जैसा रंग न था। वह ठाठ ही निराला था। बाजार के बीचो-बीच नहर थी, जो किले से आती थी। जगह-जगह वह पटी हुई थी—उस पर बड़े-बड़े छाते लगाए बहुत से सफरी दूकानदार अपना सौदा-सुलफ फैलाए बैठे रहते थे। अब जहाँ म्यूनिसिपेलिटी की संगीन इमारत और भव्य कम्पनी बाग है, वहाँ बेगम जहाँनारा की बनाई हुई दुमंज़िला सराय थी, जिस के सामने की ओर नानबाइयों और हलवाइयों की दूकानों पर इस समय तन्दूर और भट्टियाँ दहक रही थीं। तन्दूरी रोटियों पर लोग टूटे पड़ रहे थे—कबाब वाले गर्मागर्म कबाब की आवाज लगा रहे थे। मुसिल्लम मुर्ग और भुने हुए तीतर तश्तों में सजे थे। हिन्दू जौहरी नुक्केदार पगड़ी बांधे, लम्बा अंगरखा पहने और बगल में कामदानी का दुपट्टा दबाए पान की गिलोरियाँ कचरते हुए, बसली के जूते पहने दबादब आ-जा रहे थे। मुसलमान मुल्ला-व्यापारी और शाही कारकुन, प्यादे, बरकन्दाज, व्यस्त भाव से अपनी-अपनी राह जा रहे थे, आ रहे थे। बहुत से फिरंगी-अंग्रेज, पोर्चगीज चुस्त वर्दियाँ डाटे, घोड़ों या मझोलियों पर या पैदल ही लाल-लाल चुकन्दर सा मुँह चमकाते कभी किसी दूकानदार से उलझते और कभी किसी बरकन्दाज को घुड़कते चाँदनी चौक की रौनक बढ़ा रहे थे।

मुगलों का सूर्य अस्त हो चला था। बूढ़े और लाचार बादशाह बहादुरशाह की बादशाहत सिर्फ लाल किले ही तक सीमित थी। तमाम मुल्क और दिल्ली शहर पर भी अंग्रेजों ही का अमल था।

डेविड—'बरा साब' रेजीडेन्ट का बैरा था। जात का मेहतर, मगर ईसाई हो कर और 'बरा साब' की अर्दली में रह कर वह भी साहब हो गया था। साहब की उतारी हुई वर्दी पहन कर वह अकड़ कर चलता

ग्रौर ग्रपने को जन्डेल से कम न समझता था । कालू शाही हलालखोर था। किले में रहता था ग्रौर मुसलमान हो गया था। बिरादरी का चौधरी था। शाही दरबारियों के दिए हुए पुराने कवा ग्रौर गरारेदार चपकन पहन कर वह भी एक शाहाना ठाठ से रहता था।

चाँदनी चौक में हौज के पास दोनों की मुलाकात हो गई। कालू शाही दस्तरखान के लिए कुछ उम्दा मुर्गियाँ खरीदने ग्राया था, ग्रौर डेविड बरा-साब के लिए बत्तख के ताजा ग्रंडे। साहेब सलामत के बाद दोनों चौधरियों में बातचीत शुरू हुई।

"भई खूब मिले, तुम्हें देखने को तो ग्राँखें तरस गईं, रिजक की कसम। कहो खैरसल्ला।"

"ईसू मसीह की बरकत है सब, तुम कहो कालू चौधरी, कैसी कट रही है ?"

"खुदा का शुक्र है, मुद्दत हुई कभी मिलते भी नहीं। मियाँ, किले से ग्रंगूरीबाग काले कोसों तो नहीं।"

"लेकिन, बरा-साब छुट्टी भी दें ! सब काम तो डेविड को करना पड़ता है। हाकिम-हुक्काम—ग्रमला—मजाल है—कि मेरे बिना इत्तला दिए बरा-साब से मिल तो जाय।"

"मजा किए जाग्रो दोस्त। हां, यह तो कहो-तलब कितनी पाते हो ?"

"बारह रुपए माहवार। मुल, सौदा सुलफ में भी दस बारह पीट लेता हूँ। फिर इनाम बखशीश भी है, ग्रौर तुम ?"

'वही डेढ़ रुपया माहवार।"

"तो चौधरी, तुम डेढ़ रुपए में गुजर कैसे करते हो ?"

"तनखाह तो डेढ़ ही रुपया माहवार है, पर ग्रौर ग्रामदनी भी तो है। दोनों ईदों पर घर भर को गर्म ग्रौर ठण्डे कपड़े मिल जाते हैं ग्रौर खाना तो रोज इतना मिलता है कि खाया ही नहीं जाता—पडौस में बाँटना पड़ता है। फ़िर साढ़े सात रुपए रोजाना का शाही पाखाना बिकता है। यह बंधा दस्तूर है।"

"यह दस्तूर कैसा चौधरी।"

"बादशाह सलामत कुश्ता खाते हैं न, साढ़े सात रुपए का शाही-पाखाना न्यारिया ले जाता है। फिर होली, दिवाली, ईद, शबरात इनाम-इकराम मिलते ही रहते हैं।

"फिर तो मजा ही मजा है, मजे में गुजर-बसर हो जाती है।"

"खूब मजे में भाई। अल्ला रखे, खानदान में सत्तर आदमी हैं। मजे में कटती है। काम और लोग करते हैं, मैं तो आराम से खमीरी तमाखू पीता हूँ और चैन की बंसी बजाता हूँ।"

"तो चौधरी एक दिन घर तो आओ। यार, वह असल विलायती पिलाऊँ कि फड़क उठो। बोलो, आ रहे हो इसी जुमे को। हाँ, तुम्हारा लड़का भी तो अब स्याना हो गया होगा?"

"चौदहवें में चल रहा है। भई, वही एक आँखों का तारा है—गो घर में बरात भरी है। तुम्हारी लड़की भी तो अब होशियार हो गई होगी?"

"तो चौधरी उसे भी लाना, कसम है ईसू मसीह की। साहबजादे को देखने को आँखें प्यासी हैं। हाँ, लड़की खूब समझदार हो गई है। देखोगे तो खुश हो जाओगे। मगर साहेबजादे को—"

"अच्छा लाऊंगा। अब चलूं—कुछ मुर्गियां देखूं। इस कदर मँहगी मुर्गियां हो गई हैं कि क्या कहूँ। खयाल करो ढाँई आने की एक?"

"तो यार क्या फिक्र है, उनका भी तो पेट है, और तुम ठहरे शाही हलालखोर। तुम्हारे दर्बार में क्या कमी है। अच्छा, देखूं—कुछ ताजा बत्तख के अंडे मिल जायं तो।"

"खुदा हाफिज"

"ईसू मसीह तुम्हें बरकत दे। मगर देखना जुमे की बात न भूलना।"

"अच्छा आऊँगा भई। जरूर आऊँगा।"

: १६ :

नई मुलाक़ात

ग्रौर जब दोनों खुर्राट बूढ़े बिलायती बोतल खोल कर अपनी नसों के पुराने खून को गर्मा रहे थे—डेविड की बारह साल की लड़की ने इशारे से लड़के को अपने पास बुला कर कहा—"मेरी मुर्गी देखी ?"

"नहीं"

"आ देख", वह उसे खींच कर एक तरफ ले गई। "तेरा नाम क्या है ?"

"चांद, तेरी यह कुर्ती कैसी है री ? यह फूल कैसा है।"

"क्या अच्छा लगता है तुझे ?"

"बहुत अच्छा लगता है।" उसने पास आकर छुआ। फूल भी और वह क़ुर्ती भी।

लड़की ने उसका सिर सूंघ कर कहा, "तेरे बालों में बहुत अच्छी महक है रे।"

"इत्र लगाया है मैंने। किले में सब शाहजादे इत्र लगाते हैं।"

"तू हमारे घर आया कर।"

"आऊँगा, यह फूल मुझे दे दे।"

"ले।"

"तेरा नाम क्या है ?"

"किरन।"

"मुझे तू बडी अच्छी लगती है।"

"तू भी मुझे अच्छा लगता है। तू ने मेरी किताब देखी ?"

"नहीं।"

"देखेगा ?"

"दिखा।"

लड़की ने अंग्रेजी की एक किताब निकाल कर मोटे-मोटे अक्षरों पर उंगली रख कर पढ़ा—'एच, ई, एन—हेन—मुर्गी।"

"तू पढ़ती है?"

"हाँ।"

"कौन पढ़ाता है?"

"मेम साब, हेन—मुर्गी, रैट—चूहा, फैन—पंखा।"

"अरे वाह, तू तो खूब फरवट पढ़ती है।"

"नहीं तो क्या? तू पढ़ना जानता है।"

"न।"

"पढ़ न, तू भी।"

"पढ़ूंगा।"

और जब कालू वापस लाल किले में आया तो बाप-बेटों में बातचीत हुई। लड़के ने कहा—

"बावा, मैं पढ़ूंगा।"

"क्या पढ़ेगा रे?"

"मुर्गी पढ़ूँगा।"

"बेवकूफ, इस से क्या होगा, मुर्गी पकाना सीख, बावर्ची की नौकरी मिलेगी। साब लोग खूब तलब देते हैं।"

"नहीं, मैं तो पढ़ूंगा, मुर्गी पढ़ूंगा।"

"पढ़ कर क्या करेगा?"

"किरन से बातें करूँगा। वह पढ़ती है।"

"वह क्या पढ़ती है?"

"मुर्गी भी पढ़ती है—चूहा भी पढ़ती है।"

"पर तुझे पढ़ाएगा कौन?"

"उस्ताद पढ़ाएँगे।"

बूढ़े मेहतर ने अपने दोनों कान पकड़ मुँह पर चपत मारते हुए कहा, "तौबा-तौबा, उस्ताद शहजादों को पढ़ाते हैं, वे तुझे पढ़ाएँगे?"

"क्यों नहीं पढ़ाएँगे ?"

"हम हलालखोर जो हैं, जानता है ?"

"तो इस से क्या ?"

"हलालखोर कहीं पढ़ते हैं ?"

"किरन भी तो हलालखोर है।"

"मगर वे ईसाई हो गए हैं, साहब लोग इन बातों को नहीं मानते।"

"मुसलमान क्यों मानते हैं ? हलालखोर होने हीं से मैं नहीं पढ़ सकता, यह भी कोई बात है।" बेटे की युक्ति से लाजवाब हो कर चौधरी हँस पड़ा। उस ने कहा—"अच्छा, उस्ताद से पूछूंगा।"

"आज ही पूछना, किताब मैं किरन से लाऊँगा।"

"ठहर, पहले पूछ तो लूं।"

: १७ :

नया शागिर्द

बूढ़े काले खाँ हलालखोर ने डरते हुए उस्ताद जौक के सामने जा सिर झुकाकर बन्दगी की और लड़के का अभिप्राय बयान किया। उस्ताद ने गम्भीरता-पूर्वक कहा—"खयाल अच्छा है, जरूर पढ़ाऊंगा—मगर बादशाह से इजाज़त लेनी होगी।" और जब उस्ताद जौक ने बादशाह बहादुरशाह की खिदमत में उपस्थित होकर कहा—"जहाँपनाह, चांद, काले हलालखोर का लड़का मेरा शागिर्द होना चाहता है, जैसा इर्शाद हो।"

"तो क्या हर्ज है, खुदा के बन्दे सब बराबर हैं। उसे आप शागिर्द कीजिए।"

बादशाह ने खुद हाजिर रहकर शागिर्दी की रस्म अदा कराई। चाँद उस्ताद जौक के कदमों में बैठ कर—बोस्ताँ-गुलिश्ता और शाहनामे के शेर पढ़ने लगा। आवाज में सोज, चेहरे पर लुनाई, आँखों में चमक, सीना उभरा, भीगती मसें, बेकरार दिल। गहरी लगन। देखते ही देखते

चाँद शाहजादों से आगे बढ़ गया। चाँद मस्त होकर गजल पढ़ रहा था। उस्ताद सुन कर झूम गए। आहिस्ता से बोले—"खूब पढ़ते हो बेटे, पास बैठा करो। दूर क्यों बैठते हो ?'

"हुजूर, हलालखोर हूँ।"

"तो क्या हुआ। खुदा के सब बंदे हैं, फिर उस्ताद के घर में तो सब बराबर हैं। पास आओ और फिर पढ़ो।"

चाँद ने गज़ल पढ़ी। दिन बीतते गए। चाँद की प्रतिभा निखरती गई। उस्ताद चाँद को दिल से प्यार करते चले गए। चाँद एक होनहार शायर हो गया। वह बेजोड़ शेर कहने लगा। बादशाह उस्ताद के सब शागिर्दों को इनायत से सर्फराज करना चाहते थे। उन्होंने हुक्म दिया, उस्ताद के सब शागिर्दों का हमारे हुजूर में मुशायरा हो।"

लेकिन उस्ताद ने कहा—"हुजूर, मुशायरे की क्या जरूरत है, सिर्फ चाँद को दिल भर कर सुन लीजिए।

"तो चाँद को हमारे हुजूर में ले आइए।" बादशाह ने हुक्म दिया। उस्ताद ने कहा—"बेहतर"

और उस्ताद ने चाँद को शाही हुजूर में पेश करने की तैयारियाँ शुरू की। अदब-कायदे और तहजीब की तालीम पाने के लिए उसे रंडी जोहरा की शागिर्दी में रख दिया। बादशाह सलामत से इसके लिए छह माह की मोहलत मांग ली गई। अब चाँद अपनी किस्मत की आजमाई की तैयारी जी जान से कर रहा था। उस्ताद से वह कविता के नियम-कायदे, भाषा के रहस्य और भावों की बारीकियाँ सीख रहा था। और जोहरा से शाही अदब-कायदे, दरबारी तहजीब व तमीज की तालीम ले रहा था।

जोहरा उन दिनों दिल्ली की नाक का बाल बनी हुई थी। वह दिल्ली की सबसे ज्यादा हसीन और अमीर रण्डी थी। बड़े बड़े अमीर-उमराव उसके यहाँ जाने को अपनी रियासतें झोंक देने को तैयार थे—मगर जोहरा थी—जो किसी की ओर आँख उठा कर देखती भी न थी। उसे

अपने रूप और गुण का बड़ा घमण्ड था। पर इस हलालखोर के किशोर चांद को देखकर उसका सारा घमण्ड पानी पानी हो गया था। वह उस के प्यार में शराबोर हो गई। दीन-दुनिया को भूल गई। वह रात दिन चाँद को आँखों के आगे रख कर उसे एक टक निहारती—निरखती। उस पर अपने प्यार और कृपाओं का खजाना उंड़ेलती। उसी के विरह में तड़पती—रोती—जलती और छटपटाती थी।

पर चांद को इन बातों की क्या खबर थी? वह अभी अल्हड़ बछेड़ा था। प्यार की पीर से अज्ञात, भोला और भावुक, सरल-तरल किशोर, नवीन केले के पत्ते सा कोमल उसका तन मन। कहीं-कभी मन में कोई मूरत थी तो किरन की। जिससे वह जब तब मिला करता था, जिसकी मुस्कुराती मूर्ति को हृदय में धारण करके अब वह कविता करता था। कविता करके वह पहले किरन को सुनाता था—फिर उसके बाद उस्ताद को। तीसरा व्यक्ति उसकी कविता चोरी ही से सुन सकता था।

जोहरा के प्रति उसका भाव उस्ताद के दर्जे का था। वह उसकी उस्ताद की भाँति ही इज्जत करता था। दिल्ली के बहुत से रईस इस हलालखोर के बच्चे पर रश्क करते थे। जो जोहरा एक बार आँख उठा कर उनकी ओर न देखती—इस हलालखोर के बच्चे के तलुओं पर अपनी आँखें बिछाए रहती थी। वह उसका लाड प्यार करती। उम्दा उम्दा लजीज खाने खुद पका कर खिलाती। बढ़िया शराब पिलाती और बार-बार शेर पढ़ने का हुक्म देती। हुक्म पाकर चांद शेर पढ़ता जरूर, पर वह मस्ती—जो किरन को शेर सुनाने में उसे आती—जोहरा के सामने नहीं आती थी।

दिन बीतते चले गए—और एक नई बात यह पैदा हुई कि किरन अब रोज जोहरा की ड्योढ़ियों पर झाड़ू लगाने आने लगी। चांद से उस ने सुन लिया था—कि वह वहाँ ही रहता है। अपनी आँखों के आगे उसे रखने के लिए उसने अपने बाप से कह सुन कर जोहरा की ड्योढ़ी बुहारना मांग लिया था। किरन का बाप—बरा साब—(रेजीडेण्ट साहब) का बेरा

श्रौर ईसाई जरूर था—पर झाड़ू लगाना उसका पुश्तैनी पेशा श्रौर हक था। हलालखोर कभी श्रपने पुश्तैनी हक को नहीं छोड़ता है। दूसरा मेहतर एक मेहतर के घर को कमा नहीं सकता। जोहरा का घर डेविड की मौरूसी वरासत में था। यद्यपि डेविड को श्रपनी लड़की का—जिसे वह मिस कह कर पुकारा जाना पसन्द करता था—तथा पढ़ा कर मेम बनाना चाहता था—झाड़ू लेकर दूसरों की ड्योढ़ी बुहारना पसन्द नहीं था। परन्तु जोहरा शाही रण्डी थी, बड़ी श्रमीर श्रौर मशहूर थी—उसने सुना था कि काले चौधरी का लडका चांद वहाँ तहजीब की तालीम पा रहा है—जो बादशाह सलामत के रूबरू जाने की तैयारी के सिलसिले में दी जा रही है। उसने सोचा-क्या हर्ज है—मेरी लड़की भी कुछ शाहाना श्रदब सीख जायगी। फिर वह चांद पर भी नजर रखता था श्रौर उसे श्रपना दामाद बनाने का इरादा पक्का कर चुका था। इसलिए उसने श्रपनी लड़की को जोहरा की ड्योढ़ियां बुहारने की इजाजत दे दी थी।

परन्तु किरन जोहरा की ड्योढ़ियां बुहारने को नहीं—चांद को निहारने को श्राती थी। यद्यपि चांद जोहरा के सामने किरन से बात नहीं कर सकता था—पर किरन श्रौर चांद का जो परस्पर का श्राकर्षण था—वह उसकी तेज निगाहों से छिपा नहीं था। जब किरन वहाँ होती—तो चांद ऐसी मस्ती श्रौर सोज भरे गले से गजल गाता कि जोहरा पागल हो जाती। क्या गजब का गला दिया था खुदा ने इस हलालखोर के बच्चे को। श्रौर जब चांद भाव-विमोहित हो—श्रपने रक्त बिन्दुश्रों को कलेजे से निकाल निकाल कर उछालता—तो किरन श्रानन्दातिरेक से फैली हुई कमल सी बड़ी बड़ी श्रांखों को उन्मुदी सी किए—ड्योढी की चौखट पर सिर टेके किसी श्रदृश्य सुख सागर में डुबकी लगा जाती थी।

धीरे धीरे किरन की वहाँ उपस्थिति जोहरा को तीर सी खलने लगी। उसने कहा—"तू श्रपना काम करके घर को जाती क्यों नहीं-री, यहाँ क्यों दिन दिन भर पड़ी रहती है।"

"मियां की गजलें सुनती हूँ हुजूर, मुझे बड़ा प्यारी लगती हैं। हुजूर

खाना न दिया करें--गजलें सुन लेने दिया करें।"

और उसकी हाजरी भी चांद के उपर क्या कमाल असर करती थी--यह क्यों कर जोहरा भूल सकती थी। उसने समझ लिया कि यही महतरानी की छोकड़ी उसकी सौत है। इसके रहते चांद मेरा नहीं हो सकता। वह सब कुछ कर गुजरने पर आमादा हो गई।

: १८ :

गूजरवाड़े के चोरों का मेला

मेरठ-मुजफ्फरनगर, सहारनपुर बिजनौर के जिले और उसके आस-पास का इलाका उन दिनों गूजरवाड़ा के नाम से विख्यात था। इसका दूसरा नाम चोरों का इलाका भी था। क्योंकि वास्तव में यह चोरों और डाकुओं का गढ़ था। इस भू-भाग पर राजा, नवाब, जमींदार और रियाया जो भी थी--सभी का मुख्य पेशा चोरी या राहजनी था। यह चोरी विविध प्रकार की होती थी। जानवरों की चोरी, नकबजनी, डाके, राहजनी और इसी किस्म की दूसरी वारदातें। मुजफ्फरनगर के नवाब इकरामुल्ला खां इन चोरों और डाकुओं के सबसे बड़े मुखिया और सरदार थे। उनकी रियासत में पांच गांव उनके थे। ये सब मशहूर चोरों के गांव थे। मुजफ्फरनगर में उनकी गढ़ी थी--हवेली थी। जहाँ खुद नवाब साहब रहते थे।

मुजफ्फ़रनगर आज तो एक सम्पन्न जिला है, जिले का सदर मुकाम है, अच्छा खासा शहर है। अनाज और गुड़ की वहाँ बड़ी भारी मण्डी है, मगर उन दिनों, वह महज एक गाँव था, जहाँ पक्की हवेली केवल नवाब साहब की ही थी, जो दुमंजिला थी। उसके चारों ओर बहुत-सी जमीन घेर कर कच्ची मिट्टी का एक बहुत मोटा परकोटा बना था—जो गढ़ी कहाता था। इसके भीतर नवाब के जानवर जिनकी संख्या हजारों की होती थी और जो प्रायः दूर-दूर से चोरी करके लाए जाते

थे, रखे जाते थे। इन जानवरों में एक से एक बढ़ कर घोड़े, उम्दा नस्ल की घोड़ियाँ, नागौरी और हरियाने के बैल, गायें, भैंसें आदि होती थीं। गढ़ी के भीतर ही नवाब साहब के शागिर्द पेशा लोग रहते थे, जो नवाब साहब के अत्यन्त विश्वस्त नामीगिरामी चोर होते थे, और बड़े-बड़े साहसिक अभियान करते थे। उनके कच्चे-पक्के छोटे-बड़े घर बेतरतीब से नवाब साहब की हवेली के चारों ओर फैले हुए थे। नवाब साहब के पाँचों गाँवों की सब जमीन भी ये ही शागिर्द पेशा लोग ही जोतते बोते थे। इन शागिर्द पेशा लोगों में नामी गिरामी चोर तो होते ही थे—खोजी भी ऐसे मार्के के थे—कि जो चोरी का पता लगाने में यकता थे। चोर का जरा सा सुराग मिल जाय, कहीं उसके पैर का निशान, हाथ की छाप, उसके कपड़े का टुकड़ा या ऐसी ही कोई चीज, तो उसी के सहारे वे पचास-पचास मील से चोर का पता लगा लेते थे। बड़ी अजीब विद्या थी इन लोगों की, और वे आस-पास में दूर-दूर तक मशहूर थे, तथा दूर-दूर रईस जमींदार—जब उनके घर चोरी होती थी—नवाब साहब के खोजियों का सहारा लेते थे। नवाब साहब में एक करामात दाद देने के काबिल यह थी, कि उनके यहाँ चाहे जितना भी कीमती माल चोरी का आ गया हो, यदि माल का स्वामी नवाब की ड्योढ़ी पर आ गया—तो वह उसे वापस कर देते थे। वापस करने का ढंगशानदार होता था। जैसा कि नवाब वल्लभगढ़ की घोड़ी का मामला था। असल बात यह थी कि नवाब मुजफ्फरनगर के सभी ठाठ, सभी ढंग निराले होते थे। उन बातों को यद्यपि अभी सौ ही वर्ष बीते हैं, पर वे सब बातें ऐसी गायब हो गई हैं—कि उन पर आज मुश्किल से विश्वास किया जा सकता है। हाँ इतना जरूर है कि गूजरवाड़े का यह इलाका आज भी नामी-गिरामी चोरों का इलाका है।

मुजफ्फरनगर में हर दिवाली को चोरों का मेला लगता था। मेला बड़ी धूमधाम का होता था। मेले में गूजरवाड़े के सब छोटे-बड़े चोर इकट्ठे होते थे। यह मेला एक सप्ताह तक लगता था। जैसे होली के बाद

मेरठ की नौचन्दी की धूम थी—वैसी ही मुजफ्फरनगर के इन चोरों के मेले की थी—जो दिवाली का मेला कहाता था। इस मेले में हजारों चोर इकट्ठे होते थे। इन में बहुत से तो बड़े भारी नामी-गिरामी चोर होते थे। इन सब चोरों को आठ दिन तक नवाब के लंगर से खाना मिलता था। नवाब की गढ़ी ही नहीं, हवेली तक उनके स्वागत में आठ दिन तक खुली रहती थी। हकीकत तो यह थी, कि ये गुजरवाड़े के चोर नवाब साहब को केवल अपना सरदार ही नहीं मानते थे—वे उन्हें पीर-औलिया गुरु–जो कहिए मानते थे। मेले में जब ये चोर आते तो हर एक छोटा बड़ा चोर अपनी औकात के अनुसार—भेंट-सौगात नवाब की नजर करता था। खासकर नए-नौसिखिए चोर तो अधिक श्रद्धा से नजर गुजार कर नवाब के मुरीद बनते, और यहाँ से लौट कर अपने चोरी के पेशे का श्रीगणेश करते थे। इन चोरों की एक पारिभाषिक भाषा होती थी, कुछ गूढ़ संकेत होते थे—नकबजनी के, गला काटने के, चुराए हुए पशु का रूप-रंग बदलने के बड़े-बड़े विचित्र गुप्त तरीके होते थे—जो नए शागिर्दों को तभी बताए जाते थे, जब वे बाकायदा नजर-भेंट दे कर नवाब साहब के मुरीद बन जाते थे। फिर इन से किसी बात का दुराव-छिपाव नहीं होता था।

बड़े-बड़े चोर अपने नए-नए हथकण्डे, नई-नई आविष्कृत नीतियाँ—चोरी और नकबजनी की, दूसरों को बताते थे। मेले में परस्पर ऐसी बातें आम चर्चा का विषय होती थीं। इन आगन्तुक चोरों में भी जो नामी-गिरामी चोर होते थे—वे बहुधा जत्थाबन्द होते थे—इस का मतलब यह था कि उनके शागिर्द पेशा लोगों की भी एक जमात होती थी, और वे अपनी जमात के साथ धूमधाम से मेले में आते थे। परन्तु ये सब जीवट के चोरों के सरदार भी नवाब साहब को अपना उस्ताद मानते थे और उन्हें नजर-भेंट करते थे। वे चोरी करने के नए-नए गुर नवाब साहब को बताते—और जो चोरी की नई-नई विधियाँ, नकबजनी की रीतियाँ वे आविष्कृत करते—वे नवाब साहब से कहते। मेले के अन्त में नवाब

साहब ऐसे लोगों को भारी-भारी इनाम-इकराम देते थे।

मेले में बहुत से भाँड, बाजीगर, सपेरे, जनखे, रण्डियाँ और दूसरे कलावन्त आते। वे अपने कर्तब चोरों को दिखा कर इनाम-इकराम लेते—गाने-बजाने, मुजरे-जल्सों की धूम रहती। गरज, आठ दिन मुजफ्फरनगर में मेले की वह धूमधाम होती—कि जिस का नाम। आखिरी दिन नवाब साहब का दरबार होता, जिस में सब रण्डियाँ, कलावन्त आते—रात भर गाना-बाजना, मुजरा होता—और दिन भर भाँति-भाँति के तमाशे होते। तब नवाब साहब सब को इनाम-इकराम दे कर विदा करते। मगर चोरों के इस अद्भुत मेलें में—जो एक सब से ज्यादा अद्भुत बात होती थी—वह यह कि किसी की एक सुई की भी चोरी नहीं होती थी।

: १९ :

शबनम

शबनम नवाब साहब की सब से छोटी साहबजादी थीं। साहबजादी की उम्र अठारहवाँ वसन्त छू रही थी। नर्म सुनहरे बालों का अम्बार सिर पर, शरारत भरी बादाम जैसी आँखें, पतले-पतले गुलाबी होठों पर थिरकती हुई मुस्कराहट की लहर। जब हँसती थीं खिलखिला कर—तो हजारों रुपहली घण्टियाँ बज उठती थीं। पर्दे की साहबजादी को परवाह न थी। नवाब की लाडली बेटी। चोरों के गुरुघण्टाल की साहबजादी, मगरूरी और शोखी आँखों और चाल में भर कर जब देखने वालों की आँखों के सामने आती थीं—तो वे देखते रह जाते थे। साहबजादी की वजातराशी और बहारदारी में जो कुछ थोड़ी-बहुत कमी थी—वह इस बातों से पूरी हो गई थी—कि नवाब साहब ने एक क्रिस्तान अधगोरी मिस उस की गार्जियन बना दी थी। पिछली बार जब नवाब साहब कलकत्ता तशरीफ ले गए थे—तो वहीं से इस मिसिया को किराए पर ले आए थे। यह मिसिया अब डेढ़ बरस से मुस्तकिल तौर पर नवाब साहब के घर

रह रही थीं, और साहबजादी को तालीम तथा अंग्रेजी एटीकेट—तहजीब सिखा रही थी। इस के अतिरिक्त उसने नवाब साहब के घर को भी अंग्रेजी ढंग से सजा दिया था और अब वह इस जुगत में थी कि नवाब साहब और साहबजादी दोनों टेबुल पर बैठ कर छुरी-काँटे से खाना खाना सीख जायँ और इस तरह आहिस्ता-आहिस्ता ईसाई बन जायं, जैसा कि उन दिनों अक्सर होता रहता था। मिस साहबा को इस काम में अभी इतनी सफलता मिल चुकी थी—कि नवाब साहब के यहाँ बजाय नाश्ता-पानी के छोटी-बड़ी हाजरी और खाने की जगह लंच और डिनर का लफ्ज इस्तेमाल होने लगा था—हालाँकि टेबुल कुर्सी की जगह अभी दस्तरखान ही का इस्तेमाल होता था। मगर मिस साहिबा ने एक कमरे में मेज कुर्सी सजा कर उसे अंग्रेजी ढंग का डिनर रूम बना दिया था। लेकिन इस का इस्तेमाल गाहे-बगाहे तभी होता था, जब कोई भूला-भटका अंग्रेज हाकिम-हुक्काम उधर आ निकलता था।

मिस साहिबा की उम्र थी बीस-बाईस साल। रंग गोरा था या जर्द इस सम्बन्ध में नवाब साहब और उन की साहबजादी की दो रायें थीं। नवाब साहब उन्हें गोरी चिट्टी कहते थे—परन्तु शबनम उसे पीले रंग की बताती थी। हकीकत तो यह थी कि शबनम का खिलता हुआ गोरा गुलाबी रंग—वह करामात रखता था कि उसके सामने ऐसी सौ मिसियाँ फीकी जंचती थीं। सूरत शक्ल मिस साहिबा की न ऐसी अच्छी ही थी कि उन्हें परी कहा जाय। पर उसे बुरा भी नहीं कहा जा सकता था। लेकिन थीं वह बहुत खुशमिजाज, हंसमुख और फुर्तीली—वह उर्दू बहुत सलीस बोल लेती थीं। हकीकत यह थी कि उन की माँ एक तालीमयाफ्ता मुसलमानी थीं, जो एक आरमीनियन सौदागर की बीवी थी। बेवा होने पर इस ने एक अधेड़ उम्र के अंग्रेज सैनिक से शादी कर ली थी, जो अंग्रेजी सेना में कप्तान के पद पर था। उसी से मिस साहिबा का जन्म हुआ था, और यही कारण था कि वह अंग्रेजी और उर्दू जबान पर एक साथ ही अधिकार रखती थीं और दोनों भाषाएँ बखूबी उम्दगी से बोल लेती थीं। इस के

अतिरिक्त उसे जैसा अंग्रेजी एटीकेट का ज्ञान था वैसा ही मुस्लिम शिष्टाचार का भी ज्ञान था। इसीलिए मिस साहिबा इस घर में हर दिल अजीज़ हो रही थीं।

घर में नवाब साहब की बेगम न थीं। अकेली साहबजादी ही थीं। इसी से कुछ बेतमीज मुँहफट लोग कहते थे कि मिस साहेबा नवाब साहब की दिलबस्तगी का सामान भी है। कोई मुँह लगा दोस्त यदि नवाब साहब पर मजाक में छींटे डालता, तो वे दोनों गालों पर तमाचा मारकर कहते—"तौबा—तौबा, म्यां, किस ख्याल में हो—मैं रोजा नमाज का पाबन्द, हज जाने का इरादा रखता हूं और तुम इन गन्दे खयालात में मुब्तिला हो ?"

मिसिया का नाम था मिस रोज। गजब की औरत थी मिस रोज। हरदम गुनगुनाती और किसी न किसी काम में लगी रहती। उदासी उसके चेहरे पर देखने को न थी। एक आनन्ददायी मुस्कान से सदा उस का चेहरा खिला रहता था। कभी साहबजादी को पढ़ाती, कभी कमरे को सजाती, कभी साहबजादी के बाल दुरुस्त करती, कभी उन के लिबास पर एक लेक्चर देती। कभी खानसामा के सिर पर सवार। उन के छोटे-से-छोटे नुक्स को वह बर्दाश्त नहीं कर सकती थी। उन्हें तरह-तरह के अंग्रेजी खाने बनाने सिखाती। नए ढंग के पुलाव, मुतंजन, बिरियानी, कबाब, कोफ्ते बनाने बताती। कभी माली से जा उलझती। कहाँ क्यारी में कौन फूल लगाना चाहिए। नवाब साहब और साहबजादी के कमरों में कैसे फूलों का गुलदस्ता सजाना चाहिए--ये सब बातें मिस रोज मालियों को बताती न थकती थी। धोबी का तो उस के मारे नाक में दम था। कपड़े पर इस्त्री करने में जरा लापरवाही हुई, एक सल भी रह गई कि कपड़ा फेंक मारा धोबी के मुंह पर। बेचारा थरथर काँपता था--मिस को देखते ही। ऐसी थी मिस रोज, जिस ने इस घर की काया पलट दी थी, और जिस की तालीम और सोहबत में साहबजादी साहिबा नए जीवन की अभ्यस्त हो रही थीं, और पर्दा तोड़ कर खुलेआम आती-

जाती थीं। जिन पर नवाब की कोई रोक-टोक न थी।

नौकर चाकरों को अंग्रेजी ढंग की तहजीब अदब कायदे तथा बोलियाँ समझा दी गई थीं। अब वे सब उनसे पढ़ सीख कर कहते—हुजूर, गुस्ल लगा दिया है, हुजूर हाजिरी लगा दी है। और अब वह बड़े यत्न से साहबजादी को छुरी चम्मच का प्रयोग सिखा रही थीं। ज्योंही साहबजादी रोटी का टुकड़ा सालन में डुबोती, वह कहती—ना साहबजादी, ना। सालन में हाथ न डुबोइए। कांटा लीजिए। अक्सर कांटा साहबजादी के मुँह में चुभ जाता, निवाला वापस प्लेट में गिर जाता, तो साहबजादी गुस्सा करतीं, झुँझला कर कांटा छुरी फेंक देतीं और निवाला हाथ में ले ज्योंही सालन की ओर हाथ बढ़ातीं—तो तत्काल मिस रोज कहतीं—ना साहबजादी, ना। ऐसा नहीं। कांटा लो, चम्मच लो। मिस रोज ने बड़ी बारीकी से शबनम को समझाया था, कि मछली खाने के छुरी कांटे जुदा होते हैं, और गोश्त खाने के जुदा। एक बार शबनम ने गुर्दा खाने के लिए चम्मच जो उठाया, तो तड़ाक से मिस रोज ने कहा—हाय, क्या गजब करती हैं साहबजादी, कहीं गुर्दा चम्मच से खाते हैं? बस, ऐसी चाक चौबन्द और शीन काफ से दुरुस्त थीं मिस रोज, जो नवाब साहब के घर की गवर्नेस भी थीं, और शबनम की उस्तानी या एटीकेट टीचर भी। शबनम कुछ तो अपनी तबियत से और जहीन होने के कारण, तथा कुछ बिना मां के घर में रहने के कारण, तथा कुछ मिस रोज की सोहबत और शिक्षा से बाहरी और भीतरी तौर तरीके में ऐसी निखर गई थी, और इस कदर सलीका सीख गई थीं—कि उससे उसके हुस्न में चार चाँद लग गए थे।

: २० :

खुश आमदीद

घोडी के सिलसिले में मियाँ यूसुफ बल्लभगढ़ के नए नवाब जो मुजफ्फरनगर आए तो यहीं फँस गए। नवाब साहब उन्हें रुकसत करते

ही न थे। मियाँ झेंपू आदमी थे। बार-बार इसरार करते शर्माते थे। फिर भी जब जाने का कसद करते और नवाब साहब की खिदमत में अर्ज करते–तो नवाब साहब अपने दोनों कान पकड़ गालों में तमाचा जड़ कहते—"म्याँ लाहौल पढ़ो। बस, जाने का नाम न लो। मियाँ कहते—हुजूर, कपड़े गलीज हो गए हैं। इजाजत मिल जाती तो अच्छा था।"

तब नवाब साहब जरा बिगड़ कर कहते—"तो क्या यहाँ के सब धोबी और दर्जी मर गए? म्या, अपने पहनो तो धोबी हाजिर, और मेरे पहनो तो दर्जी हाजिर। फिर जाने की बात क्या? बस, जाने-आने का कल्मा जबान पर न लाना।"

और मियाँ को जाने की इजाजत मिली ही नहीं। एक दर्जन पोशाक तैयार होकर मियाँ के पास आ गईं। इसी बीच एक दिलचस्प बात हो गई। जिस कमरे में मियाँ यूसुफ का डेरा था, उसी के सामने वाले कमरे में कुछ खास हलचल नजर आने लगी। मिस रोज और शबनम दोनों दिन भर सजाने में जुटी रहीं। कहाँ किस तरह सजाया जाय, इस पर थोड़ी-थोड़ी देर में बहस भी होती जाती थी। शबनम को एकाध बार मियाँ ने दूर से देखा था, पर आज उसे अच्छी तरह देखने का मौका मिल गया। उन्होंने अपनी निशस्त कुछ इस तरह बनाई–कि वे खिड़की की राह चुपचाप उधर के सब हालात देखते भी रहें और किसी को मालूम भी न हो। शीघ्र ही उन्हें ज्ञात हो गया—कि अब यही कमरा इन दोनों अल्हड़ बछेड़ियों का अखाड़ा बन गया—अर्थात् उनका स्टडी-रूम बन गया। कहने को मिस रोज उस कमरे में रहने लगीं और शबनम वहाँ पढ़ने को आने-जाने लगीं। लेकिन पढ़ने पर ही क्या मौसूफ था। दिन के बारह घंटों में सौ काम निकलते, और शबनम उसी कमरे में पहुँच जाती। दोनों विविध विषयों पर हुज्जत करतीं, हँसतीं—चहुल करतीं और नए-नए शगूफे खिलातीं।

एक ही दिन में मियाँ को मालूम हो गया—कि वे लाख छिप कर बैठें—पर ये खेल सब हो रहे हैं उन्हीं को दिखाने देखने के लिए। अब अक्सर यूसुफ मियाँ भी अपने कमरे में टहलने लगे। कभी किसी किताब

को हाथ में लेकर, कभी चूड़ीदार पायजामा और शेरवानी पहने। कभी जालीदार कुर्ती पर विलायती तनजेब का ढीला कुरता और ढीला पायजामा। वसली का जूता। कभी बाल उलझाए मजनू बने, कभी माँग पट्टी से लैस। मकसद सिर्फ यह कि अपने को दिखाएँ और उनको देखें। और हकीकत यह थी—कि कुछ उधर से भी ऐसा ही डौल बँधा था। फर्क इतना था—वे दो थीं और मियाँ बेचारे अकेले।

और एक दिन बात जरा बढ़ चली। उस दिन आसमान पर बदली छा रही थी। मौसम पुर-लुत्फ था। हवा ठण्डी बह रही थी। यूसुफ मियाँ देर से कमरे में टहल रहे थे—मगर दूसरे कमरे में यह मनहूसियत का सन्नाटा। इतने ही में मिस रोज और और शबनम हाथ में किताब लिए हँसती हुई अपने कमरे में आईं। यूसुफ मियाँ के मुँह से हठात् निकल गया—'खुश आमदीद।'

कहा तो था उन्होंने होठों ही में, पर आवाज वहाँ पहुँच गई। चारों आँखें पहले इधर को उठीं, फिर एक हुईं और तब एक मीठी मुस्कान दोनों लड़कियों के होठों पर फैल गई, और लीजिए अब दूसरी दुनिया का दौर चला।

उस दिन की बात यहीं खत्म हुई। मियाँ यूसुफ शिकार पर चले गए। शाम को जब लौटे—तो देखते क्या हैं—उसके कमरे में ताजा फूलों के दो गुलदस्ते निहायत खुशनुमा रखे हैं। उनका पलंग भी अब अपनी जगह से दूसरी जगह खिसका दिया गया है, और समूचे कमरे का नक्शा बदला हुआ है।

लौट कर यह नक्शा देखा तो हैरान रह गए। नवाब साहब ने मियाँ को एक खिदमतगार दिया हुआ था। निहायत खुर्राट। नाम था अब्दुल्ला। बातचीत में मश्शाक, मशहूर किस्सागो, रईसों की आँखें देखे हुए। जात का नाई था। मालिश और चप्पी में उस्ताद। मियाँ की खिदमत यही अब्दुल्ला करता था। शिकार से मियाँ लौटे और कमरे के नक्शे को बदला देखा तो अब्दुल्ला को बुलाकर कहा—"वाकई आज तो तुमने,

काबिले इनाम काम किया। कमरे का नक्शा ही बदल दिया। माशाअल्ला बड़े ही वजहदार आदमी हो।"

"हुजूरेवाला, मुगालते में न रहिए, जो वजहदार हैं, उन्हीं से फर्माइए।"

"क्या मतलब ?"

"बन्दा निवाज, कान पकड़ कर अर्ज करता हूँ कि यह सब अदल बदल आज मिस साहबा ने की है। मैंने टोका, तो कहा—साहबजादी का हुक्म है, बस मैं चुपका हो रहा।"

"खुदा खैर करे। तो मिस साहेबा के सब्ज कदम इस कमरे में पड़ चुके ?"

"अये हये हुजूर! यह क्या कलमा जबाने शरीफ से कहा। खुदा झूठ न बुलवाए। कयाफा शनाशी का कुछ-कुछ इस गुलाम को भी शौक है। अगर मेरा कयाफा सही है, तो हुजूर, कुछ और ही रंग खिलने वाला है, मिठाई और इनाम का बन्दा भी मुश्तहक है।"

"कैसी मिठाई ? अमा क्या कहना चाहते हो, साफ़-साफ कहो, पहेलियाँ न बुझाओ।"

"खैर, तो हुजूर फिलहाल यही समझ लें—कि उधर से इधर का शौक जनून की हद तक पहुँच चुका है।"

"क्या ? म्यां बकते हो ?"

"माशाअल्ला, हमारी साहबजादी भी लाखों में एक हैं। खुदा गवाह हैं, दोनों की जोड़ी खूब रहेगी।"

"अब तुम पिट जाओगे अब्दुल्ला मियाँ।"

"जैसी हुजूर की मर्जी, मगर मैं तो मिठाई का ही उम्मीदवार हूँ !"

यूसुफ मियाँ हँस दिए। हकीकत तो यह थी कि इस वक्त उनका दिल बाँसों उछल रहा था। उन्होंने कहा—"मुँह धो रखो म्याँ !"

"हुजूर, हमारी साहेबजादी जब बात करती हैं, मुँह से फूल झड़ते हैं। हंसती हैं तो घुंघरू बजते हैं। चलती हैं तो बसन्त छा जाता है। बन्दानेवाज, ऐसी हैं हमारी साहेबजादी !"

"होंगी भई, खुदा उन्हें सलामत रखे ।"

"और पढ़ने-लिखने की बेहद शौकीन, माशाअल्ला-याददाश्त भी गजब की है उनकी !"

"तो मेरा सर क्यों खाते हो ?"

"यह बात नहीं किबला, कभी आप उनसे बात कीजिए, तो मेरी बात पर यकीन आए ।"

"लेकिन यह क्या जरूरी है कि हम साहबजादी से बात करें । और क्यों करें ? वो हैं परदानशीन शरीफजादी !"

"तो हुजूर, क्या मुजाइका है । आप भी रईस हैं । उनके मेहमान हैं । वे आपकी मेजबान हैं । अब यही देखिए कि उनके हुक्म से ही मिस रोज ने आपके कमरे में कदम रंजा फरमाया है । तभी तो मैंने कहा--कुछ और ही गुल खिलनेवाला है ।"

"देखा जायगा, फिलहाल तो यह शिकार बावर्चीखाने में पहुँचा दो ।"

"या साहबजादी को नजर करूं ?"

यूसुफ मियां को हँसी आ गई । बोले--"जो ठीक समझो वही करो--और खुदा के लिए मुझे थोड़ी देर के लिए निजात दो । बहुत थका हूँ, जरा सोऊँगा ।"

"तो मैं अभी हाजिर होता हूँ । बदन दबाकर तमाम थकान उतार दूंगा ।" और वह शिकार लेकर जनानखाने की ओर चल दिया । यूसूफ मियां के मुँह से आप ही निकल पड़ा--खुश आमदीद ।

: २१ :

निमन्त्रण

अब तो रोज ही फूलों के गुलदस्ते आने लगे । नये नये तोहफे भी आने लगे । बावर्चीखाने से जब खाना आता तो साथ ही भीतर से एक स्पेशल मीठी तश्तरी भी आने लगी । यह साहबजादी की ओर से दावत

होती रहती थी। और एक दिन सुबह सुबह जब यूसुफ मियां नहा धोकर नाश्ते की तैयारी कर रहे थे--हाथों में एक बड़ा सा ताजा फूलों का गुलदस्ता लिए मिस रोज आ बरामद हुईं। हँसती हुई शीरी जबान में और भी मिठास पैदा करती हुई बोली--"साहबजादा साहब, सुबह की सलाम दोपहर से जरा पहले ही अर्ज करती हूँ।"

यूसुफ मियां के मुँह से बेसाख्ता निकल गया—"खुश आमदीद, मिस साहबा, लेकिन अभी तो आठ ही की गजर बजी है। अभी दोपहर कहाँ?"

"खैर, तो आप नाश्ता नोश फरमाने की तैयारियों में हैं। ये फूल साहबजादी ने आपके लिए भेजे हैं।"

"बहुत बहुत शुक्रिया और सलाम मेरा अर्ज कर दीजिए साहबजादी साहबा से। बहुत करम फरमाया इस नाचीज यतीम पर।"

"माई गाड, आप और यतीम? तौबा तौबा। बड़े सरकार सुनेंगे तो क्या कहेंगे भला?"

"कुछ गलती हुई हो तो माफी का खास्तगार हूँ। मैंने तो जो ठीक बातें थीं वही अर्ज कर दीं।"

"बातें बनाने में तो माशा अल्ला आपको कमाल हासिल है। बहरहाल मैं साहबजादी साहेबा से अर्ज कर दूंगी—माफी देना होगा तो देंगी—सजा देंगी तो भुगतियेगा।"

"लेकिन माफी तो मैं आप से मांग रहा हूँ मिस साहेबा, खुदा न करे कि आप इस नाचीज से बदजन हो जाएं तो फिर बन्दा कहीं का न रहेगा।"

"तौबा, तौबा बड़े शरीर हैं आप साहबजादा साहब, खामख्वाह मुझे लपेटते हैं।"

"मुझे अफसोस है, खैर, तो अब क्या हुक्म है?"

"अर्ज करती हूँ, कल के शिकार के सिले में यह फूल साहबजादी ने भेजे हैं, साथ ही शुक्रिया।"

"तो मेरा सलाम अर्ज कर दीजिए और कहिए—भला इसकी क्या जरूरत थी ?"

"खैर कहना सुनना जो हो, वह आप ही कह सुन लीजिए।"

"क्या मतलब आपका ?"

मिस साहब ने आँखों में शरारत भर कर कहा—"मतलब यह कि जोड़ी अच्छी है।"

"यह आप क्या कह रही हैं ?"

"वही, जो नवाब साहब को कहते सुना, बस न रत्ती कम न ज्यादा।"

"आप मुझे बना रही हैं।"

"जी नहीं, बने ठने तो आप खुद ही बैठे हैं। मैं तो एक बात कह रही हूं। अच्छा सलाम।"

मिस रोज जाने लगीं, तो यूसुफ मियां ने उन्हें रोक कर कहा—

"खुदा के लिए जरा सुनिए तो।"

"फरमाइए।"

"मैंने कहा—मैंने कहा—जरा सुनिए तो।"

"बाबा, सुन तो रही हूँ कान खोल कर।"

"देखिए मिस साहबा, मैं कहता हूँ आप कभी-कभी अजीब बातें करने लगती हैं।"

"बस, कभी-कभी ही न ? लेकिन आप शायद ठीक कहते हैं, नवाब साहब जो कुछ फरमा रहे थे—भला क्या जरूर था कि मैं आपसे कहती। लेकिन हजरत, वे बातें काफी तूल पकड़ गई हैं।"

"आखिर, कौन सी बातें, कुछ कहोगी भी ?"

"अब गिलहरी रंग लाई। खैर, मैं नवाब साहब से अर्ज कर देती हूँ कि अब शादी कर ही दी जाय। साहबजादा को मंजूर हैं ?"

"तौबा तौबा, खुदा के वास्ते यह गज़ब न कर बैठना। आप को शायद शक हुआ है।"

"कैसा शक ?"

"कि, कि. मैं भी इधर कुछ दिलचस्पी रखता हूँ।"

"बेखुश, शक के क्या मानी साहब, कामिल यकीन है। अब मैं जाकर नवाब साहब से भी अर्ज किए देती हूँ और साहबजादी साहेबा से भी।"

"बड़ी शरीफ हैं आप मिस साहबा, बात का बतंगड़ बनाने में तो आप यकता हैं।"

"जी, ठीक फरमा रहे हैं आप। खैर, तो जरा तशरीफ ले चलिए।"

"कहाँ ?"

"नवाब साहब आपको याद फर्मा रहे हैं।"

"बेहतर, तो मैं नाश्ता लेकर आता हूँ।"

"नाश्ता भी वहीं नोश फर्माइए।"

यह कह कर जरा मुस्करा कर तिरछी चितवन का तीर फेंकती हुई मिस रोज चली गईं। यूसुफ मियां जल्दी-जल्दी कपड़े पहन नवाब साहब की बारहदरी की ओर चल खड़े हुए।

: २२ :

नाश्ता

नाश्ते की तैयारी बड़े ठाठ की थी। अग़लम बग़लम बहुत सी चीजें खाने के दस्तरखान पर सजी थीं। नवाब साहब खुद खड़े होकर सब इंतजाम कर रहे थे। बात बात पर बिगड़ रहे थे। अब्दुल्ला था कि फिरकी की तरह नाच रहा था। एक तो उनका हाथी सा डील डौल, दूसरे घनी काली दाढ़ी, तिस पर शेर के गुर्राने की सी आवाज़। बात क्या करते थे—दहाड़ते थे। ज्यों ही मियां यूसुफ ने कमरे में कदम रखा—और फ़र्शी सलाम झुकाया कि नवाब साहब ने बादल की गर्ज की तरह अट्टहास करते हुए कहा—"आओ-आओ मियां साहबजादे, मैंने कहा—आज तो मैं अपने साथ तुम्हें नाश्ता करने को कहूँ। क्या कहूँ, इस क़दर मसरूफियत रहती है— कि तौबा ही भली। लेकिन मैं समझता

हूँ, तुम्हें कोई तकलीफ यहां न होगी। और भाई, हो भी तो—तुम्हारा घर है। यह अब्दुल्ला अहमक है। पता नहीं—कैसी खिदमत करता है। बहरहाल भई, घर में ही हो, अरे हाँ, तौबा तौबा, मैं भी क्या भुलक्कड़ हूँ।" नवाब साहब ने दोनों कान पकड़ कर दो तमाचे अपने मुँह पर रसीद किए। फिर पुकारा—"चली आओ बेटी, यहाँ तो सब घर के ही आदमी हैं।" फिर हँस कर कहा—"भई साहबजादे, अजब शर्मीली लड़की है। लाख कहा—कि साहबजादे का जरा खयाल रखना, घर में उसकी मां होती तो क्या बात थी। लेकिन…"

नवाब साहब की बात बीच में ही कट गई। इसी वक्त मियां यूसुफ की नजर उस आनेवाली की ओर उठ गई। और शबनम ने कमरे में आकर मियां को एक सलाम झुकायी—नीची नजर किए। गजब का सुफियाना बनाव-सिंगार किया था शबनम ने। सफेद लिबास में संगमरमर की एक परी की मूरत सी लग रही थी। आम तौर पर मुस्लिम लड़कियां रंगीन कपड़े पहनती हैं। मगर शबनम के मिजाज और उसकी तबियत निराली थी। मिस रोज की अंग्रेजी तालीम का तो उस पर असर था ही, खुद भी वह सादगी पसन्द थी। नवाब ने कहा—"आओ आओ बेटी, शर्माओ मत। साहबजादे यूसुफ अपने अजीज ही हैं। क्या कहूँ, बेचारों की घोडी खो गई। निहायत नफीस घोड़ी थी। पता ही नहीं लगता। खैर, भई अब्दुल्ला, लाओ, कवाब गरमा-गरम। मियां साहबजादे, बैठो तुम इधर मेरी बगल में, और तुम बेटी इधर।"

और इस तरह नाश्ता शुरू हुआ। मिस रोज ने दस्तरखान कुछ कुछ अंग्रेजी ढंग पर सजाया था। एक दो अंग्रेजी जिन्स नाश्ते में तैयार कीं थीं, तथा वे एक कोने में खड़ी सारा इन्तजाम देख रही थीं। मियां अब्दुल्ला लपक झपक कर यह ला वह ला कर रहे थे।

नवाब साहब ने कहा—"भई साहबजादे, तुम भी कहते होगे—अच्छे चचा हैं कि इतने दिन घर में रहते हो गए और अभी तक शबनम से जान पहचान तक न कराई। मगर भई, खुदा झूठ न बुलवाए—इसकी

दुनिया तो ये किताबें हैं। बस, मिस रोज हैं और यह, हर वक्त या तो इल्मी बहस या कसीदा। बातें करती हैं तो अंग्रेजी में। यही देख लो, पर्दा और झालर, इसी ने बनाई है।"

"सुभान अल्लाह, खुदा बुरी नजरों से बचाए, बहुत ही नफीस दस्तकारी है।"

यूसुफ ने तारीफ कर के झेंपी सी नजरों से शबनम की ओर देखा। वह भी मुस्कुराती हुई कनखियों से उन्हें देख रही थी। नवाब साहब ने पुलाव की रकाबी की ओर इशारा करके कहा—"बेटी, जरा वह पुलाव साहबजादे को दो।" इस पर यूसुफ ने कहा—"जी, मैं तो दो मर्तबा ले चुका हूँ, तकलीफ न कीजिए।" नवाब मीठी हँसी हँसकर बोले—"भई, तकल्लुफ की दाद नहीं, लो यह शीरमाल तो जरा चखो। शबनम ने अपने हाथ से बनाया है। बस, यही कमाल है मेरी बेटी में, वह अव्वल तो खाना पकाती नहीं, और कभी पकाती है तो बस—वही चीज लाजवाब होती है।"

यूसुफ मियां ने शीरमाल चख कर कहा—'जवाब नहीं है इसका हुजूर, एक टुकड़ा और दीजिए।"

"हाँ, हाँ, बेटी देना जरा, अमा साहबजादे तकल्लुफ न करो, जरा हाथ दिखाओ। वल्लाह जवान आदमी हो।"

"खा रहा हूँ हुजूर।"

इसी वक्त मिस रोज ने गर्मागर्म कहवे के प्याले पेश किए। शबनम ने अपने हाथ से प्याला उठाकर पहले नवाब साहब को—फिर यूसुफ को पेश किया। नवाब साहब ने कहवा पीते हुए कहा—"भई मिस रोज भी हमारी माशा-अल्ला कहवा बनाने में यकता हैं।"

यूसुफ ने मिस रोज की ओर देख कर कहा—"खुदा उन्हें सलामत रखे!" इस पर नवाब साहब ने एक फर्माइशी कहकहा लगाया और कहा—"भई साहबजादे, यह तो मानना पड़ेगा कि अंग्रेजों के तौर-तरीके हैं ला-जवाब। यहीं मिस रोज को देखिए—महज किताबें ही नहीं रटातीं,

यह भी खयाल रखती हैं किस वक्त कैसा लिबास पहना जाय, खाना किस तरह खाया जाय ? बैठने, उठने, बात करने, गरज़ हर तरीके में करीना ।"

मियां यूसुफ ने कनखियों से मिस रोज की ओर देखते हुए कहा—"वाकई हुज़ूर, यही बात है। मगर लिबास उन लोगों का कुछ अजीब-सा है, उसे पहन कर तो दस्तरखान पर बैठना ही मुश्किल है।"

"तो क्या जरूर है कि अंग्रेजी लिबास पहनो और दस्तरखान पर बैठो। उनका लिबास पहन कर तो फिर मेज कुर्सी पर बैठ कर खाना खाओ। अमा, हमने देखा है बड़े-बड़े रईस अब दस्तरखान पर खाना नहीं खाते।"

"तो हुज़ूर, अपने मुल्क का लिबास ही क्या बुरा है, आखिर हिन्दुस्तानी लोग क्यों अंग्रेजी लिबास पहनें ?"

"यह न कहो मियां साहबजादे, अंग्रेजी लिबास में चुस्ती तो खूब आती है। हाँ, जरा भोडा जरूर है, खड़े-खड़े हाजत रफा करनी पड़ती है।"

"सुना है वैतुलखला जाते हैं तो वहां पानी का इस्तेमाल भी नहीं करते।"

"भई, सर्द मुल्क के रहने वाले ठहरे। पानी के नाम उनकी नानी मरती है।"

यह बात मिस रोज ने सुन ली। उसने हंसकर कहा—"नानी नहीं मरती है, नवाब साहब ! सफाई का खयाल है। हिन्दुस्तानियों की गन्दी आदतें तो हुजूर बखूबी जानते हैं।"

"लेकिन भई, यह खुश्क सफाई तो जरा मेरी मोटी अक्ल में कम ही बैठती है—और छुरी कांटे से खाना ?"

"तौबा, तौबा, खुदा बचाए। एक बार मैं फंस गया, जनाब चीफ कमिश्नर साहब बहादुर ने दावत दी थी। मिस रोज ने एक हफ्ते तक छुरी कांटे से खाने की मश्क कराई मगर बेकार, खुदा की पनाह—मुंह कांटे से

छिद कर छलनी हो गया। लुत्फ यह कि जिस चीज को उठाना चाहें वह कांटे में बिंध कर प्लेट ही में रह जाय, हाथ पल्ले खाक नहीं पड़े। भूखे ही आए दावत से। तौबा-तौबा।" नवाब साहब ने दोनों कान पकड़ कर गालों पर तमाचे जड़ लिए।

मियां यूसूफ ने कहा—"हुजूर, अपनी-अपनी तहज़ीब है, अंग्रेजी लिबास भी सलीके से पहना जाय तो बुरा नहीं जंचता।"

"तो मियां साहबजादे, आज एक सूट सिलवाता हूँ तुम्हारे लिए। क्यों मिस रोज, कैसा फबेगा इन पर अंग्रेजी सूट।"

"क्या कहने हैं हुजूर, मगर पहले इन्हें टाई बांधना सीखना होगा।" मिस रोज ने मुस्करा कर कहा।

"तो वह तुम सिखा देना। साहबजादे, मिस साहेबा टाई बांधने में बहुत मश्शाक हैं। मुझे भी सिखाया था, पर मैं तो न सीख सका। मगर ये रोज तो इस सफाई से फन्दा डालती हैं कि देखते ही बनता है। मेरे लिए भी एक सूट इन्होंने सिलवाया था, जब साहब कमिश्नर से मिलने जाता हूँ वही लिबास पहनता हूँ, मगर टाई बांधती हैं मिस रोज, लेकिन कयामत यह है कि खोलती भीं यही हैं दूसरे दिन ?"

"तो रात-दिन आप टाई बांधे रहते हैं ?"

"क्या किया जाय, हम से वह फन्दा न लगाते बनता है न खोलते, अब तुम जरा सीखना"

"बस हुजूर, मुझे तो बख्शा ही जाय। हमारा यह हिन्दुस्तानी लिबास क्या बुरा है,"

इसी वक्त अब्दुल्ला ने पानों का तश्त पेश किया और नवाब साहब ने तपाक से दो बीड़े पान लिए। एक यूसुफ को पेश किया दो अपने मुँह में ठूँसे, और नाश्ते का सिलसिला खत्म किया।

अलस्सुबह मिस रोज मुस्कराती हुई आयीं और मियां यूसुफ ने कहा—

"मियां साहबजादे, सुबह का सलाम मुबारक हो।"

"खुदा खैर करे, यह मुबारकबादी सुबह-सुबह ?"

"मुँह मीठा कराइए, तो खुशखबरी सुना दूँ।"

"आपका मुँह तो वल्लाह खुद ही मीठा है।"

"चलिए बातें न बनाइए, साहबजादी नाश्ते पर आप को बुला रहीं हैं, तशरीफ ले चलिए।"

"इस कदर ज्यादती ? दावत तो कल हो चुकी। अब हस्बमामूल यहीं नाश्ता भिजवा दीजिए।"

"कल तो नवाब साहब ने दावत दी थी।"

"और आज ?"

"हस्बमामूल। अब नाश्ता और खाना आप वहीं खाया कीजिए।"

"यह आपका हुक्म है ?"

"जी नहीं, साहबजादी साहेबा का हुक्म है।"

"नवाब साहब से अर्ज कीजिए...."

"जी, नवाब साहब नहीं हैं, सहारनपूर तशरीफ ले गए हैं।"

"खैर, तो इतनी मोहलत दीजिए, जरा कपड़े बदल लूँ।"

यूसुफ मियां ने, आबेरवां का अंगरखा, और जामदानी की नीमास्तीन पहनी। पैरों में ढीला पायजामा।

शबनम ने मुस्कराते हुए कहा—"खुश आमदीद।"

"आपने नाहक तकलीफ की, नाश्ता मैं वहीं कर लेता।"

"यहाँ आने में क्या ज्यादा तकलीफ हुई ?"

"तकलीफ कैसी; राहत हुई।"

"माशा अल्लाह बड़े नेक मालूम होते हैं आप।"

"माफ कीजिए नेक तो चुगद होते हैं।"

"खूब, दाद देती हूँ आपकी खुशमजाकी की। लिल्लाह तशरीफ रखिए !"

"नवाब साहब कहाँ तशरीफ ले गए हैं ?"

"सहारनपुर गए हैं, खालाजान को सलाम करने।"

"यह खालाजान कौन हैं ?"

राजकीय संग्रहालय पुस्तकालय, लखनऊ
विभाग ....
पुस्तक क्रम संख्या
State Museum Library, Lucknow

"फिरंगी कमिश्नर साहब बहादुर।"

"क्या जरूर था सलाम करना ?"

"जी, फिरंगी का हुक्म और हिन्दुस्तानी टाल दें।"

"तो गोया आप भी कायल हैं, फिरंगियों की इस आदत के।"

"क्यों नहीं, अब्बा हुजूर का चौहद्दी में डंका बजता है। पर फिरंगी की सूरत देखकर उनकी भी पिंडली कांपती है।"

"यह तो मैं पहली मर्तबा ही सुन रहा हूँ।"

"खुदा करे, सुनते सुनते कान न पक जाएँ आपके। माशा अल्लाह अभी आप बच्चे जो ठहरे।"

"सुन कर तसल्ली हुई। बच्चों पर तो आपकी हमेशा ही नजरें इनायत रहती हैं।"

"अब जनाब शायरी फरमा रहे हैं।"

"जी नहीं, एक आरजू है..."

"खैर, यह आरजू अपनी जगह दुरुस्त है। लीजिए, ये गुर्दे कैसे बने हैं, जरा चखिए, मुई उंगलियां जला डालीं आज मैंने इनको बनाने में।"

"कमाल के बने हैं। लेकिन क्या जरूर है, आप बनाएँ, और उंगलियाँ जलाएं ?"

"क्या खूब बने हुए हैं आप ?"

"जी, क्या फरमाया आपने ?"

"जी, लिबास आप पर फूट निकला है, माशा अल्लाह, दर्जी ने सिया खूब है। सिवैयां तो लीजिए।"

"लेकिन आप भी कुछ लेंगी या सिर्फ बातों से ही पेट भरेंगी।"

"कानों में चुभने लगीं न, खैर साहब अब न बोलेंगे।"

"सुभान अल्लाह, खैर, एक बात पूछूं बशर्ते कि आप शर्माने का इरादा न करें।"

"खैर, आप पूछिए।"

"शुक्रिया, मैं सिर्फ यह जानना चाहता हूँ कि आपके तसव्वुर में अब

तक किसी खुशनसीब ने जगह पाई है ?"

"जी नहीं ।"

"देखिए, सच बोलिए ।"

"सच बोलने का वादा तो मैंने किया नहीं, शबनम ने शरारतभरी नजरों से यूसुफ को देखा ।"

"अर्ज करता हूँ कि मैं आज दुनिया का सबसे बड़ा खुशनसीब आदमी हूँ । आप मुझे मुबारकबाद दे सकती हैं ?"

"मुबारक हो साहब ।" शबनम ने निहायत संजीदगी से कहा । यूसुफ ने तश्त से एक डली बर्फी उठा कर कहा—"तो साहब, जरा मुँह मीठा कर लीजिए," और उन्होंने बर्फी का वह टुकड़ा शबनम के मुँह में ठूंस दिया । बर्फी मुँह में रख कर शबनम एक तितली की भांति वहाँ से भाग गई । यूसुफ मियां ठगे से खड़े रह गए ।

: २३ :

यूसुफ मियाँ की बारात

और कुछ दिन बीते । नवाब साहब अब ढूंढ़-ढूंढ़ कर शबनम और यूसुफ मियाँ को ऐसे अवसर दे रहे थे, कि दोनों एक दूसरे को अच्छी तरह समझ-बूझ लें । यूसुफ मियाँ भी अब घर जाने का खयाल भुला बैठे थे । घर से बूढ़े दीवान के खत-रुक्के आते, बुलाया जाता, मगर यूसुफ मियाँ अब खुद ही जाने का मौका टाल जाते । मुजफ्फरनगर में रहते अब उन्हें अरसा चार माह का हो चुका था । आखिर एक दिन उन्होंने नवाब साहब से फिर अर्ज की—कि घर से दीवान साहब का रुक्का आया है । कम्पनी सरकार को मालगुजारी अदा करनी है—मेरा जाना जरूरी है ।

नवाब ने कहा—"साहबजादे ! मेरा मन तो अभी तुम से भरा नहीं, खैर, तुम शबनम से रुखसत ले लो । वह इजाज़त दे दे तो चले जाना ।" यूसुफ मियाँ ने शबनम से बातें कीं । बातें बड़ी लम्बी-चौड़ी थीं । परन्तु

अन्त में शबनम से भी उन्हें इजाजत मिल गई, और यूसुफ मियाँ की रुखसती की घड़ी आ ही पहुँची।

वही सुरंग घोड़ी, नए साज में सजा कर लाई गई। नवाब ने कहा—"मियाँ साहबजादे ! तुम्हारी घोड़ी न मिली न सही। यह घोड़ी भी एक नायाब जानवर है—इसी पर सवार हो कर चले जाओ।"

यूसुफ मियाँ मन की हँसी रोक कर घोड़ी पर सवार हुए। एक बार चिलमन पर नजर फेंकी और चल दिए।

घर जा कर उन्होंने घोड़ी नवाब साहब को वापस भेज दी, एक रुक्का भी लिख दिया। और नवाब साहब की दरियादिली, मेहरबानी और मेहमाननवाजी का बहुत-बहुत शुक्रिया अदा किया।

लेकिन घोड़ी नवाब ने नहीं रखी। रुक्के का जवाब दिया—"घोड़ी मैं ने वापस करने को नहीं भेजी थी। अब इसे तुम्हीं रखो। और जरा हमारे पास अपने दीवान साहब को भेज दो"

बूढ़े दीवान पुराने नवाब के कारिन्दे थे। उन्होंने आकर नवाब से बातें कीं—बातों का अभिप्राय शबनम के साथ यूसुफ की शादी का तय होना था। सब बातें तय हो गईं। और शादी का पैगाम ले कर बूढ़े दीवान घर लौटे। यूसुफ मियाँ भी मतलब समझ गए थे। अब सुना तो खिल उठे। बारात की तैयारी होने लगी। मेहमानों को रुक्के लिखे गए। नवाब जबर्दस्त खाँ ने शादी में सब से ज्यादा दिलचस्पी ली। और आखिर वह मुबारक दिन आया, जब बल्लभगढ़ से बारात मुजफ्फरनगर रवाना हुई।

: २४ :
शबनम की शादी

और बारात आई मुजफ्फरनगर में धूमधाम की। बारात में दस-बारह हाथी, पचास रथ, सौ से ऊपर मझोलियाँ, बहेली और फीनसें, दो सौ से अधिक घोड़े, ऊँट और इतनी ही फिरक, ठोकर, छकड़े और वारदाने के खच्चर। बाराती कोई बारह सौ के ऊपर। हिन्दू और मुसलमान

दोनों। राजा-नवाब, जमींदार-रैयत सब। कहना चाहिए पंचमेल मिठाई। सब अपनी-अपनी धज में। रईसों के साथ दर्जनों निजी ख़िदमतगार और मुसाहिब। नाई, धोबी, कहार, कसाई, बावर्ची, घसियारे, चरकटे, बरकंदाज, आसावरदार, मशालची, मुन्शी, मोदी, अलग। रण्डी, भाँड, नक्काल, नफीरी वाले, नक्कारची, ढोल-दमामे, आतिशबाजी, बाजीगर, पहलवान, नट, सितारिए, गवैए-कलावन्त दर्जनों। सब की अलग-अलग जमात। दूल्हा मियाँ के यार-दोस्त-मुसाहिबों की अलग चौकड़ी। गरज, बारात क्या थी अच्छा-खासा लश्कर था। कहना पड़ेगा—इन्तजाम सब बातों का बारात के साथ भी माकूल था। नव्वाब मुजफ्फरबेग का जरूर इन्तकाल हो चुका था, मगर उन की जगह हापुड़ के नवाब जबर्दस्त खाँ भारी दबदबे से दूल्हे मियाँ के कर्त्ताधर्त्ता के रूप में आए थे। एक जरी काम का कोई दो हजार रुपयों की कीमत का दुशाला कमर से लपेटे, तलवार-पेश कब्ज, और कटार फैंटे में कसे, अपनी शानदार दाढ़ी और रुआबदार चेहरे से बारात भर में नवाब जबर्दस्त खाँ दबदबे के आदमी जंच रहे थे। वास्तव में इस भारी भरकम बारात में नवाब जबर्दस्त खाँ ही नवाब मुजफ्फरनगर के जोड़-तोड़ के आदमी थे। दो खिदमतगार दुनाली बन्दूकें लिए और दो खिदमतगार उन का पानदान और हुक्का लिए, आठों पहर चौंसठ घड़ी उन की खिदमत में हाजिर रहते थे। बारात की जान थी नवाब की नटनी गुलाब जान; जो अलग अपना डेरा लाई थी। यद्यपि बारात में कोई दर्जन भर नर्तकियाँ डेरे डाले थीं; पर गुलाब जान की बात ही निराली थी। हवादान में बैठ कर वह चलती थी। उस की पालकी के आठों कहार ऐसी जर्कबर्क पोशाक में रहते थे—कि खामख्वाह देखने वालों की नजर उन पर टिक जाती थी। सच पूछो तो बारात में सबसे ज्यादा खातिरदारी गुलाब जान की ही होती थी। खुद नवाब जबर्दस्त खाँ सुबह-शाम उन की हाजिरी बजाते थे। पुतली जान का दरबार लगता था—दर्जनों मुसाहिब, चाहने वाले, चपरकनातिए, कुर्रम उसे घेरे रहते थे। गुलाब जान शाहजादी की-सी शान से दिन में

दो-चार बार लिबास बदलती और नई-नई वजहदारी दिखाती थी।

यद्यपि नवाब जबर्दस्त खाँ ने बारात के साथ बहुत सी जिन्स राशन छकड़ों में लाद कर रख ली थी, और ऐसा इन्तजाम किया था कि बारात की यदि मुजफ्फरनगर में कुछ पूछ न भी हो तो—बारात के सब छोटे-बड़ों की सभी जरूरतें पूरी हो जायँ। लेकिन नवाब मुजफ्फरनगर का इन्तजाम भी लाजवाब था। मील भर के घेरे में डेरा, तम्बू, झोंपड़ियाँ और छोलदारियाँ लगाई गई थीं। जनवासा क्या था—फौजी पड़ाव था, जहाँ एक छोटा सा बाजार भी था। जहाँ जिस का जी चाहे वही जो जिन्स जितनी दरकार हो ले जाय। पैसा खर्च करने का काम नहीं। एक तरफ जलाने की लकड़ियों के अम्बार लगे हैं, तो दूसरी ओर हजारों मटकों, आबखोरों, शकोरों, पत्तलों का पहाड़ लगा है। दही-दूध सब्जी-तरकारी, मुर्गी-अण्डा, खस्सी-शिकार हर रोज ताजा चला आ रहा है। हर जिन्स का अम्बार लगा है। बैलों की जोड़ी के लिए प्रति दिन एक सेर घी, आठ सेर रातब, हाथी के लिए सवा मन का रोट और सवा सेर घी, ताजा गन्ना। बारातियों के लिए शीरमाल, मीठे टुकड़े, बिरियानी, मुतंजन, मिठाइयाँ, सिवइयाँ, कबाब, कोफ्ते और न जाने क्या-क्या। हिन्दुओं के लिए—कच्ची-पक्की रसोई, ब्राह्मण के हाथों से तैयार। पान-सुपारी, इलायची, तमाखू की भरमार।

बारात के स्वागत का इन्तजाम देख कर नवाब जबर्दस्त खाँ ने हँस कर कहा—

"इन्तजाम तो नवाब साहब ने माशा अल्ला इस तरह किया है गोया बारात छह महीना रोक रखी जायगी।"

नवाब जबर्दस्त खाँ का यह फिकरा नवाब इकरामुल्ला खाँ के कान में भी जा पहुँचा। सुन कर आप ने सिर हिला कर कहा—

"क्या मुजाइका है, देखा जायगा।"

शादी हुई, निकाह हुआ और अब नाच-रंग, गाना-बजाना, खाना-पीना, ऐश-इशरत का दौर चला। नित नए जश्न। नाम सुन कर दूर-दूर

के कलावन्त आ रहे हैं। अपने-अपने करतब दिखा रहे हैं। जगह-जगह डेरेदार रण्डियों की महफिलें जमी हैं, नाच-मुजरे हो रहे हैं, मशहूर भाँड, ऐसी नकलें कर रहे हैं कि देखने वालों के हंसते-हँसते पेट में बल पड़ रहे हैं। कुछ मनचले नौजवान घोड़े उछाल रहे हैं, और शहसवारी के जौहर दिखा रहे हैं। कहीं नेजेबाजी. पट्टेबाजी के करतब हो रहे हैं। उस्ताद और शागिर्द भिड़ रहे हैं। कहीं दिल्ली के डण्डे वाले चीरफाड़ और बिलन्द्री के खेल दिखा रहे हैं। कहीं नट पैरों में पैने नोकदार सींग बाँध कर रस्सियों पर चल रहे हैं। बूढ़ा नट ढोल बजा-बजा कर कह रहा है—नहीं बना. नहीं बना। और रस्सी पर का नट और भी दूसरा खतरनाक खेल दिखाता है। कहीं जादूगर हाथ की सफाई दिखा रहे हैं। कहीं कलन्दर बन्दर नचा रहे हैं। भिश्ती दौड़-दौड़ कर छिड़काव कर रहे हैं। मगर गर्द-धूल का अम्बार है कि दबता ही नहीं। दूर-दूर के इत्र-फुलेले बेचने वाले. डेरे-डेरे घूम कर इत्र बेच रहे हैं। सौदे-सुलफ हो रहे हैं। नवाब साहब ने मेरठ की फौज का अंग्रेजी बाजा मंगवाया है। जो अपनी अजीब अदा से घिर्र-पों घिर्र-पों कर रहा है। नवाब साहब के बहुत से शागिर्द पेशा-कुश्ती और दूसरे करतब दिखा रहे हैं। बड़े-बड़े बाजीगर और सपेरे भी अपना-अपना तमाशा दिखा रहे हैं।

सब कुछ हो रहा है। लेकिन बारात की बिदाई नहीं हो रही है। हफ्तों गुजर गए, और अब एक महीना बीत रहा है। जब-जब नवाब जबर्दस्त खाँ बिदा का पैगाम भेजते हैं—तो नवाब इकरामुल्ला खाँ हर बार जवाब देते हैं—"क्या मुजाइका है, देखा जायगा।"

लेकिन बात इतने कहने सुनने ही पर नहीं रह गई है। मुजफ्फरनगर की चौहद्दी में नवाब के पहरे बैठे हैं। पहरे में हथियारबन्द सिपाही, बरकंदाज और लठियल जवान तैनात हैं। मजाल नहीं कि कोई बाराती मुजफ्फरनगर की चौहद्दी से बाहर तशरीफ ले जाय। पहरे-चौकी का सारा इन्तजाम नामी-गिरामी चोरों के सरदारों और डाकू सरदारों के जिम्मे हैं, जो अपनी-अपनी जमात को लिए जगह-जगह चौकी डाले पड़े हैं और

अपनी चौकी पर पूरे मुस्तैद हैं। इन चौकियों को पार कर के बाहर का आदमी मुजफ्फरनगर में आ सकता है, पर मुजफ्फरनगर का कोई आदमी चौहद्दी से बाहर नहीं जा सकता।

नाच-रंग, खेल-तमाशे, दावतें, खाना-पीना मौज-बहार वैसी ही चल रही है। परन्तु बाराती घबरा रहे हैं। घर लौटने को बेचैन हैं। पर बारात की विदाई हो तब न, बाराती घर लौटें। हकीकत यह है कि नवाब इकरामुल्ला ने कहने वालों की चुनौती स्वीकार कर ली थी, और कसद कर लिया था—कि बारात छह महीने से पहले हर्गिज बिदा नहीं की जायगी।

नवाब साहब का रुआब-दबदबा कम न था। यों नवाब जबर्दस्तखाँ भी काफी दबंग आदमी थे। पर चोरों के शहनशाह नवाब इकरामुल्ला से उन की भी पिण्डली काँपती थी। नवाब इकरामुल्ला को खुश रखने ही में खैरियत थी। भला किस की माँ ने धोंसा खाया है कि उन्हें गुस्सा दिलाए और अपना घर-बार लुटाए। बस सब का काफिया तंग था। सब तरह की आरजू-मिन्नत की गई। रोना-पीटना हुआ, गुस्से-नाराजी की बातें भी हुईं। पर बेकार। बारात विदा न होनी थी—न हुई। हर बात का सिर्फ एक नपा-तुला जवाब था—"देखा जायगा—क्या मुजाइका है।"

न जाने कहाँ से घी-मैदा, चीनी आदि राशन के छकड़े रातोंरात लदे चले आते थे—दूध-दही. सब्जी-तरकारी. बकरे. मेंढ़े. खस्सी. मुर्गी-मुर्गे. मछली. दानाचारा बेशुमार दिन-दिन आता-जाता था। न जाने कहाँ से? लुत्फ यह कि सब काम करते थे—शागिर्द पेशा लोग। नवाब मसनद पर बैठे खमीरी तमाखू पर कश लगाते—और हुक्का गुड़गुड़ाते थे। प्रतिदिन शाम को वे हाथी पर चढ़ कर जनवासे का चक्कर लगा आते थे—जो अब मीलों में फैल गया था।

दिन बीतते जाते थे, और इस अद्भुत बारात की चर्चा दूर-दूर तक फैलती जा रही थी। नवाब साहब महीनों से बारात विदा नहीं कर रहे

हैं। पहरे बैठा रखे हैं। यह खबर सुन तथा शादी की महफिलों. दावतों और मौज-मजा की चर्चा सुन दूर-दूर से तमाशाई सैंकड़ों की तादाद में मुजफ्फरनगर आ रहे थे। पर जो आता उस का शुमार बाराती में ही किया जाता था। वह खाए-पिए, मजा करे, पर वहाँ से जा नहीं सकता था। रहना बारात के साथ ही पड़ता था। इस प्रकार अब बारात भी दुगनी-तिगनी हो गई थी।

: २५ :

एक नए बराती

सरदार दोल्चासिंह बड़े जोड़-तोड़ के आदमी थे। वे सहारनपुर के राजा ही थे। जिस प्रकार रुहेलखण्ड के रुहेले सरदारों पर नवाब बब्बू खां का प्रभुत्व था, उसी प्रकार गूजरवाड़े के गूजरों पर सरदार दोल्चासिंह का था। मराठाशाही तक उनकी तूती बोलती थी। महाराज जसवन्त राय होल्कर जैसे महापराक्रमी राजा सरदार दोल्चासिंह की सहायता पाने की आशा में सहारनपुर में महीनों पड़े रहे थे। हकीकत यह थी कि गूजरवाड़े के तीन लाख गूजरों के नेता—सरदार दोल्चासिंह थे। अफसोस है कि अहमद शाह अब्दाली के आक्रमण ने गूजरवाड़े की शक्ति तोड़ डाली थी। उसके बाद गूजरों का संगठन बिगड़ता ही गया। अब सरदार दोल्चासिंह की यद्यपि वह पुरानी धाक नहीं रही थी; परन्तु गूजर उन्हें अपना राजा और जाति का प्रमुख मानते थे। जसवन्त राय होल्कर ने यही आशा की थी, कि यदि दोल्चासिंह गूजरों का संगठन कर उनका नेतृत्व करें, तो तीन लाख गूजरों की एक वीर-वाहिनी खड़ी हो सकती है, जो उत्तर भारत में अंग्रेजी कम्पनी के उठते हुए प्रभाव को चकनाचूर कर सकती है। होल्कर ने बहुत चेष्टा की, वह स्वयं इस वीर वाहिनी का नेतृत्व करने को तैयार थे—पर अफसोस, गूजरों में न वह दमखम था, न जोशखरोश, न संगठन। वे अब नामी-गिरामी चोर बन

चुके थे। यद्यपि वे जमींदार और किसान थे। पर उन्होंने मुख्य पेशा चोरी ही बनाया हुआ था। और उस अंधेरगर्दी के ज़माने में यह काम बहुत लाभ का था। जोखिम इसमें कम थी। मजेदार बात तो यह थी—कि छोटे-बड़े राजा-नवाब जमींदार इनके द्वारा अपनी रियाया के घर चोरी कराते-या डाके डलवाते और अपना हिस्सा चोरी के माल का लेते थे। मुज्जफरनगर के नवाब इकरामुल्ला खां तो चोरों के शहनशाह थे ही। अब सरदार दोल्चासिंह तो मर चुके थे—उनके पुत्र राजा रनवीरसिंह चोरों के सरदार बने हुए थे। रियाया सरकश थी। लगान देती न थी। कम्पनी बहादुर की सरकार मालगुजारी न पाने पर राजा हो चाहे छोटा जमींदार, सरकार सब को जेल में ठूंस देती थी—तथा जमींदारी कुर्क करा लेती थी—परिणाम इसका यह हुआ—कि रनवीरसिंह ने चोरों का नेतृत्व ग्रहण कर लिया। यद्यपि वे नवाब इकरामुल्ला खां के जोड़ के पुरुष तो न थे; पर गूजरों के सरदार मुखिया और राजा थे। अतः गूजरवाड़े के चोर सरदारों में नवाब इकरामुल्ला खां के बाद उन्हीं का नाम था।

कभी-कभी इन चोरों के सरदारों में भी नोंक-झोंक हो जाया करती थी। खास कर नवाब इकरामुल्ला खां और राजा रनवीरसिंह एक प्रकार से प्रतिद्वन्द्वी व्यक्ति थे। कभी-कभी एक ही शिकार पर दोनों के शागिर्द टूट पड़ते तो झगड़ा उठ खड़ा होता था। हाल ही में यह झगड़ा एक तूल पकड़ गया था और यही कारण था कि राजा रनवीरसिंह नवाब के यहाँ शादी में निमन्त्रण पा कर भी नहीं आए थे। नवाब भला यह हिमाकत कब बर्दाश्त कर सकते थे। परन्तु इस वक्त शादी की खटपट में वे राजा रनवीरसिंह को मुनासिब सजा न दे सके थे। फिर भी वे उनका न आना अपनी तौहीन समझते थे—और बदला लेने का इरादा पुख्ता कर चुके थे। अब उन्हें एक सुयोग हाथ लग गया। नागौरी बैलों की एक जोड़ी हाल ही में खरीद कर राजा रनवीरसिंह ने मंगाई थी, जिसकी सूचना नवाब को तुरन्त मिल गई। जोड़ी यकता थी। नवाब

साहब को भला यह बात कहाँ पसन्द कि कोई उम्दा जानवर उनके अमल में दूसरे के पास हो। बस, राजा साहब के यहाँ जोड़ी दो सप्ताह भी न रह पाई और खुल कर नवाब की पशुशाला में आ दाखिल हुई। राजा साहब की इस नायाब और अद्वितीय नागौरी बैलों की जोड़ी को देख कर नवाब बहुत खुश हुए। खास कर इसलिए कि राजा साहब ने शादी में न आने की जो हिमाकत की है, उसका एक आंशिक बदला मिल गया। अब उन्होंने इरादा किया—कि इसी जोड़ी को रथ में जोड़ कर उसी रथ में बैठा कर बेटी को बिदा करूँगा।

अब बारात को मुजफ्फरनगर में आए चौथा महीना बीत रहा था। नाच-रंग, महफिल, खेल, तमाशे और दावत सब बदस्तूर चल रहे थे। बारात गर्मियों में आई थी—और अब नवाब साहब ने बारात के लिए रजाइयाँ सिलवाई थीं। पचास दर्जी रात-दिन रजाइयां और गर्म पोशाक बरातियों के लिए सीं रहे थे। नवाब साहब के सामने बारादरी में रजाइयों के अम्बार लगे थे—सब तरह की रजाइयाँ थीं। रेशमी, सूती, और छींट वाली। इकरंग और रंग-बिरंगी धुनियों की ताँत तन्नक तूँ बोल रही थी। सैकड़ों रजाइयाँ तह पर तह रखी थीं। तैयार रजाइयाँ बारातियों में बाँटी जा रही थीं, नई सिल-सिल कर आती जाती थीं। नवाब बहुत व्यस्त थे—कह रहे थे—"म्याँ, जल्दी करो; जल्दी। कोई बराती ठण्ड में मर गया तो उस मर्दूद की तो खैर जान ही जायगी, मगर मेरी किस कदर बदनामी होगी?"

यहाँ रजाइयों की यह धूम-धाम हो रही थी कि राजा रनवीरसिंह हाथी पर सवार आ बरामद हुए। साथ में पचास सिपाही, प्यादे, सवार, खिदमतगार, मसालची, मुन्शी और गुमाश्ते।

नवाब को इत्तला हुई, तो उठ कर बाहर आए, और बिगड़ कर कहा—"अब आपको यहाँ आने को फुर्सत मिली राजा साहब, वल्लाह, समझदार आप एक ही हैं। तौबा, तौबा, बारात को आए आज चार महीना हो गया, और आप हैं, कि अब आ रहे हैं। यह भी न सोचा कि

चल कर देखूँ—काम में हाथ बटाऊँ। कुछ हेस-नेस हो गई तो गूजरवाड़े की नाक कट जायगी। आप हैं गूजरों के राजा। कहिए, आपकी इज्जत का सवाल है या कि मेरी इज्जत का ?"

राजा रनवीरसिंह ने कहा—"नवाब साहब, खता माफ हो, मैं इस वक्त बरात में नहीं आया हूं, आप से कुछ······"

"क्या फर्माया आप ने ? बारात में नहीं आया हूं ? यह क्या फिकरा कहा ? तौबा, तौबा।" नवाब ने दोनों कान पकड़ कर गालों पर तमाचे जड़े और कहा—"आप बारात में नहीं आए हैं—यही कहा न आप ने ? जी चाहता है खुदकशी कर लूं, या आप ही को गोली मार दूं। यार राजा, हैं आप भी चोंच ही। खैर आइए—भीतर आइए।"

"आ तो अब गया ही हूँ। बड़ा पहरा बैठाया है आपने नवाब साहब, लेकिन मैं तो जानता था—बारात बिदा कब की हो चुकी होगी। शादी तो गर्मियों में थी न ? उस वक्त मैं बीमार था, न आ सका।"

"तो अब आए। खैर, तो बारात अभी बिदा नहीं हुई है। गनीमत है सुबह का भूला शाम को घर लौट आया।"

"खैर, अब हुक्म हो तो मतलब की बात अर्ज करूँ, जिस लिए मैं आया हूँ।"

"अर्ज कीजिए फुर्सत में। अभी डेरा तो आपको दे लूं। अरे कोई है।" दो-चार शागिर्द दौड़े। नवाब ने राजा साहब के और उनके आदमियों के ठहरने का मुनासिब प्रबन्ध करने का उन्हें हुक्म दिया। फिर कहा—

"अब कहिए।"

"क्या कहूं, आप भी न जाने क्या समझेंगे सुन कर। इधर आप फंसे हैं शादी के हंगामे में।"

"तो म्यां मदद करो, लिल्लाह तुम्हारी भी तो भतीजी है शबनम।"

"लेकिन सुनिए तो ?"

"सुन रहा हूं साहब, फर्माइए भी कुछ।"

"मैंने एक नागौरी बैलों की जोड़ी खरीदी थी। निहायत नायाब। अभी परसों वह खुल गई।"

"खुल गई? चलो खैर सल्ला, बस यही बात थी?"

"जी हाँ!"

"तो भाई, अब बारात की खातिर-तवाजा में मेरा हाथ बंटाइए। बस तुम आ गए तो तसल्ली हो गई। अब जरा साँस लेने की फुर्सत मिलेगी।"

"लेकिन नवाब साहब, मेरी जोड़ी का क्या होगा?"

"कैसी जोड़ी?"

"नागौरी बैलों की, परसों ही खुल गई है।"

"अरे यार, राजा साहब! तुम भी क्या बोदी बातें करते हो? खुल गई तो खुल जाने दो, मेरे यहाँ ग्यारह जोड़ी नागौरी बैलों की हैं, एक से बढ़ कर एक। पसन्द कर लो, और जो पसन्द हो खोल ले जाओ।"

"तो हुक्म हो, मैं ज़रा देख लूं?"

"देख लो भाई, पूछना क्या है, मगर जाना होगा बारात बिदा होने के बाद।"

"बारात कब विदा हो रही है?"

"अभी तो कुछ ऐसा इरादा नहीं है।"

"तो तब तक मुझे यहीं ठहरना पड़ेगा?"

"कमाल का सवाल है आपका राजा साहब! एक तो आए ही अब, और तिस पर उखड़ी-उखड़ी बातें करते हो।"

"लेकिन नवाब साहब, मैं ठहर तो न सकूंगा।"

"लाहौल विलाकू, म्याँ राजा साहब, लड़ने का इरादा हो तो वह कहो।"

"नहीं, नवाब साहब, लेकिन मुझे और जरूरी काम हैं।"

"वे सब काम जब यहाँ से लौटें तब अंजाम दें।"

"लेकिन मैं लौटूंगा कब?"

"बारात विदा हो ले—उसके बाद।"

"आखिर बारात विदा कब होगी ?"

"देखा जायगा, अभी कोई इरादा नहीं है।"

"और मुझे भी तब तक रहना पड़ेगा ?"

"यकीनन्। और काम में मेरा हाथ बंटाना पड़ेगा। अकेला हूँ भाई-जान, यह भी तो सोचो, इज्ज़त का मामला है। लड़की की शादी है। हँसी-खेल नहीं।"

नवाब की आँखों में पानी भर आया। राजा साहब से जवाब देते नहीं बना। वे चुपचाप नवाब की ओर ताकते बैठे देखते रहे।

: २६ :

बेटी की विदाई

राजा हो, रंक हो, डाकू हो, चोर हो, हिन्दू हो, मुसलमान हो, बेटी की बिदाई सब की आँखें तर कर देती है। बारात को आए अब पूरे छह महीने हो चुके थे, और आखिर नवाब इकरामुल्ला खां को बारात विदा करनी पड़ी। जो नवाब इकरामुल्ला बात-बात में शेर की तरह दहाड़ते थे, हाथी के समान जिनका शरीर था—आज वे बात-बात में हकला रहे थे। अपने ही हुक्म वे भूल जाते थे। एक बार कुछ कहते और दूसरी बार अपनी ही बात का काट कर देते थे। आंखें उनकी गीली हो रही थीं—आवाज गले में अटकती थी। वे चाहते थे—उनके दिल की यह हालत किसी पर प्रकट न हो। पर उन्हें जो देखता—वही जान जाता, कि यह एक बाप है, जिसकी बेटी आज बिदा हो रही है।

और बारात बिदा हुई। दहेज का सामान छड़कों और बहलों में लदा। खाने-पीने की जिन्सें, मिठाइयां और पकवान बहंगियों में चले। बाराती हाथियों, घोड़ों, रथों, फीनसों और पालकियों पर। यूसुफ मियां उसी सुरंग घोड़ी पर, और दुलहिन दुबुर्जी रथ पर। जिसकी सारी

सजावट लाल और साज सारा चांदी का था। रथ में वही राजा रनवीर-सिंह की नागौरी जोड़ी जुती थी। राजा साहब खड़े टुकुर-टुकुर देख रहे थे। छकड़ों और दर्जनों बहंगियों और बहलों पर दहेज का सामान था। बर्तन, कपड़े और जेवर—बड़े-बड़े देग, पलंग, अंग्रेजी किस्म के फर्नीचर। विलायती चीनी के बर्तन और भांति-भांति के खिलौने तथा देशी और विलायती आशाइश के सामान, दरी-फर्श, गलीचे और जाजिमें। पांच घोड़े, एक हाथी, दो रथ, चार कहार, एक महरी और मिस रोज। बस, ये सब जिन्स दहेज में शरीक कर लीजिए। नवाब जबर्दस्त खां इस वक्त दूल्हा के बाप बने हुए थे—नवाब ने उन्हें एक हाथी दिया। और उनकी नटनी गुलाब जान को एक नफीस फीनस गंगा जमुनी काम कीं। सब बारातियोंको एक-एक दुशाला और एक-एक अशर्फी। डेढ़ मील तक बारात कीं लाइन लगी थी। आगे-आगे ढोल-दमामे बजते जा रहे थे—और अंग्रेजी फौज का बैण्ड अपनी धुन बजा रहा था। बहुत मना करने पर भी नवाब इकरामुल्ला खां दूल्हे की रकाब के साथ दुलहिन के रथ की साया में पैदल मुजफ्फरनगर की सीमा तक आए। उनकी कमर में एक दुशाला लिपटा था, और उनकी आंखों से आंसुओं की धार बह रही थी। उनकी दशा उस हाथी के समान थी—जिसकी हथिनी मर गई हो। बेटी के ऊपर वे रुपयों और अशर्फियों की वर्षा कर रहे थे, और हजारों कंगले बखेर लूट रहे थे। यह चोरों के शहनशाह की बेटी की बिदाई थी। यह एक ऐसी बारात थी—कि जैसी न किसी ने देखी थी न सुनी थी। मुजफ्फर-नगर का सिवाना आ गया। यूसुफ मियां घोड़ी से कूद कर नवाब के बगलगीर हुए। बिदाई का सलाम कहा। नवाब ने दामाद को छाती से लगा कर अपने गले से पन्नों का कण्ठा निकाल कर दामाद के गले में डाल कर भरे हुए कण्ठ से कहा—"खुदा हाफिज।" और मुँह मोड़ लिया। आंसुओं से उनकी आंखें अंधी हो रही थीं। चलती बार बेटी को देखने की उनमें ताब न थी। शागिर्द पेशा लोगों ने नवाब को हाथों हाथ सम्भाला। हाथी पर बैठाया और घर ले आए। जहाँ सब जगह

सूना ही सूना था। नवाब की प्यारी बेटी शबनम, जो उनकी बेगम मरने के बाद उनकी आंख का नूर बनी थी, अपने घर चली गई थी—हमेशा के लिये।

: २७ :

शाही पालकी

जिस दिन नवाब मुजफ्फरनगर की बेटी की बारात विदा हो रही थी, उसी दिन दिल्ली में तीसरे पहर एक पालकी चांदनी चौक से हो कर लालकिले की ओर जा रही थी। पालकी बहुमूल्य कमख्वाब और जरी के पर्दों से ढकी हुई थी। आठ कहार उसे कंधों पर उठाये थे और सोलह तातारी बांदियां नंगी तलवारें लिए उसके गिर्द चल रही थीं। उनके पीछे चालीस सवारों का एक दस्ता था, जिसका अफसर एक कुम्मेत अरबी घोड़े पर चढ़ा हुआ था। उसकी जरबफ्त की बहुमूल्य पोशाक पर कमर में नाजुक तलवार लटक रही थी, जिसकी मूठ पर गंगा जमुनी काम हो रहा था। उसकी काली घनी दाढ़ी के बीच, अंगारे की तरह दहकते चेहरे में मशाल की तरह जलती हुई आंखें चमक रही थीं, जिन्हें वह चारों तरफ घुमाता हुआ, अकड़ कर, किन्तु खूब सावधानी से पालकी के पीछे-पीछे जा रहा था।

तब चांदनी चौक की सड़कें आज की जैसी तारकोल बिछी हुई आईने की तरह चमचमाती न थीं, न मोटरों की घों-घों, पों-पों और सर्राटे बन्द दौड़ थी। हाथी, घोड़े, पालकी और नागौरी बैलों की जोड़ी से ठुमकती हुई बहलियां एक अजब बांकी अदा से उछला करती थीं।

चांदनी चौक में जिस स्थान पर घण्टाघर था, वहां तब एक बड़ा-सा हौज था। जो चांदनी चौक की नहर से मिल गया था, और अब जहां कम्पनी बाग में कमेटी की संगीन इमारत खड़ी है, वहां एक बड़ी भारी किन्तु खस्ताहाल सराय थी, जिसकी बुर्जियां टूट गई थीं, जहां अनगिनत

खच्चर, टट्टू, बैलगाड़ियां और परदेशी मुसाफिर बेतरतीबी से पेड़ों के नीचे या बेमरम्मत कोठरियों में भरे हुए थे।

सराय के टूटे किन्तु संगीन फाटक पर देशी-विदेशी आदमियों का जमघट लगा था।

पालकी अवश्य ही कहीं दूर से आ रही थी। कहार लोगों का दम फूल रहा था और पांव लड़खड़ा रहे थे। पीछे से अफसर तेज चलने की ताकीद कर रहा था, मगर ऐसा मालूम होता था, कि अब तेज चलना असम्भव है।

कहारों में एक बूढ़ा कहार था, उसका हाल बहुत ही बुरा हो रहा था। कुछ कदम चल कर वह ठोकर खा कर गिर पड़ा। पालकी रुक गई।

तातारी बांदियां झिझक कर खड़ी हो गईं। अफसर ने घोड़ा बढ़ाया। बूढ़ा अभी सम्हला न था, चाबुक सपाक से उसकी गर्दन और कनपटी की चमड़ी उधेड़ गया। साथ ही बिजली की कड़क की तरह उसके कान में शब्द पड़े—"उठ, उठ ओ दोजख के कुत्ते! देर हो रही है।"

कहार ने उठने की चेष्टा की, पर उठ न सका। वह गिर गया। गिरते ही दस-बीस, पच्चीस-पचास चाबुक तड़ातड़ पड़े, खून का फव्वारा छूटा और कहार का जीवन-प्रदीप बुझ गया!!

लाश को पैर की ठोकर से ढकेल कर अफसर ने खूनी आंखें भीड़ पर दौड़ाईं। एक गठीला गौरवपूर्ण युवक मैले और फटे वस्त्र पहने भीड़ में सब से आगे खड़ा था। मुश्किल से रेखें भीगी होंगी। अफसर ने डपट कर उसे पालकी उठाने का हुक्म दिया। युवक आगे बढ़ा। दूसरे ही क्षण सपाक से एक चाबुक उसकी पीठ पर पड़ा और साथ ही ये शब्द—"साला, जल्दी।"

युवक ने क्रुद्ध स्वर में कहा—"जनाब! हुक्म बजा लाता हूँ, मगर जबान सम्हाल कर······।"

दस-बीस चाबुक खा कर युवक वहीं तड़प कर गिर गया। उसकी नाक और मुँह से खून का फव्वारा बह चला। अफसर ने और एक आदमी को कन्धा लगाने का हुक्म दिया। पालकी फिर अपनी राह लगी।

: २८ :

बादशाह के रूबरू

चिराग जल चुके थे। दीवाने-खास में हज़ारा फानूस की तमाम काफूरी मोमबत्तियां जल रही थीं। जमना की लहरों से धुल कर पूर्वी हवा झरोखों से छन छन कर आ रही थी। खास-खास दरबारी बादशाह सलामत के तशरीफ लाने की इंतजारी में अदब से खड़े थे। सामने एक चौकी पर वही युवक लहूलुहान पड़ा था। अन्तःपुर के झरोखों से परिचारिकाओं के कण्ठ-स्वर ने कहा—"होशियार, अदब कायदा निगाहदार," यह शब्द स्वर चोबदारों ने दुहराया—"होशियार अदब कायदा निगाहदार।" उमराव मण्डल और मन्त्रिमण्डल ज़मीन तक सिर झुका कर खड़ा हो गया। सम्पूर्ण दरबार में निस्तब्धता छा गई। धीरे-धीरे वृद्ध सम्राट बहादुरशाह दो सुन्दरियों के कन्धे का सहारा लिए भीतरी ड्योढ़ी से निकल कर सिंहासन पर आ बैठे। चार बांदियां मोरछल ले कर बगल में आ खड़ी हुईं। चोबदार ने पुकारा—"जिल्ले इलाही बरामद कर्दं मुजरा अदब से।"

यह सुनते ही एक उमराव सहमा हुआ अपने स्थान से आगे बढ़ा और सम्राट् के सामने जा कर उसने तीन बार झुक कर सलाम किया। चोबदार ने उसके रुतबे और शान के अनुसार कुछ शब्द कह कर सम्राट् का ध्यान उधर आर्कषित किया। इसी प्रकार सभी सरदारों ने प्रणाम किया।

इसके बाद बादशाह ने वजीर को संकेत किया। वजीर ने नौजवान से कहा—"अय नौजवान! तुम्हारे हालात बादशाह सलामत गोकि सुन

चुके हैं. मगर तुम्हारी खास जबान से सुनना चाहते हैं। तमाम हालात मुफस्सिल में बयान करो।"

युवक ने जमीन में लोट-लोट कर सब मामला पेश किया। बादशाह ने फर्माया—"सब हरूफ-बहरूफ सही है। कहां है वह जालिम जमीर ?"

वही खूंख्वार अफसर जमीर तख्त के सामने आ कर घुटनों के बल गिर गया।

बादशाह ने फर्माया—"जमीर ! तुझे कुछ कहना है ?"

"खुदावन्द ! रहम ! रहम !"

बादशाह ने हुक्म दिया—"इस जालिम को सीधा खड़ा करो ! मगर ठहरो, मैं इस पर भी रहम किया चाहता हूँ। इसे नौकरी से बरखास्त किया जाता है और इसका दर्जा इस नौजवान को अता किया जाता है। इसकी तमाम जायदाद जब्त की जाती है और वह उस कहार के घर वालों को बख्श दी जाती है।"

हुक्म देकर बादशाह उठे। तुरन्त चार बांदियों ने सहारा दिया। दरबारी लोग जमीन तक झुक गये। बादशाह ने युवक के निकट आकर कहा—"आराम होने तक शाहा महलों में रहने की तुम्हें इजाजत बख्शी जाती है और शाही हकीम तुम्हारे इलाज के लिए मुकर्रर किए जाते हैं।"

युवक ने बादशाह की कदमबोसी की और पल्ला चूमा। बादशाह धीरे-धीरे अन्तःपुर में प्रवेश कर गये।

: २६ :

शाहजादी के हुजूर में

अन्तःपुर के उन झरोखों के भीतर जहां किसी भी मर्द की परछाईं पहुँचनी सम्भव न थी, एक बहुमूल्य मखमली गद्दे पर वह घायल युवक पड़ा अपने प्रारब्ध के विकास की बात सोच रहा था। एक ही दुखदाई घटना ने, जिसे शायद ही कोई निमन्त्रित करे, उसके भाग्य का पासा

पलट दिया था। वह सोच रहा था, क्या सचमुच मेरे ये फटे चिथड़े, वह टूटा छप्पर का घर, वह माता का चक्की पीसना, सभी बदल जाएगा। वह जागते ही जागते स्वप्न देखने लगा—एक धवल अट्टालिका, दास-दासी, घोड़े-हाथी, सेना और न जाने क्या-क्या ?

सभी विचारधाराओं के ऊपर उसे एक नवीन विचारधारा मूर्च्छित कर रही थी—वह कौन है ? वही क्या इस सब भाग्य परिवर्तन की कुञ्जी है। पालकी के उस दुर्भेद्य पर्दे के भीतर..........। वह सोच ही रहा था।

हठात् उसकी विचारधारा को धक्का देते हुए कक्ष का पर्दा हटाकर दो दासियों के साथ एक खोजे ने प्रवेश किया। दासियों के हाथ में भोजन की सामग्री थी। स्वप्न सुख की तरह कहीं वह राज भोग लुप्त न हो जाय, घायल युवक इस भय से लपक कर उठा। खोजे ने कहा—"खाना खा लो, और खुदा का शुक्र करो। हुजूर शाहज़ादी तुम पर बहुत खुश हैं और वह जल्द तुम्हें देखने को तशरीफ लाने वाली हैं।"

चन्द्रमा की स्निग्ध ज्योत्स्ना की तरह शाहज़ादी ने कक्ष में प्रवेश किया। दो अल्पवयस्का दासियां परछाइं की तरह उनके पीछे थीं। शुभ्र महीन रेशमी परिधान पर जरदोजी और सलमे का काम निहायत फसाहत से हो रहा था। वह अस्फुटित कुन्दकली के समान, कोमलता और माधुर्य की मूर्तिमयी रेखा के समान, भारत के अंतिम सम्राट् की पौत्री शाहज़ादी गुलबानू थी।

केवल क्षण भर ही वह युवक उस अति दुर्लभ मुख की ओर देखने का साहस कर सका। उसने उठने की चेष्टा की, परन्तु मानों उसके शरीर का सत निकल गया था। वह गिर पड़ा, गिरे ही गिरे उसने जरा बढ़ कर अपना मस्तक शाहज़ादी के पैरों पर रख दिया। शाहज़ादी के जूतों में लगे हीरे युवक के मस्तक पर मुकुट की तरह दिप उठे।

शाहज़ादी ने मानों फूल बखेर दिये। उसने कहा, "कल के हादसे का मुझे बहुत रंज है, पर मैं समझती हूँ अब तुम बहुत अच्छे हो। मैंने पालकी

से तमाम माजरा देखा था, मगर कर क्या सकती थी ? मैंने आते ही दादा-जान से शिकायत कर दी थी।"

युवक ने शैया से जरा उठकर शाहज़ादी का आंचल आंखों से लगाया, और बारम्बार जमीन चूम कर कहा, "हुजूर, खुदाबन्द शाहज़ादी, कल अगर हुजूर की पालकी की खाक गुलाम को न नसीब होती तो आज यह दिन कहां। जहांपनाह ने मुझ नाचीज गुलाम को निहाल कर दिया है। तावेदार ता-उम्र इन कदमों का नमक हलाल रहेगा।"

शाहजादी कुछ न कह कर धीरे-धीरे चली गयी, परन्तु उसके सांस की सुगन्ध वहां भर गई थी, और उसी के प्रभाव से युवक के घाव जैसे भर गये। उस स्थान को, जहां शाहज़ादी के कमल-पद छू गये थे, अपनी छाती से लगा कर वह बदहवास पड़ा रहा। वह मूर्ति चाहे क्षण भर ही देख सका था, पर वह उसके रोम-रोम से रम गई थी। पर कौन-सा ऐसा मर्द-बच्चा था, जो फिर उसे एक वार देख लेने का हौसला भी कर सकता।

: ३० :

मेहतर को भात

आजकल जहां हापुड़ का शानदार रेलवे स्टेशन बना है, वहां से उत्तर-पश्चिम कोई डेढ़ कोस के अन्तर पर मुक्तेसर नामक एक गांव है। इस समय यह गांव किस कदर खराब खस्ता हो गया है। बहुत घर टूट फूट कर खण्डहर हो गये हैं, और वहां के बहुत से कदीम निवासी शहरों में आ बसे हैं, जहां मेहनत-मजूरी करके वे पेट पालते हैं। परन्तु उन दिनों यह गांव बहुत खुशहाल था। वहां के चौधरी रूपराम एक नामी-गिरामी आदमी थे। वे बड़े डीलडौल के कद्दावर आदमी थे। और चेहरे पर घनी दाढ़ी रखते थे तथा ढाल-तलवार बांध कर बाहर निकलते थे। उनके आसपास जाटों और रुहेले मुसलमानों के गांव थे। जिनसे आये दिन

लट्ठबाजी होती रहती थी। नील के गोरों से भी बहुधा ठन जाती थी। हापुड़ के जबर्दस्त खां भी उनके रकीब ही थे। लट्ठबाजी उनसे भी बहुधा उनकी होती रहती थी। परन्तु चौधरी रूपराम ऐसे ठस्से के आदमी थे—कि झुकते किसी से न थे। सभी से मोर्चा लेते थे—और सभी को नीचा दिखाते थे। मेल-जोल उन का यदि किसी से था तो मुक्तेसर के चौधरी-सांवलसिंह से था; जो अपनी हस्ती में एक ही बिगड़ैल आदमी थे। पर ईश्वर की यह माया देखिये—कि जहां इन दोनों की दुनिया भर से ठनी रहती थी—वहां आपस में दोनों दोस्त बने हुए थे। दुनिया से उनकी दुश्मनी का एक कारण सांवलसिंह की दोस्ती भी थी।

चौधरी रूपराम फिरंगियों के कट्टर शत्रु थे। और हर बार माल-गुजारी के मौके पर इनकी कम्पनी के बरकन्दाजों से तकरार होती रहती थी। पर चौधरी रूपराम मुक़दमेबाजी में विश्वास नहीं रखते थे। वे तो डंडे के जोर के कायल थे और उनके पास हर बीमारी का इलाज डंडा था। डंडा उनका करारा पड़ता था—यह बात सभी लोग जानते थे—इसलिये उन से दबते थे। यहां तक कि कम्पनी बहादुर के कारिन्दे जो बड़े-बड़े जमींदारों को गिनते ही न थे—कि वे किस खेत की मूली हैं, रूपराम के नाम से घबराते थे और उनसे दब कर ही रहते थे। तहसीलदार हो या अमीन. जब कोई सरकारी तहवील वसूल करने गांव में पहुँचता—तो परवाना देखते ही चौधरी भड़क उठते, कहते—आ गये बरखुरदार, बहुत अच्छी साइत में आये हो—लेकिन वह नीम का दरख्त भी देख रहे हो ? बस तुम्हारे जैसे कम ज़र्फ लोगों ही के लिये यह दरख्त है। और इसके बाद ही वे एक हांक लगाते—कोई है ? और दो चार लठियल बड़े-बड़े लठ लेकर आ हाजिर होते—"क्या हुक्म है सरकार ?"

"उल्टा लटका दे साले को, और लगा दे मिर्चों का तोबड़ा।" न जाने कितने तहसीलदार, अमीन और सरकारी अमले इस तरह नीम से उल्टे लटका दिये गये थे। और अब यह हाल था कि किसी सरकारी छोटे-बड़े अफसर का चौधरी रूपराम के गांव में आना आसान काम न था।

यह गांव क़दीम से शाहज़ादे के पानदान के खर्चे का था। जब हजरत जिल्ले सुबहानी बादशाह बहादुरशाह—शाहजादे थे—तभी से यह गांव उन्हें दिया गया था और इसकी मालगुजारी वही लेते थे। गांव के चौधरी अंग्रेजों का अमल दरामद होने—तथा बादशाह के सारे अख्तियारात लालकिले तक सीमित होने पर भी अब तक मालगुजारी बादशाह सलामत को ही अदा करते थे। यद्यपि हर साल कम्पनी के अमलदार भी रो पीट कर अपनी मालगुजारी वसूल ले जाते थे—पर चौधरी उसे लूट-खसोट कहते और हर बार उसका विरोध करते। लेकिन बादशाह को चौथ अवश्य देते थे। अपनी मुटमर्दी, हिम्मत अमली और धांधलेबाजी से अभी तक वे कम्पनी की कानूनी चपेट से अपनी जमींदारी बचाये हुए थे और बादशाह सलामत भी उन्हें बखूबी जानते थे।

हर साल चैत-बैशाख में चौधरी चौथ का रुपया लेकर धूमधाम के साथ डंका बजाते हुए दिल्ली आते और बादशाह को चौथ का रुपया तथा नजर मुजरा देते थे। बादशाह सलामत भी उन्हें शाही मिहमान के तौर पर दिल्ली में आठ दिन ठहराते, और सिरोपाव देकर उन्हें विदा करते थे। अंग्रेज अधिकारी यह बात जानते थे—पर उनका तौर-तरीका ही कुछ ऐसा होता था कि वे उनकी गिरफ्त में न आ पाते थे।

उन दिनों यह एक आम दस्तूर था कि जब लोग इस किस्म की खास यात्रा करते थे, तो दस-बीस पचास आदमियों के गिरोह में ही यात्रा करते थे, क्योंकि चोरों और लुटेरों से लुटने का सदैव ही भय रहता था। प्रायः ऐसी यात्रा-मण्डलियों के साथ आगे-आगे बाजा बजता चलता था, जो तासे या ढोल-दमामे के रूप में होता था।

इस साल भी चौधरी चौथ की अदायगी के लिये धूमधाम से दिल्ली की ओर चले। साथ में कोई चालीस आदमियों का काफला था। लोग ऊंटों पर, घोड़ों पर और रथों पर थे। अभी मई मास आरम्भ ही हुआ था। गर्म अफवाहें भीतर ही भीतर फैल रही थीं कि अंग्रेजों से लड़ाई होगी। पर कब और कहाँ, यह कोई नहीं जानता था। अंग्रेज लोग भी

चौकन्ने रहते थे तथा संदेहयुक्त आदमियों को गिरफ्तार कर लेते थे। परंतु चौधरी. के काफले में संदेह की कोई बात न थी। वे धूमधाम से बाजा बजाते हुए --चौथ का रुपया लिये शहादरे तक आ पहुँचे।

शहादरे में भंगियों के चौधरी छुट्टन की बेटी का ब्याह था, और उसी दिन उसके यहाँ बारात आई थी, जिस दिन चौधरी रूपराम का काफला शहादरे आकर पहुँचा, संयोग ऐसा हुआ कि छुट्टन मेहतर के यहाँ बारात तो आ पहुँची थी—पर भात नहीं आया था। भात आने वाला था हापुड़ ही से। आम दस्तूर था -- कि जब तक भात न आ जाता था लड़की का ब्याह नहीं हो सकता था। भात लाने का हक लड़की-लड़के के मामा को होता है। भात लाने वाला भातई कहाता है। वह अमीर हो या गरीब, अपनी श्रद्धा के अनुसार भात लाता है। भात यदि लड़की का होता है तो उसमें बिछुए और चूड़ा हाथी दांत का होता है—जो सुहाग का जबर्दस्त चिन्ह होता है। लड़के वाले के भात में भातई मौर और जूते लाता है। यह आम दस्तूर है, और भात का तथा भताई का महत्व हिन्दुओं के विवाह में इतना महत्वपूर्ण होता है कि लड़की की शादी बाप के बिना तो हो सकती है—पर मामा के बिना नहीं हो सकती।

चूंकि छुट्टन मेहतर का भात नहीं आया था, इसलिए ब्याह के सभी नेग-जोग रुके हुए थे—और भातई की वहां बड़ी बेकरारी से इन्तजारी हो रही थी। लोग मुंह उठा-उठा कर हापुड़ की सड़क की ओर आश भरी दृष्टि से देख रहे थे। इधर यह प्रतीक्षा हो ही रही थी कि उन्होंने देखा बाजा बजाती हुई एक टोली धूमधाम से हापुड़ की ओर से चली आ रही है। वास्तव में यह रूपराम चौधरी का काफला था—पर छुट्टन मेहतर ने समझा कि भात आ रहा है। लोग उत्साह से उछल पड़े। कहने लगे लो यारो भात आ गया। छुट्टन आगे बढ़कर भातई की अगवानी को गाजे बाजे के साथ आया। चौधरी रूपराम ने जो यह आवभगत देखी तो समझा—कोई ब्याह वाला है—उनका सत्कार कर रहा है। उन्हें ज्ञात

हुआ कि ब्याह मेहतर के घर है; तो उन्होंने हंस कर कहा—"क्या हर्ज है, जब वह हमारी ऐसी आवभगत से मिहमान-नवाजी कर रहा है; तो हमें उचित है, हम भी कबूल करें।" उन्होंने सवारी रोक दी। और छुट्टन ने सबको डेरा दिया।

यह एक आम दस्तूर है कि जब तक भात नहीं दे दिया जाता—तब तक भातई को खाना नहीं खिलाया जाता। अतः चौधरी की पार्टी की आवभगत तो बड़ी धूमधाम से हुई थी—पर उनके खाने-पीने की अभी कोई बात नहीं चली। इसके लिये छुट्टन क्या इन्तजाम करेगा—चौधरी रूपराम यह जानना चाहते थे—क्योंकि ऐसे अवसर पर अपनी ओर से खाना मिहमानी के दस्तूर के विरुद्ध होता था। उधर छुट्टन मेहतर भी हैरान था कि क्या कारण है कि भात नहीं चढ़ाया जा रहा है—और व्यर्थ देर हो रही है। सारे नेग-टेहले रुके पड़े हैं।

परन्तु शीघ्र ही उसका भ्रम दूर हो गया और जब उसे ज्ञात हुआ—कि ये भातई लोग नहीं हैं—चौधरी रूपराम हैं। तो उसका सिर चकरा गया। वह हाथ बांधे दौड़ा-दौड़ा चौधरी के पास आया और उनके पैरों में लोटकर कहने लगा—"बड़ी चूक हुई सरकार; बड़ा गजब हो गया, मेरा कुसूर माफ हो, मैंने बड़ी गलती की।"

और जब चौधरी को असल बात मालूम हुई तो वे प्रथम तो बड़े अचकचाये। पीछे खिलखिला कर हंस पड़े। उन्होंने कहा—"भइ छुट्टन ! भूलचूक जो होनी थी हो गई, कुछ परवाह नहीं, अब तो जो हुआ वही ठीक है। हम यकीनन तेरे भातई ही हैं। भात ले।" और इतना कहकर जो रुपया वे बादशाह की चौथ का बादशाह को अदा करने लाए थे—तथा बादशाह की नजर करने और भी जो बहुत सा लवाजमा लाए थे—सब भात में दे दिया। तमाम शहादरा में मेहतर के भात का शोर मच गया।

दूसरे दिन चौधरी जमुना पार कर दिल्ली पहुंचे। सराय में डेरा किया, बादशाह से इत्तिला हुई। और बादशाह की ओर से शाही परवाना

शाह मानक चन्द के नाम जारी हो गया, और वहां से दाना-पानी-आटा-घी-राशन-खाने पीने का सब सामान सराय में बदस्तूर पहुँच गया। किन्तु जब चौधरी बादशाह के सामने पहुँचे तो हाथ जोड़कर अर्ज की—"जहाँ-पनाह ! खता माफ हो। शाही चौथ मालगुजारी का जो रुपया और शाही नजराने का जिस कदर लवाजमा हम घर से लेकर चले थे—वह रास्ते में खर्च हो गया। कुछ ऐसा हीं बानक बन गया। अब हुक्म हो और मोहलत अता हो कि घर से रुपया और नजराना मंगाया जाय।"

बादशाह ने पूछा—"शाही रकम रास्ते में कैसे खर्च हो गई, क्या डाका पड़ा या और कोई हंगामा उठ खड़ा हुआ ? खुलासा हाल अर्ज करो।"

इस पर चौधरी ने व्योरेवार मेहतर को भात देने का सब हाल सुना दिया। सुनकर बादशाह कुछ देर खामोश रहे फिर आहिस्ता से बोले—"चौधरी, तुम जिस वक्त शाही खिराज लेकर और हमें अदा करने का क़स्द करके घर से चले तभी शाही रक़म मा बदौलत को सरकार से वसूल हो चुकी। अब रही छुट्टन मेहतर के भात की अदायगी, यह तुम्हारी ओर से नहीं, हमारी ओर समझी जायगी। और छुट्टन मेहतर को फरमान भेज दिया जायगा, कि भात चौधरी ने नहीं—हमने दिया है।"

दरबार के लोग 'मरहबा-मरहबा' कहने लगे। छुट्टन के पास शाही फर्मान भेज दिया गया कि तुम्हारी बेटी के ब्याह में बादशाह सलामत ने भात दिया है—और चौधरी रूपराम को एक हफ्ते दिल्ली में शाही मिहमान के तौर पर ठहराने और उसकी शाही खातिरदारी करने का हुक्म हुआ।

: ३१ :

मुग़ल तख्त का भाग्य

मेहतर की बेटी के भात ने बादशाह की गरीब-परवरी, उदारता

ग्रौर प्रेम में चार चांद लगा दिये। दिल्ली में यह भात सर्वत्र चर्चा का विषय बन गया। बादशाह के प्रति लोगों का प्रेम ग्रौर ग्रादर का भाव उमड़ ग्राया। इसका एक कारण यह भी था कि हाल ही में मिर्जा फरूख की मृत्यु हो गई थी ग्रौर बादशाह गहरे रंज में थे। यद्यपि मिर्जा फरूख को ग्रंग्रेजों ने बादशाह की मर्जी के विरुद्ध युवराज घोषित किया था—ग्रौर मिर्जा फरूख बादशाह की ग्रपेक्षा ग्रंग्रेजी प्रभाव में ही ग्रधिक था—परन्तु ग्रन्ततः वह बादशाह का बेटा ही तो था। ग्रभी कुछ दिन पूर्व बादशाह का सुयोग्य ग्रौर सब से बड़े शाहज़ादा दाराबख्त की मृत्यु हो चुकी थी। ग्रब बुढ़ापे में यह दूसरा दाग लगा। प्रजा के मन में बादशाह के प्रति सहानुभूति का एक यह भी कारण था। ग्रपने दुःख-दर्द को एक ग्रोर रख कर उसने जो भात की घटना को ग्रपने द्वारा स्वीकार कर लिया था, उससे सर्वत्र बादशाह की प्रशंसा हो रही थी।

यह घटना सन् १८५७ के ग्रक्टूबर मास में हुई ग्रौर जिस दिन बादशाह ने भरे दर्बार में भंगी को भात देने की घोषणा की थी उसके दूसरे ही दिन दिल्ली के ग्रंग्रेज रेजीडेन्ट सर टामस मैन्टकाफ बादशाह से मुलाकात करने ग्रौर युवराज की मृत्यु पर सहानुभूति प्रकट करने ग्राने वाले थे। ग्रंग्रेजी रेजीडेन्ट की ग्रब बादशाह से जो भेंट होती थी वह पुराने ठाठबाट ग्रौर दर्बारी ग्रदब से सर्वथा विपरीत होती थी। ग्रब रेजीडेन्ट न बादशाह को नजर पेश करता था न खड़ा रह कर बात करता था। बादशाह के तख्त के दाहिनी ग्रोर उसकी सुनहरी कुर्सी लगती थी।

जैसे उस दिन दिल्ली में इस बात की चर्चा गर्मागर्म थी, वैसे ही ग्रगले दिन होने वाली ग्रंग्रेज रेजीडेन्ट की भेंट की भी गर्मागर्म चर्चा थी क्योंकि वह भेंट कहने भर को केवल समवेदना प्रकट करने के लिए थी—वास्तव में इस भेंट में भावी मुगल-राज्य के उत्तराधिकारी की घोषणा की भी ग्राशा लोग करते थे।

यह प्रकट था कि ग्रब ग्रंग्रेज खानदाने-तैमूरिया के रहे-सहे बादशाही नाम को भी मिटाने पर तुले हुए थे ग्रौर दिल्ली में यह एक ग्राम ग्रफ-

वाह थी। अतः इस मुलाकात के लिये बादशाह तथा दर्बारी और नगर-निवासी सभी उत्सुक थे और इस भात की घटना ने बादशाह के प्रति एक नया प्रीतिभाव जनता के मन में उत्पन्न कर दिया था।

रेजीडेन्ट ने अत्यन्त सादगी से लालकिले में आ कर बादशाह से भेंट की। यह भेंट कोई दर्बारी भेंट न थी। बिल्कुल व्यक्तिगत और साधारण भेंट थी। औपचारिक सहानुभूति प्रदर्शन हो चुकने के बाद बादशाह ने कहा—"अब मेरे नौ बेटे हैं। जिनमें सब से ज्यादा होनहार और समझदार शाहजादा जवांबख्त है। यह महज मेरी ही राय नहीं, उसके उस्ताद और सब शहरी और दरबारियों की राय है। मैं उसी को अपना भावी उत्तराधिकारी और युवराज बनाना चाहता हूँ। और आशा करता हूँ कि कम्पनी की सरकार को इसमें कोई एतराज न होगा। खास कर इसलिए भी कि मेरे आठों बेटे इसी राय से सहमत हैं। यह उन सब का दस्तखती इकरारनामा है।"

इतना कह कर बादशाह ने आठों शाहजादों का दस्तखती इकरारनामा रेजीडेन्ट के हाथ में दे दिया। इकरारनामे पर एक सरसरी नजर डाल कर सर मेन्टकाफ ने धीरे से कहा—'आपकी मर्जी के मुताबिक काम करने पर मुझे खुशी होतीं, मगर, मुश्किल यह है कि यह एक खास महत्व का मामला है—अतः जनाब गवर्नर जनरल बहादुर ने इसे अपने हाथ में ले लिया है और उन्होंने मुझे हुक्म दिया है, कि मैं आपको सूचित कर दूं कि कम्पनी की सरकार ने मिर्जा कोयास को भावी शाही उत्तराधिकारी मंजूर फरमाया है। शाहजादा मिर्जा कोयास के साथ कम्पनी सरकार के कुछ कौल व इकरार भी हो चुके हैं, और उन्हीं के आधार पर सरकार ने उन्हें उत्तराधिकारी बनाया है।"

"लेकिन ये कौल-करार कैसे हैं?" बादशाह ने बेचैनी से कहा।

'वे ये हैं," सर मैन्ट काफ ने एक कागज जेब से निकाल कर पढ़ा—उसमें लिखा था—"शाहजादा मिर्जा कोयास को नीचे लिखी शर्तों पर, जिन्हें शाहजादा ने एक अलहदा अहदनामे में स्वीकार किया—बाद-

शाह सलामत का वलीअहद और वारिस स्वीकार किया है—प्रथम यह, कि—उसे बादशाह न कहा जायगा—केवल शाहजादा कहा जायगा, दूसरे—उसे दिल्ली का किला खाली करना पड़ेगा। तीसरे—उसे सिर्फ पन्द्रह हजार रुपये माहवार गुजारे के लिये मिलेंगे।"

"लेकिन इस अहम मामले में कम्पनी की सरकार ने मेरी राय लेने की कोई जरूरत ही नहीं समझी?" बादशाह ने जरा गुस्से से कहा।

"अर्ज यह है कि कम्पनी की सरकार बादशाह को पैन्शन देती है और सल्तनत के मुकम्मिल पूरे अख्तियारात उसी को हैं। इसलिए कम्पनी की सरकार रियासती मामलों में सब से पहले अपनी सुविधा देखना चाहती है। लेकिन हुजूर की उम्र दराज हो, जब तक आप जिन्दा हैं, आपके अख्तियारात में कम्पनी की सरकार का इरादा दखल देने का नहीं है।"

"शायद इसीलिए कि मुगलों का यह चिराग अब बुझने ही वाला है।"

"आप हज़ार बरस जिन्दा रहें।"

"और अंग्रेज़ हमें हज़ार बरस तक पैन्शन देते रहेंगे। बखुदा क्या ही नेक इरादा है। खुदा खैर करे।"

"मैं किसी हालत में भी बादशाह सलामत के रूबरू बेअदबी नहीं कर सकता। अपना फर्ज मैंने पूरा कर दिया। अब रुखसत अर्ज है।"

"खुदा हाफिज।" बादशाह ने आहिस्ता से कहा और तख्त से उठ गए।

दर्बार बर्खास्त हुआ।

: ३२ :

लाहौर की छाती पर

धूर्त राजा जवाहरसिंह की भयानक मृत्यु और सिखों के घरेलू घोर

घृणा-पूर्ण संघर्ष के बड़े-बड़े दुष्परिणामों से इस सिखों के गृहयुद्ध का हो यह नतीजा हुआ कि सिख सैन्य की रणजीतसिंह के काल में जो अजेय शक्ति थी—वही अन्त में सिख साम्राज्य के विनाश का कारण बन गई और रणजीतसिंह के बाद सिख साम्राज्य एक पीढ़ी भी आगे न चल सका तथा लाहौर में अंग्रेज आ धमके।

मराठा संघ को नष्ट करने के बाद ही अंग्रेजों की दृष्टि अटक पर आ अटकी थी। अफगानिस्तान पर आक्रमण और सिन्ध पर अधिकार उसी दृष्टि का परिणाम था। पंजाब दिल्ली और अटक का मध्यवर्ती प्रांत था। जब तक रणजीतसिंह जिन्दा रहे, अंग्रेज सतलुज पार करने की हिम्मत न कर सके। इसके दो कारण थे—एक तो यह कि अंग्रेज रणजीतसिंह की अजेय सिख सेना से भयभीत थे—दूसरे रणजीतसिंह की विजयों ने अंग्रेजों के हृदयों में एक आतंक उत्पन्न कर दिया था, और आमतौर पर वे उसे भारत का नैपोलियन कहा करते थे। अंग्रेजों का रणजीतसिंह की ओर रुख न करने का यह कारण तो था ही, एक कारण यह भी था कि वे अफगानिस्तान और सिन्ध में उलझे हुए थे। इन दोनों देशों की विजय का केवल यही अर्थ न था कि वहाँ उनका प्रभाव फैल जाय और वे रूस के भालू के भय से सावधान न रहें—दूसरा एक महत्वपूर्ण राजनीतिक कारण यह भी था कि अफगानिस्तान और सिन्ध पर अधिकार होने से रणजीतसिंह का साम्राज्य भी उनके घेरे में आ जाता था। भाग्य उनका साथ दे रहा था—कि ज्योंही वे अफगानिस्तान और सिन्ध से फारिग हुए कि उस समय पंजाब केसरी रणजीतसिंह मर चुके थे—और पंजाब गृह-कलह में उलझ कर मुर्दार हो चुका था। बस यही समय था कि पंजाब को अधिकृत कर लिया जाय और फिर अफगानिस्तान तक उनका अखण्ड महाराज्य स्थापित हो जाय।

इस समय लार्ड हार्डिंज गवर्नर जनरल था। उसे युद्ध में ख्याति प्राप्त करने की सनक थी। उसकी महत्वाकांक्षाएँ अपरिसीम थीं। यद्यपि उसके गवर्नर जनरल होने से प्रथम ही सन् १८४४ में पंजाब की सीमाओं

पर सेना का जमाव अंग्रेज करने लगे थे और लुधियाना और फीरोजपुर में अपनी सैन्य-शक्ति अंग्रेजों ने दूनी कर दी थी। अब लार्ड हार्डिज ने अगला कदम बढ़ाया, और सिन्ध नदी पर तैयार हुई ६५ बड़ी किश्तियाँ, सेना को नदी पार उतारने के उद्देश्य से, फीरोजपुर में ला कर रखी गईं। अब वह निर्णायक क्षण आ पहुँचा था कि पंजाब अंग्रेजों का रहे या सिखों का? हार्डिज बड़ी बेसब्री से गर्मी आने तथा सतलज में पानी बढ़ने का इन्तजार कर रहा था, और साथ ही किसी ऐसे बहाने की भी खोज की जा रही थी कि जिसके आधार पर वह दुनिया के सामने अपने आक्रमण की सफ़ाई दे सके।

बहाना भी शीघ्र मिल गया। लाहौर का गृहयुद्ध चरमसीमा पर पहुँच चुका था। रानी जिन्दा और लालसिंह के सम्बन्ध गन्दे थे, और उनके विरुद्ध निरन्तर षड्यन्त्र और उपद्रव, नित-नये उत्पन्न होते ही रहते थे। अब समूची शक्ति खालसा सिपाहियों के हाथ जा चुकी थी, जिन्हें लालच दे कर कोई भी भड़का सकता था। रानी और लालसिंह उनसे भयभीत रहते थे। ऐसा ही पंजाब का वातावरण था, जब अंग्रेज सीमाप्रान्त पर अपनी अंधाधुन्ध सैनिक शक्ति बढ़ाए चले जा रहे थे। चालीस हजार सिपाही, सौ तोपें और नदी पार करने के लिए ५६ बड़ी किश्तियाँ सीमा पर पहुँच चुकी थीं। दुर्भाग्य देखिए, और तारीफ कीजिए इस मूर्खतापूर्ण राजनीति की—कि पंजाब की रक्षा के लिए नहीं—सिख शक्ति को नष्ट करने और उसे राजधानी से दूर भेजने के उद्देश्य से रानी जिन्दा के सलाहकार और मंत्री लालसिंह ने यह अच्छा अवसर समझा कि खालसा सेना को अंग्रेजों से सतलज के उस पार भिड़ा दिया जाय।

११ दिसम्बर १८४५ को सिख सेनाओं ने सतलज को फीरोजपुर के समीप पार किया। अंग्रेज वो बस मौके की ताक में थे ही; बस यह अच्छा बहाना मिल गया। गवर्नर जनरल सर हेनरी हार्डिज ने १३ दिसम्बर को पंजाब सरकार के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी और यह भी साथ ही घोषित कर दिया कि सतलज के बाएँ तट की सब भूमि अंग्रेजी

राज्य में मिला ली गई है।

फीरोजपुर से कुछ मील दूर मुदकी में पहली मुठभेड़ हुई। लालसिंह स्वयं सिखसेना की कमान पर था। वह न तो कोई उत्तम सेनापति ही था, न खालसा सेना उसका आदर ही करती थी। जिस दूरदर्शिता, धैर्य, प्रत्युत्पन्नमतित्व और शौर्य की एक सेनापति में आवश्यकता होती है, वह उसमें थी ही नहीं। अतः प्रथम हल्ले में अंग्रेज विचलित तो हुए, क्योंकि सिख सिपाहियों की वीरता असन्दिग्ध थी; परन्तु इस अनियन्त्रित सेना पर अंग्रेजों की नियन्त्रित सेना ने शीघ्र ही काबू पा लिया। अन्त में जीत अंग्रेजों की ही हुई। फिर भी वीर सिखों ने अंग्रेजों को गहरी हानि पहुँचाई। उनके छक्के छुड़ा दिए। उनके दो मेजर जनरल मारे गए और घायलों और मृतकों की संख्या एक हजार तक पहुँची। इसके पश्चात् खालसा सेना ने फीरोजपुर शहर में मोर्चा जमाया और २८ दिसम्बर को अंग्रेजों से उनकी घमासान लड़ाई हुई। यद्यपि लार्ड गफ कमाण्डर-इन-चीफ थे—पर इस युद्ध का संचालन स्वयं गवर्नर जनरल सर हेनरी लार्ड हार्डिंज कर रहे थे। यह युद्ध अंग्रेजी साम्राज्य के लिए लड़े गए बड़े-बड़े युद्धों में एक था और इसमें वे सब कारण प्रकट हो गए थे—जिनसे कि जीत अंग्रेजों की और हार भारतीयों की होती थी।

: ३३ :

भीषणता भरी रात

सर्दी के दिन थे। फिर पंजाब की सर्दी। सूर्यास्त में विलम्ब न था। चार बज चुके थे—कि अंग्रेजी सेना ने वेग से भीषण आक्रमण किया। और खालसा सेना ने उससे भी भीषण प्रतिरोध किया। बार-बार अंग्रेजी सेना वेग से आगे बढ़ती पर जैसे चट्टान से टकरा कर समुद्र की तूफानी लहरें वापस लौट जाती हैं, उसी प्रकार लौट जाती। अभी युद्ध छिड़े केवल डेढ़ घण्टा हुआ था कि अंधेरा हो गया और दोनों ओर की सेनाएँ

पीछे लौटीं। इस डेढ़ घण्टे के युद्ध में अंग्रेजी फौज ने जो मार सिखों से खाई थी—उसी से उसके हौसले पस्त हो गए। दिल टूट गए और अंग्रेजों को फीरोजपुर शहर का अपना अधिकृत भाग छोड़ना पड़ा। अंग्रेजों के लिए वह रात भीषण रात थी। अंग्रेज अफसर उस रात परस्पर मिल कर गुड नाइट नहीं कह रहे थे, वे कह रहे थे—'नाइट आफ हारर !'

छावनी बिलकुल खुले मैदान में पड़ी थी; और सिख सेना की तोपें निरन्तर उन पर गोला बरसा रही थी। अंग्रेजी सेना में सर्वत्र सिखों का आतंक छा रहा था। जनरल डक और गवर्नर-जनरल रात-भर फौज में घूमते रह कर सेना को ढारस बंधा रहे थे और प्रातःकाल होने पर विजय की आशा दिला रहे थे। परन्तु प्रातःकाल जब अंग्रेजी सेना युद्ध को सन्नद्ध हुई तो उस भीषण रात की भयानक सर्दी से उनकी उँगलियाँ इतनी जकड़ गईं कि उन्होंने गोली चलाने से इन्कार कर दिया।

पर युद्ध इस दिन डट कर हुआ। सिख बहादुरी से लड़े। लेकिन उन की बहादुरी काम न आई। क्योंकि सिख सेना में कोई सर्वमान्य नेता न था। जो थे, वे स्वयं कायर और युद्ध कला से अनाड़ी तो थे ही, परस्पर एक-दूसरे को नीचा दिखाने पर तुले हुए थे। मुख्य सेनापति लालसिंह आगे बढ़ कर लड़ने से डर रहा था। जब कि अंग्रेज सेनापति और गवर्नर-जनरल अपनी जान खतरे में डाल कर सेना का संचालन कर रहे थे। परिणाम वही हुआ, जो सौ साल से भारत में अंग्रेजों से युद्ध का होता आया है। दोपहर होते-होते ही खालसा सेना भाग खड़ी हुई; और अंग्रेजी सेना ने फीरोजपुर पर दखल कर लिया। चमत्कार देखिए, कि ठीक इसी समय सरदार तेजसिंह बीस हजार ताजा खालसा घुड़सवारों को ले कर रणक्षेत्र के निकट पहुँच चुका था—वह यदि इसी क्षण थकी-माँदी अंग्रेजी सेना पर धावा बोल देता तो अंग्रेजों का वहाँ से निस्तार न था। पर उस पर अंग्रेजों की थैली का जादू चल गया, और वह बिना ही लड़े वहाँ से वापस चला गया।

इस के बाद अलीवाल में एक झपट हुई और फिर वहाँ से हट कर

सुवराओ में सिखों ने एक बड़ा मोर्चा जमाया। यह अंग्रेजी प्रभाव सीमा पर एक गाँव था, जो सतलज के तट पर था। खालसा सेना और तोपों का वहाँ भारी जमाव था, घनघोर संग्राम हुआ। परन्तु सिख सिपाही शेर थे, तो उनके सेनापति गीदड़, डरपोक, विश्वासघाती, स्वार्थी, मूर्ख और लालची। खास कर प्रधान सेनापति लालसिंह तो लम्पट व्यक्ति था। वह मरने से डरता था और जल्द लाहौर पहुँच कर रानी से मिलने को बेचैन था। तेजसिंह ब्राह्मण था, उस पर न खालसा सेना का विश्वास था, न उसे सेना पर। वह भीरू भी था और चंचल चित्त का पुरुष! केवल एक व्यक्ति प्रभावशाली था—डोगरा राजा गुलाबसिंह! जो प्रथम ही अंग्रेजों का दोस्त बन चुका था। बड़े भाई ध्यानसिंह और भतीजे दीपसिंह की खालसा सेना ने जो हत्या की थी; उन्हें वह भूला न था। वह ऊपर से रानी जिन्दा का सलाहकार बना हुआ था, पर भीतर उसके राज्य को अंग्रेजों के हाथ बेचने की खटपट में लगा था। अब रही रानी ज़िन्दा, वह मन से खालसा सैन्य की शत्रु थी। वह युद्ध करने के पक्ष में न थी। खालसा सेना को उस ने सतलज पार युद्ध में इस लिए झोंक दिया था कि वह लाहौर से दूर हो जाय। यह रानी ही की करतूत थी कि लाहौर से जो बारूद के पीपे आए थे, उन्हें जब खोला गया तो उन में बारूद की जगह आटा और अलसी के बीज निकले। इस का परिणाम यह हुआ कि महाराजा रणजीतसिंह की जो अजेय खालसा सेना अटक से कटक तक अपने शौर्य का आतंक जमा चुकी थी, और जिस के सामान प्रचण्ड सेना पृथ्वी के किसी राजा के पास न थी, वह सुवराओ के मैदान में केवल दो घण्टे की लड़ाई में सर्वथा तहस-नहस हो गई।

: ३४ :

बड़ा लाट कहाँ है ?

जिस समय सिख सैन्य में भगदड़ मची थी, और अंग्रेज अपनी संगीनों

से, भागती हुई खालसा सेना की पीठ छेदते चले जा रहे थे, तभी खालसा सेना में—"वाह गुरु की फतेह" का नारा बुलन्द हुआ और अंग्रेजों ने चमत्कृत हो कर देखा, कि सफेद कपड़ों में सुशोभित और सफेद दाढ़ी फहराता हुआ एक तेजस्वी पुरुष नंगी तलवार हाथ में लिए खालसा वीरों को ललकारता हुआ आगे बढ़ रहा है। बहुत से वीर उस के साथ लौट चले, और एक बार युद्ध फिर जम गया। वह आगे धंसा चला आ रहा था; और कहता जाता था—"बड़ा लाट कहाँ है? बड़ा लाट कहाँ है?" सामने जो आता उस की विकराल तलवार का भोग बनता। शीघ्र ही उस का धवल परिधान उसी के लाल रक्त में रंगता चला गया। गोलों और गोलियों के सामने उस की तलवार देर तक ऊँची न रह सकी और वह वाह गुरु का नारा लगाते हुए वहीं धराशायी हो गया। यह वीर पुरुष शामसिंह अटारी वाला था; वह अपनी ही तलवार से मारे हुए शत्रुओं की लोथों पर गिरा।

सिक्ख अब भाग रहे थे, पर दुर्भाग्य देखिए कि इस अनियन्त्रित भगदड़ से सतलज का पुल सेनाओं के बोझ से टूट गया। हजारों भागते हुए सिपाही नदी में गिर गए। यह गोरे सिपाहियों को अपनी बहादुरी दिखाने का अवसर था। उन्होंने पानी में तैरते हुए सिक्खों पर तान-तान कर गोलियों की बाढ़ दागी। सतलज का पानी सिक्खों के खून से लाल हो गया; और सतलज उन की लाशों से पट गई। यहाँ ऐसी निर्दयता से सिक्खों का संहार हुआ कि देखने वालों का खून जम गया।

दस हजार सिक्ख योद्धा सुबराओं के क्षेत्र में काम आए। उन की सारी शक्ति टूट गई। अब अंग्रेजों को रोकने वाला कौन था? दस फरवरी को सुबराओं में संग्राम हुआ, ग्यारह को आगे बढ़ कर अंग्रेजों ने कसूर दखल किया और बीस फरवरी को लाहौर में आ धमके।

खालसा राज्य की शक्ति अब टूट चुकी थी; और उनके कायर और अयोग्य नेता अब किसी भी शर्त पर सन्धि करने पर आमादा थे। गवर्नर-जनरल के लाहौर पहुँचने से प्रथम ही उन्होंने सन्धि प्रस्ताव उस के पास

भेज दिया था। अंग्रेज चाहते तो वे पंजाब पर अपना अधिकार अब जमा सकते थे; पर उन के पास अभी इतना सैन्य-बल न था जितना पंजाब को सम्हालने के लिए आवश्यक था। फिर वे अभी काबुल की दुर्दशा भूले नहीं थे। यद्यपि उन की शानदार विजय हुई थी; पर इन्होंने भलाई इसी में समझी कि अभी सिक्ख राज्य के हाथ-पाँव बाँध कर उसी को पंजाब का अधिराज रहने दिया जाय। हठीले सिक्खों के देश में सब जोखिम सिर पर लेने को हार्डिज तैयार न था। सन्धि हुई, अंग्रेजों को सतलज के वाम पार्श्व की सब भूमि द्वाबा बिस्त जालन्धर तक मिल गई। सिक्ख सरदारों ने डेढ़ करोड़ रुपया युद्ध का हर्जाना देना स्वीकार किया। इस का कुछ भाग नकद और शेष में काश्मीर और हजारा के इलाके ले लिए गए। सिक्ख सेना भंग कर दी गई और उस की ३६ बड़ी तोपें अंग्रेजों ने ले लीं। बालक दिलीपसिंह को महाराजा, रानी जिन्दा को संरक्षिका और लालसिंह को प्रधान मंत्री स्वीकार किया गया। महाराजा दिलीपसिंह की रक्षा के लिए अंग्रेजी सेना लाहौर में रखी गई और उस का सेनापति सर हेनरी लारेन्स को बनाया गया। सिक्ख राज्य के प्रति एक अन्तर द्रोही उत्पन्न करने के लिए काश्मीर का राज्य डोगरा राजा गुलाबसिंह को बेच दिया गया।

: ३५ :

देशी राज्यों की लाश

अब यथार्थ में अंग्रेज भारत के अधिराज बन चुके थे; और भारत उन के साम्राज्य का अंग बन चुका था। अब क्या जरूरी था कि देशी राज्यों की लाश को ब्रिटिश साम्राज्य के आंगन में पड़े रहने दिया जाता। भारत में शासन करने वाले बहुत से अंग्रेजों की यही राय थी कि अब सब देशी राज्यों को खत्म ही कर दिया जाय। खास कर पंजाब के सिक्ख राज्य का पतन ऐसा प्रभावशाली था कि जिस ने अंग्रेजों की राह पूर्व से

पश्चिम तक साफ कर दी थी। वे सोचने लगे—अब भारत में इन राज्यों के रोड़ों को कायम रखना न तो राज्य के लिए ही सुविधाजनक है और न नीति सम्मत ही है। अब तक अंग्रेजों की यह मनोवृत्ति दबी हुई थी। यद्यपि वे भारत के सभी देशी राज्यों को बधिया कर चुके थे; पर पंजाब का शेर अभी तक हिन्दुकश पर्वत की ओर मुँह कर के दहाड़ रहा था, इस का उन्हें काफी भय था। भय केवल इस लिए न था कि वह यदि पलट कर उन पर हमला करेगा तो उनके अंजर-पंजर बखेर देगा। अपितु वे यह भी सोचते थे कि यदि यह अफगानिस्तान और ईरान को अपने प्रभाव में ले कर रूस के साथ सन्धि कर ले तो पूर्व में अंग्रेजों को एक क्षण भर भी खड़े रहने को स्थान न था। परन्तु अब तो उन का एक मात्र काँटा निकल गया। अफगानिस्तान और सिंध तो जेर हो ही चुके थे, अब तो पंजाब भी जेर हो गया, तो अब कुछ अंग्रेज राजनीतिज्ञ खुल्लम-खुल्ला कहने लगे कि लार्ड हार्डिज ने जो सिक्खों के साथ यह नर्म नीति धारण की यह गलत थी। अब सिक्ख राज्य को कायम रखने की जरूरत ही न थी। खास कर उस हालत में जब यह आम अफवाह थी कि दिलीपसिंह रणजीतसिंह का औरस पुत्र ही नहीं है। जब दिलीपसिंह के वास्तविक उत्तराधिकारी होने में इतना संदेह था और सिक्ख शक्ति सर्वथा टूट चुकी थी, तो इस नाम मात्र के सिक्ख राज्य को जीवित रखने में क्या लाभ है ? चाहे जो भी हो—अन्ततः अंग्रेज थे तो बनिया ही। वे सारी अपनी राजनीति को भी लाभ-हानि की ही तराजू पर तोलते थे। वे प्रत्यक्ष देख रहे थे कि अब सिक्ख राज्य को ढोना सरासर हानि का सौदा है।

परन्तु लार्ड हार्डिज जरा दूसरी प्रकृति के पुरुष थे। वे महत्वाकांक्षी और योद्धा प्रकृति के तो थे ही, विलक्षण राजनीतिज्ञ तथा दूरदर्शी राज-पुरुष भी थे। उन्होंने इस बात को भाँप लिया था कि सिक्ख हार गए हैं, परन्तु इस लिए नहीं कि वे वीर न थे; बल्कि इस लिए कि उन का नेतृत्व ठीक नहीं हुआ। हार कर वे और भी क्रुद्ध हो उठे हैं, और उन

के अरमान बुझे नहीं हैं। उन्हें यह भी विश्वास हो गया कि आमने-सामने की लड़ाई में अंग्रेजी सेना खालसा सेना का मुकाबला नहीं कर सकती। वे अब यह अनुभव करने लगे थे कि सिक्खों की पराजय उनकी वीरता की कमी के कारण नहीं—अच्छे और ईमानदार नेताओं की कमी के कारण हुई है। यह बात अंग्रेज सेनानायक भी समझ गए थे। अब यह स्पष्ट था कि पराजित सिंह क्रोध और घृणा से भरे हुए थे, उन के दिलों के अरमान बुझे न थे, और एक अतृप्त लालसा उन के मनों में सुलग रही थी। इस बात को हार्डिज ने अच्छी तरह समझ कर ही वह सन्धि कर दूरदर्शिता का परिचय दिया था, और इस की सचाई अगले ही वर्ष प्रकट हो गई, जब सन् १८४६ में पहली सन्धि तोड़ कर दूसरी करनी पड़ी और लालसिंह का पतंग काट दिया गया।

इसी समय हार्डिज के स्थान पर लार्ड डलहौजी आया। वह हार्डिज से भिन्न प्रकार का आदमी था। उसे कुछ गुप्त आदेश लंदन में मिले थे; और उनका अभिप्राय यह था कि अब से बीस बरस पहले जो इंगलैण्ड की सरकार यह परामर्श कम्पनी के कर्मचारियों को देती रहती थी कि भारत में अंग्रेजी राज्य की सीमाओं को न बढ़ाया जाय, अब वह छोड़ दिया गया है; और यह नई नीति अपना ली गई है कि पके आम की तरह टपक कर भारत के जो-जो प्रान्त ब्रिटिश साम्राज्य की टोकरी में गिरते जायँ उन्हें टोकरी में रहने दिया जाय।

: ३६ :

मुर्गी अण्डे दे या जिबह की जाय

लार्ड डलहौजी स्काटलैण्ड के एक पुराने नवाबी ढंग के परिवार का उत्तराधिकारी पुरुष था। जब वह भारत का गवर्नर-जनरल बन कर आया तो उस की आयु केवल ३५ बरस की थी। इंगलैण्ड में वह तेजस्वी और होनहार समझा जाता था। इस समय भारत में एक ऐसे जोशीले

आदमी की आवश्यकता थी—इसी लिए उसे गवर्नर-जनरल बना कर भेज दिया गया था, और इस अल्पवयस्क उतावली प्रकृति के युवक को भारत के करोड़ों निवासियों और सैंकड़ों राजवंशों का भाग्य विधाता बना दिया गया था। हार्डिज वीर सैनिक और गम्भीर सेनानी था। उसमें सिपाही की वीरता भी थी और सेनापति की उदारता और दूरदर्शिता भी। पर डलहौजी इस के विपरीत न योद्धा था न दूरदर्शी। वह कागज कलम का बहादुर था। उदारता उस में थी ही नहीं। वह स्वभाव से अभिमानी और अनुदार था। पर था कठोर परिश्रमी। अंग्रेज कम्पनी के राज्य के इतिहास में उस की समता औरंगजेब से की जानी चाहिए।

संयोग की बात देखिए कि जब हार्डिज गवर्नर जनरल था तब उसने सर हेनरी लारेन्स को प्रथम पंजाब की रक्षक सेना का कमाण्डर और बाद में पंजाब राज्य का रेजीडेण्ट बना दिया था। हेनरी लारेन्स नर्म प्रकृति का आदमी था। वह व्यवहार कुशल और मिलनसार भी था। दूरदर्शी भी था। उस ने अपने सदव्यवहार से सिक्खों का मन मोह लिया था और उन्हें मित्र बना लिया था। पर वह जब बीमार हो कर इंगलैण्ड लौट गया तो उसके स्थान पर सर फ्रेडरिक कैरी रेजीडेण्ट होकर लाहौर आया। जिस प्रकार हेस्टिंग्स से डलहौजी के विचार और कार्य शैली भिन्न थी, उसी प्रकार लारेंस से कैरी की प्रकृति भी भिन्न थी। वह न सिक्खों का मित्र था न मिलनसार आदमी। कहने को इस समय पंजाब में दिलीपसिंह का राज्य था, पर असल हुकूमत कैरी ही के हाथों में थी।

उस ने आते ही छेड़छाड़ शुरू कर दी। वह चाहे जब, किसी भी बात में अपनी टांग अड़ा देता; और राज्य के छोटे-बड़े हर काम में दखल देता। परिणाम यह हुआ कि सिक्खों के दिल फिर अंग्रेजों से बिगड़ने लगे।

इसी समय एक घटना घटी। मुलतान का सूबा सिक्ख राज्य के अन्तर्गत था। उसे महाराज रणजीतसिंह ने सन् १८१९ में जीता था, और दीवान सांवलमल को उस का दीवान बना दिया था। सांवलमल

बड़ा कुशल राजपुरुष था। जिस समय मुलतान का प्रबन्ध उसे सौंपा गया, वह प्रांत मरुस्थल की भाँति उजाड़ पड़ा था। चोरी, डकैती, लड़ाई, खून-खराबी का इतना जोर था कि उससे वहाँ की आबादी ही उजड़ गई थी। सांवलमल ने अमन कायम किया। नहरें खुदवाईं और अन्य प्रान्तों से व्यापारियों और किसानों को ला कर वहाँ बसाया, उन्हें जमीन इलाके दिए। परिणाम यह हुआ कि कुछ ही दिनों में यह इलाका आबाद हो गया और काफी लगान वसूल होने लगा।

सांवलमल की मृत्यु पर उस का लड़का मुलतान का सूबेदार बना। पर इधर लाहौर के दरबार में रणजीतसिंह की मृत्यु के बाद जो उथल-पुथल मची तो उस का प्रभाव मुलतान पर भी पड़ा। देश भर में अराजकता व्याप गई और लगान वसूल हुआ ही नहीं, इसी से दीवान मूलराज नजराने की धनराशि लाहौर सरकार के पास न भेज सका। परन्तु जब उस पर अधिक दबाव डाला गया तो वह स्वयं लाहौर आया और अठारह लाख की रकम देने में असमर्थता प्रकट की। उस समय हेनरी लारेन्स पंजाब के रेजीडेण्ट थे, उन्होंने समझा-बुझा कर उस से समझौता कर उसे वापस मुलतान भेज दिया।

अब जो फ्रेडरिक कैरी का शासन चला तो उस ने मुलतान पर नजर डाली; और मूलराज से साफ कह दिया—कि या तो मुर्गी अण्डे दे या उसे जिबह किया जाय। उसने दीवान मूलराज पर इतना दबाव डाला कि उसे त्यागपत्र दे देना पड़ा। कैरी ने मुलतान पर श्यामसिंह नामक एक सिक्ख सरदार की नियुक्ति करके एग्न्यू और एण्डर्सन नामक दो अंग्रेज अफसरों को उस का सहयोगी बना दिया।

श्यामसिंह और उसके साथी अंग्रेज अपने साढ़े तीन सौ सवारों के साथ जब १८ मार्च को मुलतान पहुँचे तो मूलराज ने बिना हुज्जत खजाने की चाभी उन्हें सौंप दी। पर खजाने की चाभी सम्हाल कर जब श्यामसिंह और उस के अंग्रेज अफसर किले से जाने लगे तो एग्न्यू कुछ पीछे रह गया। वह घोड़े पर चढ़ ही रहा था कि पीछे से दो सिक्खों ने

आक्रमण कर के उसे आहत कर दिया। श्यामसिंह और उस के साथी घायल अंग्रेज अफसर को हाथी पर रख कर तेज़ी से किले से बाहर निकल आए और ईदगाह में शरणापन्न हुए तथा रात भर वहीं रहे। रात भर किले से उन पर गोलाबारी होती रही, और दिन निकलते ही मुलतान की सेना ने उन्हें घेर लिया। अच्छा खासा युद्ध हुआ। दोनों अंग्रेज मार डाले गए और श्यामसिंह को कैद कर लिया गया। जब यह समाचार लाहौर पहुँचा तो कैरी स्तब्ध रह गया। पर उसने यहाँ एक विचित्र चाल चली। मुलतान के विद्रोह को दबाने के लिए उस ने किसी अंग्रेज सेनापति की कमान में कोई सुगठित सेना नहीं भेजी। शेरसिंह अटारी वाले को खालसा फौज सहित मुलतान रवाना कर दिया। इस का कारण बताते हुए उसने कहा—कि पंजाब का राज्य महाराज दिलीपसिंह का है; और अंग्रेज़ी सेना केवल उस की रक्षा के लिए तैनात है, इस लिए राज्य के भीतर उत्पन्न उपद्रव को दबाना खालसा सेना का काम है। परन्तु यह केवल ऊपरी कहने की बात थी। कैरी भली-भाँति जानता था कि सिक्ख सेना मुलतान के उपद्रव का दमन न कर सकेगी; क्योंकि अभी तक भी खालसा सेना में अच्छे नेतृत्व का अभाव था। न उसमें उपयुक्त नियंत्रण था। इस चालाक अंग्रेज़ रेजीडेण्ट की मंशा यह थी कि यदि खालसा सेना ने दीवान मूलराज को परास्त कर दिया तो दो अंग्रेजों की हत्या का बदला मिल जायगा। परन्तु यदि परिणाम अनुकूल न हुआ तो सिक्खों की शक्ति आपस में टकरा कर चकनाचूर हो जायगी, और तब अंग्रेजों के लिए पंजाब को अंग्रेजी राज्य में मिलाना आसान हो जायगा।

: ३७ :

तोपों का युद्ध

इधर तो उसने शेरसिंह को मुलतान भेजा और उधर रानी जिन्दा पर मूलराज से साँठ गाँठ करके भड़काने का आरोप लगा उसे देश

निकाला दे दिया और पेन्शन नियत करके बनारस भेज दिया। सिख लोग लोग रानी जिन्दा को खालसा की मां कहते थे। कैरी के इस काम से सिखों में असन्तोष फैल गया। अभी यही चिनगारी सुलगी थी कि उसने एक और कदम बढ़ाया। अटारी वाले शेरसिंह को मुलतान भेज दिया और उसके पिता छतरसिंह पर यह आरोप लगाया कि वह अंग्रेजों का शत्रु है। अटारीवाला छतरसिंह सिक्खों का सर्वमान्य नेता और सम्मानित व्यक्ति था, वह हजारा जिले का सूबेदार था। कैरी के इशारे से वहाँ की अंग्रेजी सेना के कैप्टन ने आसपास के मुसलमानों को यह कह कर भड़का दिया कि अब समय आ गया है कि वे सिख काफिरों से बदला लें, और उनकी सेना का संग्रह करके उन्हें छतरसिंह से भिड़ा दिया। इसी समय किसी गुप्त संकेत से प्रेरित हो लेफ्टिनेंट एडवर्डज ने सरहदी मुसलमानों को उकसा कर सिक्खों से भिड़ा दिया।

ये सब कार्यवाही सिख शक्ति को छिन्न-भिन्न करने के लिए की जा रही थीं और इस काम के लिए कैरी और डलहौजी उपयुक्त व्यक्ति थे। परिणाम यह हुआ कि सिख फिर अंग्रेजों से भड़क गये। शेरसिंह के नेतृत्व में अंग्रेजी सेना मुलतान भेजी गई थी, उसका बड़ा भाग दीवान मूलराज से मिल गया और विद्रोह की आग फिर पंजाब में भड़क उठी। अंग्रेज अब इसके लिए तैयार ही थे। डलहौजी को जब यह समाचार मिला तो उसने घोषणा की कि बगैर चेतावनी के सिक्खों ने जो हमारे विरुद्ध युद्ध ठाना है, उसका बदला सूद सहित लिया जाय। घोषणा में एक दृढ़ निश्चय के साथ अभिमान और निर्दयता स्पष्ट थी। घोषणा के तुरन्त बाद ही लार्ड गफ ने सतलज पार करके पंजाब पर आक्रमण कर दिया, जहाँ दरबार की छाती पर कैरी उसका स्वागत करने को सेना सहित बैठा था। पहली लड़ाई चिनाव के तट पर और दूसरी चिलियावाला में झेलम के तट पर हुई। गफ ने आगे पीछे का विचार न कर सीधे आक्रमण की आज्ञा दे दी। सिख सेनाओं ने इस बार डटकर मुकाबला किया और अंग्रेजी सेना की गम्भीर हानि हुई। जब यह समा-

चार डलहौजी ने सुना तो वह बौखला उठा। उसने गफ को पदच्युत कर कर सिंध के विजेता सर चर्ल्स नेपियर को सेना की कमान सौंपी। परंतु अभी नेपियर पंजाब पहुंचा भी न था कि गुजरात के युद्ध में लार्ड गफ ने सिक्खों को करारी हार दी और सिक्खों की शक्ति को सदा के लिए छिन्न-भिन्न कर दिया। इतिहास में गुजरात के इस संग्राम को तोपों का युद्ध कहा गया है।

२२, फरवरी को यह तोपों का चिरस्मरणीय युद्ध हुआ और उसके एक महीना बाद मुलतान की लड़ाई भी खत्म हो गई। महीनों के घेरे के बाद साधनों के अभाव में मूलराज ने हथियार डाल दिये और आत्म समर्पण कर दिया। १२ मार्च को समूची सिख सेना ने हार मान कर हथियार डाल दिये, उनके साथी पठान भी पीठ दिखा कर भाग निकले।

अब पंजाब के साथ क्या सलूक किया जाय ? क्या निजाम-सिंधिया राज्यों की भाँति सिर उठाने योग्य न बनाकर महाराज दिलीपसिंह को राज्य करने दिया जाय, या उसे पूरी तरह ब्रिटिश राज्य में मिला लिया जाय। सर हेनरी लारेन्स और लन्दन के राजनीतिज्ञ चाहते थे कि सिख राज्य कायम रखा जाय—पर सर करी, जान लारेन्स और डलहौजी का मत था कि सिख आसानी से काबू में होने वाले नहीं, फिर उनका झंझट ही मिटा दिया जाय। इसलिए मुलतान के पतन के बाद ही डलहौजी ने अपनी जिम्मेदारी पर पंजाब को ब्रिटिश राज्य में पूर्ण विलीन कर लिया। स्वाधीनता का कोई अंश शेष न रहा, इसलिए दिलीपसिंह को ५० हजार पौंड वार्षिक पेन्शन देकर विलायत भेज दिया गया। मूलराज को अंग्रेजों की हत्या के अभियोग में फांसी की सजा दी गई। पीछे वह दण्ड कालेपानी की सजा में बदल दिया गया; परन्तु उसने राह में ही आत्मघात कर लिया। सब लोगों के हथियार छीन लिए गये और छोटे-बड़े सभी पदों पर अंग्रेज कर्मचारी नियुक्त कर दिये गए। डलहौजी जो आगे करना चाहता था यह उसकी पहली किश्त थी।

: ३८ :

बर्मा का युद्ध

कम्पनी राज्य के अन्तिम गवर्नर जनरल डलहौजी में सब गुण-दोष औरंगजेब के समान थे। उसकी दृष्टि व्यापक थी और महत्वाकांक्षा अपरिसीम थी।

पंजाब पर विजय प्राप्त करके उसके हौसले बढ़ गए। साम्राज्य की भूख भी बढ़ गई। अब उसके सामने दो मूल प्रश्न थे—पंजाब को जीत कर उसने अपने भारतीय साम्राज्य की पश्चिमोत्तरी सीमा को सर्वथा सुरक्षित कर लिया था। अब उसकी यह लालसा हुई कि बर्मा को जीत कर पूर्वी सीमा को भी उसी प्रकार सुरक्षित करे। बर्मा की पहली लड़ाई से बर्मा में अंग्रेजों को व्यापारिक सुविधाएँ ही प्राप्त हुई थीं, कोई इलाका न मिला था। इस समय उनका दृष्टिकोण बदला हुआ था और स्पष्ट ही डलहौजी को अपनी पूर्वी सीमा अरक्षित दीख रही थी। इसलिए वह ज्योंही पंजाब से निबटा कि बर्मा पर उसकी दृष्टि गई और बर्मा पर आक्रमण के बहाने वह ढूँढ़ने लगा। बहाना भी तुरन्त मिल गया। एक अंग्रेज अफसर ने चलते जहाज से एक अंग्रेज को समुद्र में फेंक दिया था। उस पर बर्मी अधिकारी ने उस अंग्रेज अफसर पर मुकदमा प्रमाणित करके सत्तर पौंड जुर्माना वसूल किया था। बर्मा के अधिकारी का यह अपराध बहुत संगीन समझा गया और डलहौजी की सरकार ने बर्मी गवर्नर से ९२० पौंड हर्जाना मांगा। अभी बर्मा सरकार का उत्तर भी नहीं आया था कि डलहौजी ने मामला अपने हाथों में ले लिया और हर्जाने की वसूलयाबी के लिए कमोडोर लेम्बर्ड की कमान में दो जहाज रंगून को रवाना कर दिए। कमोडोर लेम्बर्ड बडा शैतान आदमी था; परन्तु बर्मा के राजा ने धैर्य और समझदारी से काम लिया। जिस गवर्नर से शिकायत थी उसे पदच्युत कर दिया तथा हर्जाने के सम्बन्ध में विचार करने का आश्वासन दिया। परन्तु लेम्बर्ड बिना ही पूर्व सूचना के रंगून

के गवर्नर के निवासस्थान पर पहुँचा। गवर्नर उस समय सो रहा था। अतः उसके लिए लेम्बर्ड को १५ मिनट प्रतीक्षा करनी पड़ी। इसमें उसने कम्पनी बहादुर की सरकार की तौहीन समझी और क्रुद्ध होकर बर्मा के एक जहाज 'येलोशिप' पर अधिकार कर उसे किनारे से खोल अपने जहाजों के पास खड़ा कर लिया। बर्मा तट के रक्षक-अधिकारियों को किसी बात का पता न था, उन्होंने देखा कि उनका जहाज लूटा जा रहा है, तो उन्होंने किनारे से जहाजों पर गोलियाँ चला दीं। उस पर लेम्बर्ड ने तत्काल घोषणा कर दी कि गवर्नर जनरल द्वारा दिये गए अधिकारों के आधार पर मैं घोषणा करता हूँ कि रंगून बस्सीन-मोलमीन से ऊपर बसीन की नदियां जहाजों के यातायात के लिए बन्द कर दी गई हैं। इस आज्ञा का सख्ती से पालन हो सके—इस उद्देश्य से पर्याप्त शक्ति नदियों के मुहानों पर रखी जायगी।

यह एक अच्छा खासा राजनीतिक बलात्कार था। वास्तव में गवर्नर-जनरल के किसी पार्लमेंटरी पत्र में ऐसे किसी अधिकार की चर्चा न थी परन्तु अंग्रेजी सरकार को लड़ाई छेड़नी थी, सो लड़ाई ठन गई।

आनन फानन अंग्रेजी बेड़े बर्मा की भूमि पर उतरने लगे। बर्मा के राजा के पास न उनसे लड़ने की शक्ति थी न साधन। इधर लड़ाई छिड़ते ही स्वयं गवर्नर जनरल बर्मा जा पहुंचा और वर्ष समाप्ति से प्रथम अंग्रेजों ने बर्मा के समूचे उत्तरी भाग पर अधिकार कर लिया। वह ब्रिटिश सरकार की आय और भूमि बढ़ाने का ऐसा सुअवसर हाथ से जाने देना नहीं चाहता था और उसने वह भाग जीत कर अपने राज्य में मिला लिया।

: ३६ :

भूतों वाली मस्जिद

लखनऊ के अमीनाबाद पार्क में इस समय जहाँ घंटाघर है, वहाँ अब से १०० वर्ष पूर्व एक छोटी सी टूटी हुई मस्जिद थी, जो भूतोंवाली मस्जिद

कहलाती थीं और अब जहाँ बालाजी मन्दिर है, वहाँ एक छोटा-सा कच्चा एक मंजिला घर था। चारों तरफ न आज की सी बहार थी, न बिजली की चमक, न बढ़िया सड़कें, न मोटर, न मेम साहबाओं का जमघट।

लखनऊ के आखिरी बादशाह प्रसिद्ध वाजिदअली शाह की अमलदारी थी। ऐयाशी और ठाठ-बाट के दौर-दौरे थे। मगर इस मुहल्ले में रौनक न थी। उस घर की एक टूटी सी कोठरी में एक बुढ़िया मनहूस सूरत, सनके समान बालों को बिखेरे बैठी किसी की प्रतीक्षा कर रही थी। घर में एक दिया धीमी आभा से टिमटिमा रहा था। रात के दस बज गए थे, जाड़ों के दिन थे। सभी लोग अपने-अपने घरों में रजाइयों में मुँह लपेटे पड़े थे। गली और सड़कों पर सन्नाटा था।

धीरे-धीरे बढ़िया वस्त्रों से आच्छादित एक पालकी इस टूटे घर के द्वार पर चुपचाप आ लगी, और काले वस्त्रों से आच्छादित एक स्त्री-मूर्ति ने पालकी से बाहर निकल-कर धीरे से द्वार पर थपकी दी। तत्काल द्वार खुला और स्त्री ने घर में प्रवेश किया।

बुढ़िया नें कहा—"खैर तो है ?"

"सब ठीक है, क्या मौलवी साहब मौके पर मौजूद हैं ?"

"कब से इन्तजारी कर रहे हैं। कुछ ज्यादा जां फिशानी तो नहीं उठानी पड़ी ?"

"जां फिशानी ? चे खुश, जान पर खेल कर लाई हूँ। करती भी क्या ? गर्दन थोड़े ही उतरवानी थी ?"

"होश में तो है।"

"'अभी बेहोश है किसी तरह राजी न होती थी। मजबूरन यह किया गया।"

"तब चलें।"

बुढ़िया उठी। दोनों पालकी में जा बैठीं। पालकी संकेत पर चलकर मस्जिद की सीढ़ियां चढ़ती हुई भीतर चली गई।

मस्जिद में सन्नाटा और अन्धकार था। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि

वहां कोई जीवित पुरुष नहीं है। पर पालकी के आरोहियों को इसकी परवाह न थी। वे पालकी को सीधे मस्जिद के भीतरी भाग के एक कक्ष में ले गये। यहां पालकी रखी। बुढ़िया ने बाहर आकर बगल की कोठरी में प्रवेश किया। वहां एक आदमी सिर से पैर तक चादर ओढ़े सो रहा था। बुढ़िया ने कहा—"उठिए मौलवी साहब, मुरीदों को तावीज इनायत कीजिए। क्या अभी बुखार नहीं उतरा ?"

"अभी तो चढ़ा ही है।" कह कर मौलवी साहब उठ बैठे। बुढ़िया ने कुछ कान में कहा। मौलवी साहब सफेद दाढ़ी हिलाकर बोले—"समझ गया; कुछ खटका नहीं है। हैदर खोजा मौके पर रोशनी लिए हाजिर मिलेगा। मगर तुम लोग बेहोशी की हालत में उसे किस तरह····

"आप बेफिक्र रहें। बस सुरंग की चाभी इनायत करें।"

मौलवी साहब ने उठकर मस्जिद के बाईं ओर के चबूतरे के पीछे वाले भाग में जाकर एक कब्र का पत्थर किसी तरकीब से हटा दिया। वहाँ सीढ़ियां निकल आईं। बुढ़िया उसी तंग तहखाने के रास्ते उसी काले वस्त्र से आच्छादित लम्बी स्त्री के सहारे एक बेहोश स्त्री को नीचे उतारने लगी। उनके चले जाने पर मौलवी साहब ने गौर से इधर-उधर देखा और फिर किसी गुप्त तरकीब से तहखाने का द्वार बन्द कर दिया। तहखाना फिर कब्र बन गया।

: ४० :

सोने के वर्क में लिपटी हुई गिलौरी

चार हजारा फानूसों में काफूरी बत्तियां जल रही थीं। और कमरे की दीवार गुलाबी साटन के पर्दों से छिप रही थी। फर्श पर ईरानी कालीन बिछा था जिस पर निहायत नफीस और खुशरंग काम बना हुआ था। कमरा खूब लम्बा चौड़ा था। उसमें तरह तरह के ताजे फूलों के गुलदस्ते सजे हुए थे और हिना की तेज महक से कमरा गमक रहा था।

कमरे के एक बाजू में मखमल का बालश्त भर ऊंचा गद्दा बिछा था, जिस पर कारचोबी का उभरा हुआ बहुत ही खुशनुमा काम था। उस पर एक बड़ी सी मसनद लगी थी, जिस पर चार सुनहरे खम्भों पर मोती की झालर का चंदोवा तना था।

मसनद पर एक बलिष्ठ पुरुष उत्सुकता से किन्तु अलसाया बैठा था। इसके वस्त्र अस्त व्यस्त थे। इसका मोती के समान उज्ज्वल रंग, कामदेव को मात करने वाला प्रदीप्त सौन्दर्य, झब्बेदार मूँछें, रसभरी आँखें और मदिरा से प्रस्फुरित होंठ कुछ और ही समा बना रहे थे। सामने पानदान में सुनहरी गिलौरियां भरी थीं। इत्रदान में शीशियां लुढ़क रही थीं। शराब की प्याली और सुराही क्षण-क्षण पर खाली हो रही थी। वह सुगंधित मदिरा मानो उसके उज्ज्वल रंग पर सुनहरी निखार ला रही थी। उसके कंठ में पन्ने का एक बड़ा सा कंठा पड़ा था और उंगलियों में हीरे की अंगूठियां बिजली की तरह दमक रही थीं। यही लाखों में दर्शनीय पुरुष लखनऊ के प्रख्यात नवाब वाजिदअली शाह थे।

कमरे में कोई न था। वह बड़ी आतुरता से किसी की प्रतीक्षा कर रहे थे। यह आतुरता क्षण-क्षण पर बढ़ रही थी। एकाएक खटका हुआ। बादशाह ने ताली बजाई और वही लम्बी स्त्री मूर्ति सिर से पैर तक काले वस्त्रों से शरीर को लपेटे मानो दीवार फाड़कर आ उपस्थित हुई।

"ओह मेरी गबरू! तुमने तो इंतजारी ही में मार डाला। क्या गिलौरियां लाई हो?"

"मैं हुजूर पर कुर्बान।" इतना कह कर उसने वह काला लबादा उतार डाला। उफ गजब! उस काले आवेष्टन में मानों सूर्य का तेज छिप रहा था। कमरा चमक उठा। बहुत बढ़िया चमकीले विलायती साटन की पोशाक पहने एक सौन्दर्य की प्रतिमा इस तरह निकल आई जैसे राख के ढेर में से अंगार। इस अग्नि सौन्दर्य की रूपरेखा कैसे बयान की जाए? इस युग में जहां क्षण भर चमक कर बादलों में विलीन हो जाने वाली बिजली सड़क पर अयाचित ढेरों प्रकाश बखेरती रहती है,

तब इस रूप ज्वाला की उपमा कहां ढूंढ़ी जाए ? उस अंधकारमय रात्रि में यदि उसे खड़ा कर दिया जाए, तो वह कसौटी पर स्वर्ण रेखा की तरह दिप उठे। और यदि वह दिन के ज्वलन्त प्रकाश में खड़ी कर दी जाए तो उसे देखने का साहस कौन मर्द करे ? किन आँखों में इतना तेज है ?

उस सुगंधित और मधुर प्रकाश में मदिरा रंजित नेत्रों से उस रूप ज्वाला को देखते ही वाजिदअली की वासना भड़क उठी। उन्होंने कहा—"रूपा, जरा नजदीक आओ। एक प्याला शीराजी और अपनी लगाई हुई अम्बरी पान की गिलौरियां दो। तुमने तो तरसा तरसा कर मुझे ही मार डाला।"

रूपा आगे बढ़ी। सुराही से शराब उड़ेली और जमीन में घुटने टेक कर आगे बढ़ा दी। इसके बाद उसने चार सोने के वर्क लपेटी गिलौरियां निकाल कर बादशाह के सामने पेश कीं और दस्तबस्ता अर्ज की, "हुजूर की खिदमत में लौंडी वह तोहफा ले आई है।"

···वाजिदअली शाह की बांछें खिल गईं। उन्होंने रूपा को घूर कर कहा—"वाह ! तब तो आज" रूपा ने संकेत किया। हैदर खोजा उस फूल सी मुरझाई कुसुमकली को फूल की तरह हाथों पर उठा कर पान-गिलौरी की तश्तरी की तरह बादशाह के रूबरू कालीन पर रख गया। रूपा ने बांकी अदा से कहा—"हुजूर को आदाब !" और चल दी।

एक चौदह वर्ष की भयभीत, मूर्च्छित, असहाय, कुमारी बालिका अकस्मात् आंख खुलने पर सम्मुख शाही ठाठ से सजे हुए महल और प्रबल प्रतापी शहंशाह अवध को वासना से प्रमत्त देखकर क्या समझेगी, कौन अब इस भयानक क्षण की कल्पना करे ? पर वही क्षण होश में आते ही उस बालिका के सामने आया। वह एकदम चीत्कार करके फिर से बेहोश हो गई। पर इस बार शीघ्र ही उसकी मूर्च्छा दूर हो गई। एक अतर्क्य साहस, जो ऐसी अवस्था में प्रत्येक जीवित प्राणी में हो जाता है, उस बालिका के शरीर में भी उदय हो आया। वह सिमट कर बैठ गई और पागल की तरह चारों तरफ एक दृष्टि डालकर एकटक उस मत्त

पुरुष की ओर देखने लगी।

उस भयानक क्षण में भी उस विशाल पुरुष का सौन्दर्य और प्रभा देखकर उसे कुछ साहस हुआ। वह बोली तो नहीं, पर कुछ स्वस्थ होने लगी।

नवाब जोर से हंस दिए। उन्होंने गले का वह बहुमूल्य कंठा उतार कर बालिका की ओर फेंक दिया। इसके बाद वह नेत्रों के तीर निरन्तर फेंकते बैठे रहे।

बालिका ने कंठा देखा भी नहीं, छुआ भी नहीं। वह वैसी ही सिकुड़ी हुई, वैसी निर्निमेष दृष्टि से भयभीत हुई नवाब को देखती रही।

नवाब ने दस्तक दी। दो बांदियां दस्त-बस्ता आ हाजिर हुईं। नवाब ने हुक्म दिया, इसे गुस्ल कराकर और सब्जपरी बना कर हाजिर करो। उस पुरुष-पाषाण की अपेक्षा स्त्रियों का संसर्ग गनीमत जानकर बालिका मंत्र-मुग्ध सी उठकर उनके साथ चली गयी।

इसी समय एक खोजे ने आकर अर्ज की—"खुदाबन्द! रेजीडेंट उटरम साहब बहादुर बड़ी देर से सलाम बोल रहे हैं।"

"उनसे कह दो, अभी जनानखाने में हैं। मुलाकात नहीं होगी।"

"आलीजाह! वे कहते हैं—कलकत्ते से एक जरूरी···"

"दूर हो मुर्दार!" नवाब ने सामने का तश्त खींचकर दे मारा। खोजा चला गया।

: ४१ :

पान वाली

लखनऊ के खास चौक बाजार की बहार देखने योग्य थी। शाम हो चली थी और छिड़काव हो गया था। इक्कों और बहलियों, पालकियों और घोड़ों का अजीब जमघट था। आज उजाड़ अमीनाबाद का रंग ही कुछ और है। तब यही रौनक चौक को प्राप्त थी। बीच चौक में रूपा की पानों की दुकान थी। फानूसों और रंगीन झाड़ों से जगमगाती

गुलाबी रोशनी के बीच स्वच्छ बोतल में मदिरा की तरह रूपा दुकान पर बैठी थी। दो निहायत हसीन लौंडियाँ पान की गिलौरियाँ बना कर उनमें सोने के वर्क लपेट रही थीं। बीच-बीच अठखेलियाँ भी कर रही थीं। आज कल के कलकत्ते दिल्ली के रंग मंच पर भी ऐसा मोहक और आकर्षक दृश्य नहीं देख पड़ता, जैसा उस समय रूपा की दुकान पर था। ग्राहकों की भीड़ का पार न था। रूपा खास ग्राहकों का स्वागत कर पान दे रही थी। बदले में खनाखन अशर्फियों से उसकी गंगा-जमनी काम की तश्तरी भर रही थी। वे अशर्फियाँ रूपा की एक अदा, एक मुस्कराहट केवल एक कटाक्ष का मोल थीं। पान की गिलौरियाँ तो तो लोगों को घाते में पड़ती थीं। एक नाजुक अन्दाज़ नवाबजादे तामजाम में बैठे अपने मुसाहबों और कहारों के झुरमुट के साथ आए और रूपा की दुकान पर तामजाम रोका। रूपा ने सलाम करके कहा—"मैं सदके शाहजादा साहब, जरा बांदी की एक गिलौरी कबूल फर्मायें।" रूपा ने लौंडी की तरफ इशारा किया। लौंडी सहमती हुई सोने की रकाबों में पाँच सात गिलौरियाँ लेकर तामजाम तक गई। शाहजादे ने मुस्करा कर दो गिलौरियां उठाईं और एक मुट्ठी अशर्फियाँ तश्तरी में डालकर आगे बढ़े। एक खाँ साहब बालों में मेंहदी लगाये दिल्ली के वसली के जूते पहने तनजेब की चपकन कसे, सिर पर लैसदार ऊँची टोपी लगाए, आए। रूपा ने बड़े तपाक से कहा—"अख्खा, खाँ साहब ! आज तो हुजूर रास्ता भूल गए। अरे कोई है, आपको बैठने को जगह दे ? अरी, गिलौरियाँ तो लाओ !'

खाँ साहब रूपा के रूप की तरह चुपचाप गिलौरियों के रस का घूंट पीने लगे। थोड़ीदेर में एक अधेड़ मुसलमान अमीरजादे की शक्ल में आए। उन्हें देखते ही रूपा ने कहा—"अरे हुजूर तशरीफ ला रहे हैं। मेरे सर-कार ! आप तो ईद के चाँद हो गए। कहिए, खैरियत है ? अरी, मिर्जा साहब को गिलौरियाँ दीं ?" तश्तरी में खनाखन हो रही थी और रूपा की रूप और पान की हाट खूब गरमा रही थी। ज्यों-ज्यों अंधकार बढ़ता

जाता था, त्यों-त्यों रूपा पर रूप की दुपहरी चढ़ रही थी। धीरे-धीरे एक पहर रात बीत बीत गई। ग्राहकों की भीड़ कुछ कम हुई। रूपा अब सिर्फ कुछ चुने हुए प्रेमी ग्राहकों से घुल-घुल कर बातें कर रही थी। धीरे-धीरे एक अजनबी आदमी दुकान पर आकर खड़ा हो गया। रूपा ने अप्रतिभ होकर पूछा:—

"आपको क्या चाहिए ?"

"आपके पास क्या-क्या मिलता है ?"

"बहुत सी चीजें। क्या पान खाइएगा ?"

"क्या हर्ज है।"

रूपा के संकेत से दासी बालिका ने पान की तश्तरी अजनबी के आगे धर दी।

दो बीड़ियाँ हाथ में लेते हुए उसने कहा—"इनकी कीमत क्या है बी साहबा ?"

"जो कुछ जनाब दे सकें ?"

"यह बात है ? तब ठीक, जो कुछ मैं लेना चाहूँ वह लूँगा भी !" अजनबी हँसा नहीं। उसने भेदभरी दृष्टि से रूपा को देखा।

रूपा की भृकुटी ज़रा टेढ़ी पड़ी और वह एक बार अजनबी को तीव्र दृष्टि से देख कर फिर अपने मित्रों के साथ बातचीत में लग गई। पर बातचीत का रंग जमा नहीं। धीरे-धीरे मित्रगण उठ गए। रूपा ने एकान्त पाकर कहा—

"क्या हुज़ूर का मुझसे कोई खास काम है ?"

"मेरा तो नहीं, मगर कम्पनी बहादुर का है।"

रूपा काँप उठी। वह बोली—"कम्पनी बहादुर का क्या हुक्म है ?"

"भीतर चलो तो कहा जाय।"

"मगर माफ कीजिए—आप पर यकीन कैसे…."

"ओह ! समझ गया। बड़े साहब की यह चीज तो तुम शायद पहचानती ही होगी ?"

यह कह कर उन्होंने एक अंगूठी रूपा को दूर से दिखा

"समझ गई। आप अन्दर तशरीफ लाइए।"

रूपा ने एक दासी को अपने स्थान पर बैठा कर अजनबी के साथ दुकान के भीतरी कक्ष में प्रवेश किया। दोनों व्यक्तियों में क्या-क्या बातें हुईं, यह तो हम नहीं जानते। मगर उसके ठीक तीन घंटे बाद दो व्यक्ति काला लबादा ओढ़े दुकान से निकले और किनारे लगी हुई पालकी पर बैठ गए। पालकी धीरे-धीरे उसी भूतों वाली मस्जिद में पहुँची। उसी प्रकार मौलवी ने कब्र का पत्थर हटाया और एक मूर्ति ने कब्र के तहखाने में प्रवेश किया। दूसरे व्यक्ति ने एकाएक मौलवी को पटक कर मुश्कें बाँध लीं और एक संकेत किया। क्षण भर में पचास सुसज्जित काली-काली मूर्तियाँ आ खड़ी हुईं और बिना एक शब्द मुँह से निकाले चुपचाप कब्र के अन्दर उतर गईं।

: ४२ :

अंतिम प्याली

अब फिर चलिए अनंगदेव के उसी रंग मंदिर में। सुख साधनों से भरपूर वही कक्ष आज सजावट खत्म कर गया था। सहस्र उल्कापात की तरह रंगीन हांडियाँ, बिल्लौरी फानूस और हजारा झाड़ जल रहे थे। तत्परता से किन्तु नीरव बांदियाँ और गुलाम दौड़-धूप कर रहे थे। अनगिनत रमणियाँ अपने मदभरे होठों की प्यालियों में भाव की मदिरा उंडेल रही थीं। उन सुरीले रागों की बौछारों में बैठे बादशाह वाजिदअली शाह शराबोर हो रहे थे। उस गायनोन्माद में मालूम होता था, कमरे के जड़ पदार्थ भी मतवाले हो कर नाच उठेंगे। नाचने वालियों के ठुमके और नूपुर की ध्वनि सोते हुए यौवन से ठोकर मार कर कहती थी—"उठ, उठ, ओ मतवाले, उठ।" उन नर्तकियों के बढ़िया चिकनदोजी के सुवासित दुपट्टों से निकली हुई सुगन्ध उन के नृत्य के वेग से विचलित वायु के

साथ घुल-मिल कर गदर मचा रही थी। सामन का सुनहरा फव्वारा, जो स्थिर ताल पर बीस हाथ ऊपर फैंक कर रंगीन जल बिन्दु राशियों से हाथापाई कर रहा था, देख कर कलेजा बिना उछले कैसे रह सकता था।

उस मसनद पर बादशाह वाजिदअली शाह बैठे थे। एक गंगा जमनी काम का अलबेला वहाँ रखा था। जिस की खमीरी मुश्की तम्बाखू जल कर एक अनोखी सुगन्ध फैला रही थी। चारों तरफ सुन्दरियों का झुरमुट उन्हें घेर कर बैठा था। सभी अधनंगी उन्मत्त और निर्लज्ज हो रही थीं। पास ही सुराही और प्यालियाँ रखी थीं और बारी-बारी से वे उन दुर्लभ होठों को चूस रही थीं। आधा मद पी कर वे सुन्दरियाँ उन प्यालों को बादशाह के होठों में लगा देती थीं। वह आँखें बन्द कर के उन्हें पी जाते थे। कुछ सुन्दरियाँ पान लगा रही थीं। कुछ अलबेले की निगाली पकड़े हुई थीं। दो सुन्दरियाँ दोनों तरफ पीकदान लिए खड़ी थीं, जिन में बादशाह कभी-कभी पीक गिरा देते थे।

इस उल्लसित आमोद के बीचोबीच एक मुर्झाया हुआ पुष्प कुचली हुई पान की गिलौरी—वही बालिका—बहुमूल्य हीरे खचित वस्त्र पहने बादशाह के बिल्कुल अंक में मूर्च्छित और अस्त-व्यस्त पड़ी थी। रह-रह कर शराब की प्याली उस के मुख से लग रही थी। और वह खाली कर रही थी। एक निर्जीव दुशाले की तरह बादशाह उसे अपने बदन से सटाए मानो अपनी तमाम इन्द्रियों को एक ही रस में शराबोर कर रहे थे। गम्भीर आधी रात बीत रही थी। सहसा इसी आनन्द वर्षा में बिजली गिरी। कक्ष के उसी गुप्त द्वार को विदीर्ण कर क्षण भर में वही रूपा काले आवरण से नखशिख ढके निकल आई। दूसरे क्षण में एक और मूर्ति वैसे ही आवेष्ठन में गुप्त बाहर निकल आई। क्षण भर बाद दोनों ने अपने आवेष्ठन उतार फेंके। वही अग्निशिखा ज्वलन्त रूपा और उस के साथ गौरांग कर्नल उटरम।

नर्तकियों ने एकदम नाचना गाना रोक दिदा। बांदियाँ शराब की प्यालियां लिए काठ की पुतली की तरह खड़ी की खड़ी रह गई। केवल

फव्वारा ज्यों का त्यों आनन्द से उछल रहा था। बादशाह यद्यपि बिल्कुल बदहवास थे, मगर यह सब देख वह मानो आवे उठ कर बोले—"ओह! रूपा, दिलरुबा! तुम और···ऐं मेरे दोस्त कर्नल इस वक्त? यह क्या माजरा है?"

आगे बढ़ कर और अपनी चुस्त पोशाक को ठीक करते हुए तलवार की मूठ पर हाथ रखते कर्नल उटरम ने कहा—"कल आलीशाह की बंदगी में हाजिर हुआ था, मगर···।"

"ओफ, मगर, इस वक्त इस रास्ते से आप, ऐं, माजरा क्या है? अच्छा बैठो, हां, जोहरा! एक प्याला मेरे दोस्त कर्नल को····।"

"माफ कीजिए हुजूर। इस वक्त मैं आनरेबुल कम्पनी सरकार के एक काम से आप की खिदमत में हाजिर हुआ हूँ।"

"कम्पनी सरकार का काम? वह क्या काम है?" बैठते हुए बादशाह ने कहा।

"मैं तखलिए में अर्ज किया चाहता हूँ।"

"तखलिया! अच्छा जोहरा! खुदा कादिर!"

धीरे-धीरे रूपा को छोड़ कर सभी बाहर निकल गईं। इस सौन्दय स्वप्न में अवच्छिन रह गई अकेली रूपा। रूपा को लक्ष्य करके बादशाह ने कहा—"यह तो गैर नहीं है रूपा! दिलरुबा। एक प्याला अपने हाथ से दो तो।" रूपा ने सुराही से शराब उंडेल लबालब प्याला भर कर बादशाह के होंठों से लगा दिया। हाय! लखनऊ की नवाबी का वही अन्तिम प्याला था। उसे बादशाह ने आंखें बन्द कर पी कर कहा—वाह प्याले! हां, अब कहो वह बात। मेरे दोस्त····।"

"हुजूर को जरा रेजीडेंसी तक चलना पड़ेगा।"

बादशाह ने उछल कर कहा—"ऐं, यह कैसी बात! रेजीडेंसी तक मुझे?"

"जहाँपनाह, मैं मजबूर हूँ। काम ऐसा ही है।"

"इस का मतलब?"

"मैं अर्ज नहीं कर सकता। कल मैं भी तो अर्ज करने हाजिर हुआ था।"

"गैर मुमकिन ! गैर मुमकिन।" बादशाह गुस्से से होंठ काट कर उठे और अपने हाथ से सुराही से उंडेल कर ३-४ प्याले पी गए। धीरे-धीरे उसी दीवार से एक-एक करके चालीस गोरे सैनिक संगीन और किर्चें सजाए कक्ष में घुस आए।

बादशाह देख कर बोले—"खुदा की कसम, यह तो दगा है ! कादिर !"

"जहाँपनाह अगर खुशी से मेरी अर्जी कबूल न करेंगे तो खून-खराबी होगी। कम्पनी बहादुर के गोरों ने महल को घेर लिया है। अर्ज यही है कि सरकार चुपचाप चले चलें।"

बादशाह धम से बैठ गए। मालूम होता है क्षरण भर के लिए उनका नशा उतर गया। उन्होंने कहा—"तुम तब क्या मेरे दुश्मन हो कर मुझे कैद करने आए हो ?"

"मैं हुजूर का दोस्त, हर तरह हुजूर के आराम और फरहत का ख्याल रखता हूँ और हमेशा रखूंगा।"

बादशाह ने रूपा की ओर देख कर कहा—"रूपा ! रूपा ! यह क्या माजरा है ? तुम भी क्या इस मामले में हो ? एक प्याला, मगर नहीं, अब नहीं, अच्छा सब साफ-साफ सच कहो ! कर्नल मेरे दोस्त, नहीं नहीं, अच्छा, कर्नल उटरम ! सब खुलासावार बयान करो !"

"सरकार, ज्यादा मैं कुछ नहीं कह सकता। कम्पनी बहादुर का खास परवाना ले कर खुद साहब गवर्नर जनरल के अन्डर सेक्रेटरी तशरीफ लाए हैं। वे आलीजाह से कुछ मश्वरा किया चाहते हैं।"

"मगर यहाँ ?"

"यह नामुमकिन है !"

बादशाह ने कर्नल की तरफ देखा। वह तना खड़ा था और उसका हाथ तलवार की मूठ पर था।

"समझ गया, सब समझ गया।" यह कह कर बादशाह कुछ देर हाथों से आँखें ढाँप कर बैठ गए। कदाचित उनकी सुन्दर रस-भरी आँखों में आँसू भर आए।

रूपा ने पास आ कर कहा—"मेरे खुदावन्द बाँदी······"

"हट जा ऐ नमकहराम, रजील, बाजारू औरत।"

बादशाह ने यह कह कर उसे एक लात मारी और कहा—"तब चलो, मैं चलता हूँ। खुदा हाफिज।"

पहले बादशाह, पीछे कर्नल उटरम, उसके पीछे रूपा और सब के अन्त में एक-एक करके सिपाही उसी दरार में विलीन हो गए। महल में किसी को कुछ मालूम न था। वह मूर्तिमान संगीत, वह उमड़ता हुआ आनन्द-समुद्र सदा के लिए किसी जादूगर ने निर्जीव कर दिया।

: ४३ :

कबूतर और बिल्ली

वाजिदअली ने तेज हो कर कहा—"आखिर आप का मकसद क्या है? आप याद रखिए कि आप अवध के बादशाह से बातें कर रहे हैं!"

"मैं हुजूर ही से बात करने हिज़ एक्सलेन्सी गवर्नर जनरल के हुक्म से आया हूँ। यह एक निर्णय पत्र है, इस पर दस्तखत कीजिए।"

"इसका क्या मतलब?"

"सिर्फ यही कि अब से आप अवध के बादशाह नहीं रहे!"

नवाब ने गुस्से से होंठ चबाया। फिर निर्णय-पत्र को पढ़ा। उसमें जो कुछ लिखा था—उसका अभिप्राय था—कि मैं अपना राज्य कम्पनी की सरकार को अपनी खुशी से सौंपता हूँ। बादशाह ने कागज फेंक कर कहा—

"खुदा की कसम यह तो दगा है।"

"हुजूर, आप का यही रवैया अगर जवाब देने का रहा तो मुझे डर

है कि आप मुकर्रर पैन्शन से भी हाथ धोएँगे।"

"मैं पूछता हूँ कि क्या यह डकैती नहीं है?"

"आप के इस सवाल का जवाब मैं नहीं दे सकता। मुझे तो गवर्नर जनरल साहब बहादुर का सिर्फ यह हुक्म है कि आप इस कागज पर दस्तखत कर दें।"

"और यदि मैं ऐसा न करूँ?"

"तो इसका मतलब यह होगा कि आप कम्पनी बहादुर से लड़ाई करने पर आमादा हैं।"

"समझ गया। इसीलिए मेरी तमाम फौजों को तबाह किया गया। मैंने अंग्रेजों पर भरोसा किया। उन पर मैंने और मेरे बुजुर्गों ने खजाना लुटाया, हर तरह दोस्ती का दम भरा—लेकिन उसका यह नतीजा? यह जुल्म या लूट।"

बादशाह ने दोनों हाथों से मुँह ढाँप लिया वे बालकों की भाँति दाँड़ें मार कर रोने लगे। पर इसका कोई परिणाम न निकला।

तीन दिन बीत गए। और तीसरे दिन सूर्योदय के प्रथम ही अंग्रेजी सेना लखनऊ में घुस गई। उजड्ड गोरे शाही महलों में घुस कर महल को लूटने और बेगमों को बेइज्जत करने लगे, सारे लखनऊ में तहलका मच गया। बेगमात महल से निकाल बाहर की गईं। और राजप्रासाद में गोरे सोल्जरों का निवास कायम हुआ।

नवाब को कलकत्ते ले जा कर मटिया बुर्ज में कैद कर दिया गया।

: ४४ :

मटिया बुर्ज में

हजारों में दर्शनीय वाजिदअली शाह मटिया बुर्ज की मनहूस दीवारों में नजरबन्द थे। ठाट वहाँ भी थे। सैकड़ों दासियाँ-बाँदियाँ और वेश्याएँ भरी हुई थीं पर वह लखनऊ का रंग कहाँ?

खाना खाने का वक्त हुआ, और जब दस्तरखान पर ख़ाना चुना गया, तो बादशाह ने चख कर फेंक दिया। अंग्रेज अफसर ने घबरा कर पूछा—'खाने में क्या नुक्स है ?"

जवाब दिया गया—"नमक खराब है।"

"नवाब नमक कैसा खाते हैं ?"

"एक नमक का डला रख कर उस पर पानी की धार छोड़ी जाती है। जब घुलते-घुलते छोटा-सा टुकड़ा रह जाता है, तब बादशाह के खाने में वह नमक इस्तेमाल होता है।

अंग्रेज अधिकारी मुस्कराता हुआ चला गया। क्यों ? ओह, सब लोगों के समझने योग्य यह भेद नहीं।

उसी रस-रंग की दीवारों के भीतर अब सरकारी दफ्तर खुल गए हैं और वह अमर कैसरबाग मानों रंडुए की तरह खड़ा उस रसीली रात की याद में सिर धुन रहा है।

: ४५ :

गुनाहों का लबरेज़ प्याला

बर्मा और पंजाब के तो युद्ध जय किए गए। अब डलहौजी ने सभ्य डकैती आरम्भ की। इस डकैती का सभ्य नाम था लैप्स और इन्टरनल रिफार्म। हिन्दुओं की एक यह पुरानी परम्परा थी कि यदि किसी गृहस्थ की कोई सन्तान उत्तराधिकारी न हो तो उसे गोद लेने का अधिकार था। यह प्रथा धार्मिक और सामाजिक दोनों दृष्टियों से सम्मत थी। हिन्दू विश्वास के अनुसार पुत्र न केवल पिता की सम्पत्ति का अधिकारी होता है, अपितु श्राद्ध तर्पण और पिण्डदान करने वाला भी होता है। बिना इन धार्मिक कृत्यों के मृतात्मा की मुक्ति नहीं होती, ऐसा विश्वास परम्परा से हिन्दुओं का चला आता रहा है। इसमें कहाँ कितना भाग उचित है और कितना अनुचित—यहाँ हम इस बात पर विचार नहीं

करेंगे। उत्तराधिकार का अधिकार ही नई समाज रचना के विपरीत है—यह बात जुदा है। यदि कोई भारतीय सरकार इस प्रकार की अफवाहों का समाज सुधार की दृष्टि से प्रयोग करे तो बात जुदा है। परन्तु यहाँ तो लूट-खसोट के लिए, अपहरण के लिए कोई बहाना निकालना मात्र उद्देश्य था। प्रश्न यह था कि छोटी रियासतों के शासकों के गोद लिए उत्तराधिकारियों को मान्यता देने या न देने का अधिकार अंग्रेजी सरकार को था या नहीं। यह तो सच था कि डलहौजी के समय में अंग्रेजों का पुराना दृष्टिकोण बदल चुका था और अब अंग्रेजी सरकार अपने आप को भारत की चक्रवर्ती शक्ति समझती थी। लैप्स का सिद्धांत उसी का एक कुफल था। डलहौजी के पूर्ववर्ती अधिकारी भी लैप्स का प्रयोग कर चुके थे। परन्तु डलहौजी की नीति थी कि जहाँ तक सम्भव हो रियासतों को ब्रिटिश राज्य में विलीन किया जाय।

डलहौजी की इस नीति के दो कारण थे। प्रथम तो यह कि भारत की बाह्य सीमाएँ सुरक्षित हो चुकी थीं। उत्तर में खैबर दर्रा दक्षिण और पश्चिम में समुद्र और पूर्व में अपर वर्मा। इनके बीच के समूचे देश को वे अब अपना समझते थे, और वे यह धारणा मूर्त कर रहे थे कि जब चारों ओर की रेखाएँ बन चुकी हैं, तो बीच के गढ़े क्यों कायम रखे जायँ। क्यों न ब्रिटिश साम्राज्य अभंग, सुव्यवस्थित और सुरक्षित बना लिया जाय। अब तक राजाओं के साथ जो व्यवहार ब्रिटिश सत्ता का चल रहा था, उसका स्वरूप यह था कि राजाओं को उपयोग के सब साधन सुलभ थे पर राज्य व्यवस्था का उन पर कोई दायित्य लगभग नहीं ही था। एक प्रकार से प्रत्येक राजा का प्रबन्ध रेजीडेन्ट या अंग्रेजी सेना के हाथों में था। यह एक प्रकार का दुहरा शासन था और इसमें अनेक दोष थे। जो अनुभव से अब आगे आ रहे थे। अब दो बातें ही हो सकना सम्भव थीं—कि या तो राजाओं के मौज-मजा के उपभोग के अधिकार सीमित कर दिए जाते और उन पर राज्य प्रबन्ध का दायित्व डाल दिया जाता, जिससे उनके अधिकार और कर्तव्य दोनों ही एक-दूसरे पर निर्भर होते और दूसरी

बात लैप्स थी। बस न रहे बाँस न बाजे बाँसुरी। डलहौजी महत्वाकांक्षी भी था, निष्ठुर भी और साहसिक भी। अतः उसने अपने शासनकाल में लगभग एक दर्जन छोटी-बड़ी रियासतों के शासनों को लैप्स की झाड़ू से बुहार फेंका। पहला वार छत्रपति शिवाजी के वंशधरों पर हुआ। अंग्रेजों ने जब पेशवा की गद्दी का विध्वंश किया था तब शिवाजी के वंशज प्रतापसिंह को सतारा का महाराज घोषित कर मराठों को तसल्ली दी थी। प्रतापसिंह उस समय नाबालिग था। अंग्रेजों ने कैप्टन ग्रान्ट डफ को रेजीडेन्ट और महाराज का संरक्षक बना दिया था। जब प्रतातसिंह बालिग हुआ और उसने राज्य का भार सम्हाला तो वह एक महत्वाकाँक्षी और मेधावी तरुण के रूप में उदय हुआ। यह देख कर अंग्रेजी सरकार की चिंता बढ़ी; उन्होंने उसे शीघ्र ही अयोग्य कह कर धर्मानुष्ठान करने के लिए बनारस भेज दिया और उसके एक अयोग्य भाई को सतारा की गद्दी पर बैठा दिया जो शीघ्र ही निःसन्तान मर गया। बस सतारा का राज्य डलहौजी ने अपनी पाकेट में डाल लिया। दूसरा वार नागपुर के भोंसले पर हुआ। राघोजी भोंसला सन् ५३ में मर गया। उसका कोई पुत्र न था। इस पर राघोजी की दादी ने रिश्ते के एक बालक को गोद लिया था। परन्तु डलहौजी ने उसे नहीं स्वीकार किया और नागपुर राज्य अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया। जब यह कहा गया कि दत्तक लेने का अधिकार हिन्दूशास्त्र का है, तो जवाब दिया गया—दत्तक पुत्र मृत पिता का धार्मिक कृत्य करे, इस पर सरकार को आपत्ति नहीं है, पर राज्य पर उसका अधिकार अमान्य है। नागपुर में केवल यही नहीं कि दत्तकपुत्र अमान्य किया गया, रानियों के जवाहिरात, कीमती वस्त्र और निजी सामान तक छीन कर बाजार में नीलाम कर दिए गए। पहले महल के हाथी, घोड़ों और बैलों को बेचा गया, फिर रानियों के गहने और कपड़ों की बारी आई। इसके बाद महल की सजावट के सामान—पलंग, कुर्सी आदि तक नीलाम कर दिए गए। यह नीलाम भी एक प्रकार की लूट थी। सौ रुपयों का सामान पाँच रुपयों में नीलाम किया गया। इन

कामों से सारे देश में अंग्रेजी राज्य की साख गिर गई। और सभी रजवाड़े चौकन्ने हो उठे। पर डलहौजी की नजर इस बात पर न थी, वह खुश थी कि रुई का महान व्यापारिक देश उसके हाथ लगा था।

अब झांसी की बारी आई। सन् १८१७ में एक संधि पत्र के द्वारा राव रामचन्द्र राव को झांसी का राजा स्वीकार किया था। वैंक्टंग ने उसे राजा का खिताब दिया, सन् ५३ में जब राजा गंगाधर की मृत्यु हो गई तो अंग्रेज रेजीडेंट के सामने ही गोद लिए उनके पुत्र को डलहौजी ने अस्वीकार कर दिया, और झांसी राज्य अंग्रेजी राज्य में मिला कर दत्तक पुत्र को पाँच लाख रुपए की जायदाद और लक्ष्मीबाई को पाँच हजार रुपया वार्षिक की पेंशन नियत कर दी।

इन बड़ी रियासतों की भाँति और भी छोटी रियासतें—बिहार का संबलपुर, बुन्देलखंड में जैतपुर हिमाचल प्रदेश में बघाट, बंगाल में उदयपुर, राजपूताने में करौली आदि रियासतें ब्रिटिश राज्य में मिला ली गईं।

कर्नाटक और अर्काट की नवाबी का अन्त उनके मरते ही हो गया। तंजोर के राजा के मरने पर उसके लड़के को राजा नहीं माना गया। बाजीराव के दत्तक लिए पुत्र नानाराव ने चाहा था कि उसको बाजीराव के समान ८० हजार पौंड की वार्षिक पेंशन दी जाय; पर नाना को बता दिया गया कि यह पेंशन उसके लिए व्यक्तिगत थी, नाना को उसका अधिकार नहीं। बस, सरकारी कागजों में पेशवा का पद और नाम दोनों समाप्त हो गए।

बड़ी-बड़ी रियासतों में जो अंग्रेज रेजीडेन्ट रहते थे, केवल राजदूत या एजेन्ट ही न होते थे, वे शासन के प्रत्येक विभाग में दखल रखते थे और घरेलू मामलों में भी हस्तक्षेप कर सकते थे। एक प्रकार से वे देशी राजाओं के सिर पर अंकुश थे। रियासतों की प्रजा भी इस बात को समझ गई थी कि राजा-नवाब केवल काठ के खिलौने हैं। असल शासक रेजीडेन्ट है। इसका परिणाम यह हुआ कि देशी शासकों का दबदबा

बिल्कुल उठ गया और यह दशा हो गई कि न तो रियासतों का ठीक प्रबन्ध ही होता था न पूरा लगान ही वसूल होता था। शासक लोग अपनी लन्तरानियोंमें अंधाधुँध खर्च करते थे और वसूली कम होती थी। बस अंग्रेजी सरकार को अवसर मिल जाता था, खास कर ऐसी हालत में जबकि अंग्रेजी सेना का खर्चा समय पर नहीं दिया जाता था और खर्च की बहुत सी रकम ऋण के तौर पर चढ़ जाती थीं, तो उसके बदले किसी न किसी उपजाऊ इलाके की माँग की जाती थी; और इस माँग का स्वरूप यह होता था कि इधर माँग की और उधर कब्जा किया। स्वीकृति की आवश्यकता ही न थी। इस प्रकार बड़ी-बड़ी रियासतों के टुकड़े निरन्तर हज्म होते ही रहते थे। अब इस प्रकार का करारा वार बरार और अवध पर हुआ। डलहौजी ने निजाम को सन् ५५ में लिखा—कि वह कायदे के अनुसार अंग्रेजी सेनाओं का खर्च देने में असमर्थ है, अतः सरकार बरार के इलाके को अपने प्रबन्ध में ले रही है। अब आगे—हैदराबाद में जो अंग्रेजी सेनाएँ रहेंगी उनका खर्च सरकार को देना नहीं पड़ेगा। इस प्रकार बरार का उपजाऊ इलाका हैदराबाद से काट लिया गया।

परन्तु अवध के बादशाह वाजिदअली शाह को पदच्युत कर के समूचे अवध को अंग्रेजी राज्य में मिला लेना डलहौजी का अन्तिम कारनामा था। अवध का बादशाह अंग्रेजों का विश्वस्त मित्र था। मित्रता का प्रमाण यह था कि राज्य के आन्तरिक शासन में वहाँ अंग्रेज रेजीडेन्ट मनमानी कर सकता था। उसी मित्रता का उसे यह फल मिला।

कहा जाता है कि वाजिदअली शाह ऐयाश और उसकी प्रजा अत्यन्त दुखी थी। यह यदि सत्य मान भी लिया जाय तो भी हम यह मानने को तैयार नहीं कि विलासिता को नष्ट करने या प्रजा को समृद्ध करने के लिए अंग्रेजों ने अवध को हड़पा। हकीकत यह थी कि अंग्रेज अवध की हरी-भरी भूमि और उसे उत्तराखण्ड से लगा देख कर अपना लोभ संवरण नहीं कर सके। अवध के हड़पने को बहुतों ने अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनु-

सार अनुचित और ब्रिटेन के नाम पर कलंक लगाने वाला बताया है ; परन्तु डलहौजी ने इस पर विचार नहीं किया। अंग्रेजों की बलात्कार की नीति का जो दौर वर्षों से चल रहा था वह अवध के कवलीकरण से अपनी पराकाष्ठा को पहुंच गया। सब के अन्त में उसने यह भी घोषणा की कि दिल्ली के बादशाह बहादुरशाह की मृत्यु के बाद उसकी संतान को लालकिला और राजभवन त्यागना पड़ेगा। लार्ड डलहौजी कम्पनी के गुनाहों का प्याला लबरेज कर के भारत से विदा हुआ।

: ४६ :

खतरे की घंटी

जिले गुड़गांव के फिरोजपुर रियासत के नवाब अहदबख्त मर गए और उनके तीनों बेटों में रियासत के मामले पर झगड़ा उठ खड़ा हुआ। अंग्रेज अफसर रईसों के उत्तराधिकारियों के ऐसे झगड़ों में खूब दिलचस्पी लिया करते ; इसलिए फौरन अंग्रेजी सरकार इस मामले के बीच में पड़ गई। उसने बजाय इसके कि तीनों भाइयों को बराबर बंटवारा कर दिया जाय। रियासत के दो हिस्से कर दिए। बड़े भाई को फिरोजपुर दे दिया और छोटे दोनों भाइयों को लोहारू सौंप दिया। परन्तु बड़े लड़के नवाब शमशुद्दीन को वह फैसला पसन्द न आया। उसने कह-सुन कर लोहारू अपने अधिकार में ले लिया और भाइयों को गुजारा देना स्वीकार किया। उन दिनों विलियम फ्रेजर दिल्ली में गवर्नर जनरल का एजेन्ट था। उसके पास छोटे नवाब अमीनुद्दीन जा कर रोया पीटा, तो उसे उसने कलकत्ते जा कर अपील करने की सलाह दी। जब नवाब शमशुद्दीन को, इस बात का पता लगा तो वह बहुत भड़का। और फ्रेजर के पास जा कर शिकायत की कि आप नाहक मेरे साथ दुश्मनी कर रहे हैं, और हमारे घरेलू मामलों में टाँग अड़ाते हैं। भला अंग्रेज एक हिन्दुस्तानी की यह गुस्ताखी कब बर्दाश्त कर सकता था। उसने शमशुद्दीन को अपने

मकान से निकल जाने को कहा। इस पर शमशुद्दीन ताव पेंच खा कर रह गया। कुछ दिन बाद वह फिर दिल्ली गया और अपनी पेंशन लेने फ्रेजर के पास गया। लेकिन फ्रेजर ने उससे मिलने तक से इन्कार कर दिया। और उसके इशारे से उसके नौकरों ने उससे कहा—कि साहब की कोठी से दूर चले जाओ। शमशुद्दीन इस अपमान से क्रोध से अधीर हो उठा। और उसने फ्रेजर को जान से मार डालने का निश्चय कर लिया।

शमशुद्दीन का एक दोस्त लाल किले में रहता था। उस का नाम मुगल बेग था। उस ने फ्रेजर के रहन-सहन, दिनचर्या तथा बाहर आने-जाने का समय और रास्ते सब मालूम कर लिए और उस ने सब बातें समझा-बुझा कर अपने विश्वस्त नौकर करीम खाँ को फ्रेजर को मार डालने के लिए दिल्ली भेज दिया। शमशुद्दीन का दरियागंज में अपना एक मकान था। करीम वहीं रहने और मौके की इन्तजारी करने लगा। जाहिरा उस ने यह प्रकट किया कि वह नवाब के लिए कुत्ते खरीदने आया है। जिस का नवाब को बेहद शौक है। कुछ कुत्ते उसने खरीदे भी।

छह महीने बीत गए और उसे अवसर नहीं मिला। फ्रेजर धीरज की पहाड़ी पर रहता था। जब वह शहर में आता तो घोड़े पर सवार होकर आता और एक अर्दली सदैव उस के साथ रहता था।

बाईस मार्च की रात थी। किशनगढ़ के राजा ने एक भोज का आयोजन किया था। बहुत से अंग्रेज उस में निमंत्रित थे, फ्रेजर भी था। दैव संयोग से उस रात उस का अर्दली उस के साथ न था।

आधी रात बीत चुकी थी। सड़कों पर अन्धेरा और सन्नाटा था। करीम खाँ दुनाली लिए उस की ताक में बैठा था। ज्यों ही वह उस की मार में आया। करीम खाँ ने दुनाली दाग दी। गोली ने फ्रेजर की खोपड़ी को चकनाचूर कर दिया और वह घोड़े से गिर पड़ा। खाली घोड़ा भाग गया।

एक अंग्रेज अफसर की यह पहली हत्या थी। यद्यपि यह व्यक्तिगत

मामला था, पर इस घटना को सुन कर अंग्रेजों के दिल दहल गए। दिल्ली से कलकत्ते तक इस हत्या की जोर-शोर से चर्चा हुई। अपराधी और उस की पृष्ठभूमि में उपस्थित अभियुक्तों को खोज निकालने के लिए खास जासूस और अफसर नियुक्त किए गए। बहुतों को सजाएँ और बहुत से निरपराधों को फांसी दी गई। करीम खाँ को भी फाँसी पर लटका दिया गया और नवाब शमशुद्दीन की रियासत जब्त कर ली गई। परन्तु यह केवल खतरे की घण्टी थी। इस बात पर अंग्रेजों ने नहीं विचार किया।

: ४७ :

निराले दम्पति

कर्नल मेकडानल्ड और शुभदा के विवाह से कलकत्ते के भारतीय और यूरोपियन दोनों ही फिर्कों में हलचल उत्पन्न हो गई थी। और अब यह विवाह कलकत्ते में आम चर्चा का विषय बन रहा था। यों तो इस प्रकार के अन्तर्जातीय विवाह कलकत्ते और भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में रहने वाले अंग्रेज करते ही रहते थे, पर वे साधारण व्यापारी और स्त्रियाँ प्रायः नीच जाति की या मुसलमान हुआ करती थीं। यह हम प्रथम ही बता चुके हैं कि उन दिनों तक भी भारत में बहुत कम अंग्रेज-स्त्रियां आती थीं। प्रायः अंग्रेज अकेले ही रहते थे। इस कारण प्रथम तो भारत में इन यूरोपियनों के आचरण बहुत ही भ्रष्ट रहते थे, दूसरे जैसे ही कोई अंग्रेज औरत विधवा हुई कि उसके बहुत से उम्मीदवार खड़े हो जाते थे। कलकत्ता इस प्रकार की कार्यवाहियों का केन्द्र था। परन्तु उच्च श्रेणी के अंग्रेज अफसर अक्सर अपने को भारतीयों से दूर ही रखते थे। कर्नल मेकडानल्ड और शुभदा का विवाह इस प्रकार के अन्य अन्तर्जातीय विवाहों से निराला था। प्रथम तो मेकडानल्ड उच्च सैनिक अफसर था, दूसरे वह कुलीन अंग्रेज था। तीसरे उसने जिस वीरता से

शुभदा का चिता से उद्धार किया था, वह बात भी कलकत्ता के भारतीय और अंग्रेज परिवारों में बहुत प्रसिद्ध हो गई थी। परन्तु इन सब बातों से अधिक प्रभावशाली बात थी शुभदा का व्यक्ति-वैशिष्ठ्य। वह एक तेजस्विनी और मेधावी हिन्दू स्त्री थी। पादरी जानसन की सोहबत में उसने न केवल अंग्रेजी भाषा की अच्छी शिक्षा पाई थी, उसने पाश्चात्य विचारों और रहन-सहन का भी भलीभांति अध्ययन कर लिया था। महत्वपूर्ण बात यह थी कि हिन्दू जाति के द्वारा ऐसी भयंकर स्थिति में पड़ कर और ईसाइयों द्वारा रक्षित और शिक्षित होने पर भी वह अन्तःकरण से हिन्दू थी। उसने अपना विवाह भी हिन्दू संस्कारों से किया था और उसके समर्थक राजा राममोहन राय जैसे महापुरुष थे। विवाह के समय अवश्य उसने घूंघट नहीं निकाला। अनावश्यक रीतियों का पालन नहीं किया, परन्तु उसने शुद्ध बंगाली वधू का वेष धारण किया था। यदि वह ईसाई हो जाती और चर्च विधि से अपना विवाह कर लेती तो कदाचित इस विवाह की इतनी चर्चा न होती। पर यह तो सब से निराला और अनहोना विवाह था।

बर्मा युद्ध से निवृत्त होकर कर्नल मेकडानल्ड की नियुक्ति अब कलकत्ते के पास बैरकपुर की छावनी में स्थायी रूप से हो गई थी तथा वह बैरकपुर स्थित देशी सेना का एक उच्च सैनिक अधिकारी था।

विवाह के तुरन्त बाद ही कर्नल मेकडानल्ड बर्मा के फ्रन्ट पर चले गये थे। वह उन बातों को भूले न थे जो शुभदा से उनकी हुई थीं। शुभदा का आत्मसम्मान, भारतीय निष्ठा और उच्च विचार से वह इतने प्रभावित हुए कि—उनके देखते बर्मा में उनकी सेना ने कोई अनाचार नहीं किया। यद्यपि मेकडानल्ड एक ऐसे तरुण अंग्रेज थे जिन्हें अपनी अंग्रेजियत पर घमण्ड था। निःसन्देह वह भारतीयों को तुच्छ, अछूत और पिछड़ा हुआ समझते थे; परन्तु उनके प्रति उनके मन में जो घृणा थी वह शुभदा की बातचीत और प्रभाव से बहुत कम हो गई थी।

बैरकपुर के उच्च सैनिक अधिकारी बनने के बाद उन्हें एक बढ़िया

बंगला मिल गया था। वहाँ वह शुभदा को ले गये थे। बंगले की उत्तम अंग्रेजी ढंग की सजावट, करीने से कटी हुई रौसें, सड़कों पर कुटी हुई लाल बजरी और बैरा, खानसामा, आया, और अरदलियों की पलटन, यह सब देख शुभदा अभिभूत हो गई थी। अब वह इतनी समझदार तो थी ही कि वह अपने इस भाग्य परिवर्तन को देखे, उस पर विचार करे। चिता पर से अर्धमूर्च्छित अधजली अवस्था में उठाई हुई अबोध बालिका का जीवन कहाँ से कहाँ पहुंच गया था—इसे शुभदा जितना ही विचारती उतना ही वह गम्भीर हो जाती थी।

नए बंगले में आकर उसने अच्छी तरह घूम फिर कर अपने घर को देखा। सेना के बड़े साहब की बीवी को शुद्ध बंगालन के रूप में देख कर बैरा, खानसामा हैरान और चमत्कृत थे। शुभदा एक काशीनाथ को अपने साथ पादरी जानसन के यहाँ से ले आई थी। कभी काशीनाथ शुभदा के उम्मीदवारों में था। परन्तु जैसे वह पादरी जानसन के यहाँ उसके जूते साफ किया करता था—वैसे यहाँ भी उसकी नई ड्यूटी थी। वह शुभदा का खास खिदमतगार होकर आया था। और अब अपनी नई मालकिन और नये घर से प्रसन्न था। उसे इस बात का भी मलाल न था कि वह जो कभी शुभदा का उम्मीदवार था, सो उसकी उम्मीदवारी टूट चुकी थी।

मेकडानल्ड यहाँ आते ही बहुत व्यस्त हो गए थे। उन्हें बहुत से खत लिखने थे, विलायती डाक भेजनी थी। और भी कुछ जरूरी काम करने थे। इतवार का दिन था—इसलिए गिरजे भी जाना था। वही जल्दी-जल्दी सब काम निबटा कर कपड़े बदल कर जब भीतर बंगले में आये तो देखा—शुभदा साड़ी के छोर से चाभियों का गुच्छा बांधे कर्मठ गृहिणी की भांति बैरों और अरदलियों से घर की व्यवस्था में आवश्यक परिवर्तन करा रही है। मेकडानल्ड ने हंस कर कहा—

"देखता हूँ तुम बहुत व्यस्त हो।"

"तुम भी तो काम में लगे थे, मैंने कहा—मैं जरा घर को ठीक-ठाक कर लूं!"

"घर तुम्हें पसन्द तो आया!"

"बहुत अच्छा घर है, लेकिन मेरा ठाकुरद्वारा कहाँ है?"

"ठाकुरद्वारा?"

"वाह! अपने ठाकुर को भोग लगाए बिना मैं पानी की बूंद भी नहीं पीती।"

"लेकिन तुम्हारे ठाकुर हैं कहाँ?"

"वाह! तुम्हें इतना भी पता नहीं। आओ इधर, लेकिन तुम जूता पहने हो, बाहर ही रहना।"

मेकडानल्ड ने हंस कर कहा—"अच्छी बात है बाहर ही रहूँगा।"

शुभदा उन्हें स्नानागार के पासवाली छोटी सी कोठरी में ले गई। वहाँ एक छोटे से पीतल के सिंहासन पर शुभदा के ठाकुर रखे थे।

"यही तुम्हारे ठाकुर हैं?"

"तो क्या, पर तुम हाथ जोड़ कर प्रणाम तो करो।

"मुझे उसकी विधि बताओ।"

शुभदा ने आडम्बर से ठाकुर को प्रणाम किया। मेकडानल्ड ने उस का अनुकरण कर नकली गम्भीरता से कहा—"बस इतने ही से हैं ठाकुर तुम्हारे?"

"इतने ही से हैं, पर इनसे बड़ा और कोई नहीं है।"

"तब तो हमें उस बड़े ड्राइंगरूम को ठाकुरद्वारा बनाना होगा।"

"मेरे ठाकुर तुम्हारे जैसे साहब बहादुर नहीं हैं। वे इसी कोठरी में रहेंगे, यहीं से हमें चरणामृत देते रहेंगे।"

"यह तो और भी अच्छा है। लेकिन मुझे भी कुछ तुम्हारे ठाकुर के लिए करना होगा।"

"बस जूता पहन कर कभी मेरे ठाकुरद्वारे में मत घुसना।"

"अच्छी बात है; और प्रणाम भी करना होगा?"

"तुम्हारे प्रणाम के मेरे ठाकुर भूखे नहीं हैं। मर्जी हो करना, मर्जी न हो मत करना।"

"तो शुभदा देवी; मेरी ओर से तुम्हीं प्रणाम कर दिया करो। और देखो मैं भुलक्कड़ आदमी हूँ। जरा ध्यान रखना तुम्हारे ठाकुर मुझ से नाराज न हो जायें। बस प्रसन्न रहें।"

"हाँ, हाँ प्रसन्न रहेंगे। लेकिन अब तुम कहाँ चले ?"

"भूल गईं ? इतवार है। मैं गिरजे जा रहा हूँ।"

"अरे ? मैं तो भूल ही गई थी।"

"काफी देर हो गई है। आओ नाश्ता कर लें।"

"अभी मुझे स्नान पूजा में देर लगेगी। तुम नाश्ता कर लो। नाश्ता टेबुल पर चुन दिया गया है।"

"तो तुम तब तक मेरे पास बैठो।"

उन्होंने शुभदा का हाथ पकड़ कर अपनी ओर खींचा। शुभदा उन्हें डाइनिंग रूम में ले गई। वहाँ बैठ कर मेकडानल्ड नाश्ता करने और बातें करने लगे। शुभदा ने कहा—"आज तो कई चिट्ठियां लिखीं ?"

"हाँ, लंदन से मेरी छोटी बहन का खत आया था। उसका जवाब लिखा। मैंने शादी की बात तो पहले ही लिख दी थी। उसने तुम्हारे विषय में बहुत से सवालात लिख भेजे थे। उन सब का जवाब मुझे लिखना पड़ा।"

"क्या-क्या सवालात थे ?"

"स्वाभाविक है कि उसकी और माँ की उत्सुकता तुम्हारे लिए है। इसीसे उन्होंने तुम्हारे सम्बन्ध में सब जानकारी हासिल करने की चेष्टा की। मैंने तसल्लीपूर्ण जवाब लिख दिया है।"

"उन्हें तुम यहाँ क्यों नहीं बुला लेते ?"

"बहन का एक तो पढ़ाई का सिलसिला चल रहा है। दूसरे माँ को वह अकेली नहीं छोड़ सकती, कुछ दिन में छुट्टी लेकर हम विलायत चलेंगे।"

"लेकिन क्या वह मुझे पसन्द करेंगी ?"

"क्यों नहीं। तुम्हारी जैसी भावज को वह पसन्द न करेंगी भला !"

"मैंने इसलिए कहा—कि प्रायः सभी अंग्रेज हम भारतीयों को हीन-दृष्टि से देखते हैं।"

"तुम्हें देख कर कौन भारतीयों को हीन दृष्टि से देखेगा।"

"यह तो तुम चापलूसी की बातें करते हो। खैर, गिरजे से कब तक लौटोगे ?"

"मुमकिन है कुछ देर लग जाय। क्योंकि कर्नल हिग्ररर्स और उनकी पत्नी गिरजे में आ रही हैं, वे मेरे पुराने दोस्त हैं, वे बड़े भले सिविलियन हैं। मिलोगी तो प्रसन्न होगी।"

"नहीं-नहीं मैं अधिक लोगों से मिलना पसन्द नहीं करती। हाँ, उन की पत्नी यदि किसी भारतीय स्त्री से मिलने में हानि न समझें तो उनसे जरूर मिलूंगी।"

"वह अभी विलायत से नई आई हैं। नहीं जानता उनका मिजाज कैसा है। सुना है—वे बड़े ठाठ की महिला हैं। गिरजे में वह आ ही रही हैं। देखूंगा।"

"अच्छा तो अब तुम जाओ। ईसू मसीह से प्रार्थना करो कि वह हम पर कृपा करें। मैं भी ठाकुर से यही अरदास करती हूँ। और तुम अपने मित्र और उनकी पत्नी से भी मिलो। मैं लंच पर तम्हारी प्रतीक्षा करूंगी।"

"मैं ठीक समय पर ही लौट आऊंगा।"

मेकडानल्ड शुभदा से विदा लेकर बाहर गए, जहाँ उनका घोड़ा तैयार था। घोड़े पर सवार होकर वह गिरजे की ओर चले गए।

: ४८ :

गिरजे की मुलाक़ात

गिरजे में अनेक अंग्रेज स्त्री-पुरुष एकत्र थे। वे या तो सरकारी अफसर थे, या व्यापारी जन। पर अधिकांश लोग सैनिक अधिकारी और उन के परिजन थे। इन सब का ध्यान केन्द्रित था कर्नल ह्रिअरर्स की मेम साहिबा पर। वह एक अद्वितीय सुन्दरी तरुणी थी। अभी इंगलैण्ड से आई थी। स्वास्थ्य की ललाई उस की लुनाई में चार चाँद लगा रही थी। उस ने अप-टू-डेट फैशन का परिधान पहना था। परिधान आसमानी मखमल का था और उस परिधान में उस का सौन्दर्य और यौवन फूटा पड़ता था। वह एक ऐसी रमणी थी जिस का रूप यौवन समय के अत्याचार से नष्ट नहीं हो सका था। लोगों का अनुमान था कि उस महिला की आयु चालीस बरस की है। इस उम्र में तो भारतीय स्त्रियाँ बुढ़िया हो जाती हैं। परन्तु इस स्त्री पर यौवन का निखार ऐसा था कि अच्छे से अच्छे पारखी भी उसे तीस के भीतर ही समझते थे। पर हकीकत यह थी कि उस की उम्र बयालीस बरस की थी। कद उस का कुछ लम्बा, देह गुदगुदी और कुच पीन थे। कमर ऐसी पतली थी कि वह उस में कमरबन्द लगाती ही न थी। प्रत्येक अंग उस के इस प्रकार साँचे में ढले थे कि मानो विधाता ने उसे नाचने और प्रेम का आस्वादन करने के ही लिए बनाया था। उस के नेत्रों से तीव्र लालसा व्यक्त होती थी। पर उस की चितवन में दृढ़ता और निर्भीकता तथा स्वेच्छाचारिता स्पष्ट दीख पड़ती थी। उसे देख कर मनुष्य का मन हाथ से निकल जाता था। रंग उस का कुछ पीला था। गाल कोमल और गुलाबी थे। होंठ लाल और फूले हुए थे, उन में ऐसी चमक थी कि जैसे पका हुआ फल रस से लबालब भरा हुआ हो। गर्दन उस की हंस के समान, कंधे सुडौल और बाहु मृणाल को मात करती थीं। सिर के बाल काले लम्बे और घुंघराले थे। आँखें काली और कटीली थीं। उंगलियाँ पतली और मुलायम थीं।

ग्रौर उन के पोरों पर नुकीले नाखून ग्रजब बहार दिखाते थे। पैर छोटे ग्रौर खूबसूरत थे। उन में उस ने नए फैशन के जूते पहने थे। सिर पर भी नए फैशन का एक ग्रमरीकन टोप था ; जिस में किसी पक्षी का एक सफेद पर लगा था। उस का देखना, बात करना, उठना-बैठना सब कुछ नाज-नखरे से भरा था। जो चुस्त पोशाक उस ने पहन रखी थी उसे लण्डन के पालमाल महल्ले के प्रसिद्ध दर्जी ने सिया था। उस पोशाक में उस का जिस्म फूटा पड़ता था। उस की भुजाएँ ग्रौर वक्ष का ऊपरी भाग नंगा था। ग्रौर ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे वह ग्रपने वस्त्रों में समा नहीं रही है। कर्नल हिग्ररर्स की यह पत्नी ग्राई तो थी गिरजे में उपासना करने के लिए, पर जिस ठाठबाट का उस का प्रदर्शन था, वह तो एक नृत्य गोष्ठी के योग्य था। जो हो, उन्हें यहाँ देख कर सब की ग्राँखों में चकाचौंध लग गई।

उपासना की समाप्ति पर सब लोग उठे। सैनिक ग्रौर ग्रफसर जब चले गए तो कर्नल हिग्ररर्स पत्नी को बाँह का सहारा दिए बाहर बराण्डे में जहाँ मेकडानल्ड टहलते हुए उन की प्रतीक्षा कर रहे थे, ग्रा गए। मित्र को देखते ही मेकडानल्ड लपक कर मित्र की ग्रोर बढ़े। हिग्ररर्स ने उन से हाथ मिलाया ग्रौर कहा—'मेरी पत्नी से मिलिए'' फिर पत्नी ने कहा—''ये हैं मेरे मित्र ग्रौर साथी कर्नल मेकडानल्ड।''

मैडम ने ग्रपनी बत्तीसी छटा दिखाते हुए ग्रपना हाथ नखरे के साथ बढ़ा दिया, जिसे मेकडानल्ड ने तपाक से चूम लिया।

मैडम ने कहा—''ग्राप की चर्चा इतनी ग्रधिक मुझ से हिग्ररर्स ने की है कि ग्राप की यह पहली मुलाकात मुझे एक सुपरिचित बन्धु की मुलाकात प्रतीत हो रही है।'

''ग्राप के इस ग्रनुग्रह के लिए धन्यवाद है मैडम ! कहिए हमारा हिन्दुस्तान ग्राप को पसन्द ग्राया ?''

''हमारा? इस के क्या माने ? ग्रोह! समझी, ग्रापने एक हिन्दुस्तानी ग्रौरत से शादी की है न, इसी से ग्रब ग्राप हिन्दुस्तानी बन गए हैं।''

"शादी 'तो जरूर मैं ने एक भारतीय महिला से की है। पर मैं हूं एक सच्चा अंग्रेज ही।"

"जान कर खुशी हुई। पर अभी मैं हिन्दुस्तान की बाबत क्या राय जाहिर कर सकती हूँ। जरा देखूं तो कहूँ। हाँ, आप की हिन्दुस्तानी बीवी कैसी है ?"

"यकीनन आपके समान शानदार नहीं है, आप शायद उससे मिलना भी पसन्द न करें।"

"इन काले हिन्दुस्तानियों से मैं डरती हूँ। इंगलैण्ड में मैंने यहाँ से लौटे हुए आदमियों से यहाँ की औरतों के बहुत अजीब-व-गरीब किस्से सुने हैं।"

"इन बातों में शायद आप की अधिक अभिरुचि है। किन्तु मेरी पत्नी से डरने की तो कोई जरूरत नहीं है।"

"तो फिर उसे लाइए किसी दिन मेरे यहाँ।"

"मैं उस से पूछूंगा, यदि वह पसन्द करेगी, तो जरूर लाऊँगा।"

"अच्छा; क्या हिन्दुस्तानी औरतें भी इस कदर मिजाज रखती हैं ?"

"क्यों नहीं, औरतें तो सभी मुल्कों की एक ही सांचे की बनी होती हैं।"

"मुझे यह देख कर प्रसन्नता होती है कि आप अपनी हिन्दुस्तानी पत्नी की इस कदर क़द्र करते हैं।"

"क्या मेरे दोस्त हिअरर्स मेरे समान भाग्यशाली नहीं हैं ?"

मैडम ने नखरे से एक ठण्डी साँस ली और कहा—"खुदा बचाए, उन के जैसा ईर्षालु पति दुनिया में न होगा।"

"क्या आप ऐसा कह कर मेरे दोस्त के साथ अन्याय नहीं कर रहीं हैं ?"

"तनिक भी नहीं। मैं तो सच से कुछ कम ही कह रही हूँ।"

"तब तो मालूम होता है कि मर्दों के सम्बन्ध में आप के विचार बहुत ही हीन हैं।"

"इसका तो यह अर्थ हुआ कि मैं आप को भी वैसा ही समझती हूँ।"

"खैर, तो इतना तो मैं भी समझ गया कि मैं एक भाग्यशाली पुरुष हूँ। और आप की कृपा दृष्टि इस तुच्छ पर है।" मेकडानल्ड ने हँस कर कहा।

"खैर तो आप आज शाम को हमारे साथ डिनर पर आइए, इस मसले पर तभी बातचीत होगी।"

"इस निमन्त्रण के लिए धन्यवाद! किन्तु आज तो मैं बहुत ही व्यस्त हूँ। फिर कभी आप की इस कृपा का लाभ लूंगा।"

"खैर! फिर कभी ही सही।" इतना कह कर मिसेज हिअरर्स इठलाती हुई अपनी गाड़ी की ओर बढ़ चलीं।

मेकडानल्ड उन्हें सलाम कर के अपने घोड़े पर सवार हो अपने घर लौटे।

: ४६ :

विद्रोह का सूत्रधार

अफगानिस्तान के युद्ध का भारतीय सैनिकों पर बुरा प्रभाव पडा। खास कर बंगाल की देशी सेना में उस की ऐसी प्रतिक्रिया हुई कि अंग्रेजों का बढ़ा-चढ़ा रुआब खत्म ही हो गया। और सैनिकों में असन्तोष के लक्षण दीख पड़ने लगे। वे बहुधा आपस में खैबर के दर्रे के कत्ले-आम की चर्चा खूब बढ़ा-चढ़ा कर करते और अंग्रेजों की दुर्दशा पर खुश होते थे। खास कर अवध और बिहार के सिपाही, जो इस सेना में थे और हजारों की संख्या में कत्ल हुए, और जिन के हजारों घराने बरबाद हो चुके थे, अंग्रेजी सरकार को अपनी बरबादी का कारण समझते थे। यद्यपि साधारण सरकारी कर्मचारियों पर इस का विशेष प्रभाव न था, न उन में ऐसा कोई असन्तोष ही दीखता था। परन्तु अंग्रेजों की श्रेष्ठता और अजेय शक्ति पर जो उन का विश्वास था, वह बहुत कम हो गया था।

और यद्यपि अंग्रेजी सरकार की अमलदारी का विस्तार बढ़ता जाता था, पर सर्वसाधारण का और सरकारी कर्मचारियों का सरकार के प्रति हीन भाव बढ़ता जाता था। महत्वपूर्ण बात यह थी कि इस घटना की प्रतिक्रिया जो उन के मस्तिष्क पर पड़ी थी; बड़ी प्रबल थी। दिन बीतते जाते थे और इन विचारों की पुष्टि होती जाती थी। साधारणतया बंगाल इन्फैन्टरी के सिपाही भारत ही में युद्ध के लिए उपयोग में लाए जाते थे और प्राय: उन की नियुक्ति उसी प्रान्त में होती थी जिन के वे निवासी होते थे। परन्तु जब उन्हें अफगानिस्तान की लड़ाई पर भेजा गया था तब उन में उत्साह और प्रसन्नता की माप न थी। क्योंकि उन के संस्कारों और स्मृति में वह पुरानी बात कायम थी; जब कि मुगल बादशाह अकबर के काल में महाराज मानसिंह के नेतृत्व में राजपूतों ने अटक पार कर के काबुल के दुर्दान्त पठानों का मान मर्दन किया था। वह बात वे भूले न थे। वे समझ रहे थे—अब हमें भी वही प्रसिद्ध सुअवसर प्राप्त हो रहा है। यद्यपि इस प्रकार भारत से बाहर देशी सेना को ले जाने के अवसर कभी-कभी ही आए और उस का पुरस्कार भी उन्हें दिया गया।

जब सन् १८४३ में सिंध अंग्रेजों की अमलदारी में आया, तब यह निश्चय किया गया कि सिंध के संरक्षण का कार्य देशी सेना से कराया जाय। उस समय पंजाब की सीमा पर जो सेना नियुक्त थी उसी को सिंध पर नियुक्त कर दिया गया। परन्तु ६४, नम्बर की पल्टन जब कूच करने लगी तो उस ने तनखाहे-जंग का तकाजा किया और बगावत पर आमादा हो गई। उस समय उस सेना के अध्यक्ष कर्नल ने उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए उन से कुछ वादे किए। परन्तु जब वे सिंध पहुंचे तो उन्हें ज्ञात हो गया कि उन्हें धोखा दिया गया है; और वे वायदे पूरे नहीं किए जायँगे। तब उन्होंने फिर बगावत की। तब उन्हें लखनऊ ले जाया गया और सेना को बर्गलाने के अपराध में कुछ व्यक्तियों को सजाएँ दी गईं।

परन्तु इसी प्रकार का विद्रोह ३४ नम्बर की पल्टन ने भी किया जो

पंजाब की सरहद पर तैनात थी। वहाँ भी सैनिकों को सजाएं दी गईं। इन बातों से सैनिकों में अंग्रेजी सरकार के खिलाफ दिली नाराजी और विरोध भावना का विकास होता गया। और उन के दिल में नमकहलाली, वफादारी और सैनिक निष्ठा की भावना चल-विचल हो गई। इस सेना के रंग-ढंग देख कर उसे मेरठ भेज दिया गया, जहाँ परेड में उन की वर्दियाँ उतरवा ली गईं तथा सैनिक और उन के देशी अफसरों का अत्यंत अपमान किया गया। यहाँ तक कि अपराधी और निरपराधी का भी विचार नहीं किया गया; क्योंकि अभी तक अंग्रेज अपनी शान में थे और भारतीयों से पूरे दबाव और रुआब से पेश आते थे। इस का परिणाम यह हुआ कि इस समय सेना का जो यह साधारण असन्तोष था वह भावी विद्रोह का मूलाधार बन गया। पर इस समय के अफसरों ने इस बात पर दूरदर्शिता से विचार नहीं किया और यही निश्चय किया कि देशी सेना के साथ सख्त कदम उठाने और कड़ा व्यवहार करने की ही आवश्यकता है। उस समय उनकी दृष्टि सैनिक अनुशासन पर ही थी। वे नहीं जानते थे कि भारतीयों में भी आत्मसम्मान का भाव हो सकता है। वे उन्हें अतिशय दीन-हीन, नगण्य समझते थे और अब तक भारतीय जन भी अत्यंत दब्बू और पोच की भाँति अंग्रेजी अमलदारों का सब प्रकार का क्रूर अन्याय, मूर्ख और अनियमित शासन मान्य करते आए थे। असल बात यह थी कि शताब्दियों तक मुसलमानों के अत्याचार सहते-सहते उनमें प्रतिक्रिया की शक्ति ही न रह गई थी। फिर अंग्रेजों को तो वे दैवी शक्ति सम्पन्न एक समर्थ और अजेय जाति मान चुके थे। और इसी भावना की ही समाप्ति काबुल के युद्ध के परिणाम को देखकर हो चुकी थी। उनका स्वप्न टूट चुका था और उनमें अपने आत्म-सम्मान के भाव जागृत हो गए थे।

३४ नं० की पल्टन को तोड़ दिया गया और उसके सिपाही और अफसर पदच्युत होकर अपने-अपने घर चले गए। इस पल्टन के साथ जो सुलूक किया गया उसका दूसरों को पता ही न लगा। न दूसरी

सेनाओं में उसकी कोई प्रतिक्रिया ही हुई, न उसकी कोई चर्चा हुई।

परन्तु उस पल्टन का एक मेजर सूबेदार जो वास्तव में पल्टन के विद्रोह का नेता था और जिसे अधिक अपमानित किया गया था, चुपचाप घर जाकर नहीं बैठा। उसने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह करने का पेशा अपना लिया। यह आदमी कान्यकुब्ज ब्राह्मण था और बलिया जिले का निवासी था। वह सैनिक जीवन अपनाने से प्रथम कथावाचन और पुरोहिताई का काम करता था। वह काम उसके घराने का पुश्तैनी पेशा था। उसने संस्कृत पढ़ी थी और संस्कृत के श्लोक मधुर स्वर से पढ़ता था। कथा, वार्ता, पुराण वाचन में वह पटु था। उसका पिता अपने प्रांत का प्रसिद्ध ज्योतिषी और कथावाचक था। उसने यह काम अपने पिता से सीखा था। परन्तु वह किशोर वय में ही घर से भाग कर कम्पनी की सेना में भरती हो गया था और अपनी वीरता, साहस तथा प्रतिभा के कारण उन्नति करके सूबेदार मेजर बन गया था। सेना में सभी लोग उसे पांडे के नाम से पुकारते थे और उसे अपना अफसर ही नहीं, नेता भी मानते थे। उसका नाम गोविन्द था। बहुत लोग उसे गोविन्द महाराज कहते और बहुत अधिक गोविन्द पाण्डे कहते थे। सेना में भी वह पूरी ब्राह्मणोचित निष्ठा से रहता। नित्य संध्या-वन्दन करता, तिलक छाप लगाता, स्नान-पूजा यथाविधि करता और अवकाश में कथा-वार्ता से सैनिकों का मनोरंजन करता रहता था। वह किसी से दान-दक्षिणा नहीं लेता था। कोई देना चाहता भी तो कहता था कि अब हमने सेना में सिपाही होकर ब्राह्मण धर्म त्याग दिया, क्षत्रिय धर्म अपना लिया, हम दक्षिणा के अधिकारी नहीं रहे।

परन्तु उसमें अति उग्र ब्राह्मणत्व था। वह अपने को सर्वश्रेष्ठ समझता था। आर्य संस्कारों का वह समर्थक और प्रशंसक था। अपनी सेना में वह केवल वीरत्व ही नहीं—निष्ठा, धर्म और आचार सम्बन्धी भी उपदेश देता रहता था। बहुधा वह तीखी भाषा प्रयोग करता। थोड़े दोष पर भी वह सैनिकों की लानत-मलामत करता। उन्हें उपदेश देता और

उन्हें निरन्तर उद्दीपन देता रहता था। इसी से सब सैनिक छोटे-बड़े उसका आदर करते, उसकी बात आदर से सुनते और उसकी आज्ञा मानते थे। हकीकत तो यह थी कि सेना पर उसका भारी प्रभाव था। इसी से जब उसने सेना में विद्रोह की आवाज उठाई तो अंग्रेज अफसरों ने उसी के साथ कड़ी से कडी कार्यवाही की और उसी को सेना में अनुशासन भंग का सबसे बड़ा दोषी समझा। परन्तु यह पुरुष उन लोगों से भिन्न था जो पेट के लिए दासता करते हैं। वह उन लोगों में भी न था जो अपने को अंग्रेजों का नमकख्वार समझते थे। बल्कि वही पहला व्यक्ति था जिसने सैनिकों के दिलों में यह भाव पैदा किया कि वे किसी का नमक नहीं खाते, वे अपना खून बहा कर कर्तव्य पालन करते हैं। इस प्रकार उसने सैनिकों में कर्तव्य-निष्ठा और आत्मसम्मान के भाव भर दिए थे और यही कारण था कि वे अपने अधिकारों और प्राप्तव्यों के लिए विद्रोह करने को आमादा हो गए। अंग्रेजों ने ठीक समझ लिया था कि यह ब्राह्मण ही सब फसाद की जड़ है और इसी से उसे सबसे अधिक दण्ड दिया गया।

परन्तु इस प्रकार अपमानित होकर वह सब लोगों की भांति घर नहीं लौटा। उसने सोचा—इन विदेशियों के लिए हम भारतीय अपना खून बहाते हैं। अपना घर-बार छोड़कर देश-विदेश में मारे-मारे फिरते हैं और जान जोखिम में डालते हैं। हमारी बदौलत ये विदेशी राज्य पर राज्य सर किए जाते हैं और हमीं को अपना गुलाम समझते हैं। ये म्लेच्छ, कुमार्गी, शराबी, झूठे और कायर विदेशी हम ब्राह्मणों तक की आन नहीं मानते। हमें काला और अछूत समझते हैं। भला किस बात मे हम कम हैं। हमें आत्मबोध होना चाहिए। उसने प्रण किया कि वह देश भर में घूम फिर कर सैनिकों को उद्दीपन देगा। उनमें आत्म सम्मान के भाव भरेगा। उनके मन से दासता के भाव दूर करेगा और उन्हें वीर सेनानी बनाने की चेष्टा करेगा। वह अब सैनिकों का पुरोहित बनेगा। यह ठान कर वह मेरठ से निकला। उसने अपने घर का रास्ता नहीं लिया, वह वहां

से बुन्देलखण्ड गया ।·वह पण्डितों की भाँति एक रामनामी दुपट्टा कंधे पर डाले, लुटिया डोर झोले में रखे, गीता, रामायण और महाभारत की पोथी बगल में दाबे, एक लाठी हाथ मे लिए सैनिकों में घूमने लगा और असाधारण धैर्य और असीम तत्परता से वह आज बारह बरस से सेनाओं में घूमता फिर रहा था । कभी-कभी जब सैना के अंग्रेज अफसरों का ध्यान उसकी ओर जाता तो वह बुन्देलखण्ड के जंगलों तथा गंगा जमुना के खादरों में अन्तर्ध्यान हो जाता और फिर निकल कर अपना काम करता । सेनाओं में उसका नाम प्रसिद्ध हो गया था और सर्वत्र उसका मान और उसकी चर्चा होती थी । वह कथा-वार्ता करता, कीर्तन करता और अवसर पाकर अंग्रेजों के विरुद्ध सैनिकों को भड़काता। उसके उच्चारण किए संस्कृत के श्लोक बड़े प्रभावशाली होते थे । उसके प्रयास का परिणाम यह हुआ कि सम्पूर्ण भारत की देशी सेनाओं में अंग्रेजों के प्रति असंतोष की आग सुलग गई और जगह-जगह छोटे-बड़े उपद्रव और सैनिक विद्रोह तथा अनुशासन भंग की घटनाएँ होने लगीं । अंग्रेज भी यह समझ गए कि भारतीय सिपाही अब उनके नमकहलाल दास नहीं रहे, आत्मसम्मान से भरपूर सैनिक बन गए हैं ।

सन् ५१, बीत रहा था । अब वह पंजाब में घूम रहा था । अभी यहाँ आए उसे एक मास ही हुआ था कि पंजाब की सारी सेना अनुशासन विहीन हो गई । इस समय इस पुरुष को पकड़ने की बहुत चेष्टाएँ की गईं—पर वह न पुलिस के हाथ लगा, न सैनिक अफसरों के । बड़ी कठिनाई से सेना को काबू में किया गया ।

वह दो बरस तक दिल्ली, अम्बाला, मेरठ, सहारनपुर के सैनिक-केन्द्रों में घूमता रहा, लोगों को उत्तेजित करता रहा, उन्हें साहस दिलाता रहा और सेना में बगावत का सूत्रपात करता रहा ।

लोगों के दिल अंग्रेजों से फिरते जाते थे । वे दिल से अंग्रेजों के विद्रोही होते जाते थे । लोग उसकी बातों से प्रभावित होते, उससे सहमत होते पर वे संकोच और द्विविधा में पड़ जाते । अब तो सिपाहियों का

रुख देखकर उसने पंजाब के सिपाहियों को सलाह दी कि उनकी तनख्वाहें बहुत कम हैं, जबकि अंग्रेज सिपाहियों की बहुत अधिक हैं। उन पर बाल-बच्चों का भार है और अंग्रेज सिपाही अकेले हैं। वे विदेशियों के लिए लड़ते हैं, जबकि अंग्रेज अपना राज्य फैलाने को लड़ते हैं। इसलिए तनख्वाह उन्हें अंग्रेजों के बराबर ही मिलनी चाहिए। उसने सिपाहियों को सलाह दी कि वे मिल कर संगठित रूप में अपनी तनख्वाह बढ़ाने की इच्छा प्रकट करें और यदि सफलता न मिले तो संगठित विद्रोह करें।

कुछ लोग कहते थे—कि हमने कम्पनी बहादुर का नमक खाया है और अपनी नौकरी पसन्द है। नमक का हक अदा करना हमारा धर्म है। जहाँ तक बन पड़ेगा हम नमकहरामी नहीं करेंगे। पंजाब का वातावरण बड़ा विचित्र था, सिख युद्ध के बाद सिक्खों में बुरी तरह अंग्रेज-परस्ती घुस गई थी, वे उन्हीं का गीत गाते थे। दूसरे के सुख-दुख से उन्हें सरोकार ही नहीं था। इसका प्रभाव भी पंजाब की देशी पल्टनों पर पड़ा और धीरे-धीरे पंजाब में तैनात पल्टनों की उत्तेजना समाप्त हो गई। रेजीमेंट पर रेजीमेंट बदस्तूर आतीं और चली जातीं। ६६ नं० की पल्टन की वर्दी उतरवा ली तो उसके बाद तो एक प्रकार का आतंक ही सेना पर छा गया और वे इतने डर गए कि विद्रोह की भावना एक प्रकार से दब ही गई।

गोपाल पाण्डे पंजाब से निराश होकर लौटा और फिर उसने दिल्ली मेरठ, आगरा, अम्बाला, सहारनपुर की छावनियों में चक्कर लगाया। उसे यहाँ सर्वत्र अनुकूल वातावरण मिला और यह जानकर उसे प्रसन्नता हुई कि यहाँ विद्रोह की भूमिका तैयार है, और लोग विद्रोह की बातें करते और चाव से उसकी बातें सुनते हैं। उसके पुराने दोस्त यहाँ सेना में थे, उन्होंने उसकी खूब आवभगत की। कथा-वार्ता कराई। नए लोगों से परिचय कराया और जहाँ तहाँ सभाएँ करके विद्रोह का परामर्श किया। यहाँ की सेना को उसने इतना सजग कर दिया कि बस ज्यों ही एक चिनगारी फूंस में गिरे कि आग भक् से जल उठे। कुछ लोग तो

उससे भी अधिक अधीर हो रहे थे और अंग्रेजों के विरुद्ध सब कुछ कर गुजरने पर आमादा थे। यहां उसने हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों को अधिक उत्तेजित पाया। वे चाहते थे कि मुसलमानों का खोया हुआ राज्य फिर जम जाय। और उनकी जो दुर्दशा इन पिछले पचास वर्षो में हुई है, उसका बदला अंग्रेजों से ले लिया जाय। दिल्ली दरबार यद्यपि षडयन्त्रों का घर बन गया था, शाहजादे, अमीर उमरा और शाही रिश्तेदार सब अपनी-अपनी खिचड़ी पका रहे थे, परंतु बादशाह के प्रति सबकी श्रद्धा थी और अंग्रेज जो बात-बात पर बादशाह का अपमान करते और पदच्युत करने कीं चेष्टा कर रहे थे, वह उन्हें खल रही थी। उन्होंने अपनी उत्तेजना को धर्म का रूप दिया हुआ था और उनके मौलवी मस्जिदों में वाज करते लोगों को उत्तेजित करते फिर रहे थे। अब गोपाल पाण्डे ने भी धर्म का ढकोसला उठा लिया और वह भी अंग्रेजों पर अनेक प्रकार के धर्म विरोधी आरोप करने लगा। उसका यह नया हथियार अधिक कारगर हुआ और लोग जो प्रायः धर्मभीरु थे बहुत सशंक हो उठे। गोपाल के संस्कृत श्लोक, गीता के प्रमाण और भगवान के वाक्य इसमें बहुत सहायक सिद्ध हुए। वह बारम्बार ईसाइयों के हथकण्डों को बढ़ा चढ़ा कर जिक्र करता और सीधे सादे सिपाही क्रोध और जनून में भर जाते। अब उसके बहुत से समर्थक भी जगह-जगह उत्पन्न हो गए थे। सिपाही जो बाजारों में जाते या छुट्टियों में घर जाते—वहाँ से बहुत उत्तेजनामूलक बातें साथ ले आते थे। वे यहाँ सेना में आग में घी का काम देती थीं!

वेतन की कमी भी एक भारी असन्तोष का कारण बनी हुई थी। अब इसमें जो धार्मिक क्षति की भावना जुड़ गई तो उसने विद्रोह को प्रगति दी। हिन्दुस्तानी रेजीमेण्ट में प्रायः ऊँची जाति के हिन्दू थे, पर पेट के लिए, विदेशियों के लिए खून बहाते थे। पर अब जब पेट भरने में भी कोताही होने लगी तो उनके मिजाज बिखर गए।

सन् २४ में बैरकपुर में जो नृशंस हत्याकाण्ड हुआ था, उससे बच

कर जो लोग भाग गए थे, वे अब भी गाँव-गाँव घर-घर जा कर अंग्रेजों के प्रति घृणा और बगावत का प्रचार कर रहे थे।

जहाँ भी गोपाल पाण्डे जाता, लोग उस गिरोह में मिल कर उसकी योजना के अनुसार संगठित रूप में अंग्रेजों के विरुद्ध आम जनता और सेनाओं में प्रचार करने लग जाते। यह आश्चर्य की बात थी कि ये लोग प्राणपण से इस काम में जुटे हुए थे। इन विद्रोही प्रचारकों में कुछ लोग तो ३४, नं० की पलटन के थे और बाकी ६६ नं० पलटन के, जो बाद में बर्खास्त कर दी गई थी। वे लोग जोगी, बैरागी-बिसाती, पण्डे-भड्डुरी, ज्योतिषी, साँप वाले, बाजीगर, मदारी, नाच-तमाशे वाले बन कर सब तरह के लोगों में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह-भावना जागृत कर रहे थे। वे राजाओं-नवाबों के दर्बार में जाते और अपना काम करते। उनके नौकरों और प्रजा में विद्रोह फैलाते। धीरे-धीरे इन लोगों का एक बड़ा मजमा बनता चला गया जिनका सरदार गोपाल पाण्डे था। लोग पिछली बातों को भी याद करते थे और ताजे रंग और क्रोध के कारण भी उत्पन्न होते जाते थे जिस से उत्तेजना दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जाती थी।

जब गोपाल पाण्डे बंगाल में गया तो उसने देखा कि वहाँ सब से ज्यादा उत्तेजना और विद्रोह फैला हुआ है और अराजकता के बादल बंगाल में छाए हुए हैं। असल बात यह थी कि बंगाल ही में अंग्रेजों की राजधानी थी और वहाँ नवाबों और रिआया पर सब से ज्यादा जुल्म किए गए थे। फलस्वरूप बंगाल के सब पुराने घराने तबाह हो चुके थे और नए-नए उन्नत होते जा रहे थे, जिन्हें हिन्दू नीच जाति का समझते थे और घृणा करते थे। वे नए राजा-रईस, पुरानी हिन्दू-प्रथा और हिन्दू-धर्म के भी विरोधी बन गए थे। खास कर ब्राह्मण समाज ने पुराने ब्राह्मण-धर्म पर कुठार चलाया था। यद्यपि इसने बंगाल में नया जीवन दिया था परन्तु रूढ़िवादी कट्टर हिन्दू इसके विरुद्ध थे और इसका कारण अंग्रेजों ही को समझते थे। बंगाल में ही ईसाई मिशनरी भी बड़ा जोर बाँधे थे। इस कारण बंगाल में सब की यह राय थी कि अंग्रेजों को,

जो इस सब अधर्म और उत्पात के कारण हैं, देश से निकाल बाहर कर दिया जाय और धर्म को भ्रष्ट होने से बचा लिया जाय। अब जाबजा ऐसी भविष्यवाणियाँ की जा रही थीं, कि समूचे देश में एक ऐसा विप्लव किया जाय जो अंग्रेजों का तख्ता ही उलट दे।

: ५० :

बारकपुर छावनी में

सन् १८२४ में बारकपुर में ३४ नं० पल्टन का जो कत्लेआम हुआ था, उस घटना को पाठक भूले न होंगे। उस समय यह कत्लेआम केवल इसलिए हुआ था कि सिपाही अपनी तनख्वाह बढ़वाना चाहते थे। केवल चार रुपए या साढ़े छः रुपए माहवार में उनकी तथा उनके बाल-बच्चों की गुजर नहीं होती थी, तथा समुद्र-यात्रा करने से उन्हें धर्म भ्रष्ट होन का भय था। ये सब उच्च कुलीन पूर्व के ब्राह्मण थे। न तो इनमें किसी प्रकार का अंग्रेजों से विद्वेष था, न किसी प्रकार के विद्रोह की भावना। ऐसे भी कठिन अवसर आए कि युद्ध-क्षेत्र में राशन कम हो गया और उन्होंने स्वयं माण्ड पी कर चावल गोरों को दे दिया। वे न शराब पीते थे, न गोरे सिपाहियों की भाँति आवारागर्द थे। वे सभ्य, शिष्ट और अनुशासनप्रिय सैनिक और सीधे-सादे धर्मभीरु सद्गृहस्थ थे। साधारण कुलियों से भी उनके वेतन कम थे, यही आवाज़ उठाने पर उन्हें गोली से भून दिया गया था।

आज उन बातों को तीस बरस बीत चुके थे। परन्तु सिपाही उस घटना को भूले न थे। यद्यपि जिन लोगों ने वह घटना आँखों से देखी थी, उनमें बहुत कम लोग अब जीवित थे, पर वह नृशंस कत्लेआम लोगों के मुखों पर तैर रहा था। और अब उनके मन में यह भाव उत्पन्न हो रहा था कि क्या कारण है कि हम चार रुपए या साढ़े छह रुपए माहवार पर इन विदेशियों के लिए अपने प्राण दें। उनके मन में अब गोरों और साहब

लोगों की पुरानी भक्ति न रह गई थी। वे उनके नौकर हैं, नमकख्वार हैं, यही भावना अब इस नई पीढ़ी के तरुणों में न थी— वे अब यह भी समझते थे कि हम ब्राह्मण हैं। धर्मनिष्ठ हैं। हम नौकरी करते हैं. अपना खून देते हैं। पर गुलाम नहीं हैं। धर्म नहीं देंगे। बहुधा ऐसी चर्चा भी होती थी कि अब यदि कोई ऐसी घटना घटे तो हमें वीरतापूर्वक अपनी रक्षा करनी चाहिए तथा धर्म की रक्षा तो हर तरह हमें करनी ही चाहिए।

ऐसे ही वातावरण में गोपाल पाण्डे एक दिन घूमता-फिरता बारकपुर की छावनी में आ पहुँचा। रामनाम का दुपट्टा ओढ़े, तिलक-छाप माथे पर लगाए और लम्बी चोटी सिर पर फटकारे, गाढ़े की मिर्जई और मोटा चमरौधा जूता पहने, टट्टू पर सवार लोटा-डोरा और सत्तू की पोटली झोले में रखे जब गोपाल पाण्डे ने छावनी में जा कर पूछा—इन सिपाहियों में कोई पाण्डे भी हैं? सिपाहियों द्वारा अपना परिचय पूछे जाने पर उसने बताया कि कभी तुम ने नाम सुना हो, मैं गोपाल पाण्डे हूँ। मैं सिपाहियों का पुरोहित हूँ। सिपाहियों में धर्म-चर्चा करना और कथा-वार्ता करना मेरा पेशा है। गोपाल पाण्डे का परिचय सुन कर बहुत से सिपाही उसके चारों ओर आ जुटे। उसके नाम की ख्याति वे सुन चुके थे; और उन्होंने कई बार उसे बुलाया भी था। उन्होंने उसकी बड़ी खातिर की और उसे मंगल पाण्डे के डेरे पर ले गए। मंगल पाण्डे ने गोपाल को अपने यहाँ डेरा दिया।

गोपाल ने पूछा—"कहाँ के पाण्डे हो जवान?"

"हम बलिया जिले के हैं महाराज।"

"कौन आस्पद, कौन गोत्र?"

"ब्रह्म आस्पद और शांडिल्य गोत्र।"

"अच्छा तो बीस बिस्वे के पाण्डे हो, छत्तीस घरों के मुखिया हो। घर पर क्या-क्या होता है?"

"जिजमान पुरोहिताई है महाराज। आस-पास सब ठाकुर, क्षत्रिय,

वैश्य, सुनार हमारे ही जिजमान हैं।"

"तो तुमने बीस विस्वे के पाण्डे हो कर क्षत्री-धर्म काहे को अपनाया, काहे को तलवार पकड़ी ?"

"यह भी इज्जत का काम है पाण्डे जी ! ब्राह्मण का धर्म भी तलवार पकड़ने का है। आप तो सब धर्म-शास्त्रों के पण्डित हैं, नहीं जानते द्रोणाचार्य ने भी महाभारत युद्ध किया था।"

"किया था। पर वे तो कौरव पाण्डवों के गुरु थे। राजा और राजकुमार उनके पैर पूजते थे, क्या ये अंग्रेज तुम्हारे भी पैर पूजते हैं ?"

"नहीं पूजते। पर यह तो महाराज कलियुग है। यहाँ धर्म-कर्म का निवाह होना मुश्किल है।"

"तो यों कहो, बीस बिस्वे के पाँडे हो कर रोटी के एक टुकटे के लिए तुम ने फिरंगियों की गुलामी की है। धर्म-कर्म रहे चाहे जाय।"

"ऐसा न कहो महाराज, गुलामी हम ने नहीं की है। हम ने खून वेचा है, धर्म नहीं।"

"और यदि धर्म जाय ?"

"प्राण भले ही जाय पर धर्म न जाय महाराज।"

"यह किस का कौल है ?"

"मंगल पाँडे का कौल है महाराज, दुहाई इन चरणों की।" उसने गोपाल के चरण पकड़ कर शपथ ली।

"अच्छी बात है पाण्डे, मैं भी बीस बिस्वे का पाण्डे हूँ। याद रखना हम भले ही काम क्षत्री का करें—पर हैं ब्राह्मण। और ब्राह्मण हिन्दू-धर्म का मालिक होता है। वह न तो खुद धर्म से डिगेगा न दूसरे किसी को डिगने देगा। समझे।"

"खूब समझ रखा है महाराज ! हम ऐसे नमक हलाल चाकर नहीं हैं। बीस बिस्वे के पाण्डे हैं। हमारे बाप-दादों ने धर्म पर बढ़-बढ़ कर जानें दीं। समय आवे तो हम भी दिखा देंगे कि पाण्डे में कितना दम-खम है।"

"जीते रहो, मंगल, जीते रहो भैया ! ब्राह्मण को ऐसा ही करना चाहिए । अच्छा आज रात हमारी महाभारत करांव । सब छोटे-बड़े सिपहियन को बुलाव । आज एकादशी है । हमारा निर्जल व्रत है । पवित्र दिन है—आज हम सबन को गीता का ब्रह्मज्ञान बताएँ जो भगवान ने अर्जुन को बताया था ।"

"धन्य भाग हमारे महाराज, मैं सब बन्दोबस्त कर लूंगा । निर्जल व्रत तो हमारा भी है। फिरंगियों की नौकरी करते हैं । मूल धर्म-कर्म तो हमारे साथ ही है ।"

"यही बात है पाण्डे, मगर एक बात और है ।"

"वह कहो महाराज !"

"देखो विश्वास की बात है पाण्डे, हमारे तुम्हारे बीच गंगा है ।"

"अरे महाराज यह क्या कहते हो । मंगल के प्राण आप के हैं ।"

"तो देखो जो अपने खास आदमी हैं उनको कथा-वार्ता के बाद फलाहार के बहाने रोक लेना । मुझे उनसे एक भेद की बात कहनी है । देखना—ऐसे आदमी हों जो एक जान दो कालिब हों । बात फूटी तो जान नहीं बचेगी ।"

"महाराज आप नेक चिंता न करें। आप का मतलब मैं समझ गया । मैं ऐसा बन्दोबस्त करूँगा कि किसी को कानोकान खबर न पड़े ।"

"तो मंगल भैया, ऐसे भरोसे के कितने आदमी हैं, तुम्हारी पल्टन में ?"

"आदमी तो बहुत हैं । पर आठ ऐसे हैं जो जान जाय पर जबान नहीं हिला सकते ।"

"सब ब्राह्मण हैं ?"

"छह ब्राह्मण हैं, दो क्षत्रिय हैं ।"

"कोई हर्ज नहीं । तुम उन्हें जा कर कह दो । आज एकादशी है । महाभारत की कथा-वार्ता होगी । गीता का ब्रह्मज्ञान होगा । सब के पीछे

फलाहार होगा। उन्हें फलाहार के लिए रोक लेना। कथा-वार्ता में सब को बुलाओ।"

"मैं सब बन्दोबस्त कर लूंगा महाराज।"

"तो मंगल, मैं गंगास्नान को जाता हूं। वहीं संध्या-वंदन कर तीसरे पहर तक लौटूंगा। हां! कथा-वार्ता की बात अफसर से कह देना। गुप्त मत रखना।

"नहीं महाराज, अफसर हमारे बहुत अच्छे हैं। उनकी मेम साहब ब्राह्मण की बेटी है। बंगालन है। साहब की मेम है जरूर, पर धर्म कर्म में ब्राह्मण है। देवी रूप है। ब्राह्मण को बहुत मानती है।"

"अच्छा देखूंगा इस ब्राह्मणी को भी। तुम मेरे आने की बात उनके भी कान में डाल देना।"

"जरूर महाराज।"

गोपाल पाण्डे अपने टट्टू पर सवार हो गंगा को चल दिए। और मंगल पाण्डे अपने बन्दोबस्त में जुट गए।

: ५१ :

कथा और उसकी पृष्ठभूमि

कथा-वार्ता का प्रोग्राम बड़ा प्रभावशाली रहा। ३४ नम्बर पल्टन के सब सिपाही, जमादार, हवलदार, देशी अफसर आए, सबके बीच आसन पर तिलक छाप लगाए, रामनामी ओढ़े गोपाल पाण्डे ने बड़ी मार्मिक शैली में प्रवचन किया। महाभारत के उद्योग पर्व के कुछ वर्णन किए। अभिमन्यु के रण क्षेत्र में अभियान का ओजपूर्ण वर्णन किया। अन्त में गीता के कर्मयोग, ब्रह्मज्ञान और अनासक्ति योग का वर्णन हुआ। सुन कर दर्शक श्रोता मुग्ध हो गए। बारंबार वे धन्य कहते। कुछ की आंखों से आनन्दाश्रु वह चले। कुछ भावावेश में राधागोपाल, राधागोपाल कह कर भाव पीड़ित हो गए। कथा समाप्ति पर भगवान का पूजन हुआ,

चरणामृत बंटा और अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार दक्षिणा दे देकर सब सिपाही गोपाल पाण्डे को नमस्कार प्रणाम कर अपने-अपने डेरे पर गए। मंगल पाण्डे ने केवल उन्हें ही रोक लिया जिन्हें पारणा करना था तथा जिन्होंने व्रत किया था। वे कुल जमा आठ आदमी थे तथा सभी की आयु ४० से ऊपर थी।

जब बाहरी सब लोग चले गए, और वे आठ आदमी तथा मंगल और गोपाल कुल दस आदमी रह गए तो भीतर के भाग में गोपाल ने उन्हें ले जाकर बात की।

गोपाल पाण्डे ने कहा—

"सब सिपाही हैं? या कोई अफसर भी?"

"चार सिपाही हैं, दो हवलदार और दो सूबेदार।"

"और मंगल तुम्हारा क्या दर्जा है?"

"मैं तो एक सिपाही हूँ पाण्डे जी।"

"अच्छा तो इन सब के नाम बताओ। इनका परिचय दो।"

पाण्डे ने सब का नाम विवरण सहित सुना दिया।

कुछ देर मौन रह कर गोपाल ने कहा—"पाण्डे, मैंने कहा था कि मुझे कुछ गुप्त बात कहनी है, वह इनके सामने कहूँ? इन पर विश्वास करूँ?"

"जरूर कहो महाराज!"

"अच्छा तो सब कोई गंगा-जल छू कर कसम खाएं कि बात गुप्त रखेंगे और तन मन से एक रहेंगे।" पाण्डे ने गंगा जल की शीशी निकाल कर आगे रख दी। सब ने गंगा जल छूकर कसम खाई। वातावरण अत्यन्त गम्भीर हो गया।

धीरे-धीरे गोपाल पाण्डे ने कहना आरम्भ किया। "भाइयो! तुम यहाँ नौकरी करने आए हो; और मैं तुम्हारा धर्म तुम्हें यहाँ बताने आया हूँ। तुम जानते हो धर्म नौकरी से बड़ा है। तुम्हें तनख्वाह का लालच है, पर मुझे किसी बात का लालच नहीं हैं। मैं तुम्हें भाई समझ कर धर्म

की राह दिखाने आया हूँ। अरे! देखो—ये फिरंगी तुम्हारे ही मुल्क में तुम्हारे मालिक बने बैठे हैं, और तुम अपने ही घर में उनके गुलाम हो। ये तुम्हें चार रुपल्ली देते हैं और तुम्हारा खून लेते हैं, भला कहो—यह कैसा सौदा है? देश लुट रहा है रुई,तेल रेशम सब विलायत ले गए। तुम्हारे पल्ले क्या पड़ा? देखो तो वे जुलाहे जिनके बनाए महीन वस्त्र देश-देश में सरनाम थे। अब अपने हाथ के अंगूठे कटवा-कटवा जहाँ-जहाँ मिहनत मजूरी करके पापी पेट की ज्वाला बुझा रहे हैं। उनके घर-बार सब उजड़ गए। गांव वीरान हो गए। पुराने रईस मिट्टी में मिल गए। शूद्रों की हवेलियां कलकत्ते में आकाश चूमती हैं; और ये फिरंगी जिन्हें न सूअर से परहेज है, न गौ माता से—जो न हिन्दू न मुसलमान, क्या मजे से बंगलों में रहते, घोड़े पर सवार हो कर सैर करते और मौज मजा करते हैं। उनके घर रोज दिवाली रहती है। किसकी बदौलत? तुम्हारी भाड़े की तलवार की बदौलत! मुल्क तुम जीतते हो, पर राजा वे होते हैं। यह कैसी बात? मुल्क तो हिन्दुओं का है, मुसलमानों का है, ये कौन, न तीन में न तेरह में। भाइयो! आंखें खोलो, चेतो। अभी भी समय है। इन गोरे शैतानों को अपने मुल्क से निकाल बाहर करो! मुसलमान हमें लूटते थे, सही— पर देश का धन देश में ही रहता था, पर यह तो सात समुन्दर पार ले भागे। देखो तो भला नमक और अफीम पर भी महसूल! झांसी का राजा मर गया है। उसने झंडे के साथ अंग्रेजी निशान किले पर लगाया। इसलिए कि अंग्रेज उनके दोस्त हैं। पर देखो, ये कैसे दोस्त निकले। उसकी रानी को किले से निकाल कर बाहर किया। बेटे को बेटा नहीं माना। क्यों भाई, अब तो तुम्हारा बेटा भी नहीं चलेगा। भगवान ने गोद न भरी तो गोद नहीं ले सकते। नर्क में पड़े रहना होगा। राम-राम, यह तो मुसलमानों से भी बुरे राजा हैं। देखो तो सतारा हड़प लिया। शिवाजी की सन्तान पर तमाचा। अवध के बादशाह को गद्दी पर से उतार दिया। नागपुर भी हजम कर लिया। अरे भाइयो! तुम्हारे बदन में खून है या नहीं। बदला लो। अब भी

समय है। उठाओ तलवार और दिखा दो इन्हें उसका जौहर। चुप रहने का समय नही यारो। समय न बारम्बार। ब्राह्मण का वचन प्रमाण। अंग्रेजों के खून से हाथ रंगो। सुना नहीं तुमने, विलायत की मलका ने हुक्म दिया है कि अब कलकत्ते की काली माई पर गो-रक्त चढ़ा करेगा। देखो, कितनों का धर्म समुद्र पार उतार कर बिगाड़ दिया, अब क्या है। दीन के रहे न दुनिया के। चेतो! चेतो!! वर्ना अब कालेपानी भेजे जाओगे। इसी बारकपुर में कैसा कत्लेआम हुआ था। जानते हो? क्या अब फिर उसी की इन्तजारी कर रहे हो? अब तो न कोई ब्राह्मण रहेगा न क्षत्री। तुम्हारी औलाद की जात गई। अब क्या रखा है। कसम खाओ कि अपना खून बहाएँगे,—पर हुक्म गोरों का न मानेंगे। तो बस, खून बहाने को तैयार हो जाओ। अरे, मैं तुम से कह रहा हूँ। ब्राह्मणों से क्षत्रियों से। कोई भंगी चमारों से नहीं कह रहा। जब तुम समुद्र पार से लौटोगे तो तुम्हारी जात चली जाएगी। तुम्हारे बाल बच्चों की शादी कहाँ होगी? नहीं भी सही। तो देखो तो नया कानून बनाया है। अब तो ब्राह्मण क्षत्री सब की विधवाएँ फिर से ब्याह करेंगी। राम-राम। अब सती भी तो कोई नहीं हो सकती। जन्म भर रांड होकर बैठे। कभी राजपूत अपनी बहू पराई बना सकता है? कहो तो भला। फिर ब्राह्मण का धर्म कहाँ रहा? अब तो तुम्हारी गैरत भी गई। दीन धर्म चला गया। तुम नष्ट हो चुके।

"अब कहो कलंक का टीका किसके माथे पर लगेगा। सारा हिन्दुस्तान इन फिरंगियों ने फतह कर लिया। लो भई अब लोहे की सड़क बन गई है और तार लग गए। भारत की भूमि बांध ली गई। यह नया गोरखधन्धा है। यह लोहे की पटरी रूस तक जब पहुँच जाएगी तो तुम्हारे सब बाल बच्चे उसमें भर-भर कर रूस भेज दिए जाएँगे। यहाँ अंग्रेज बच्चे रहेंगे। अरे भाइयों, अब चेत जाओ। इन अंग्रेजों को कत्ल कर दो। लो यह गीता की पोथी है। इसे छूकर कसम खाओ। मैं सारे हिन्दुस्तान में घूमता रहा हूँ। मुझे बारह बरस हो गए। अब सारे हिन्दु-

स्तान में आग लगने वाली है। चिनगारी रखने की देर है। वह धड़ाका होगा कि इन फिरंगियों का नामोनिशान न रहेगा। सारे हिन्दुस्तान की फौजों ने इसी गीता को छूकर कसम खाई है। तुम भी कसम खाओ। सब भेद गुप्त रखोगे। वक्त का इन्तजार करोगे और ज्यों ही ज्वालामुखी फटेगा तुम भी नंगी तलवार लेकर उठ खड़े होगे। बोलो जय कालीमाई। जय कांगड़े वाली ज्वाला माई। बस मुझे कालीमाई की आन है। काली-माई ने मुझे भेजा है। उसी के हुक्म से मैं काम करता हूँ। भर दो खप्पर कालीमाई का इन अंग्रेजों के खून से। अंग्रेज अकेले हैं। अपने मुल्क से दूर हैं। इनके आदमी कम हैं। वे ईरान और रूस से लड़ रहे हैं। बस यही मौका है। लो छुओ गीता महारानी को और कसम खाओ। फिर मैं जाऊँगा बनारस, इलाहाबाद कानपुर और मेरठ।"

सब श्रोता सक्ते की हालत में थे। पहले मंगल पाण्डे ने और फिर प्रत्येक ने गीता छूकर प्रतीज्ञा की कि हम तैयार हैं, तैयार रहेंगे, सब बात गुप्त रखेंगे और समय पर दो दो हाथ दिखाएँगे।

: ५२ :

ब्राह्मण और ब्राह्मण की बेटी

शुभदा ने सुना एक नैष्ठिक ब्राह्मण बैरक में आया है। मंगल पांडे के डेरे पर ठहरा है। भागवतपुराण बाँचता है। गीता के कर्मयोग की टीका खास करता है। रात उसने प्रवचन किया था। बहुत अच्छा बताता है। शुभदा को ऐसे पुरुष से विशेष लगाव था। उसने उसे अपनी कोठी पर बुला भेजा।

गोपाल पांडे भी उससे मिलने को उत्सुक था। वह गया और बरा-मदे में खड़ा हो गया।

शुभदा ने बाहर आ कर पांडे की हँस कर अभ्यर्थना की। उसने कहा—"ब्राह्मण की बेटी हूँ, मेरे पति अवश्य क्रिश्चियन हैं, पर मैं हिन्दू

हूँ। सुना है आप बड़े भारी विद्वान हैं। शास्त्रों के ज्ञाता हैं। आइए, कृपा कीजिए, कुछ मुझे भी शास्त्र की बात सुनाइए।"

"आप क्या सुनना चाहती हैं ?"

"आप भीतर आइए तो सही।"

गोपाल भीतर जा कर एक चौकी पर बैठ गया। बैठ कर उसने कहा। "कहिए आप मुझ से क्या चाहती हैं ?"

"कुछ मुझे भी धर्म-ज्ञान कराइए।"

"आप को उससे कुछ लाभ न होगा। जिस दोष से बचने के लिए धर्मज्ञान सिखाया जाता है, वह बात तो आप कर चुकीं।"

"यानी एक अंग्रेज से विवाह ?"

"हाँ।"

"क्या आप मेरे दुर्भाग्यपूर्ण जीवन से परिचित हैं ?"

"सब सुन लिया है।"

"तो आप क्या समझते हैं—कि मेरा चिता पर जल मरना ही ठीक था ?"

'मैं तो यही समझता हूँ।"

"किस अपराध से ? भला सुनूँ तो।"

"अपराध की बात तो तब उठती है, जब कोई दण्ड दिया जा रहा हो।"

"एक निरपराध अबोध बालिका को जीवित जला देना आप की समझ में क्या है ?"

"कोई आप को जबर्दस्ती राह से उठा कर तो जलाने ले नहीं गया था। आप के पति की मृत्यु हो गई थी—और धर्म की रू से आप को उसके साथ सती होना आवश्यक था।"

"मैंने उस पति को आँख उठा कर देखा भी न था। मुझ से इस विवाह की स्वीकृति भी न ली गई थी। न मेरा उस पति नामधारी व्यक्ति से कोई सम्बन्ध ही रहा।"

"तो इससे क्या ? क्या आप उस पति की पत्नी होने से इन्कार कर सकती हैं ? आप यह कह सकती हैं—कि वह आपका पति न था।"

'मैंने न तो अपनी स्वीकृति दी थी, न मुझ में उस समय इन बातों का ज्ञान था कि मैं जानूं कि पति क्या है और पत्नी क्या है ?"

"तो फिर आप ही कहिए कि आप क्या राय दे सकती थीं। खैर ! उस समय तो आप फिर भी आठ बरस की बालिका थीं ; कुछ न कुछ समझती थीं। परन्तु जब आप ने जन्म लिया था—और आप केवल एक नवजात शिशु थीं, तभी अनिवार्य रूप से एक पुरुष आपका पति बन गया, दूसरी स्त्री माता बन गई। आपके माता-पिता के पुत्र-पुत्री आपके भाई-बहन बन गए, उनके सम्बन्धी आपके चचा, ताया, चाची, ताई, बन गए। और ज्योंही आप ने बोलना पहचानना सीखा, आप ने बिना विरोध उन्हें उन्हीं रिश्तों से सम्बोधन आरम्भ कर दिया। फिर अब इतनी समझदार ज्ञानी स्त्री होने पर भी आप इन सम्बन्धों और रिश्तों को अस्वीकार नहीं कर सकतीं। आप यह भी नहीं कह सकतीं कि मेरी स्वीकृति इन रिश्तों के लिए नहीं ली गई थी। इसलिए मैं उन्हें चाहूँ तो माता-पिता, भाई-बहन मानने से इन्कार कर सकती हूँ।"

"इन रिश्तों की बात जुदा है, पर पति-पत्नी के सम्बन्ध की बात जुदा है।"

"जुदा क्यों है ?"

"पति-पत्नी तो जीवन-साथी होते हैं ?"

"जीवन-साथी ? मैं तो ऐसा नहीं मानता। मैंने हिन्दू धर्मशास्त्र पढ़ा है, वे तो लोक लोकान्तर के, जन्म-जन्मान्तर के साथी हैं। हाँ—माता-पिता, भाई-बहन अवश्य इसी जन्म के साथी हैं। परन्तु जब इनका अटूट और अविच्छिन्न सम्बन्ध है तो पति से क्यों नहीं। आप यह क्यों नहीं मानतीं कि यह पति भी जन्म-जन्म का साथी था। संयोग और भाग्य से वह बिछुड़ गया, अब आप दूसरा विवाह कर कैसे सकती हैं ? आप को तो पतिगामिनी होना चाहिए।"

"आप यह तो मानेंगे कि पति-पत्नी का सम्बन्ध उनके अपने सुख-दुख का सम्बन्ध है।"

"मैं तो नहीं मानता ऐसा। ऐसा होता तो फिर विवाह का ढकोसला ही क्यों? यह तो सामाजिक सम्बन्ध है, व्यक्तिगत नहीं। इसलिए इस मामले में सामाजिक और धार्मिक नियम पालन किए जाने चाहिएँ। व्यक्तिगत नहीं।"

"बड़े विचित्र रूढ़िवादी विचार हैं आप के इन मामलों में।"

"मेरे तो अपने कोई विचार नहीं हैं। धर्मशास्त्रों के विचार हैं। इन विचारों की सत्ता स्थापित होने में हजारों वर्ष लगे हैं। हजारों अनुभव बड़े-बड़े मुनियों को हुए हैं। जीवन-धर्म, लोक-परलोक, समाज सब बातों पर ध्यान कर के उन्होंने ये नियम बनाए हैं। साधारण पुरुषों को उन नियमों का उल्लंघन करने का अधिकार नहीं है।"

"बड़े आश्चर्य की बात है कि आप तेरह वर्ष की एक अबोध बालिका को उसके मृत पति के साथ जीवित जला देने जैसे क्रूर कर्म का समर्थन करते हैं।"

"इससे भी अधिक क्रूर कर्म हैं, जिनका हमें समर्थन करना पड़ता है। युद्ध-क्षेत्र में मरने-मारने की परिपाटी कितनी प्राचीन है। सो यह कितना क्रूर कर्म है। फिर मरने-मारने वाले सिपाहियों का एक पेशा बना देना कितना क्रूर कर्म है। सम्मुख युद्ध में शत्रु पर, जिसने व्यक्तिगत रूप में कोई शत्रुता नहीं की, शस्त्र का वार करना कितना क्रूर कर्म है। पर ये सब क्रूर कर्म अनन्तकाल से होते रहे हैं समाज की भलाई के लिए। उनकी अपेक्षा तो एकाध अबोध बालिका का चिता पर जला देना किसी गिनती में ही नहीं है। अब यदि सिपाही कहे कि—हमें क्यों मरने के लिए युद्ध में भेजा जाता है, तो राज्य व्यवस्था कैसे कायम रह सकती है। इसीलिए—समाज में जीवन भी है—मृत्यु भी है। जैसे जीवन की आवश्यकता है—वैसे ही मृत्यु की भी है। इसलिए स्त्री हो या पुरुष—उसे कभी-कभी इस प्रकार अस्वाभाविक रूप में मरना ही पड़ता है।

और वह असाधारण मृत्यु साधारण मृत्यु से बढ़ कर यशस्विनी मानी जाती है। युद्ध में मरने वाले वीरों को सूर्यलोक मिलता है। देवता उनके लिए विमान लाते हैं और पति के साथ चितारोहण करने वाली स्त्री स्वर्ग पाती है। पति-लोक जाती है।"

"क्या ये सब ढकोसले अंधविश्वास की बातें नहीं हैं?"

"हो सकती हैं। पर इनके बिना तो काम चलता नहीं न। योंही समझ लीजिए कि मिश्री के साथ मीठी कर के कड़वी दवा दी जाती है।"

"पति के मरने पर स्त्री दूसरा विवाह करने में स्वतन्त्र है।"

"वह विवाह न करे तो भी किसी पुरुष के साथ सम्बन्ध करने में स्वतन्त्र है। पर वह सामाजिक सम्बन्ध नहीं व्यभिचार कहाएगा। इसी प्रकार युद्ध से प्राण बचा कर भाग आने में सैनिक स्वतन्त्र है, पर वह वीर नहीं कायर कहाएगा।"

"तो आप क्या मृत्यु के इतने पक्षपाती हैं?"

"इस प्रकार की असाधारण मृत्यु जो कर्तव्य और मर्यादा के आधार पर स्त्री-पुरुषों को वरण करनी होती है, बलिदान कहाती है। इन बलिदानों से समाज का कल्याण होता है। समाज की जड़ें मजबूत होती हैं। यदि यह भी मान लिया जाय कि धर्म स्वर्ग की बातें ढकोसला हैं, तो भी समाज की बातें ढकोसला नहीं कही जा सकतीं। यदि किसी देश में योद्धा जन्म ही न लें, या वीर पुरुष कर्त्तव्य ही न पालन करें तो उस देश की सुख-समृद्धि कायम न रहेगी। आप जानती हैं कि विश्व की बड़ी-बड़ी प्रभावशाली घटनाएँ युद्धों के परिणामस्वरूप ही हुई हैं। इसी प्रकार स्त्रियाँ यदि स्वेच्छा से पतियों को अदलती-बदलती रहें तो समाज की मर्यादा कायम नहीं रह सकती।"

"कैसे नहीं रह सकती। पुरुष दूसरा ब्याह कर सकता है—तो स्त्री क्यों नहीं कर सकती?"

"इसलिए कि पुरुष समाज का आधार व्यक्ति है। और स्त्री उसकी पूरक है। विवाह के बाद पुरुष अपने घर रहता है—पर स्त्री पति के घर

आ जाती है। पत्नी के मरने पर पुरुष दूसरा ब्याह करता है तो उसके सामाजिक सम्बन्ध टूटते नहीं—अपितु टूटते सम्बन्ध बन जाते हैं। टूटी गृहस्थी जुट जाती है। उजड़ा परिवार बस जाता है। पर स्त्री यदि दूसरा ब्याह करे तो उसके सब पूर्व सामाजिक सम्बन्ध टूट कर छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। क्योंकि वह अकेले पति ही की पत्नी नहीं है, उसके परिवार वालों की भी रिश्तेदार है। किसी की चाची, किसी की ताई, किसी की भौजाई। ये सम्बन्ध साधारण नहीं हैं। समाज के भारी अंग हैं। दूसरा विवाह करने पर यह सम्बन्ध टूट जाएंगे और समाज भंग हो जाएगा। इसके अतिरिक्त एक बात है—आप स्त्री हैं; आप से कहने में संकोच लगता है।"

"आप की बातें विचित्र हैं। दाकियानूसी हैं—पर प्रभावशाली हैं; आप क्या कहना चाहते हैं, वह कहिए।"

आप आज्ञा देती हैं तो कहता हूँ—"हमारे हिन्दू धर्म शास्त्र में स्त्री को युवती होने से प्रथम ही बाल्यावस्था में ब्याह देने की आज्ञा है।"

"यह प्राचीनकाल में नहीं होता था, पीछे से यह बुराई बढ़ाई गई है।"

"पीछे से ही सही। पर यह बुराई नहीं है। बहुत बड़ी भलाई है। जिसे सोच-समझ कर ही दूरदर्शी बुजुर्गों ने बढ़ाया है।"

"दूरदर्शिता इसमें क्या है?"

"वही कहता हूँ। कन्या को युवती होने से प्रथम ही हिन्दू विवाह देते हैं। वह पति घर में जा कर युवती होती है। इससे एक तो पति के परिवार से उसकी आत्मीयता के सम्बन्ध जुड़ते हैं। दूसरी बात यह है कि उसकी सन्तान का पिता—अमुक व्यक्ति उसका पति ही है—इसका असंदिग्ध प्रमाण प्राप्त रहता है। अब यदि स्त्री विधवा होने पर पति की सहगामिनी नहीं होती—दूसरा ब्याह करती है तो सन्तान का पिता कौन है—इसके सौ झगड़े खड़े हो सकते हैं। ऐसा भी संभव हो सकता है—कि वह पूर्व पति की गर्भिणी हो। फिर सम्पत्ति के बंटवारे और

सामाजिक अन्य मामलों में व्याघात पहुँचता है। पिता का असंदिग्ध होना हिन्दू-धर्म का सब से भारी महत्वपूर्ण दृष्टिकोण है। और यह आर्थिक भी है, सामाजिक भी और आध्यात्मिक भी। इसी से एक स्त्री के एक ही पुरुष के संसर्ग में रहने की एकांत चेष्टा की जाती है।"

"मैं आप की बातों से सहमत नहीं हूँ, परन्तु आप बड़े विचारशील हैं। इसलिए आप का सम्मान करती हूँ।"

"आप जीवन को अनन्त नहीं मानतीं। शरीर के अन्त तक ही जीवन मानती हैं। भौतिक संसार ही से आपका नाता है। इससे आप मुझ से सहमत नहीं हो सकतीं, परन्तु आप एक साहसी और उदार देवी हैं, मैं भी आप का आदर करता हूँ। कहिए मैं आप की क्या सेवा कर सकता हूँ।"

"क्या आप ज्योतिष जानते हैं?"

"जानता हूँ।"

"भविष्य कह सकते हैं?"

"कह सकता हूँ।"

"तो कृपया मेरा भविष्य कहिए।"

"नहीं कहूँगा।"

"क्यों?"

"क्योंकि आप श्रद्धावश नहीं, कौतूहलवश यह प्रश्न करती हैं। शास्त्र कौतूहल निवारण करने के लिए नहीं होते।"

'आप की बात यथार्थ है। अच्छा एक बात बताइए।"

"पूछिए।"

"आप मेरी सब जीवन-कथा सुन चुके हैं। अब मुझे यहाँ इस स्थान पर इस दशा में देख कर आप प्रसन्न हैं या नहीं?"

"नहीं।"

"मैं चिता पर जल-मरी होती तो संतुष्ट होते?"

"अवश्य।"

"क्यों भला?"

'ब्राह्मण हूँ, निष्ठा की पूंजी से ब्राह्मण का सब कारोबार होता है। आप उस तरह जल-मरी होतीं—और कभी मैं इस स्थान से गुजरता और जान पाता तो सती माता कह कर उस चिता भूमि में माथा रख आप को प्रणाम करता. और श्रद्धा के आँसू आप की भेंट करता।"

"किन्तु अब ?"

"अब तो मैं केवल आप पर दया कर सकता हूँ।"

शुभदा को एक असह्य भार दबाये डाल रहा था, उसने कहा—"क्या आप साहब से मिलना पसन्द करेंगे ?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"साहब लोग हम काले हिन्दुस्तानियों से मिलना पसन्द नहीं करते। वे अपने को हमसे श्रेष्ठ और हमारे स्वामी समझते हैं। परन्तु मैं ब्राह्मण हूँ, मैं ऐसा नहीं समझता।"

"क्या साहब से आप कुछ चाहते हैं ?"

"कुछ नहीं।"

शुभदा देवी कुछ देर चुपचाप अभिभूत सी खड़ी रहीं। फिर उन्होंने दस रुपये निकाल कर देते हुए कहा—"मैं जानती हूँ कि आप मेरे यहाँ भोजन नहीं करेंगे। अतः ये रुपये लीजिए, भोजन के लिए देती हूँ।"

"नहीं ले सकता। मैं केवल निष्ठावान ब्राह्मणों का ही अन्न खाता हूँ। बारह वर्ष से मैंने यह व्रत लिया है।"

"मैं भी तो ब्राह्मण की बेटी हूँ।"

"क्या आप मुझसे कुछ मांगती हैं ?"

"आशीर्वाद दीजिए।"

"कैसा ?"

शुभदा क्षण भर चुप रही। एक चमक उसके नेत्रों में आई। उसने कहा—"जैसा आप देना चाहें। जैसा अपना धर्म समझें।"

"तो आशीर्वाद देता हूँ—तुम्हारा यह सुहाग अचल रहे।"

शुभदा ने गले में आँचल डाल कर ब्राह्मण की पगधूल ली और गोपाल पाण्डे वहाँ से तेजी से चल दिए।

: ५३ :

पिता और पुत्री

पहली ही बार शुभदा ने अपने चैतन्य जीवन में गोपाल पाण्डे के समक्ष अपने को नगण्य समझा—वह अभिभूत सी उसके पीछे बरामदे तक चली आई। पर ब्राह्मण ने पीछे फिर के देखा नहीं, वह फाटक खोल बाहर चला गया। शुभदा उसे खड़ी देखती रही। इसी समय उसने देखा—फाटक के बाहर एक वृक्ष के नीचे एक दीन-हीन वृद्ध ब्राह्मण लाठी टेके खड़ा एकटक उसी की ओर देख रहा है। उसके शरीर पर पूरे वस्त्र नहीं हैं, चिथड़े हैं। दाढ़ी उसकी बढ़ी हुई है और कमर झुक गई है। कुछ तो इस समय शुभदा का मन भावुकता से आन्दोलित हो रहा था, कुछ वह स्वभाव से ही दयालु थी। उसके हाथ में दस रुपये थे, जो उसने पाण्डे को देने चाहे थे; पर पाण्डे ने अस्वीकार कर दिया था। उसने बैरा को बुला कर और उसके हाथ में वे रुपये देकर कहा—"देखो वह फाटक के बाहर बूढ़ा ब्राह्मण खड़ा है, ये रुपये उसे दे आओ।"

बैरा रुपये लेकर चला गया। शुभदा वहीं खड़ी होकर ब्राह्मण को देखती रही। पर ब्राह्मण ने रुपये नहीं लिए। उसने कहा—वह इस घर की मालकिन के दर्शन करना चाहता है। बैरा से यह बात सुन कर शुभदा ने ब्राह्मण को भीतर बुलाने की आज्ञा दी। बूढ़ा ब्राह्मण लाठी टेकता, कांपते पैरों से सुर्खी कुटी हुई सड़क पर आगे बढ़ा। अभी वह मुश्किल से बीस कदम आगे आया था कि शुभदा ने उसे पहचान लिया और वह इस तरह उसकी ओर दौड़ी जैसे गाय बछिया को देख कर दौड़ती है। ब्राह्मण के निकट पहुंच कर वह वहीं सड़क पर उसके पैरों में लोट गई। ब्राह्मण के हाथों से लाठी छूट गई। उसने कांपते हाथों से शुभदा

को उठा कर हृदय से लगा लिया। अब पिता और पुत्री दोनों मूक मौन रुदन रो रहे थे। यह एक आहत पिता और भाग्यविदग्धा पुत्री का मिलन था, जिसकी कभी उन्होंने आशा नहीं की थी। नौकर-चाकर और बैरा सब जड़ बने देख रहे थे—पर किसी को कुछ कहने का साहस न होता था।

बहुत देर बाद शुभदा ने आंसू पोंछ कर कहा—"मैं तो आपको सपनों में देखा करती थी बापूजी, अब आप से मिलने की क्या आशा थी ?"

"जब मैंने तुझे चिता पर बैठने के लिए घर से बाहर किया, तो मैं तेरी ससुराल तक तेरी पालकी के पीछे-पीछे रोता-कलपता आया था। तेरी मां तो पछाड़ खा कर गिर गई थी और बहन जोर-जोर से रो रही थी। पर मैं तो तेरे हीं ध्यान में सब को भूल गया था बेटी ! मैंने निश्चय किया था कि तेरे ही साथ मैं भी चिता में कूद पड़ूंगा। तुझे मैंने कितने चाव से छाती से लगाकर पाला था—और उस दिन तुझ दुधमुँही को मैं चितारोहण के लिए भेज रहा था। मेरे जैसा निष्ठुर पिता कौन होगा भला। कौन मुझे ब्राह्मण कह सकता है। मैं तो कसाई हो गया था बेटी ! और धर्म के इस दृढ़ बन्धन ने मेरी आँखें अंधी कर दी थीं। मेरे सोचने विचारने की शक्ति मारी गई थी, पर तेरे साथ जल मरने की मैंने ठान ली थी।

मैं किसी को मुँह दिखाना न चाहता था। इसलिए छिप कर मैं वहीं बैठ गया, जहाँ चिता बनाई गई थी। मैंने देखा मेरी बेटी तो रो ही नहीं रही है। मुझे मालूम था तुझे धतूरा मिला कर भांग पिला दी गई थी। फिर तुझे भले बुरे का क्या ज्ञान था भला। मैं चाह रहा था जितनी जल्दी यह काम खत्म हो तों ही भला। मैं इस प्रतीक्षा में था कि चिता की ज्वाला तेज हो तो मैं उसमें कूद पड़ूं। पर इसी समय एक चीख मार कर तू चिता से कूद पड़ी। तेरे कपड़ों में आग लग रही थी। मेरा कलेजा मुँह को आ रहा था। उन्होंने तुझे पकड़ कर फिर जलती चिता में झोंक दिया। मैं पागल की भाँति झटका कि तुझे बचा लूं। पर इतने में ही फिरंगी डाकू आ गए और तुझे ले भागे।

हे परमेश्वर ! मेरा धर्म-कर्म-पुण्य सब नष्ट हो गया। मैंने उन डाकुओं का पीछा किया—पर वे गोली दागते जा रहे थे। एक गोली मेरी टाँग में लगी और मैं मूर्च्छित होकर वहीं गिर गया। नहीं जानता कब तक वहाँ पड़ा रहा। जब होश आया तो पहले तो मुझे समझ ही में न आया कि क्या हुआ होगा, जाग्रत घटना हुई या स्वप्न देखा। पर धीरे धीरे सब बातें याद आने लगीं। शोक कि जल मरने का सौभाग्य भी मुझे न मिला। मेरी बेटी कहाँ गई ? उसका धर्म कैसे बचेगा ? यही सोचकर मैं विक्षिप्त हो उठा। मेरे लोक परलोक दोनों बिगड़ गए। फिर मैं घर लौट कर नहीं गया। जनेऊ अपना तोड़ डाला, कपड़े फाड़ डाले और वहाँ की धूल सिर पर उछाल ली। फिर मैं वहाँ से यहां और यहाँ से वहाँ भटकता फिरा। मेरी टांग में गोली लगी थी। मैंने उसका कोई इलाज नहीं किया। बरसों वह जख्म सड़ता रहा, फिर आप ही अच्छा हो गया। पैर लंगड़ा जरूर हो गया। आज चौदह वर्ष बीत रहे हैं, तब से मैं देश-देश मारा फिर रहा हूँ। भीग माँग कर इस पापी पेट की ज्वाला बुझा लेता हूँ। केवल तेरी वह मूर्ति, जब तू चीख मार कर चिता से कूदी थी, मेरे मानस पटल पर छाई हुई है। वह मुझे न मरने देती है, न जीने देती है।

भला इस बात की कब आशा और कल्पना हो सकती थी कि फिर तुझे मैं देख सकूंगा। और इस रूप में ! पर बहुत दिन बाद मैं कलकत्ता आया। वहाँ एक दिन मजूमदार महाशय से भेंट हो गई। वे मुझे अङ्क में भरने को दौड़े, पर मैं पीछे हट गया। मैंने कहा—"ना-ना मुझे मत छूना मजूमदार महाशय ! मैं ब्राह्मण नहीं हूँ चाण्डाल हूँ, पतित हूं। फिर कुछ देर हमने आंसू बहाये और उन्हीं से मुझे तेरा यहाँ का पता लगा। तुझे अपनी आँखों से एक बार देख लेने का लोभ मैं नहीं संवरण कर सका। आज पन्द्रह दिन से मैं यहाँ आकर सुबह से शाम तक खड़ा होता हूं—पर तेरी नजर मुझपर नहीं पड़ी। आज मेरे भाग्य जागे। मैंने तुझे देखा। मिलना हो गया। बड़ी बात हुई। बस अब जाकर गंगा

में डूब मरूँगा।"

शुभदा चुपचाप अपने पिता की यह भीषण दर्द भरी कहानी सुनती रही। उसमें न जवाब देने की सामर्थ्य थी–न कुछ करने की। उसने सुबकियाँ लेते हुए कहा—"पिता यह न होगा। अब आप मुझे छोड़ कर नहीं जा सकते। चलिए, भीतर चलिए।"

"नहीं बेटी! तेरे घर भला मैं कैसे आ सकता हूँ? कभी ब्राह्मण था—यह अब भी नहीं भूला हूँ।"

"हाय रे भाग्य! जिन्हें विवाह यज्ञोपवीत आदि अनुष्ठानों में बुलाते बड़े-बड़े राजा, रईस, हाथी और पालकी सवारी के लिए भेजते थे—जिनके शिष्य समूचे नदिया प्रान्त में फैले हों; वही दीनबन्धु वन्द्योपाध्याय आज इस दीन-हीन दशा में पुत्री के सम्मुख खड़े हैं। कैसी विडम्बना है।"

वृद्ध ने कहा—"बस-बस, इन बातों से क्या? होंगे कोई दीनबन्धु वन्द्योपाध्याय। मैं नहीं जानता उन्हें। मैं एक पतित पापी पुरुष हूँ और गंगा की गोद में शरण लेना ही मेरा कर्त्तव्य है। भगवान तेरा कल्याण करें। लो मैं यह चला।"

इतना कह कर वह निर्मोही वृद्ध पिता मुँह मोड़ कर चल खडा हुआ। शुभदा 'पिता-पिता—ऐसा न करो। ऐसे निर्मोही न बनो। पिता यह तुम्हारी वही शुभदा है, एक बार इसकी ओर देखो।"

पर बूढ़ा ब्राह्मण अपनी लँगड़ी टांगों को जल्दी-जल्दी घसीटता हुआ, तेजी से चल कर शून्य में विलीन हो गया। शुभदा मूर्च्छित होकर वहीं भूमि पर गिर गई।

: ५४ :

अवसाद की छाया

दो दिन के दौरे के बाद मेकडानल्ड कलकत्ते से लौटे थे। उन्हें अब कमाण्डर-जनरल बना दिया गया था। अब वे अपने सैण्टर के सर्वोच्च

सैनिक अफसर थे। वे जर्क़ बर्क़ पोशाक पहने और नये ओहदे का तमगा छाती पर लगाए, आनन्द और उल्लास से भरे हुए घर में आए। उन्होंने सुना शुभदा शयनागार में है। वे सीधे शयनागार में जाकर बोले—"देखो देखो तो शुभदा—यह मेरी नई ड्रेस—मेरे तमगे। और सुनो, मैं मेजर-जनरल बन गया हूँ। क्या तुम खुश नहीं हो?"

'खुश हूँ।" शुभदा ने बुझी हुई आवाज से कहा। मेकडानल्ड ने शुभदा के विषाद पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने कहा—"इस वर्दी में मैं कैसा लगता हूँ तुम्हें?"

"बहुत बड़े आदमी लगते हो।"

'मेरी प्यारी शुभदा, मेरी हर तरक्की में तुम्हारी भी तरक्की है, मेरी बढ़ोतरी तुम्हारी ही बढ़ोतरी है।"

"यह केवल तुम्हारे अनुग्रह के कारण। सच पूछो तो मुझे इन कपड़ों में तुम्हें देख कर डर लगता है।"

'कैसा डर?"

"वैसा ही, जैसे किसी छोटे आदमी को होता है बड़े आदमियों से।"

"तुम छोटी हो, यह तुम से किस ने कहा?"

"मेरी आत्मा ने। आखिर, मैं दीन-हीन भ्रष्ट पतिता स्त्री हूँ।"

'क्या कारण है कि तुम इस समय ऐसी बातें कर रही हो? तुम्हारा मुँह सूखा हुआ है। बाल रूखे हैं। बोली खोखली है। तुम्हें क्या हो गया है मेरी प्यारी शुभदा? क्या तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है? क्या मैं फौज के बड़े डाक्टर को बुलाऊँ?"

"डाक्टर की जरूरत नहीं है। मैं बीमार नहीं हूँ।"

'लेकिन तुम्हें हो क्या गया है? कहो तो क्या मेरे पीछे कोई घटना घटी है?"

"मेरा मन खराब हो गया है और मैं जरा सोना चाहती हूँ।"

"तो तुम सो रहो।" मेकडानल्ड ने यत्न से शुभदा को बिछौने पर सुला दिया और वह चिंतित भाव से बाहर आए। नौकरों के द्वारा उन्हें

उन दोनों मुलाकातियों के आने की बात विदित हुई। पाण्डे के सम्बन्ध में वह जानता था। उसे सूचना मिल चुकी थी। पर दूसरा मुलाकाती कौन था—यह वह न जान सके। उन्होंने यह निर्णय किया कि जब शुभदा स्वस्थ होगी तो उससे बातें करेंगे।

और रात को जब दोनों भोजन कर ने बैठे तो मेकडानल्ड ने कहा—"शुभदा प्रिये ! मैं तुम से एक बात पूछना चाहता हूँ। तकलीफ न हो तो बताना।"

"पूछो।"

"मैंने सुना मेरी गैर हाजिरी में दो आदमियों से तुम्हारी मुलाकात हुई। इस समय जो तुम्हारी तबियत खराब हो रही है, क्या इन मुलाकातों का तो परिणाम नहीं है ?"

"उन्हीं का परिणाम है।"

"पाण्डे के सम्बन्ध में तो मैं जानता हूँ। वह सिपाहियों का गुरु है। मेरी ही आज्ञा से उसे छावनी में कथा-वार्ता कहने की अनुमति मिली थी। सुना है—बड़ा विद्वान पण्डित है।"

"केवल विद्वान ही नहीं है, त्यागी और निष्ठावान ब्राह्मण है। उसने मुझे मेरे जीवन के लिए लज्जित कर दिया। अब तक जो मैं उस काम को अत्याचार समझ रही थी जो मेरे साथ हुआ, और प्रायः भारतीय हिन्दू विधवाओं के साथ होता ही रहा है, मेरे समक्ष बड़े प्रबल शब्दों में उसने उसका समर्थन किया। मैं नहीं जानती थी कि कोई मेरे विचारों को डिगा सकता है, पर उसने ऐसा ही किया।"

"मैं भी सुनूंगा कि वह उस भयानक रिवाज के समर्थन में क्या दलील रखता है। मैं आज शाम को उसे बुलाऊँगा।"

"वह नहीं आयेगा। न तुम से बातें करेगा। न मुलाकात करेगा।"

"क्या तुमने उस से कहा था ?"

"कहा था, पर उसने स्वीकार नहीं किया। कहा —इससे कुछ फायदा

नहीं है। वास्तव में वह बिल्कुल पुराने विचारों का हिन्दू है और उसकी बातें बहुत प्रभावशाली हैं।"

"मालूम होता है, उसकी बातों का तुम पर बहुत प्रभाव पड़ा है।"

"क्या तुम कल्पना कर सकते हो कि उसने मुझ से क्या कहा ?"

"मैं तुम्हारे मुंह से वह बात सुनना चाहता हूँ; कि जिसने तुम्हें विचलित कर दिया है।"

"मैंने जब उससे पूछा— कि मेरे इस नए जीवन को देख कर वह प्रसन्न है ? तो उसने मेरी नाराजी की बिना परवाह किए कहा—नहीं ! और जब मैंने धड़कते हृदय से उससे पूछा—यदि मैं चिता पर उस दिन जल मरती तो क्या वह प्रसन्न होता ? तो उसने बेधड़क कहा—हाँ ! और जब मैंने उससे इसका कारण पूछा—तो उसने कहा – कि यदि मैं उस भूमि पर कभी जा पहुँचता कि जहाँ तुम सती हो गई होती तो मैं 'सती माता' कह कर तुम्हें धरती पर माथा टेक कर प्रणाम करता, श्रद्धा के आँसू बहाता। परन्तु अब ? उसने कह दिना, अब तो मैं केवल तुम पर रहम कर सकता हूँ।"

"पर मैं इन भारतीय ब्राह्मणों की नस जानता हूँ। कुछ रुपया पाने से उनकी बातचीत का टोन बदल जाता है।"

"ऐसा भी वह आदमी नहीं है। मैं जानती थी कि वह मेरा छुआ कुछ भी खाए पियेगा नहीं। इसी से मैंने दस रुपए देने चाहे थे। पर उस ने नहीं लिये।"

"वह रुपए लिए बिना ही चला गया ?"

"वह मुझे आशीर्वाद दे गया कि तुम्हारा यह नया सुहाग बना रहे।"

"इस आशीर्वाद का भी कुछ मूल्य तुम समझती हो ?"

"मुझे तो ऐसा तभी से प्रतीत हो रहा है, जैसे नंगी तलवार लिए वह ब्राह्मण मेरी रक्षा यत्न से कर रहा है।'

"आश्चर्य है। मैंने आज से पहले तुम्हें किसी व्यक्ति से इतना प्रभावित होते नहीं देखा था। वह दूसरा बूढ़ा ब्राह्मण कौन था ?"

'बेचारे भाग्य के मारे मेरे पिता थे।"

"क्या-क्या ? तुम्हारे पिता थे ? तुमने उन्हें रोका नहीं, चला जाने दिया।"

शुभदा ने गदगद कण्ठ से आँसू बहाते हुए पिता-पुत्री की उस मुलाकात का जिक्र किया। उनके १४ बरस भटकने की कथा भी सुनाई, फिर सिसकियां लेते हुए कहा—'वे बरामदे की सीढ़ियों पर भी नहीं चढ़े, और अब गंगा की गोद में अनन्त विश्राम लेने को चले गए।"

"ठहरो, मैं उन्हें तलाश करने को सिपाही भेजता हूँ। हमें उन्हें ढूंढ़ना होगा।"

"मैंने पाकर उन्हें खो दिया। अब तुम उन्हें ढूंढ़ कर न पा सकोगे।"

"परन्तु शुभदा, हमारे रहते उन बुजुर्ग का इस प्रकार जान देना कैसे संभव हो सकता है। मैं अभी सिपाही भेजता हूँ," इतना कह कर जनरल मेकडानल्ड तेजी से उठ कर चले गए।

उन्होंने बहुत से सिपाही चारों ओर दौड़ाए। परन्तु ब्राह्मण का पता न लगना था न लगा। गोपाल पाण्डे भी वहाँ से जा चुका था, अतः उस से भी मेकडानल्ड की मुलाकात न हो सकी।

जिस समय सन् १८५६ के मार्च में डलहौजी भारत से जा रहा था, प्लासी के युद्ध को सौ बरस पूरे हो रहे थे। इन सौ बरसों में अपनी सेना और शासन के उत्कृष्ट नियन्त्रण के बल पर अंग्रेज निरन्तर भारत की शक्तियों से टकराते रहे और सदैव ही भारतीय शक्ति उनसे टकरा कर चूर-चूर होती गई। भारतीय प्रदेश ज्यों-ज्यों अंग्रेजों के हाथ में आते गए, अंग्रेज वहाँ शासन का नियन्त्रण करते चले गए। अव्यवस्था और अंधेरगर्दी का अब भी दौर दौरा था, परन्तु अब कुछ सुधार हो रहे थे। अंग्रेजी कर्मचारियों के उत्पात और स्वेच्छाचारिता भी कम होती जा रही थी। पिण्डारियों और ठगों के उत्पात दब गए थे। पुलिस की व्यवस्था सुधर गई थी। अदालतों और सदर अदालतों के बन जाने से जनता के मन में न्याय की आशा बंधती जाती थी। यद्यपि अदालतों में घूसख़ोरी और

अंधेर अभी तक कायम था। पर कुछ हाकिम अच्छे भी थे। भिन्न-भिन्न प्रांतों में एक ही शासन कायम होने से सड़कों और यातायात की व्यवस्था सुधर गई थी।

अंग्रेजी राज में सबसे अधिक सुविधा किसानों को मिली थी। जिन दिनों देश में छोटे-छोटे अनियन्त्रित राज्य थे और उनमें आए दिन युद्ध होते रहते थे—तो किसानों ही की खेती-बाड़ी की बर्बादी अधिक होती थी। फौजें खेतों को रौंदती चली जाती थीं, रसद राशन लूट लेती थीं। जान माल की सलामती नहीं थी। अब भीतरी युद्ध समाप्त हो चुके थे और किसान निर्द्वन्द्व ही खेती-बाड़ी करते थे। अंग्रेजों ने अपने अधिकृत प्रदेशों में लगान की व्यवस्था निश्चित कर दी थी और उसे अमल में लाने के लिए सेना, अदालत और पुलिस का जाल बिछा दिया था। किसान निश्चन्त होकर खेती करता था और सरकारी मालगुजारी अदा करता था। पंजाब रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद दस वर्षों तक नरक यन्त्रणा भोगता रहा। अब अंग्रेजी अमल में आने पर सर हेनरी लारेन्स जैसे अनुभवी, समझदार, प्रबन्ध कला में चतुर अंग्रेजों के कारण धाँधली की समाप्ति पंजाब के लिए वरदान बन गई थी।

डलहौजी ने कई अच्छे काम भी किए। नई योजनाएं बनाईं। यद्यपि सफलतापूर्वक अपना राज्य चलाने के लिए ही सही; पर लाभ देशवासियों को भी हुआ। उसी के शासनकाल में पहली रेल लाइन बिछी। जो बम्बई से थाना तक बीस मील लम्बी थी। बाद में देश भर में उसका जाल फैलता चला गया। तार का आरम्भ भी उसी ने किया। इस काम को पूरा करने में डलहौजी को बहुत सी कठिनाइयों को पार करना पड़ा। सस्ते पोस्टेज के पोस्ट आफिस उसने खुलवाए। इससे प्रथम हरकारे चिट्ठी बांटा करते थे और स्थान की दूरी के अनुसार किराया लगता था। डलहौजी ने दो पैसे का पोस्ट कार्ड चलाया, जिसे रेल के कारण काफी सफलता मिली। शिक्षा के क्षेत्र में उसने प्राथमिक शिक्षा का माध्यम देश की भाषाओं को रखा तथा सहायता प्राप्त स्कूलों की परिपाटी फैलाई।

उसने पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेन्ट भी खोला। जिसका उद्देश्य सड़कों, पुलों, नहरों की व्यवस्था करना था। गंगा की बड़ी नहर उसने निकाली और जनरल सड़क कलकत्ते से पेशावर तक बनाई।

निस्सन्देह ये सब काम शासन की सुविधा के लिए ही किए गए थे। पर लाभ इनसे प्रजा को भी पहुंचा और साधारण तथा सर्व साधारण अंग्रेजी राज्य को भाग्य विधान की भांति मानने लगा। डलहौजी से प्रथम अंग्रेजी सरकार की सेनाएँ कुछेक प्रेसीडेन्सी नगरों में इकट्ठी रहती थीं। परन्तु डलहौजी के काल में मराठा राज्य, बर्मा और पंजाब की लड़ाइयों के कारण सेना की संख्या बहुत बढ़ गई थी। सेना में असंतोष की भावनाएं भी दीखने लगी थीं। खासकर बारकपुर के सिपाही विद्रोह से अंग्रेज चौकन्ने हो गए थे। अतः डलहौजी ने यह अनुभव किया कि एक ही के केन्द्र में बहुत अधिक सिपाहियों का जमाव खतरताक है। उसने सबसे प्रथम बारकपुर की ही सेनाओं को दूर-दूर फैला दिया। उत्तर भारत पर तीखी नजर रखने के लिए मेरठ की छावनी को नए सिरे से सुगठित किया गया और वहां जो सेना रखी गई, वह अपने समय की एक मजबूत सेना थी।

अब एक नई उलझन पैदा हुई। अंग्रेजी सेना की छावनियां देश भर में बिखर गई थीं। अब यदि कहीं उपद्रव हो या सीमा पर कहीं झगड़ा उठ खड़ा हो, तो इस बिखरी हुई सेना को तुर्त-फुर्त कैसे काम में लाया जाय। जब तक यातायात के साधन सुलभ न हों तब तक इतना बड़ा साम्राज्य कैसे काबू में रख जायगा। यद्यपि दूरदर्शी डलहौजी ने सड़क आजम के अतिरिक्त और भी सड़कें बनवाई थीं; परन्तु उसकी दृष्टि से यह यथेष्ट न था। अतः उसने रेल और बन्दरगाहों को आधुनिकतम बनाया। रेल बनाने के समय उसका दृष्टिकोण यह था कि एक ऐसी ट्रंक लाइन बनाई जाय जो प्रेसीडेन्सी के आन्तरिक भागों को बन्दरगाहों से जोड़ दे और साथ ही प्रेसीडेन्सियों को एक दूसरे से जोड़ दे। यह काम यद्यपि सेना की सुविधा के लिए किया गया था—पर इससे विदेशी

व्यापार को भी बहुत लाभ मिला। हकीकत यह थी कि डलहौजी का लक्ष्य रेल द्वारा जीते हुए प्रदेशों को दृढ़ करना और साम्राज्य के हर केन्द्र को सैनिक शक्ति के प्रहार के दायरे में लाना तो था ही। इसके अतिरिक्त रेलों द्वारा इंग्लैंड और भारत के मूलधन के व्यापार की ओर अधिकाधिक मात्रा में उन्मुख करना भी था। उसने भारत के बंदरगाह यूरोप के व्यापारियों के लिए उन्मुक्त कर दिए। इसका परिणाम यह हुआ कि उसके शासनकाल ही में रुई और अन्न का निर्यात चौगुना हो गया, तथा विदेशी माल भी भारत में ढाई गुना आया। कच्चे माल के जाने और पक्के माल के आने का जो प्रवाह डलहौजी के प्रयत्नों से तेजी से चला तो देश के शोषण में चार चांद लग गए। संक्षेप में डलहौजी का दृष्टिकोण यह नहीं था कि प्रजा की सुख समृद्धि की वृद्धि हो, या शिक्षा प्रसार हो। उसका मुख्य लक्ष्य यह था कि—समस्त भारत कैसे जीता जाय, राज्यों को कैसे स्थिर बनाया जाय और भारत से इंग्लैंड को अधिक से अधिक लाभ कैसे पहुंचाया जाय। यदि अंग्रेज भारत में व्यापारी की हैसियत से, धन कमाने की नीयत से न आए होते और केवल भारत को विजय करना उनका लक्ष्य होता तो निस्संदेह भारत का इतना शोषण न होता जितना कि हुआ। वे आए तो धन कमाने को और बन गए राजाधिराज, भारत के स्वामी। इसी से कम्पनी राज्य में सबसे अधिक भारत के व्यापार और शिल्प का विनाश हुआ।

शोषण की पहल बंगाल से शुरू हुई। वहीं से सबसे प्रथम कम्पनी का राज्य कायम हुआ। पुर्तगाल-फ्रान्स और हालैण्ड थोड़े-थोड़े काल के लिए राजनीति और व्यापार में इंगलैण्ड के भारत में प्रतिद्वन्द्वी रहे। पर जब प्लासी और बक्सर के युद्धों के बाद अंग्रेजों को बंगाल की दीवानी मिल गई, और धीरे-धीरे सब प्रतिद्वन्द्वी अन्तर्धान हो गए तो प्रथम बंगाल की और इसके बाद अन्य प्रान्तों की आर्थिक सत्ता अंग्रेजों के हाथ में आ गई। और प्लासी के युद्ध के बाद सन् १८५९ तक सौ वर्षों में अकेली ईस्ट इण्डिया कम्पनी ही भारत की आर्थिक भाग्यविधाता रही। जिस समय

उन्हें बंगाल की दीवानी के अधिकार मिले थे—उस समय तुर्क, अरब, ईरानी और तिब्बत के व्यापारियों का भारत से यथेष्ट व्यापार विनिमय होता था। बंगाल से निर्यात ही अधिक होता था। इन जानेवाली चीजों में सूत-रेशम के वस्त्र, चीनी, नमक, पटसन और अफीम प्रथम थी। बंगाल के महीन सूती मलमल की दुनिया भर में खपत और मांग थी। खासकर यूरोप के व्यापारी उसे बहुत चाहते थे। उनके द्वारा ढाके की मलमल एक ओर जापान और दूसरी ओर हालैण्ड तक पहुँचाई जाती थी। उस समय बंगाल में सोना बरसता था; क्योंकि विदेशियों से सोने ही में मूल्य लिया जाता था, इसी से बंगाल तब सोने का बंगाल प्रसिद्ध हो गया था। परंतु अंग्रेजों को दीवानी मिलते ही बंगाल तबाह होने लगा। पहला वार बंगाल के संचित सोने पर हुआ। मीर कासिम को कम्पनी के कर्मचारियों को उनके हरजाने के तौर पर या रिश्वतों में जो सोना देना पड़ा, उसका मूल्य तब तीन करोड़ था और आज पच्चीस करोड होता है। इसके बाद लगान वसूली में लूट खसोट होने लगी। अंग्रेज व्यापारी सरकारी नौकर, गुमाश्ते, जो कमाते या ऐंठते थे, उस आय का भयानक भाग स्वर्ण के रूप रूप में इंगलैण्ड जाने लगा। सन् १७५५ से १७८० तक केवल पच्चीस वर्षों में तब का ६०, करोड़ और आज का ४८०, करोड़ रुपए के मूल्य का सोना भारत से इंगलैण्ड चला गया।

बंगाल में जो स्थायी बन्दोबस्त की पद्धति अंग्रेजों ने प्रचलित की, इसने जमींदारी प्रथा को जन्म दिया। इस प्रथा ने तत्काल बंगाल के शिल्प और व्यापार पर चोट की। मूलधन की बड़ी मात्रा खेती की ओर झुक गई। व्यापार की दुर्दशा प्रथम ही हो गई थी और अब उसका सर्वथा विनाश हो गया। परन्तु इस जमींदारी प्रथा का जो सबसे भारी प्रभाव बंगाल पर आगे पड़ा—वह यह कि ये जमींदार अधिकांश में निकम्मे और आलसी एवं विलासी हो गए। बिना ही कमाई किए पर्याप्त धन उन्हें मिलने लगा और एक प्रकार के कायर सामन्तों की एक बाढ़ बंगाल में आ गई। एक तरफ तो यह हुआ और दूसरी ओर समझदार

और परिश्रमी और मेधावी तरुण अंग्रेजी पढ़-पढ़ कर सरकारी नौकरियों में लग गए। आगे चलकर इन किरानियों—क्लर्कों की भी एक जाति बन गई जो मसिजीवी थे। आज आप कलकत्ते में इन अभागों की एक फौज देखेंगे। सुबह नौ से दस तक और शाम को चार से छह तक—कलकत्ते की सारी राह बाट इन असंख्य मसिजीवियों से भरी रहती है, जिनके चेहरे चिंतित, शरीर थके हुए, नेत्र निष्प्रभ और कमर झुकी हुई, गाल चिपके हुए—ये फाइलों के गट्ठर बगल में दबाए सुबह झपटते हुए दफ्तरों में जाते हैं और शाम को थके-मांदे घर की ओर दौड़ लगाते हैं। कीड़े-मकोड़ों की भांति इनकी जिंदगी है। इनकी इस जाति को अंग्रेजों ने पैदा किया है। अपने जीवन से ये असंतुष्ट हैं। पढ़े-लिखे और विचार करने योग्य हैं, पर निरुपाय और जीवन के बोझ से दबे हुए हैं।

इस प्रकार अंग्रेजों ने बंगाल में दो जातियाँ पैदा कीं। एक जमींदारों की, दूसरी इन क्लर्कों की। जमींदारी प्रथा में जब उलट-फेर और उन्मूलन हुआ और क्लर्कों की कुर्सी पर जब एक पर दस टूट पड़े तो बंगाल ही में एक नए संघर्ष का जन्म हुआ और ये सब क्राँतिकारी बन गए। खैर, इन क्राँतिकारियों का इतिहास तो हम यथावसर देंगे। अभी तो हम डलहौजी के करिश्मों का बखान कर रहे हैं।

डलहौजी की इस नीति का सीधा फल इंगलैण्ड को मिला। भारत का भाग जमींदारों और किसानों में घिरता गया जिससे कच्चा माल विनाश होता गया, और अंग्रेज विविध रूप में कच्चा माल और पक्का सोना इंगलैण्ड भेजने लगे। इन परिस्थितियों से पूरा लाभ उठाया गया। ज्यों-ज्यों भारत का व्यापार चौपट होता गया—इंगलैण्ड में पूंजी और इंगलैण्ड का व्यापार दिगन्त व्यापी हो गया। बंगाल की ही पद्धति लगभग सारे देश में प्रसारित की गई। अंग्रेज निरन्तर भारत के कारीगरों और व्यापारियों की कठिनाइयाँ बढ़ाते चले जा रहे थे—यद्यपि अब वह पुरानी खुली डाकेजनी जरा सभ्य लूट में बदल चुकी थी—कानून कायदों के शिकंजे में फंस कर। विलायती विचार, भाषा, संस्कार, रहन-सहन आदि के साथ

ही साथ विलायती विलास और फैशन भी बढ़ा चला गया। इसका परिणाम यह हुआ कि विलायती माल की माँग बढ़ती चली गई। खास कर विलायती कपड़ों और जूतों का व्यापार खूब चमका। पर सब पर बाजी मार ले गया विलायती शराब का बाजार।

यही वह समय था जबकि इंग्लैण्ड का शिल्पोद्योग पर लगा कर उड़ा जा रहा था, और वह भारत से ढोए हुए सोने के पंखों पर उड़ रहा था। इंग्लैण्ड में उत्पादन की बाढ़ आ रही थी। उस समय भारत में यदि भारत के हित की चिन्ता करने वाली कोई सरकार होती तो वह अवश्य ही कानून बना कर देश के शिल्प और व्यापार का संरक्षण करती। परन्तु यहाँ तो आदर्श अंग्रेज़ डलहौजी का बोलबाला था और उसने विदेशियों के लिए भारत के बन्दरगाह खोल दिए थे जिसके द्वारा विलायती माल का निर्बाध प्रवेश भारत में हो रहा था। इसका परिणाम तुरन्त ही यह दीख पड़ा कि भारतीय शिल्प और व्यापार चौपट हो गया, और मुर्शिदाबाद, ढाका, लखनऊ, अहमदाबाद, नागपूर, मदुरा, बनारस, तंजोर, पूना और काश्मीर जैसे शिल्प उद्योग के केन्द्र उजाड़ हो गए; और उनके स्थान पर मानचेस्टर और लिवरपूल के कारखानों की चिमनियाँ आकाश से स्पर्द्धा करने लगीं।

जिस समय भारत में अंग्रेजों ने अपना कदम जमाया, उस समय मुगल साम्राज्य टूट रहा था। परन्तु मुस्लिम प्रभावित एक नई सभ्यता पनप रही थी। अब ज्यों-ज्यों अंग्रेजी राज्य पैर फैलाता गया—मुगल प्रभाव सिमटता गया। और अन्ततः वह लालकिले की दीवारों के भीतर सिमट-सिमटा कर—सीमित रह गया। और अब तो लालकिले में मुगलों का अन्तिम चिराग टिमटिमा रहा था। जिसकी क्षीण ज्योति बुझने को अब तब हो रही थी, और उसके बाद लालकिले के पट बंद होने वाले थे।

सन् १७८५ में जब सिंधिया ने दिल्ली पर अधिकार किया था; सभी शक्ति मुगल सम्राट के हाथ से छिन गई थी। सिंधिया ने राज्य शक्ति अपने हाथ में ले कर बादशाह शाह आलम को ६, लाख रुपए वार्षिक

की पेंशन बाँध दी थी—पर वह कभी भी बादशाह को समय पर नहीं मिली। १८०३ में दिल्ली पर अंग्रेजों में कब्जा किया और शाह आलम उनके हाथों की कठपुतली बना। अंग्रेजों ने बारह लाख रुपए वार्षिक बादशाह की पेंशन नियत की। बूढ़ा और अंधा बहादुरशाह निरुपाय था। अब मुगल सूर्य तेजी से अस्ताचल को जा रहा था। परन्तु अभागे शाह आलम और उसके उत्तराधिकारी किसी क्षीण आशा की ज्योति का सहारा ताक रहे थे। थोड़े ही दिनों बाद अंग्रेज गवर्नर जनरल ने बादशाह की परवाह करना ही छोड़ दिया। वास्तव में अब मुगल बादशाह एक निरर्थक सत्ता और अंग्रेजों के सिर पर नागहानी का भार था। शाह आलम के उत्तराधिकारी ने लंदन के द्वार खटखटाने राजा राममोहनराय को भेजा—परन्तु बेकार। क्योंकि अंग्रेजों के और बादशाह के दृष्टिकोण ही भिन्न हो गए थे। बादशाह अभी भी अपने को भारत के अधिराज समझते थे। परन्तु अंग्रेज उसे महज पुराने जमाने की कुतुबमीनार समझते थे। आरम्भ में अंग्रेजों की यह नीति थी कि बादशाह के केवल अधिकार ही छीन लिए जायँ, किन्तु उसकी मान-मर्यादा कायम रखी जाय। परन्तु बाद में यह ढकोसला भी उठा दिया गया और बादशाह के पद को ही अस्वीकार कर दिया गया। दूसरे शब्दों में अब्र तक बादशाह नवाब-बे-मुल्क बने हुए थे, पर अब इतने भी न रहे।

डलहौजी चाहता था कि बादशाह लालकिले को छोड़ दें और अपने कुनबे के साथ कुतुब वाले अपने महल में चले जायँ, और किले में सरकारी मेगजीन रक्खी जाय। परन्तु इसमें उसे सफलता न मिली। बादशाह और उसके परिवार की जो दुर्दशा हो रही थी, उस पर सारे ही भारतवर्ष की सहानुभूति बादशाह पर उमड़ आई। खास कर मुसलमान तो उसे शहीद और औलिया मानने लगे। यों बादशाह एक भावुक-दयालु और कवि प्रकृति का आदमी था। किसी से कठोर व्यवहार कभी उसने किया न था। इसी से हर खास व आम उसे प्यार करता था। और ज्यों-ज्यों लोगों में उसके लिए सहानुभूति जाग्रत होती जाती थी, लोग अंग्रेजों से

घृणा करते जाते थे। यह वातावरण ऐसी स्थिति धारण कर गया कि कुछ लोग खास तौर पर इस बात का प्रचार ही करने लगे। दिल्ली के आस-पास का वातावरण और भी उत्तेजनापूर्ण बन गया था। पर अंग्रेज इस बात से बेखबर थे कि वे जिस दिल्ली में क्लबों में बैठ कर नाच-रंग करते, शराब पीते, और चैन की बंसी बजा रहे थे; उसकी भूमि में असंतोष की आग सुलग रही थी, जो चाहे जब वह भड़क उठे। ऐसा ही नाजुक वह क्षण था, जब डलहौजी ने भारत से प्रस्थान किया और केनिंग ने भारत की भूमि पर कदम रखा।

: ५५ :

सत्तावन का नया दिन

सन् १८५७ का नया दिन इस बार कलकत्ते में बड़ी धूमधाम से मनाया गया। वास्तव में यह ब्रिटिश साम्राज्य का शताब्दी-समारोह था। अब प्लासी के युद्ध को सौ बरस बीत रहे थे और सम्पूर्ण भारत में अखण्ड ब्रिटिश साम्राज्य का बोलबाला था। डलहौजी के महान कार्य मूर्तरूप धारण कर चुके थे, विज्ञान की नई देन—रेल, तार, डाक, नहर और दूसरी राज्य व्यवस्थाएँ अब भारत में एक समृद्ध साम्राज्य की रेखाएँ बना चुकी थीं। यद्यपि भारतीय मन खिन्न थे और अंग्रेज मन में समझते थे कि चाहे जब विस्फोट हो सकता है। पर डलहौजी और कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स को इसकी परवाह न थी। डलहौजी का कार्यकाल अब समाप्त हो रहा था और वह अपने अमर कारनामे भारत में स्थापित कर के जाने की तैयारी कर रहा था। दूसरी ओर मुगल बादशाह, राजा और महाराजा, व्यापारी और शिल्पी, प्रजा और राजकर्मचारी सब के मन में अविश्वास और सन्देह तथा भय भरा था। पर अंग्रेजों को इसकी चिन्ता न थी। और इस बार वे धूमधाम से बड़ा दिन मनाने की तैयारियाँ कर रहे थे। इस बड़े दिन के समारोह में सम्मिलित होने दूर-दूर

के अंग्रेज भी एकत्र हुए थे। कमाण्डर-जनरल मेकडानल्ड और उनकी पत्नी शुभदा भी आई थीं।

गवर्नमेंट भवन बड़ी शानदार रीति से सजाया गया था। हजारों फानूस रोशन थे। अनेक बाजे बज रहे थे। बड़े भारी डिनर की तैयारियाँ थीं। बहुत सी अंग्रेज महिलाएँ अपनी सज-धज दिखाने आई थीं। शराब और नाच-रंग का दौर-दौरा था। कर्नल हिअरर्स की मेम साहब ने अपने सौन्दर्य और सज-धज से यहाँ भी रंग जमाया हुआ था। उस के चारों ओर सुन्दरियों का जमघट जमा था, जो अपनी-अपनी पोशाकों और यौवनों की बहार दिखा रही थीं। अभी साढ़े नौ बजे थे। झाड़-फानूस जगमग कर रहे थे। उसकी झिलमिल रोशनी में सुन्दरियों के झुरमुट का दिखाव द्विगुण हो रहा था। जमीन पर कीमती कालीन बिछे थे, और फूलदानों में बड़े-बड़े ताजे फूलों के गुलदस्ते सजे थे। रंग-बिरंगे पर्दों में छन कर फानूसों की रोशनी अजब बहार दिखा रही थी। बाजों की सुरीली ध्वनि चित्त को उछाल रही थी। बालरूम नाच की तैयारी थी। मेहमान सब एक-एक कर के आ चुके थे। गवर्नर-जनरल डलहौजी यद्यपि अस्वस्थ थे, पर वे खूब भड़कीली पोशाक पहने सुन्दरियों से हँस-हँस कर हाथ मिला रहे थे। इन सुन्दरियों की शिरोमणि मैडम हिअरर्स बड़े ही नाज-नखरे से मिलने वालों का सलाम ले तथा हाथ मिला रही थीं। इस समय उस की बड़ी-बड़ी आँखों में प्रेम की तरंगें उठ रही थीं। उस के गाउन का निचला भाग कालीन पर घसिट रहा था। उस की टोपी एक दम सफेद थी, जिस पर शुतरमुर्ग का पर बहार दिखा रहा था। उस के हाथों में एक छोटा सा हाथी दाँत का सुन्दर पंखा था। जिस से वह जब तब अपने मुखमण्डल की ओट कर लेती थी।

मेहमानों का ताँता लगा था। इसी समय एक दूसरी षोड़शी ने प्रवेश किया। इस के नव किसलय अंग-सौष्ठव को देख कर लोग चकित रह गए। यह किशोरी सर डगलस की पुत्री थी जो अभी विलायत से आई थी। सर डगलस इस समय कलकत्ते में चीफ जस्टिस थे। इस किशोरी

के आने से मिसेज हिग्ररर्स का रंग फीका पड़ गया। जो युवतियाँ उसे घेर कर खड़ी थीं, वह मिस डगलस से जान-पहचान करने उधर को चल दीं। दो अधेड़ स्त्रियाँ उस के पास रह गई थीं। एक ने कहा—"इस छोकरी पर तो खूब जोबन खिला है, पहले इसे कभी नहीं देखा।"

"देखती कहाँ से, इसी सप्ताह तो इस नए माल का चालान आया है।"

"नया माल तो है, पर गाहक जुटें तो बात है।"

"गाहकों की क्या कमी है। देखती नहीं। लोग उधर ही देख रहे हैं।"

"देख रही हूँ। लेकिन वह काली मेम कहाँ है?"

"ओह! मेकडानल्ड की बीवी? वह क्या खा कर यहाँ अंग्रेजों की सोहबत में आयगी। बेचारी हिन्दुस्तानी चुहिया।"

"ऐसा न कहो। अब तो वह तुम्हारे पति के अफसर की बीवी है। सुना नहीं मेकडानल्ड अब कमाण्डर-जनरल हो गया है।"

"तो इस से क्या? मुझे उस काली कुतिया को सलाम करना होगा?" दो चार और स्त्रियाँ इस दिलचस्प बातचीत में भाग लेने आ जुटीं।

एक ने कहा, "सचमुच यह तो बड़ी शर्म की बात है। भला हिन्दुस्तानी औरत का यहाँ क्या काम?"

"लेकिन वह क्या बहुत काली है?"

"मैं ने तो देखा नहीं। काली है कि पीली।"

"पर वह यहाँ आने का साहस नहीं कर सकती।" अभी उस अधेड़ स्त्री के मुँह से यह बात निकली ही थी—कमाण्डर-जनरल मेकडानल्ड के साथ शुभदा ने प्रवेश किया। मेकडानल्ड अपनी पूरी फौजी वर्दी में था और शुभदा शुद्ध भारतीय वेश में। उस ने मुर्शिदाबाद की बनी एक कीमती साड़ी नफासत से पहनी थी। हाथों में हाथी दाँत का लाल चूड़ा और माँग में सिन्दूर। एक भद्र मोहक भारतीय महिला के रूप में वह

धीर मन्थर चाल से चली आ रही थी। एक बार सभी का ध्यान उसकी ओर केन्द्रित हो गया। मेकडानल्ड उसे सीधे गवर्नर-जनरल के निकट ले गया। डलहौजी ने हँस कर उस का स्वागत किया। उस के मोहक रूप, सुबुक भारतीय वेश भूषा, और साहसिक पूर्ववृत्त ने सभी का ध्यान उस पर केन्द्रित कर रखा था।

लेकिन मिसेज हिअरर्स कह रही थी—"क्या यह काली औरत हम से भी आ कर मुलाकात करेगी ?"

"क्यों ? क्या तुम इस के लिए बहुत उत्सुक हो ?"

"बिल्कुल नहीं। बल्कि मैं तो विरोध करती हूँ। वे लोग इन काली औरतों से शादी करते हैं, या उन्हें उन की सोहबत पसन्द है तो करें। पर वे उन्हें हमारी बराबरी में बैठाते हैं, यह मैं बर्दाश्त नहीं कर सकती।"

"मैं भी नहीं कर सकती। पर मैं हैरान तो इस बात पर हूँ कि मेकडानल्ड जैसे अफसर को यह सूझा क्या? क्या उस जैसे शकील जवान अफसर को औरतों की कमी थी। यही मिस डगलस उन्हें हजार जी-जान से चाह सकती थीं। लो—वे लोग तो इधर ही आ रहे हैं। अब मिलने को तैयार हो जाओ।"

"क्या कयामत है, मैं तो उस से मिलना मुतलक नहीं चाहती।"

"लेकिन जरा बात करने में हर्ज ही क्या है। दिल्लगी ही रहेगी। मगर क्या वह हम लोगों की बोली समझ-बोल सकती है ?"

"न सही, गूँगी की तरह इशारे ही करेगी।"

इतने में ही कमाण्डर जनरल-मेकडानल्ड ने आ कर मुस्कराते हुए मिसेज हिअरर्स को सलाम किया, तथा अपनी स्त्री से उन्हें परिचित कराया। जरा सा झुक कर मिसेज हिअरर्स ने कमाण्डर का अभिवादन ग्रहण किया। फिर नखरे से मुस्करा कर शुभदा की ओर संकेत कर के कहा—

"क्या यह हमारी सोहबत पसन्द करेंगी ?"

इस पर शुभदा ने मुस्करा कर शुद्ध अंग्रेजी में कहा—"हृदय से, यदि आप को आपत्ति न हो।"

मिसेज हिग्ररर्स ने अपनी सखी की ओर देखा जो शुभदा के शुद्ध उच्चारण से चमत्कृत हो रही थी। फिर उस ने वैसी ही हँसी हँस कर कहा—

"आप की बाबत तो हम लोगों ने बहुत कुछ सुना है। लेकिन मुलाकात आज हुई।"

"यह मेरा ही कसूर है। आप जब स्वदेश से यहाँ आईं तो मुझे ही आप से मिलने जाना चाहिए था। मेरे पति ने कहा भी—पर मैं ही कुछ संकोच में पड़ गई।"

"कैसा संकोच ?"

"यही कि शायद आप एक हिन्दुस्तानी औरत से मिलना पसंद न करें।"

"लेकिन अब कैसे आप का संकोच दूर हो गया ?"

"सच पूछा जाय तो संकोच है ही। मैं तो अभी तक नहीं जानती कि आप मुझसे मिलकर प्रसन्न हुईं या नहीं।"

"मुझे प्रसन्नता है मैडम !"

"तो मेरा नाम शुभदा है। यह छोटा सा नाम याद रखिए।"

"जरूर याद रखूंगी। आपको शायद अंग्रेजों की ऐसी पार्टी में आने का पहला ही अवसर है ?"

"जी हां, पहला ही।"

"आप हिन्दुस्तानी स्त्रियाँ इस प्रकार के आमोद पसंद नहीं करतीं।"

"पसन्द क्यों नहीं करतीं। परन्तु तरीका जुदा-जुदा है। हमारा भारतीयों का स्त्री समाज पुरुषों से जुदा है। अपने स्त्री समाज में हम सब आमोद-प्रमोद करती हैं।"

"खैर, तो आज हम आपका एक हिन्दुस्तानी गाना सुनेंगी।"

"कभी आपके घर आकर सुना दूंगी। इस प्रकार के समारोहों में

पुरुषों के सामने गाने का मुझे अभ्यास नहीं।"

"आप एक अंग्रेज अफसर की बीवी होकर भी शायद पर्दे में रहना पसंद करती हैं।"

"एक हद तक। हमारा यह दस्तूर है कि समाज में मिलने-जुलने की एक सीमित मर्यादा है।"

"तब तो मुझे भय है कि आप हमारे अंग्रेजों के समाज में लोकप्रिय नहीं हो सकेंगी।"

"हो सकता है; पर मैं हिन्दुस्तानी हूँ। मैं एक अच्छी पत्नी होना ही चाहती हूँ।"

"इसके लिए कमाण्डर-जनरल महोदय हमारी बधाई के पात्र हैं।" उन्होंने हँसकर मेकडानल्ड की ओर देखा, जो चुपचाप दोनों की बातें सुन रहे थे।

इस समय मेकडानल्ड ने कहा—"अरे वह देखो बंगाल पैदल सेना के कमाण्डर आ रहे हैं। मुझे उचित है कि मैं आगे बढ़कर उनका स्वागत करूँ। वे मेरे पुराने दोस्त हैं। मैं अभी आया शुभदा देवी, तब तक तुम मिसेज़ हिअरर्स से बात करो।"

और वे लपकते हुए नवागन्तुक अफसर की ओर चले। इस आदमी की आयु पच्चीस के लगभग होगी। परन्तु वह लम्बा-तगड़ा हृष्ट-पुष्ट आदमी था। उसके रंग-ढंग से कुछ घमण्ड और अहंमन्यता अवश्य झलक रही थी। परन्तु मेकडानल्ड ने आगे बढ़कर हँसते हुए कहा—"आप हैं जनरल कैन्नेडी! बहुत दिन बाद मिले। कहिए मिजाज तो अच्छे हैं!"

"आप से मिलकर बहुत सुखी हुआ जनरल मेकडानल्ड! लेकिन आप की वह हिंदुस्तानी बीवी कहाँ है? मैं तो उनसे मिलने को उत्सुक हूँ।"

"वह क्या सामने खड़ी हैं। मिसेज़ हिअरर्स से गप्पें लड़ा रही हैं।"

"सचमुच? वण्डरफूल! जनरल मेकडानल्ड, मैं आपको बधाई देता हूँ, और शुक्रिया अदा करता हूँ।"

"शुक्रिया किसलिए जनरल?"

"कि तुमने लार्ड ईसूमसीह की सच्ची सेवा की। एक गुमराह हिंदुस्तानी को क्रिश्चियन बनाकर उसका नर्क से उद्धार किया। मगर यह मैं क्या देख रहा हूं लेडी मेकडानल्ड तो बिल्कुल हिन्दुस्तानी लिबास में हैं।"

"जी हाँ ! क्या आप नहीं जानते कि वह एक खानदानी ब्राह्मण की बेटी हैं।"

"नान्सेन्स ! जनरल मेकडानल्ड ! यह आपने क्या सड़ी बात कही। ये बदनसीब हिन्दुस्तानी कितने गन्दे और गुमराह है। मैं तो समझता था कि आपने उसे एक आदर्श क्रिश्चियन लेडी बना दिया होगा।"

"क्रिश्चियन तो नहीं, पर वह एक आदर्श हिन्दू लेडी है।"

"ओ गाड ! आप तो कुछ दूसरे ही टोन में बोल रहे हैं। खुदा के लिए आप यह तो फर्माइए कि आप खुद भी क्रिश्चियन हैं या नहीं ?"

"यकीनन मैं क्रिश्चियन हूँ।"

"तो यह कैसे मुमकिन हो सकता है कि आप क्रिश्चियन हों और आपकी बीवी हिन्दू ?"

"पहले मैं भी यह नहीं सनझता था, कि यह कैसे मुमकिन है। पर अब समझ गया।"

"खुदा की कसम ! आप पर जरूर शैतान का साया पड़ा है। तभी आप ऐसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हैं।"

"मैं तो ऐसा नहीं समझता। मेरे होश-हवास कतई दुरुस्त हैं।"

"तो इसका मतलब यह है कि आप ईसाई धर्म को अच्छा नहीं समझते।"

"खूब अच्छा समझता हूँ और मैं क्रिश्चियन हूँ—परन्तु मैं एक सैनिक अफसर हूँ—मिशनरी प्रचारक नहीं।"

"मैं भी एक अफसर हूं जनरल मेकडानल्ड, परन्तु मैं पहले मिशनरी हूं, बाद में अफसर। सेना के हिन्दुस्तानी सिपाहियों को ईसाई बनाना मेरा मिशन है और मैं लगातार अट्ठाइस साल से हिन्दुस्तानी सिपाहियों को ईसाई बनाने का काम कर रहा हुं। हिन्दू या मुसलमान जो भी

सिपाही ईसाई बन जाता है मैं उसे तुरन्त जमादार या हवलदार बना देता हूँ। चाहे इस योग्य हो या न हो।"

"लेकिन आप क्या समझते हैं कि ऐसा करके आप अपने सैनिक दायित्व से विचलित नहीं हो रहे ?"

"तनिक भी नहीं। अजी इन मूर्तिपूजक जंगली हिन्दुस्तानी सिपाहियों की आत्मा को शैतान के पंजे से बचाना भी मेरी मिलिट्री ड्यूटी है। मैं ऐसा मानता हूँ। फिर इसके अतिरिक्त एक और भी तो बात है जनरल !"

"वह क्या ?"

"बिलफर्ज हिन्दुस्तान में हम अंग्रेजों के खिलाफ बगावत फैल जाए तो हमें ये ईसाई देशी सिपाही सबसे अधिक सहायता दे सकते हैं।"

"मुझे अफसोस है जनरल कि मेरे विचार तुमसे नहीं मिलते। मैं तो यही समझता हूँ कि धर्म के मामले में हम लोगों को निरपेक्ष और उदार होना चाहिए।"

जनरल कुछ कहना चाहता ही था कि भोजन की घण्टी बज गई।

मेकडानल्ड ने कहा—'अभी और बातें फिर होंगी जनरल, अब तो तुम बंगाल पैदल रेजीमेंट में तैनात होकर आ ही गए हो। मैं भी ३४ नं० पल्टन कमाण्डर हूँ।"

"तब तो मुझे खुशी है कि जल्दी-जल्दी मुलाकात होगी और तब शायद तुम्हारी पत्नी को अच्छी क्रिश्चियन लेडी बना सकूँ।"

"मुझे प्रसन्नता होगी जनरल। परन्तु यह संभव नहीं है।" इतना कहकर वे शुभदा की ओर चले। वह उनकी प्रतीक्षा ही कर रही थी। उसने कहा—"जरा ध्यान रखना, मेरे सामने कोई अखाद्य न आने पाए।"

"मुझे ध्यान है। तुम इतमीनान रखो। मैंने पहले ही से प्रधान खानसामा से कह दिया है। उसने अवश्य एक-दो डिश तुम्हारे लिए बंगाली ढंग की बनाई होगी।"

इसके बाद सब कोई अपने-अपने जोड़े के साथ भोजन की टेबुल पर

बैठे । टेबुल पर बहुत सी जिन्सें परसी गई थीं । तथा अब झाड़-फानूसों के प्रकाश में बोतलों में भरी हुई शराब सोने की तरह चमक रही थी। टेबुल पर भाँति-भाँति की शराब, भाँति-भाँति के पके मांस तथा पकवान और फल भरे हुए थे । बाहर बैंड बज रहा था और भीतर छुरी चम्मचें ताल दे रही थीं । यह सत्तावन का नया दिन था । सत्तावन की पहली जनवरी ।

सोना और खून

दूसरा भाग——दूसरा खण्ड

: १ :

नाना साहब धोंडूपन्त

पूना से विठूर आने के समय बाजीराव अपने साथ अतुल सम्पत्ति लाए थे। उनके हीरे-जवाहरात का मूल्य ग्यारह लाख रुपए था। और जागीर का मूल्य सोलह लाख रुपए, जिसकी वार्षिक आय अस्सी हजार रुपए थी। उन्हें आठ लाख रुपए वार्षिक पैन्शन अंग्रेजी सरकार से मिलती थी। इनके अतिरिक्त उन्हें विठूर की जागीर दे दी गई थी तथा कुछ विशेषाधिकार भी उन्हें मिले थे। उन्हें उत्तर प्रदेश के प्रान्तीय शासन तथा अदालतों की सीमा से बाहर रखा गया था, तथा सरकार ने विठूर में एक अंग्रेज कमिश्नर रखा था, जिसके द्वारा सरकार पेशवा से सम्बन्धित थी। बाजीराव विठूर में सन् १८१७ में आए और सन् १८५१ में मरे। इस प्रकार ३४ बरस विठूर में रहे और इस बीच अंग्रेज सरकार से उन्होंने कोई पौने तीन करोड़ रुपया पैन्शन का वसूल किया।

विठूर में बाजीराव खूब ऐशों-इशरत से रहे। वह एक आराम पसन्द विलासी पुरुष थे। सरकार ने उनके ऐशो-इशरत में कभी कोई विघ्न नहीं किया। परन्तु उन पर नज़र कड़ी रखी। विठूर में जो अंग्रेज कमिश्नर रहता था, उसका खास परवाना बिना प्राप्त किए पेशवा का कोई आदमी न विठूर से बाहर जाने पाता था न विठूर में आने पाता था।

अंग्रेजों ने शायद इस दब्बू और विलासी मराठा सरदार को नैपोलियन जैसा उच्चाकांक्षी समझ लिया था। यद्यपि बाजीराव सन् ५१ में मरे, पर कम्पनी की सरकार ने सन् ४० ही में वे सब आदेश दे दिए थे, जो बाजीराव की मृत्यु के बाद अमल में आने वाले थे। धोंडूपन्त नानाराव को यद्यपि उसने सन् २७ ही में गोद ले लिया था जब वह केवल तीन बरस के थे। परन्तु सन् १८३९ के दिसम्बर में पेशवा ने बाक़ायदा वसीयत लिख कर अपने दत्तक नाना धोंडूपन्त को अपनी गद्दी और अतुल सम्पत्ति का एकमात्र उत्तराधिकारी बना दिया था। इस वसीयत के अनुसार नाना सन् ५० में ही २५ वर्ष के हो जाने पर पूर्ण रूप से बाजीराव के उत्तराधिकारी बन गए थे।

जब बाजीराव की मृत्यु हुई तब कर्नल मेन्सन विठूर के कमिश्नर थे। उन्होंने सरकार को सूचना दी कि बाजीराव का दाह-संस्कार विधि-पूर्वक शांति के साथ सम्पन्न हो गया। इस पर सरकार ने तुरन्त आदेश दिया कि मृत पेशवा की धन-सम्पत्ति और आश्रितों की सूची भेजो। पेशवा के सूबेदार ने यह सूची भेज दी। और सरकार ने विठूर स्थित कमिश्नर को आदेश दिया कि वह धोंडूपन्त को सूचित कर दे कि सरकार ने उन्हें केवल धन-सम्पत्ति का ही उत्तराधिकारी स्वीकार किया है। पेशवा की उपाधि, राजनैतिक अधिकार तथा विशेष व्यक्तिगत सुविधाओं का नहीं। इसलिए उन्हें पेशवाई गद्दी पर बैठने का समारोह नहीं करना चाहिए। साथ ही यह भी कि विठूर की जागीर भी व्यक्तिगत पेशवा बाजीराव के जीवनकाल तक ही अनेक सुविधाओं से सम्बद्ध थी। तथा पेशवा और उनकी रानियों को न्यायालय के अधिकारक्षेत्र से मुक्ति केवल पेशवा के जीवनकाल तक ही थी। साथ ही यह भी आदेश दिया कि विठूर में अब कमिश्नर के कार्यालय की कोई आवश्यकता नहीं रही, सरकार अब कानपुर के कलक्टर के द्वारा धोंडूपन्त से पत्रव्यवहार करे।

ये सूचनाएँ धोंडूपन्त को दे दी गईं। परन्तु धोंडूपन्त बड़ा ही महत्वाकांक्षी तरुण था यद्यपि वह वीर न था, पर साहसी और परिश्रमी था।

इसने सरकारी आदेशों की परवा न की और धूमधाम से गद्दीनशीनी का समारोह किया, तथा पेशवा की सब उपाधियाँ ग्रहण कर लीं। साथ ही सरकार को एक स्मृतिपत्र लिखा और उसके साथ एक खरीता भेज कर पैन्शन तलब की।

सरकार ने यह खत और खरीता अस्वीकार किया, और उसे कलक्टर के पास इस अभिप्राय से भेज दिया—कि वह उसे धोंडूपन्त को वापिस कर दे। सरकार ने कलक्टर के द्वारा धोंडूपन्त को यह भी सूचित करा दिया—कि सरकार उनकी उपाधियाँ नहीं स्वीकार करती। इस विषय में तथा पैन्शन के बारे में उसे यदि कुछ कहना हो—तो आगरा के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर द्वारा कह सकता है।

यह सब जान कर धोंडूपन्त एक बार तो विमूढ़ हो गया। वह सामंती युग ही ऐसा था कि बिना श्रम किए पैन्शन और जागीरें भोगने के सिवा विशिष्ट जनों को जीवन का कोई सहारा ही नहीं दीखता था। आठ लाख की पैन्शन और विठूर की जागीर ज़ब्त हो जाने पर धोंडूपन्त की आँखों में अंधेरा छा गया। इस समय पेशवा के परिवार तथा आश्रितों के पालन-पोषण का भार उसी पर था। ये सब भी उसी तरह बिना परिश्रम का अन्न खाने वाले लोग थे। आश्रितों की संख्या तीन सौ के लगभग थी, और बाजीराव से वे २७०० रुपए मासिक वेतन पाते थे। इसके अतिरिक्त परिवार की २६ विधवाएँ, और अनेक निकटतम सम्बन्धी थे, जो अपनी गृहस्थी पृथक्-पृथक् रखते तथा पेशवा से मुशाहिरा पाते थे।

धोंडूपन्त ने सरकार का यह उत्तर पा कर पेशवा का सब खज़ाना, रत्नाभरण और शस्त्रागार पर अपना अधिकार कर लिया। अब तक बाजीराव के सूबेदार रामचन्द्र पन्त यह सब देखभाल करते आए थे। इसके अतिरिक्त रानियों के पास भी अतुल धन-सम्पत्ति थी। धोंडूपन्त ने उस पर भी अपना एकाधिकार कायम कर लिया। रानियों ने बहुत बाबैला मचाया। आश्रित भी उनके विरोधी हो गए। बाबैला सरकार तक पहुंचा। पर सरकार ने चुप्पी साध ली। वह क्यों इन घरेलू मामलों

में दखल देती भला। सरकार ने पेशवा के परिवार के सब सदस्यों को तथा आश्रितों को यह भी सूचना दे दी—कि धोंडूपन्त पूर्णरूप से बाजीराव की धन-सम्पत्ति के उत्तराधिकारी हैं, अतः उनका सम्मान करना सब का कर्त्तव्य है।

धोंडूपन्त जैसे उच्चाकांक्षी थे—वैसे ही शाहखर्च भी थे। अतिथि-सत्कार उनका प्रसिद्ध था। बहुधा वे कानपुर के उच्च पदस्थ अंग्रेजों को सपरिवार विठूर में आमन्त्रित करते—और महीनों उन्हें ठहरा कर उनकी खूब खातिर-तवाजा करते थे। पैसे का उन्हें लोभ न था। मिजाज उनके ठाठदार थे। उनकी एक बहुमूल्य बग्घी थी। जिसकी कीमत २५ हजार रुपए थी। एक बार कानपुर से विठूर आते समय अकस्मात एक अंग्रेज का बालक उसके नीचे कुचल कर मर गया। बस बग्घी अशुद्ध हो गई, और धोंडूपन्त के तथा परिवार के उपयोग के योग्य न रही। उसे बेचना उनकी शान के विरुद्ध था, और किसी को दे डालने से एक दुःखद स्मृति बनी रहती। फलतः धोंडूपन्त ने उसे जलवा डाला। ऐसे ही मिजाज के थे धोंडूपन्त।

धोंडूपन्त शरीर से स्वस्थ, हृष्ट-पुष्ट और स्वभाव से सादामिजाज थे। किसी प्रकार के नशे-पानी का भी उन्हें व्यसन न था। वह मराठों की तरह घुटा सिर और मूंछें रखते थे। वह २८ बरस की आयु में चालीस साल के परिपक्व व्यक्ति दीख पड़ते थे। कद उन का मझोला था। उन का शरीर सुगठित, चेहरा गोल, आँखें शेर के समान चारों ओर घूमती हुईं—और भेदक, रंग गेहुँआ और उठान शानदार थी। बातचीत का ढंग विनोद पूर्ण था। दरबार में वह कमख्वाब की पोशाक पहनते और सिर पर, कण्ठ में, कानों में तथा भुजदण्ड पर बहुमूल्य रत्न धारण करते थे। अपने आश्रितों से उन का व्यवहार उदार और दयापूर्ण था। वे अत्यन्त शिष्ट और मिलनसार व्यक्ति थे। उन के उदार आतिथ्य से प्रेरित हो कर अनेक गोरे दम्पत्ति विठूर में आ कर उनके मेहमान बनते रहते थे। वे उन्हें महाराज नाना साहब कहते थे। गोरी मेमें विठूर के

इस तरुण महाराज को देखने और उनके आतिथ्य का आनन्द लाभ लेने को बहुत इच्छुक रहा करती थीं। वे बहुधा हफ्तों, महीनों इस उदार और खुश मिजाज शाह खर्च राज-पुरुष के राजप्रासाद में मेहमान बन कर दावतों और शिकार का आनन्द लेतीं और विदाई में बहुमूल्य शाल, मणिमाल, मोतियों के कण्ठे, कमख्वाब के थान भेंट स्वरूप ले कर लौटती थीं। अंग्रेजी तबकों में महाराज साहब नाना 'अच्छे दोस्त' प्रसिद्ध थे। कानपुर के सभी अंग्रेज हाकिम और उनकी मेमें उन की चापलूसी में लगे रहते और उन की तारीफें करते नहीं अघाते थे।

धोंडूपन्त ने संस्कृत के साथ कुछ अंग्रेजी का भी अभ्यास किया था। पर अंग्रेजी वह बिल्कुल नहीं बोल सकते थे। राजनीति में वे जागरूक थे, बहुधा वह भारतीय और अंग्रेज मेहमानों से तत्कालीन राजनीति पर बातचीत, बहस, विवाद किया करते थे। उन दिनों राजनीतिक क्रान्ति का जो वातावरण फैला हुआ था—उस पर उनकी तीव्र विवेचक दृष्टि रहती था। वे देश-विदेश में घटी छोटी-बड़ी घटनाओं पर ध्यान देते रहते और प्रतिदिन बिना नागा किए अंग्रेजी दैनिक पत्रों को ध्यान से सुनते थे। उनका एक अंग्रेज सेवक था, उसका नाम टाड़ था। वह नियमित रूप से अंग्रेजी अखबारों में वर्णित घटनाएँ और भारत तथा इंगलैण्ड में घटित राजनीतिक परिवर्तनों को प्रतिदिन उन्हें सुनाया करता था। बहुधा धोंडूपन्त इन घटनाओं पर उस से वाद-विवाद करते थे।

हथियारों का उन्हें बहुत शौक था। जो तलवार वह अपनी कमर में बाँधते थे उस का रत्न-जटित म्यान तीन लाख रुपए मूल्य का था। उन के शस्त्रागार में बहुत-सी बहुमूल्य तलवारें, नाना प्रकार के उपयुक्त शस्त्रास्त्र तथा नए ढंग की बन्दूकें और तोपें भी थीं। उन्हें कुश्ती लड़ने तथा सब प्रकार के शस्त्रास्त्र चलाने तथा घुड़सवारी की उत्तम शिक्षा दी गई थी। आत्म-सम्मान, उच्चाकांक्षा और तीव्र बुद्धि उनकी नैसर्गिक थी। यह साहसी तरुण अपने पिता बाजीराव के स्थान पर यदि पेशवा

के सिंहासन पर बैठा होता—तो आज अंग्रेजी राज्य का इतिहास ही दूसरे ढंग से लिखा जाता।

बाजीराव की मृत्यु के कई वर्ष बाद धोंडूपन्त का विवाह सांगली के राजा की ममेरी बहन से हुआ था। धोंडूपन्त का यह सम्बन्धी भी उच्चाकांक्षी और हौसले का आदमी था। धोंडूपन्त ने जब सत्तावन में क्रान्ति की तलवार पकड़ी तो इस राजा ने भी महाराष्ट्र में पटवर्धन आदि रियासतों का संगठन कर क्रान्ति का झण्डा खड़ा किया था। प्रसिद्ध है कि पेशवाई जमाने में राजनैतिक कारणों से ब्राह्मणों की इतनी हत्याएँ हुईं कि लोग आमतौर पर कहने लगे थे—कि ब्रह्महत्या के पाप के कारण ही पेशवाओं का कुल नहीं पनपा। और माधव राव प्रथम के बाद किसी भी पेशवा का निजी पुत्र गद्दी पर नहीं बैठा, और इस प्रकार ज्येष्ठ पुत्र के उत्तराधिकार की शृङ्खला ही टूट गई। बाजीराव भी निस्संतान मरे और उनको गोद लिए धोंडूपन्त के भी पुत्र नहीं हुआ। इस प्रकार पेशवा के कुल में कोई पानी देने वाला नहीं रहा। बाजीराव के एक भाई चित्रकूट में और दूसरे काशी में जा बसे थे, वे भी अपुत्र ही मरे।

: २ :

राजनैतिक डकैती

अवध का अपहरण एक राजनैतिक डकैती थी। सन् १७६४ में सर्वप्रथम अवध के नवाब का ईस्ट इण्डिया कम्पनी से पाला पड़ा। अवध के इलाके को देख कर अंग्रेजों के मुँह में पानी भर आया। इस सुन्दर भूमि में हर जगह जमीन की सतह से बीस फुट नीचे और कहीं-कहीं दस फुट नीचे विपुल जल भरा हुआ था। सारा प्रदेश अत्यन्त मनोरम और वैभवपूर्ण था। उस में लम्बे और ऊँचे बाँसों के जंगल थे। मैदानों में आम्र काननों की सघन छाया थी। प्रकृति ने स्वयं इस भूमि को सुन्दर बनाया था। इमली के फूलों की महक, सन्तरे के बाग़ों की सुगन्ध, अंजीर के

पेड़ों का गहरा-रंग और फूलों के रज की वातावरण में भरी हुई महक तथा कल्पनातीत अवध राज्य का वैभव ऐसा था कि उस ने अंग्रेजों को अपने ईमान पर कायम नहीं रहने दिया। वे आरम्भ ही से अवध को हड़पना चाह रहे थे। पहली चोट अंग्रेजों ने अवध राज्य पर यह की—कि अवध का नवाब अपने खर्च से अपनी रक्षा के लिए अंग्रेजी फौज रख ले, और १६ लाख रुपए सालाना इस मद में दे। रुपयों की माँग इस के बाद बढ़ती ही गई और अवध का खजाना धीरे-धीरे खाली होता गया। और अन्त में अंग्रेज सरकार ने जबर्दस्ती दो करोड़ वार्षिक आय का प्रांत रुहेलखण्ड और दोआब सदा के लिए सेना के खर्च के लिए हड़प लिया, और गोरी पलटनें नवाब की नौकरी में जबर्दस्ती रख दीं। अब तो अवध के सभी सैनिकों का भाग्य कम्पनी के सेना अधिकारियों के हाथ था, अंग्रेजों ने जब चाहा—करोड़ों रुपए अवध राज्य से ऐंठे। कभी कर्ज कह कर, और कभी दान कह कर। अब राजकोष खाली हो गया—और नवाबों के लिए राज व्यवस्था चलाना दूभर हो गई। पर अंग्रेज़ बराबर दबाव डालते रहे कि नवाब राज्य में सुव्यवस्था कायम करें। पर जब-जब अवध के नवाबों ने अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने की ओर कदम बढ़ाया कि कम्पनी के राज ने टाँग अड़ा दी। उस ने राज्य प्रबन्ध में अनधिकार दखल देने आरम्भ कर दिए। और नई-नई बेहूदा माँगों से अवध को कभी पनपने ही नहीं दिया। नवाब और उन की प्रजा के सिर पर अंग्रेजी सेना की संगीनें थीं। नवाब की सत्ता असहाय होती ही गई। अन्त में सन् १८४७ में वाजिद अली गद्दी पर बैठे, उन्होंने अपनी सेना को संगठित करना आरम्भ किया। और स्वयं उस की देख-रेख में दिलचस्पी ली। वह नित्य प्रातःकाल सैनिक वेश में परेड-ग्राउण्ड पर उपस्थित हो कर स्वयं सैन्य संचालन करने लगे। यह देख अंग्रेजों का माथा ठनका। और ब्रिटिश रेजीडेण्ट ने उन के सब सैनिक कार्यक्रमों को बन्द करा दिया। अब अंग्रेज इस चिन्ता में पड़े कि कैसे अवध का राज्य हड़प लिया जाय। पंजाब और बर्मा की भाँति सेना के बल पर अवध पर दखल करने का

कोई सुअवसर ही न था। न नवाब पर अमित्रता का दोष लगाया जा सकता था। क्योंकि अवध के नवाबों ने हर बार अंग्रेजों को स्वयं हानि उठा कर पूरी मदद की थी। नागपुर की तरह नवाब को बिना वारिस भी नहीं कहा जा सकता था, क्योंकि नवाब के बेटों से लखनऊ का सारा राजमहल भरा हुआ था।

झाँसी की भाँति दत्तक का भी झगड़ा न था—क्योंकि वह स्वर्गीय नवाब का वास्तविक पुत्र था। इस प्रकार अवध के नवाब पर उनमें से कोई हथकंडे काम नहीं लाए जा सकते थे, जिनके द्वारा अंग्रेजों ने अनेक राजाओं के राज्य हड़प लिए थे। परन्तु अवध की इस समृद्ध भूमि को तो छीनना आवश्यक ही था। खासकर इसलिए भी—कि वह पश्चिमोत्तर दिशाओं की सुरक्षा के लिए सैनिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। अंततः नवाब को शासन के अयोग्य कह कर और अश्लील-छिछोरे अभियोग लगाकर उसे गद्दी से उतार दिया गया। उससे जबर्दस्ती त्यागपत्र पर दस्तखत करा लिए गए और सेना के बल पर नवाब के राजप्रासाद और समूचे अवध पर दखल कर लिया गया। राजमहल को ब्रिटिश सिपाहियों के रहने की बारकें बना दिया गया।

अवध का नवाब यद्यपि मुसलमान था। पर उसके बड़े-बड़े तालुकेदार हिंदू ज़मीदार थे। जिनके वंश पीढ़ी दर पीढ़ी अखण्ड अधिकार पाते रहे थे। एक-एक तालुकेदार के पास सैकड़ों गाँव थे। उनके पास थोड़ा-बहुत रक्षक सैन्यदल भी रहता था। इन सब बलशाली तालुकेदारों को दरिद्रता की सतह पर लाने के लिए मालगुज़ारी की चक्की में पीस डाला गया। उनकी जागीरें और गाँव छीन लिए गए। अवध की समूची भूमि में कुहराम मच गया। उनके गढ़ ढहा दिए गए, और उनके पुराने ऊँचे घरानों को हर तरह अपमानित तथा प्रताड़ित किया गया। अब अवध में एक भी घर ऐसा न बचा था जहाँ लूट खसोट, आग, बलात्कार की धूम न मची हो, और यह सब किया गया सुशासन के नाम पर।

इसके बाद चली इनाम कमीशन की चक्की। जिसका उद्देश्य अवध

की भाँति अन्य प्रांतों के भी ज़मीदारों और जागीरदारों का पूरा सफाया कर देना था। जो जागीरें और ज़मीनें तलवार की सनदों पर प्राप्त की गई थीं, उन्हें लिखित सनदों के अभाव में छीन लिया गया और दस वर्षों में ३५ हज़ार जागीरों और इनामों की जाँच करके उनमें २१ हजार जप्त कर ली गईं। राजाओं के सिंहासन, तालुकेदारों के तालुके, सरदारों की इनामी जागीरें, सब खत्म हो गए। रह गया ब्रिटिश न्याय राज्य !!!

: ३ :

तूफान के आसार

आम तौर पर इस भविष्यवाणी पर भारत के सब छोटे-बड़ों का विश्वास था–कि भारत में अंग्रेजी हुकूमत सौ साल चलेगी और अब प्लासी की लड़ाई को सौ साल बीत रहे थे—अतः सभी लोगों की ज़बान पर केवल एक बात खेल रही थी—कि सन् ५७ में अंग्रेजों का राज्य नष्ट हो जायगा। इन सौ वर्षों के कम्पनी के शासन में रह कर लोग ऊब चुके थे। शुरू में कम्पनी नवाबों और बादशाह के नाम पर काम चलाती रही थी। इसलिए काफी समय तक भारतवासी यह नहीं समझ पाए कि राज किसी विदेशी ताक़त के हाथों में चला गया है, और वे अब अपने ही देश में गुलाम बन गए हैं। परंतु धीरे-धीरे वस्तु स्थिति का ज्ञान होता गया और लोगों के मन में विद्रोह पनपता गया।

भारत में जिस तरह अंग्रेजी राज क़ायम हुआ, उस तरह भारत के इतिहास में कोई और राज क़ायम नहीं हुआ था। अंग्रेजों ने भारत को जीत कर अपने अधीन नहीं किया, वे धीरे-धीरे भारत में क़दम बढ़ाते चले गए और खुद इस देश के आदमियों ने उनकी मदद की। अंग्रेजों ने भारत में अपनी सत्ता ब्रिटेन की सरकार के नाम पर नहीं कायम थी, इसलिए लोगों से उनका वास्तविक अभिप्राय छिपा रहा। यदि आरम्भ ही में ब्रिटेन की सरकार का सीधा हस्तक्षेप हुआ होता तो लोगों को पता

लग जाता कि एक विदेशी शक्ति भारत में प्रवेश कर रही है। ईस्ट इंडिया कम्पनी एक व्यापारिक संस्था थी अतः यह किसी ने कल्पना भी नहीं की—कि वह अपना शासन भारत में जमा रही है। यदि ब्रिटिश शासन सीधी कार्यवाही करता तो शायद उसके लिए सफलता कठिन होती। कम्पनी के प्रतिनिधियों ने भारत के बादशाह राजा और नवाबों को खुशामद—चापलूसी तथा लोभ-लालच से जो अपने वश में किया—वह काम ब्रिटेन की सरकार के प्रतिनिधि नहीं कर सकते थे। राजनीति का भारतीय ज्ञान अपूर्ण था और अर्थशास्त्र के तथा समाजवाद एवं राष्ट्रीयता के सिद्धांतों का भी यहाँ विकास नहीं हुआ था। इसलिए समय की गति से प्रेरित होकर अंग्रेज जो चाल चलते रहे, उसका राजनीतिक और आर्थिक पहलू भारत में नहीं समझा जा सका।

बहुत दिनों तक कम्पनी ने अपने नाम से कोई कार्यवाही नहीं की। किसी न किसी भारतीय राजा या नवाब की आड़ मे अपना हित साधन किया। कभी दक्षिण के कर्नाटक के नवाब की माँगों का समर्थन करके, और कभी मुर्शिदाबाद के नवाब नाज़िम के नाम पर वह काम चलाती रही। क्लाइव के द्वारा बंगाल की दीवानी के अधिकार हाथ में आने पर भी कई दशकों तक कम्पनी बादशाह के एजेन्ट के रूप में ही काम करती रही और उसका ढर्रा भी दूसरे सूबेदारों जैसा रहा। उन दिनो कम्पनी का गवर्नर अपने को बादशाह सलामत का सेवक कहा था, तथा बादशाह के सम्मुख खड़ा रह कर बात कर पाता था। वह शाह को मोहरें भेंट करता और खिलअत पाता था। इसलिए बहुत दिन तक भारत के लोग नहीं जान सके कि अंग्रेज देश के मालिक बनते जा रहे हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के दूसरे शतक तक यही ढर्रा चलता रहा, अब कम्पनी के चरण सतलज में पखारे जा रहे थे। इतना होने पर कहीं अंग्रेजों ने बादशाही सत्ता को उतार फेंकने का साहस किया। शाही अदब और प्रतिष्ठा कम कर दी गई। अवध को स्वतत्र बादशाह बना दिया गया।

सन् ३५ में जब कम्पनी पीर अस्पतालों को ईसाई मत फैलाने का केन्द्र आरम्भ किए तब लोगों ने द रही थी। ये काम यद्यपि उन्नत विचार के के विशाल भूक्षेत्र के स्वामी हो गये थे—पर उसका मतलब आम जनता अंग्रेजी को राज-भाषा बना दिया गया। भ्रष्ट करने और उन्हें ईसाई बनाने पुथल मच गई। सेना और जनता में इसकेन्द्रों में ईसाई मत की शिक्षा भीतर ही भीतर अंग्रेजों के विरुद्ध आग सुलगनकों को सब लोग काला सब शांत दीख रहा था। इसी समय आगरा और

गवर्नर श्री थामसन ने जमींदारों के प्रति नई नीति और लोग मुग़ल कम्पनी की नीति थी कि जमींदारों का एक वर्ग कायम किप्सन कर के सरकार का समर्थक हो। पर सर थामसन के विचार इसके विपरीत और वह जमींदारों को एक खतरा समझता था और इसीलिए उसने ऐसी नीति अपनाई कि जमींदार एक वर्ग के रूप में कायम न रहें और सरकार का रैयत से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो जाय। इस भावना से उसने जमींदारियों को खत्म करना शुरू कर दिया। उधर डलहौजी ने एक के बाद दूसरी रियासत को हड़पना आरम्भ कर दिया। इस समय तक भी भारत में सामन्तशाही सिसक रही थी। आम जनता में देश या राष्ट्र के प्रति भक्ति की भावना नहीं थी, राजा या जमींदार के प्रति वफादारी की भावना थी। अब, जब एक-एक करके जमींदारियों और राज्यों का खात्मा होने लगा—तो लोग चौकन्ने हो गए। एक भय की सिहरन उनके रक्त में दौड़ गई। पूना, झांसी, सूरत, नागपुर के मामले तो अभी ताज़े थे ही। अंग्रेजों ने अप्रत्याशित ढंग पर अवध को भी हड़प लिया। अवध की रियासत सत्तर वर्ष से अंग्रेजों की वफादार थी। फिर भी कम्पनी ने रियासत को हड़प लिया। इस घटना का प्रभाव सैनिकों पर इसलिए अधिक पड़ा—कि बंगाल सेना के अधिकांश सिपाही अवध ही के निवासी थे। उन्होंने बड़ी वफादारी से वीरतापूर्वक युद्ध पर युद्ध कर के कम्पनी का राज्य कटक से अटक तक जमाया था। अब उन्होंने देखा कि उन्हीं की सहायता से कम्पनी की जो शक्ति बढ़ी, उसी से उसने उनके बादशाह

लग जाता कि एक विदेशी शक्ति भारत में प्रवेश दानकों में और खास तौर
कम्पनी एक व्यापारिक संस्था थी अतः य और उनके मन में यह भावना
की—कि वह अपना शासन भारत में ज खत्म होना चाहिए।
सीधी कार्यवाही करता तो शायद कारोबार गवर्नर-जनरल एक कौंसिल
कम्पनी के प्रतिनिधियों ने भ गवर्नर-जनरल और कौंसिल के सब सदस्य
खुशामद—चापलूसी तथा नी के अधिष्ठाताओं ने यह सोचा भी नहीं—कि
काम ब्रिटेन की सरक भारतीय भी होना चाहिए—जिससे भारतीय भाव-
भारतीय ज्ञान आन रहे। उस समय भारत में कोई ऐसी प्रतिनिधि संस्था
के सिद्धांतों —कि जिसके द्वारा गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल को
प्रेरित यें भावनाओं का पता चल सके।
पह पूरी परिस्थिति इस समय तक ऐसी थी—कि कम्पनी की सरकार के पास लोगों की इच्छा जानने का कोई तरीका न था। और इस प्रकार कम्पनी और उसके प्रजाजनों के बीच बहुत अंत हो गया था। ऐसी ही परिस्थिति में उसने विधवा विवाह और सती-प्रथा की रोक के क़ानून बना दिए—जो हिन्दुओं के गहरे विश्वास और धार्मिक तथा सामाजिक भावनाओं पर चोट पहुँचाने वाले थे। यद्यपि इन क़ानूनों के बनाने में कम्पनी की सरकार को राजा राममोहनराय और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे भारतीय सुधारकों की सहमति प्राप्त थी। पर भारतीय जनता का अधिकांश भाग इन सुधारकों से सहमत न था। और ये क़ानून भले ही चाहे जितने उच्च विचारों तथा सामाजिक सुधारों के अनुरूप थे—पर भारत की आम जनता पर इनका यही प्रभाव पड़ा—कि अंग्रेज हमारे धर्म में अनुचित हस्तक्षेप करते हैं। ऐसी ही मनोवृत्ति चल रही थी कि चर्बी वाले कारतूसों ने सैनिकों की धार्मिक भावना को अकस्मात ही उत्तेजित कर दिया। तिस पर आटे में हड्डी का चूरा मिलाने की अफवाह भी मिल गई, इसकी झूठ-सच की कोई जांच नहीं की गई, और इस अफवाह ने आग में घी की आहुति का काम किया।

जिस प्रकार सैनिकों में इन बातों से उत्तेजना फैली हुई थी—आम

जनता सरकारी स्कूलों और अस्पतालों को ईसाई मत फैलाने का केन्द्र समझ कर असन्तुष्ट होती जा रही थी। ये काम यद्यपि उन्नत विचार के भारतीयों के सहयोग से किए रहे थे—पर उसका मतलब आम जनता यह लगाती थी कि भारतीयों का धर्म भ्रष्ट करने और उन्हें ईसाई बनाने के लिए ये सब काम किए जाते हैं। इन केन्द्रों में ईसाई मत की शिक्षा दी भी जाती थी—इससे डाक्टरों और अध्यापकों को सब लोग काला पादरी कह कर उन्हें घृणा की दृष्टि से देखते थे।

इस समय भारत में हिन्दु-मुस्लिम एकता बहुत थी, और लोग मुग़ल बादशाह के प्रति वफादार थे। औरंगज़ेब ने यद्यपि कट्टर शासन कर के हिन्दुओं को क्षुब्ध कर दिया था—परन्तु उसके बाद ही जहाँ एक ओर मुगल तख्त डगमगाने लगा था—दूसरी ओर उसका बहुत कुछ भारतीय करण हो गया था। औरंगज़ेब तथा उसके पूर्वकालीन मुग़ल बादशाहों की अपेक्षा उत्तरकालीन बादशाह अधिक हिन्दुस्तानी बन गए थे। यहाँ तक कि अभी यद्यपि राज-भाषा उनकी फारसी थी—पर क़िले की भाषा उर्दू व हिन्दवी थी। हिन्दू-त्योहार, हिन्दू रीति-रस्म, हिन्दू भावनाओं के सामाजिक रूप को वे अपने निकट के जीवन में अपनाते जाते थे।

साम्प्रदायिक झगड़े अब भारत में होते ही न थे। सभी भारतीय चाहे हिन्दू हो चाहे मुसलमान, हर बात को एक ही दृष्टिकोण से देखते और घटनाओं को एक ही ढंग से अपनाते थे। हिन्दू-मुस्लिम एकता कायम करने के लिए इस समय किसी को कुछ करने की आवश्यकता न थी—शताब्दियों तक इकट्ठे रहने से अब हिन्दू और मुसलमानों के स्थायी मैत्री सम्बन्ध हो गए थे। यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है कि उस समय यद्यपि वातावरण अत्यन्त उत्तेजनापूर्ण था, फिर भी साम्प्रदायिक झगड़ों का कहीं नामोनिशान भी न था। संक्षेप में, हिन्दू-मुस्लिम समस्या नाम की कोई चीज उन दिनों भारत में थी ही नहीं।

परन्तु अंग्रेज फूट डाल कर शासन करने का तरीका उस समय भी काम में ला रहे थे। वे हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों की वफादारी पर

कम भरोसा करते थे। और बात भी यही थी कि उन्होंने हिन्दुओं को नहीं—मुसलमानों ही को भारत के तख्तोताज से वंचित किया था—फिर कैसे वे उन से वफादारी की आशा रख सकते थे। एक बात और भी थी। प्लासी की लड़ाई को सौ साल बीत जाने पर भी, यद्यपि ईस्ट-इण्डिया कम्पनी भारत में स्थाई रूप में जम गई थी पर उस ने अभी भी भारत का शासन चलाने की जिम्मेदारी नहीं ली थी। इसके अतिरिक्त अंग्रेज अफसर साम्प्रदायिक मत-भेदों को बढ़ाने का प्रयत्न करते रहते थे। कम्पनी के डायरेक्टर बराबर यह लिखते रहते थे कि हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच अंतर जरूर डालना चाहिए। टाड का राजस्थान, और इलियट की उस पर लिखी भूमिका में ऐसे बीज हैं जो हिन्दू मुसलमानों में फूट डालते हैं। परन्तु इन सब बातों के बावजूद भी उस समय हिन्दू और मुसलमानों में भाई-चारे की और पारस्परिक सहानुभूति की कुछ ऐसी भावना काम कर रही थी कि उस ने अंग्रेजों के सौ बरस तक फूट डालने के प्रयत्नों का सामना किया। और इस समय प्रत्येक हिन्दू और मुसलमान कन्धे से कन्धा भिड़ा कर अंग्रेजों को भारत से निकाल बाहर करने के लिए सब कुछ कर गुजरने पर आमादा था। एकता की यह भावना जिस प्रकार जनता में थी—उसी प्रकार सेना में भी थी। जनता और सेना का प्रत्येक हिन्दू और मुसलमान दिल्ली और बादशाह को अपना मानते थे। बादशाह बहादुरशाह यद्यपि बिल्कुल कमजोर साधनहीन बादशाह थे—पर भारत का प्रत्येक हिन्दू और मुसलमान यही समझता था कि सिर्फ बहादुरशाह ही को भारत का अधिराज होने का हक है।

निस्संदेह इस समय बहादुरशाह एक कठपुतली से अधिक कुछ न थे। और उन का शासन लाल किले तक ही सीमित था। दिल्ली शहर का काफी हिस्सा उन के नियन्त्रण से बाहर था। वह ईस्ट इण्डिया से पैन्शन पाते और उसी में अपने परिवार का गुजारा करते थे। उन के पास न सेना थी न खजाना। न प्रभाव-शक्ति। वह एक प्रतीक के रूप में

भी शासन करने योग्य न थे। न उन में सेना के संगठन करने की शक्ति थी—न वह अपने सरदारों को काबू में रख सकते थे। परन्तु इन कमियों के होने पर भी उन दिनों भारत का कोई हिन्दू और मुसलमान उन की जगह किसी दूसरे बादशाह की बात नहीं सोचता था। हिन्दू और मुसलमान दोनों—बिना ही अंग्रेजों की और बादशाह की शक्ति का संतुलन किए—एक मत से यह चाह रहे थे कि महान शक्तिशाली अंग्रेजों से शासन की बागडोर बहादुरशाह ही सम्हाले।

यद्यपि छोटे-बड़े अंग्रेज अफसर भारतीयों से घृणा करते और उनसे तुच्छता का व्यवहार करते थे। कम्पनी के राज्य प्रबन्ध में भी अन्धेरगर्दी मची हुई थी – फिर भी एक बात अवश्य कही जा सकती है–कि अंग्रेज यह जान गए थे कि हम एक प्राचीन संस्कृति की अधिष्ठात्री, एक श्रेष्ठ जाति पर हुकूमत कर रहे हैं। सिद्धान्त रूप में वे भारतीयों को पिछड़ी हुई जाति के आदमी समझते थे। और उन्हें पाश्चात्य जागरण में भागीदार बनाना चाहते थे। निस्संदेह भारतीयों की भावनाओं को ठेस पहुँचाने का उन्होंने जान-बूझ कर प्रयत्न नहीं किया था। परन्तु उन्होंने इस बात पर विचार नहीं किया कि विदेशी सरकार के उद्देश्यों के गलत समझे जाने की संभावना भी है। ज्यों-ज्यों उन का पाँव भारत में जमता गया—वे अपने शासन को नैतिक स्वीकृति के साथ चलाते गए। उस में सुधार करते गए। और आरम्भ में जो भारत में चुने हुए लुच्ची प्रकृति के लोग भारत में आए थे—उन के स्थान पर योग्य व्यवस्थापक अब भारत में आ कर शासन में हाथ बटा रहे थे। पार्लमेंट में बूढ़े वारेन हेस्टिंग्स और क्लाइव पर खुले आम मुकदमा चला कर जो उन की काली करतूतों का भण्डाफोड़ किया गया था, उस से भारत के प्रति अंग्रेज सभ्य जनों का ध्यान भारत की ओर आकिषत हो गया था—और इस के बाद ज्यों-ज्यों भारतीय साम्राज्य का बोझा बढ़ता जाता था—ब्रिटेन पर पूर्वी समस्या का इतना दबाव पड़ता जाता था और अफगानिस्तान, ईरान, रूस और टर्की के प्रश्न इस कदर वजनी होते जाते थे—कि पार्लमेंट का अब पूरा ध्यान भारत पर

केन्द्रित हो गया था।

सैनिक प्राय: अपढ़ और उजड्ड थे। वे अधिकांश में रूढ़िवादी थे। उन दिनों यद्यपि हिन्दू मुसलमानों में साम्प्रदायिक तनाव न था—परन्तु साम्प्रदायिक कट्टरता खूब थी। सब से प्रथम उन की साम्प्रदायिक भावना पर उस समय आघात लगा जब कि मुसलमानों की डाढ़ी और हिन्दुओं के तिलक छाप पर आपत्ति की गई। और डाढ़ी-मूँछों को एक खास तरीके पर काँट-छाँट कर रखने को कहा गया।

उसके बाद चमड़े के झब्बे वाली पगड़ी का नम्बर आया। बहुत उच्च कुलीन ब्राह्मण सिपाही चमड़ा पहनते न थे। उन्हें भय था कि यह बात उनके नातेदारों को मालूम हो जायगी तो उन्हें जात-बिरादरी से खारिज कर दिया जायगा। हक़ीकत तो यह थी कि कम्पनी का प्रत्येक सिपाही भाड़े का नौकर था. वह एक प्रतिष्ठा की नौकरी समझ कर सेना में भरती हुआ था। पर किसी भी शर्त पर अपने पुरखों के धर्म को त्यागने को तैयार न था। वह केवल यही देखता था कि वह नमक हराम न हो। उसके लिए स्नान-ध्यान पूजा-पाठ तिलक छाप उसके मोक्ष के साधन थे। उन दिनों ऐसी भावना थी—कि जो हिन्दू अपने पूजा-पाठ और धर्म-कर्म में, और मुसलमान रोजा-नमाज में जितना पवित्र होता था—उतना ही उसके संगी-साथी उसका अधिक मान करते थे। भले ही वह किसी भी धर्म का हो। इसके बाद दूसरा अवसर आया समुद्र यात्रा का। जब उन्हें समुद्र द्वारा बर्मा भेजा गया। प्राचीन धारणा के अनुसार समुद्र पार जाने में हिन्दुओं का धर्म नष्ट हो जाता था। सिपाही अपनी धर्म भ्रष्टता और उसकी यातनाओं से भयभीत था। परन्तु अंग्रेज अफसरों की नजर अनुशासन पर थी। सिपाहियों की भावना का उन्हें विचार न था। अत: अनुशान भंग के अपराध में उन पर गोली चलाई गई—और बुरी तरह उनकी हत्या की गई। जिससे सारी भारतीय सेना में अंग्रेजों के प्रति रोष फैल गया। इसके बाद काबुल में जो यातनाएँ—और धर्म विरुद्ध बातें उन्हें झेलनी पड़ीं। जिन के परिणाम स्वरूप बहुत से सिपाहियों

को जातिवहिष्कृत होना पड़ा। जितने हिन्दू सिपाही अफ़गानिस्तान गए। उनके साथ उनका बिरादरी वालों ने रोटी-बेटी व्यवहार बन्द कर दिया। यहाँ तक उनका सामाजिक बहिष्कार हुआ— कि न कोई उन्हें बर्तन छूने देता था— न नाई, धोबी, भंगी उनके घर काम करने आते थे।

उन दिनों मिशनरी कर्नल और पादरी लेफ्टीनेन्ट अपनी कमान के अन्तर्गत सिपाहियों को ईसाई मत की शिक्षा देते थे। तथा मजिस्ट्रेट और जज भारतीय पादरियों को जिन्हें देशवासी धर्मद्रोही कह कर घृणा करते थे, प्रति दिल जेल में जा कर कैदियों को ईसामसीह का संदेश सुनाने की अनुमति देते थे। उन दिनों स्कूलों के डिप्टी इन्सपैक्टर देशी पादरियों के नाम से विख्यात थे। इसी समय सन् ५० में एक आम नियम यह बना—कि धर्म परिवर्तन करने वाले व्यक्ति को अपनी पैतृक सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जा सकेगा। इस नए अधिनियम का लाभ हिन्दु नहीं उठा सकते थे—क्योंकि उनके यहाँ धर्म परिवर्तन होना ही न था। मुसलमान होने वाले को भी इसका लाभ नहीं मिलता था— क्योंकि मुस्लिम क़ानून के अनुसार काफिर की सम्पत्ति प्राप्त करने का निषेध है। परन्तु इस अधिनियम की एक सब से बड़ी खराबी—जो हिन्दुओं पर लागू होती थी—यह थी, कि धर्म परिवर्तन करने वालों को बिना किसी अन्तर्विहित बन्धन के एक अधिकार दिया गया था, इसके द्वारा उसे अपने पुरखों को पिण्ड-दान दिए बिना ही सम्पत्ति की प्राप्ति का अधिकार मिलता था। इसलिए हिन्दू के लिए तो यह क़ानून दोहरी हानि का था।

मुसलमानों की दृष्टि में भी इससे उसके धर्म को ठेस पहुँचती थी— क्योंकि मुसलमान भी मिशन के खतरों से मुक्त न थे। इस वातावरण में जो जनोपयोगी कार्य हुए—वे भी संदेह की दृष्टि से देखे गए। सड़कों के बनाने में एकाध जीर्णशीर्ण मंदिर ढहाया तो देहातियों ने सड़कों के निर्माण को पवित्र मंदिर ढहाने का षड्यंत्र समझा। इसी प्रकार अस्पतालों का भी जनमन पर विपरीत प्रभाव पड़ा। क्योंकि अस्पतालों में

पर्दानशीन स्त्रियों की मर्यादा नहीं थी। तथा रोगियों के आवास में जात-पात का विचार न था। इन दिनों असहाय बच्चों को ईसाइयों के अनाथालयों में ले जा कर ईसाई के रूप में ही उनका लालन-पालन होता था। अन्य जनोपयोगी कार्यों के साथ-साथ लोग रेल-तार पर भी संदेह करने लगे। वे कहते थे यह सामाजिक व्यवस्था नष्ट करने का एक अप्रत्यक्ष साधन हैं। रेलगाड़ियों में उच्चवर्गी ब्राह्मणों आदि तथा नीच अछूतों के बैठने की अलग-अलग व्यवस्था नहीं थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, भंगी, चमार के साथ रेल में बैठना सहन नहीं करते थे। यात्रा के दौरान में उन्हें उपवास करना पड़ता था। और कर्म-काण्ड नहीं कर सकते थे। जिस से यात्रा के बाद उन्हें प्रायश्चित्त कर के पवित्र होना पड़ता था। आमतौर पर ब्राह्मण कहते थे कि यह कलियुग का प्रभाव है।

इस समय देश के प्रांत रेल-तार द्वारा मिलाए जा रहे थे। इसी समय श्री एडमण्ड ने शब्द मन्तव्य घोषित किया—उसका अभिप्राय यह था—कि अब समय आ गया है जबकि हम इस विषय पर विचार करें कि सारी जनता को एक ही धर्म मानना चाहिए या नहीं। रेलें, बिजली, तार आदि संसार को तेजी से एक-दूसरे से मिला रहे हैं। ज्यों-ज्यों वे नजदीक आते जाते हैं—यह स्पष्ट होता जाता है कि सब की आवश्यकताएँ, चिंताएं, आशाएं, भय समान हैं। और सबकी प्रकृति और मल एक समान हैं। हम सब एक ईश्वर की सृष्टि हैं। और हमारे भावी सुखों की उपलब्धि का एक ही साधन होना चाहिए।

कुछ इने-गिने पढ़े-लिखे आदमी सरकार के इन सुधारों तथा शिक्षा का स्वागत करते थे—वह भी केवल बंगाल में। उत्तर भारत में अधिक कट्टरता थी, और वे बंगालियों को अंग्रेजियत में डूबा हुआ बताते थे। और यह आम शिकायत थी कि सौ बरस से भी अधिक बीतने पर हिन्दुस्तानी और अंग्रेज एक-दूसरे के मित्र न बन सके थे। अंग्रेज शासक सामाजिक दृष्टि से भारतीयों के सम्पर्क में नहीं थे। इसलिए उनके मन में भारतीयों के प्रति घृणा का भाव था। साधारण से साधारण अफसर

भी बड़े से बड़े भारतीय को अपने से इतना छोटा समझता था—जितना वह स्वयं अपने को एक ड्यूक से छोटा मानता था। और अफ़सरों तथा भारतीयों के बीच एक दीवार-सी खड़ी होती जा रही थी।

उन दिनों भारतीयों को जो बड़े से बड़े पद दिए जा सकते थे, वे शासन विभाग में डिप्टी कलक्टर और न्याय विभाग में सदरे अमीन के ही पद थे—कोई भारतीय न इससे ऊंचे पद की आशा करता था—न इससे उसे कोई असन्तोष ही था। फिर भी भारतीयों में प्रतिभा की कमी न थी। परन्तु उन्हें बेकारी या छोटी-मोटी नौकरी इनमें से एक को चुनना पड़ता था। परन्तु धनी-मानी लोगों को एक शिकायत जरूर थी—कि अंग्रेजी राज में अमीर, गरीब, राजा और रंक सब के लिए एक ही क़ानून था। हिन्दुओं के सामन्ती राज्य में तथा मुसलमानों के भी राज्य में उच्च कुल और जाति के लिए विशिष्ठ नियम और सम्मान की भावना थी। परन्तु अंग्रेज सरकार बड़े से बड़े और छोटे से छोटे भारतीय को समान भाव से देखती थी। बहुधा बड़े आदमियों के साथ अंग्रेज अपमान-जनक व्यवहार करते थे। अंग्रेजी अदालतों में एक चमार की दरख्वास्त पर एक नवाब या राजा के नाम समन जारी हो जाते थे। क़ानून किसी व्यक्ति की इज्जत नहीं करता था—इसलिए क़ानून के अन्तर्गत न आने वाले राजा और नवाबों को यह सह्य न था। पुलिस और छोटे अफसर अत्यन्त भ्रष्ट थे। अदालतों में भ्रष्टाचार और रिश्वत आम थी। एक बूढ़े जमींदार गृहस्थ ने अर्जियों में ही हजार रुपए खर्च कर दिए थे। और छह हजार से ऊपर रिश्वत में खर्च किए थे, पर उसे न्याय नहीं मिला था। और उसके हाथ से पुश्त-दर-पुश्त जोते हुए गांव निकल गए थे। तथा उस पर इतना लगान तय किया गया था कि उसे चुकाने को उसे अपने घर के ज़ेवर और घोड़ी बेच देना पड़ी थी। बड़े-बड़े जमींदारों और ताल्लुकेदारों को उनके अधिकारों से वंचित कर दिया गया था। वे अब तक जो राजस्व पाते रहे थे—उसके बदले उन्हें जीवन-भर के लिए वार्षिक रक़म मिलती थी। जमींदारों की जमींदारी

बनिए खरीदते जाते थे और ताल्लुकेदार राजा-रईस अब अपनी हैसियत से घट कर केवल पैन्शनयाफ्ता हो गए थे। बनिए सम्पन्न होते जा रहे थे—और लोग उनसे घृणा करते थे। क्योंकि दुनिया के सब से ज्यादा मासूम भोले-भाले किसानों का बेईमान साहूकार द्वारा खून चूसने की सुविधाएं प्राप्त हो गई थीं। जिन जमीदारों की जमींदारियाँ बनियों ने अंग्रेजी अदालत से कुर्क करा ली थीं, वे अंग्रेजों से घोर घृणा करते थे। केवल जमींदार ही नहीं—किसान भी इन बनियों के चंगुल में फंसते जाते थे, और वे हमेशा इनके कर्ज़ में डूबे रहते थे। बनिया, जो अपने गाँव का महाजन भी था—अपने धंधे में ईमानदारी नहीं बरतता था। वह धोखा-धड़ी करके अपनी ब्याज की रक़म सीधी करता था। पहले इन अनपढ़ किसानों की रक्षा जमींदार करते थे। जमींदार भी बहुधा अपने काश्तकार के साथ बुरा व्यवहार करता था—परन्तु मुसीबत के समय सहायता भी करता था। जमींदार को किसान अपना मालिक समझता था। पर बनिया बाहरी आदमी था। वह नए क़ानून से लाभ उठाता था। और ऋण न चुका सकने पर किसान के हल-बैल खेत नीलाम करा देता था। किसान व्यवसाय विहीन हो जाता था। इस प्रकार किसान और बनिए के बीच वफादारी का सम्बन्ध न था। वे अब भी अपने सामन्ती स्वामी के अधिक निकट थे। इस प्रकार नए क़ानून और नई प्रणाली के कारण एक ग़रीब वर्ग बढ़ रहा था। इन सब बातों का सामूहिक प्रभाव जनता पर यह पड़ रहा था—कि सारे अंग्रेजी क़ानून इसीलिए बनाए जा रहे हैं कि हिन्दुस्तानियों को ग़रीब कर के उन्हें धर्म और जाति से भ्रष्ट किया जा सके।

अत्यधिक लगान से ज़मीदार तबाह होते जाते थे। उनके विरुद्ध कोई भी नीच मजदूर-नौकर अदालत में मुक़दमा दायर कर देता था, और उन्हें अदालत में घसीट बुलाता था। जब उन्हें अदालत में मुकदमा दायर करना होता था—तो उन से स्टाम्प का खर्चा मांगा जाता था। व्यापारियों से मुनाफे के व्यापार नील, रेशम, कपड़ा आदि छीन कर

अंग्रेजों ने उन पर एकाधिपत्य स्थापित कर लिया था, उन पर जब मुकदमे दायर होते थे, तो नीच जाति के गवाहों की गवाही पर उन्हें सजा मिल जाती थी। अंग्रेज अपने इस्तेमाल करने की सब चीज़ अपने देश से मंगाते थे, अपने ही देश की चीज इस्तेमाल करते थे।

कुछ राजा अवश्य छोड़ दिए गए थे। पर वे मुर्दे से अधिक अच्छी स्थिति में न थे। पंजाब का बालक राजा दिलीपसिंह यद्यपि अंग्रेजों ही के संरक्षण में था, फिर भी वह मुलतान के विद्रोह का व्यक्तिगतरूप में जिम्मेदार समझा गया। सतारा, झांसी और तंजोर की छोटी-छोटी रियासतें इस लिए अधिकार में कर ली गईं कि उनके राजवंशों में कोई उत्तराधिकारी न रहा। पेशवा की मसनद को खत्म कर चुकने पर सतारा की गद्दी स्थापित की गई थी, सिर्फ मराठों को बहलाने के लिए। झांसी का राज्य कम्पनी ही की कृपा से बना था, और कई बार एक संतानहीन भाई के बाद दूसरा भाई उसका उत्तराधिकारी बना था। तंजोर भी मित्र राजा था—वहाँ का राजकीय घराना मराठा था। इन सब को खत्म कर दिया गया। फिर करारा वार नागपुर पर हुआ। स्त्रियों के विरोध करने पर भी भोंसलों के हाथी घोड़े और सामान नीलाम को भेज दिए गए, और कौड़ियों के मोल बेच दिए गए। राजमहल का फर्नीचर तक न छोड़ा। मुर्शिदाबाद के नवाबों की भाँति कर्नाटक के नवाब भी बहुत प्रथम ही से अपनी रियासतों के शासक नहीं रह गए थे। परन्तु अब तो उन की उपाधि भी समाप्त कर दी गई। यही दशा तंजोर के हिन्दू राजा की हुई। यद्यपि यह बात कही जा सकती है कि इस प्रकार रियासतों को विलय करने से भारत की राजनीतिक एकता का संगठन हुआ। और आगे उसी से भारतीय राष्ट्रीयता का जन्म हुआ। परन्तु डलहौजी का विचार भारत में राष्ट्रीयता उत्पन्न करने का न था। वह तो शुद्ध साम्राज्यवादी पुरुष था। परन्तु झाँसी की रानी यह मानने को तैयार न थी कि उसकी रियासत अंतिम रूप में विलय कर ली गई है। वह बराबर सरकार के उच्च अधिकारी को लिखती रही। रंगोजीबापू

सतारा दर्बार की ओर से, अजीमुल्ला धोंडुपन्त नाना राव की ओर से, तथा राजाराम मोहन राय— दिल्ली के तख्त की ओर से लंडन का द्वार व्यर्थ ही खटखटाते रहे। नागपुर के घराने ने अंग्रेजों को युद्ध की चुनौती दी, परन्तु तंजोर और कर्नाटक सदा वफदार ही बने रहे। फिर भी सब का अन्त एक सा हुआ। और भारतीयों का मन यह देख कर क्षुब्ध हो उठा कि अंग्रेजों के हाथों दोस्त दुश्मन दोनों का एक जैसा हाल हुआ। परन्तु अंग्रेजों की बचीखुची भलमंसाहत का पर्दा उस समय एक दम फ़ाश हो गया, जब उन्होंने अपनी मित्र और वफादार रियासत अवध को हड़प लिया। प्रत्येक के मुंह पर केवल एक ही बात थी, कि अंग्रेजों ने नीचता की है और नबाव पर अत्याचार हुआ है।

अंग्रेजों ने जो प्रशासकीय और क़ानूनी रीतियां काम में लीं, हो सकता है कि उन का उद्देश्य बुरा नहीं—परन्तु यह न हो सोचा गया कि उस का परिणाम क्या होगा। इसी से अविश्वास और संदेह का वातावरण बढ़ता ही गया। साधारणतया डलहौजी को विद्रोह का जिम्मेदार समझा जाता है। परन्तु उसके अतिरिक्त दूसरे गवर्नर जनरलों ने भी ऐसे काम किए जिससे भारत के रूढ़िवादियों की भावना पर आघात लगा। अंग्रेजी सरकार का दारोमदार जनभक्ति पर न था—शक्ति पर था। सेना पर था। और भारतीय सैनिक यह समझने लगे थे कि उन्हीं की शक्ति पर अंग्रेजी सरकार भारत में टिकी हुई है। वे जब चाहें उसे उलट सकते हैं। अब तक प्रत्येक सैनिक अंग्रेजों का वफादार रहा था। अब, जब उसने देखा कि अंग्रेज उसके पुरखों का धर्म ही छीन रहे हैं तो उसकी वफादारी की जड़ें हिल गईं। इस प्रकार अशिक्षित जनता और सिपाहियों के मन में जो क्षोभ अंग्रेजों के विरुद्ध पैदा हुआ, उसका शमन शिक्षित भारतीय भी न कर सके, और वे उन्हें भी धर्मभ्रष्ट समझने लगे। हां, शिक्षित भारतीय यदि इस समय उच्च पदों पर होते तो विद्रोह रोक सकते थे। पर दुर्भाग्य से ऐसा न था। बस, चर्बी लगे कारतूस ही विद्रोह के मूलाधार बन गए और विद्रोह भड़क उठा।

: ४ :

लाहौर की गुप्त मीटिंग

कलकत्ते की भाँति लाहौर में भी इस बार नए दिन का त्योहार धूम-धाम से मनाया गया। इस समय पंजाब के सब बड़े-बड़े फौजी और मुल्की अफसर लाहौर में इकट्ठे हुए। नाच-दावत और जश्न के बाद उनकी एक गुप्त मीटिंग हुई। मीटिंग में सर हेनरी लारेन्स, पंजाब के गवर्नर सर जान लारेन्स, सर राबर्ट माण्टगुमरी, डानेल्ड मेकलिग्राड, कर्नल एडवर्डस आदि प्रसिद्ध अंग्रेज उच्चाधिकारी सम्मिलित थे। बात-चीत का विषय भारत का वर्तमान अशान्त वातावरण और उसकी विवेचना था। यह भी विचार किया गया कि यदि विप्लव उठ खड़ा हो तो पंजाब की रक्षा कैसे की जायगी।

सर हेनरी लारेन्स ने कहा–सज्जनों, आपने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अध्यक्ष मिस्टर मेंगल्स का वह भाषण पढ़ा होगा जो उन्होंने हाल ही में पार्लमेंट में दिया है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में यह कहा है कि ईश्वर ने हमें हिन्दुस्तान का विशाल साम्राज्य इसलिए सौंपा है कि हम वहां एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक ईसामसीह का विजयी झण्डा फहराएँ। हम में से प्रत्येक का यह कर्तव्य है कि सम्पूर्ण भारत को ईसाई बनाने में हम अपनी पूरी ताक़तें लगा दें। इस भाषण का समर्थन करते हुए सर राबर्ट माण्टगुमरी ने कहा—आपके कथन के समर्थन में मैं केवल यह कहना चाहता हूँ कि—हम पर चाहे जितनी आपत्तियाँ आएँ, जब तक भारत में हमारा साम्राज्य क़ायम है तब तक हमें यह नहीं भूलना है कि हमारा सबसे बड़ा काम समूचे भारत को ईसाई बनाना है। इस काम के लिए हमारे हाथों में जितने अधिकार और जितनी सत्ता है, उसका पूरा उपयोग करें।

सर हेनरी लारेन्स ने कहा—"अब से अठारह वर्ष पहले सन् १८४६

में पंजाब पर अधिकार हुआ। इसके बाद ही से हमने पंजाब को आदर्श ईसाई प्रान्त बनाने के यथासम्भव सब प्रयत्न किए गए हैं। अब हमें और भी नए क़दम बढ़ाने चाहिए।"

कर्नल एडवर्डस ने कहा—"मेरी राय है कि पंजाब में शिक्षा का सारा काम पंजाब में ईसाई मिशनरियों को ही सौंप दिया जाय। सरकारी स्कूल बन्द कर दिए जायँ और ईसाई स्कूलों को काफी सहायता दी जाय।"

"मैं इस मामले पर विचार कर रहा हूँ। मेरे भारतीय मित्र यह सुनकर खुश होंगे कि गवर्नर जनरल और आनरेबुल कम्पनी के डाइरेक्टर भी इसी राय के समर्थक हैं", सर हेनरी ने कहा।

"मेरी यह दृढ़ राय है कि सरकारी स्कूलों और कालेजों में इंजील तथा ईसाई मत की शिक्षा दी जाय। तथा न हिन्दू मजहब के किसी काम में न मुसलमानों को ही किसी किस्म की सरकारी सहायता दी जाय। सर राबर्ट माण्टगुमरी ने कहा।

"साथ ही सरकारी दफ्तरों में और स्कूल कालेजों में किसी भी हिंदू त्योहार की छुट्टियाँ न दी जाँय, और सरकारी अदालतों में हिन्दू या मुस्लिम धर्म शास्त्रों और मजहबी रिवाजों को मान्यता न दी जाय।" डानेल्ड मेकलिआड ने कहा।

"बेशक बेशक, हिन्दू मुसलमानों के धार्मिक कीर्तन-मजमे और जुलूस भी बन्द कर दिए जायँ।" सर राबर्ट माण्टगुमरी ने टेबुल पर हाथ मार कर कहा।

सर जान लारेन्स ने गम्भीर भाव से कहा—"सामाजिक दृष्टि से हम अंग्रेज और भारतीय हींदन एक दूसरे से अनभिज्ञ हैं। हमारे उनके बीच संस्कृति की दीवार है, और हमारे उनके बीच वही सम्बन्ध रहना उचित है, जो मालिक और गुलाम में होता है। हमने ऐसी चेष्टा की है कि हम हर ऐसी चीज पर क़ब्जा करलें कि जिससे देशवासियों का जीवन आराम से कट सकता है। प्रत्येक ऐसी चीज, जो हिन्दुस्तानियों को

उभार सकती है या मनुष्य की हैसियत से उन्हें ऊँचा कर सकती है, हमें उनसे छीन लेना है। और अब तक हम यही काम सफलता पूर्वक करते आ रहे हैं। हमने उन्हें जातिभ्रष्ट कर दिया है। उनके उत्तराधिकार के नियमों को रद्द कर दिया है। उनकी विवाह संस्था को बदल दिया है, धर्म के पवित्र रीति-रिवाजों को बदल दिया है। उनके मन्दिरों की जायदादें ज़ब्त कर ली हैं। हम उन्हें 'हीदन' कह कर सरकारी कागज़ों में उन्हें तुच्छ प्रकट करते हैं। देशी रजवाड़ों के राज्य हमने छीन लिए हैं, अमीरों और रईसों की जायदादें जप्त करली हैं। मालगुजारी चुकाने में किसान तबाह हाते जा रहे हैं। हम भारत के प्रत्येक प्राचीन कुल और उसकी प्रतिष्ठा के कट्टर शत्रु हैं। अब इन हींदस की खुशहाली की एक ही राह है कि वे चुपचाप ईसाई हो जाँय और हमारी कृपाओं से लाभ उठाएँ।"

"मैं आप से अक्षरशः सहमत हूँ सर जान लारेन्स महोदय, किंतु मैं आपका ध्यान एक खतरे की ओर दिलाना चाहता हूँ", राबर्ट माण्टगुमरी ने कहा।

"आप कोई खास बात कहना चाहते हैं ?"

"जी हाँ, बहुत ही खास बात। हम भली-भाँति जानते हैं कि इस समय रूस का भय हमारे साम्राज्य पर छा रहा है। यद्यपि क्रीमिया युद्ध ने उसका रुख बदल दिया है परंतु हम निरापद नहीं है। हमने अब तक रूस के भय से सतर्क रहने की चेष्टा तथा तैयारियाँ की है, परंतु अब भय भीतर ही उठ खड़ा हुआ है। सेना और जनता दोनों ही संदिग्ध और उत्तेजित दीख पड़ते हैं। यदि देश में विद्रोह भड़क उठे तो हमें कौन सा क़दम उठाना पड़ेगा। यह हमें अभी विचार लेना मुनासिब है।"

"आप का ख्याल दुरुस्त है सर माण्टगुमरी महोदय," सर लारेन्स ने कहा—"मुझे कुछ महत्वपूर्ण सूचनाएँ मिली हैं। जिनके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि लोग अपने धर्म के नाम पर, अपनी कौम के नाम पर, बदला लेने के लिए भड़क सकते हैं और देशी राजाओं की पूर्ण सत्ता

ग्रौर देशी धर्मों का ग्रधिकार फिर से स्थापित करने की चेष्टा भी कर सकते हैं।"

डानल्ड मेकलिग्राड ने कहा—"मैं देखता हूँ कि जब से ग्रवध के बादशाह को गद्दी से उतारा गया है तभी से हालत खराब होती जा रही रही है। लोग शक की नजर से हमें देखने लगे हैं ग्रौर पहले जो खुशी से हमारा हुक्म मानते थे—ग्रब मजबूरी से मानते हैं।"

"हो सकता है—यह सिर्फ ग्रापका ख्याल ही हो, मिस्टर डानल्ड, लेकिन इस बात से मैं सहमत हूँ कि हमें तैयार रहना चाहिए। मैं समझता हूँ सिख ग्रौर नैपाल की सरकार तथा राजपूत हमारी मदद करेंगे ग्रौर हम ग्रपनी फौज को चाक-चौबन्द रखेंगे।"

"तो दोस्तो, ग्रापके लिए नया साल मुबारक।"

सबने कहा—ग्रामीन,

ग्रौर सभा बर्खास्त हुई।

: ५ :

दो ज्वालामुखी

लंडन के पालमाल महल्ले के एक कमरे में एक ग्रधेड़ ग्रायु का पुरुष चिन्तामग्न बैठा था। ग्रंगीठी में ग्राग जल रही थी, कमरा गर्म ग्रौर ग्रारामदेह था। परन्तु ऐसा प्रतीत होता था जैसे यह व्यक्ति सुखी नहीं है। कोई ग्रशान्त ज्वालामुखी उसके हृदय में धधक रहा है। उसके सिर पर ग्रधपके खिचड़ी बाल थे। छोटी कटी मूँछें थीं। रंग इसका ज़रा गेहुंग्रा था। इसका क़द ठिगना शरीर गठीला ग्रौर दृष्टि पैनी थी। उसके पतले होंठ सम्पुटित थे। ग्रभी वह एक लम्बा खत लिख चुका था—ग्रौर ऐसा प्रतीत होता था कि वह किसी की प्रतीक्षा कर रहा है। इस पुरुष का नाम रंगोजीबापू था, ग्रौर यह सितारा के महाराज का एलची था।

परन्तु उसे अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। गृह स्वामिनी की कन्या ने आकर उसे सूचना दी—कि एक भारतीय राजा उनसे मिलने आया है। रंगोजीबापू हड़बड़ा कर उठ खड़े हुए और बड़ी आवभगत करके आगन्तुक व्यक्ति को आदर से बैठाया। आगंतुक व्यक्ति शानोशौकत का आदमी था। वह बहुमूल्य मुसलमानी तरीक़े के कपड़े पहने हुए था, तथा उसके कण्ठ में एक कीमती कण्ठा पड़ा था। पगड़ी में भी मोती का झब्बा लटक रहा था। उसके चेहरे से मुसलमानी रुआब और उसका सतेज व्यक्तित्व फूटा पड़ता था। उसका रंग गोरा, आँखें रसीली और नाक कुछ नीचे को झुकी हुई थी। उसका बातें करने का ढंग बड़ा आकर्षक था। एक मन्द मुस्कान उसके चेहरे पर खेलती ही रहती थी। वाणी उसकी बहुत मीठी थी और शिष्टाचार में वह अद्वितीय था। आते ही उसने बड़ी विनम्रता से कहा—"मेरे आने से आपको कुछ असुविधा तो नहीं हुई रंगोजीबापू।"

"नहीं, तनिक भी नहीं, अजीमुल्ला साहब, मैं तो खुद ही आप से बातचीत करने को बहुत उत्सुक था। कहिए, अभी आप को कुछ आशा है या आप अपनी करनी कर चुके।" रंगोजी बाबू ने शिष्टाचार प्रकट करते हुए कहा।

"कुछ आशा नहीं है। मैं मलिका से भी मिला और लार्ड पामर्स्टन से भी। पार्लमेंट के दूसरे खास-खास आदमियों से भी, पर नतीजा कुछ न निकला। ये अंग्रेज बड़े चालाक हैं, सीधा जवाब नहीं देते, और बात ऐसी दुमानी करते हैं, कि आदमी चक्कर ही खाया करे।"

"तो बस ठीक यही हाल मेरा है। मुझे सतारा दर्बार ने बड़ी आशा से भेजा था। पर यहाँ आने पर सारी आशा धूल में मिल गई।"

"परंतु क्षत्रपति शिवाजी के वंशज सतारा के महाराज और प्रतापी पेशवा के उत्तराधिकारी इस तरह पेंशनों की भीख मांगें और निराश हों—यह तो शोभनीय नहीं है।"

"नहीं है, इसी से मैंने कुछ बात मन में सोची है, और उसी सम्बंध में आप से बातचीत करने आपको मैंने कष्ट दिया है।"

'आप खुशी से अपनी स्कीम मुझे बताइए। हम दोनों एक ही राह के राही हैं। हमें और आप को हमारे स्वामियों ने रुपया पानी की तरह बहा कर यहाँ बड़ी आशा से भेजा था। अब हम योंही छूँछे हाथ लौट जाएँगे तो हमारी क्या इज्जत रहेगी।"

"छूँछे हाथ हम न लौटेंगे।"

"तो हमें क्या करना चाहिए।"

"प्रतिशोध और प्रतिकार।"

"इतनी बड़ी शक्तिशाली जाति के विरुद्ध हम दोनों असहाय क्या कर सकते हैं?"

"बहुत कुछ कर सकते हैं। हम नानाफड़नवीस के काम को पूरा कर सकते हैं, अफसोस कि नानाफड़नवीस को उपयुक्त अवसर न मिला। १८ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेनाएं—भारत पर सत्ता स्थापित करती जा रहीं थी, तो उस समय दो युग-पुरुष जन्मे थे—एक हैदरअली, दूसरे नानाफड़नवीस। हैदरअली असाधारण सेनानी और और फड़नवीस असाधारण राजनीतिज्ञ थे। यदि कहीं उस समय अंग्रेजों के विरुद्ध तलवार और बुद्धि का एका हो जाता तो आज भारत का इतिहास ही कुछ दूसरा होता। परंतु ये दोनों एक दूसरे को काटते ही रहे। यह महामेधावी मंत्री सदाशिवराव भाऊ के साथ पानीपत गया था। वह एक ऐसा राजनीतिज्ञ था जो अंग्रेजों की प्रशंसा करता था—पर उन्हें पास नहीं फटकने देना चाहता था। और अपनी शक्ति भर उसने यही किया।"

"किंतु अब हम क्या कर सकते हैं?"

"आओ मित्र, हम अपना-अपना काम बांट लें। मैं दक्षिण का जिम्मा लेता हूँ—मैं दक्षिण के अधमरे राजाओं में जान फूँकूँगा।"

"तो मैं भी, उत्तरभारत की सब रियासतों में वह आग सुलगाऊँगा कि ये अंग्रेज उसी में भस्म हो जाएँगे। परंतु........"

"परंतु क्या?"

"एक बात का मुझे अंदेशा है। क्या सब भारतवासी एक हो कर लड़ सकेंगे ?"

'क्यों नहीं। दक्षिण का जिम्मा मैंने ले ही लिया। उत्तर में हिन्दु और मुसलमानों की दो शक्तियां हैं। सौभाग्य से आप मुसलमान हैं पर एक हिन्दू राजा के प्रतिनिधि है। बस आप और नाना राव साहब आपस में मिल कर सारे उत्तर भारत में घर-घर अलख जगाइए। आग सुलगाइए, हिन्दू मुसलमान दोनों को खड़ा कर दीजिए। फिर देखिए कि इन अंग्रेजों के पैर कहाँ टिकते हैं।"

"आप ठीक कहते हैं। मैं ऐसा ही करूँगा। परंतु हमें बाहर से भी मदद लेनी चाहिए।"

"किस तरह ?"

"यहाँ इंगलैण्ड में आकर मैंने जाना है कि अंग्रेज जिस तरह शेर हो कर भारत में मनमानी करते हैं, वैसे यहाँ नहीं कर सकते। यहाँ तो वह भयभीत, चिन्तित और व्याकुल हैं।"

"क्यों न हों भला। कहां क्षुद्र इंगलैण्ड का टापू, वहाँ के मुट्ठी भर आदमी और कहां हमारा भारतवर्ष। हमारी ही दुर्बलता से इन्होंने हमारा भारतवर्ष छीन तो लिया—परंतु अब उसकी रक्षा उनके लिए जाने-ववाल हो रही है। पूर्वी समस्या को लेकर अंग्रेजों की नीद हराम हो रही है। अभी ईरान का युद्ध खत्म न हुआ था कि क्रीमिया की लड़ाई छिड़ गई। वहां से जैसे खराब समाचार आ रहे हैं—उन्हें सुन-सुन कर सारा इंगलैण्ड चिन्ताकुल हो रहा है। वहां हजारों अंग्रेज बिना राशन पानी भूख और ठण्ड से ठिठुर कर मर गए। और मैं समझता हूँ अंग्रेज उसी तरह रूस से पिट कर लौटेगा जिस तरह नैपोलियन लौटा था। हमें इस सुअवसर से लाभ उठाना चाहिए।"

"बेशक। इस समय इटली के गेरीवाल्डी ने अपनी सरकार के विरुद्ध बगावत का झण्डा उठाया है। उससे से भी कुछ फायदा उठाना चाहिए। शत्रु का शत्रु मित्र, यह कभी न भूलना चाहिए।"

"तो हमें इटली और रूस का भी चक्कर लगाना चाहिए।"

"अवश्य ! अब यहाँ पड़े-पड़े व्यर्थ समय नष्ट करने से क्या लाभ है। हमें तुरन्त इंगलैण्ड से कूच कर देना चाहिए।"

"जरूर ही हमें कूच कर देना चाहिए। मैं आप के साथ चलूंगा। मैंने अपने महाराज को सब हक़ीकत लिख दी है। और अब मैं यहां से चल देने को बिल्कुल तैयार हूं।"

"तो मैं भी चौबसी घण्टे में तैयार हो जाऊँगा। मैं भी सब हक़ीकत आज ही श्रीमन्त पेशवा को लिख भेज रहा हूँ।

इतना कह कर अजीमुल्ला उठ खड़े हुए। रंगोजीबापू ने उनसे प्रेम से हाथ मिलाया और नेत्रों ही नेत्रों में अपना अभिप्राय व्यक्त कर उन्हें विदा किया।

: ६ :

शक्ति परीक्षा

इस समय समस्त यूरोपीय राज्य प्रायः ईसाई थे। केवल टर्की एक ऐसा राज्य था जहाँ के शासक तुर्क मुसलमान थे। टर्की यद्यपि यूरोप का भाग था—परन्तु वहाँ के धर्म-भेद के कारण टर्की की सभ्यता, संस्कृति और सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था यूरोप से भिन्न थी। इसके अतिरिक्त टर्की साम्राज्य के कुछ सूबों में ईसाइयों की बस्ती थी। जो मुसलमानों के शासन को असह्य समझते थे। टर्की यूरोप के बिल्कुल पूर्वीय कोने में है और टर्की के तुर्कों का साम्राज्य एशिया के पश्चिमी सिरे तक फैला है। इन सब कारणों से यूरोपीय राजनीतिज्ञों के लिए टर्की साम्राज्य इन दिनों एक समस्या बनी हुई थी। खास कर इंगलैण्ड को अपने पूर्वी साम्राज्य के कारण इस पूर्वीय समस्या का निबटारा करने में सब से अधिक चिन्ताशील रहना पड़ रहा था। इस समय दो ही यूरोपीय शक्तियाँ पूर्व में अपना विशेष स्वार्थ रखती थीं—एक इंगलैण्ड

दूसरी रशियां। इसलिए पूर्वी समस्या का सब से अधिक भार इस समय इंगलैण्ड और रूस पर ही था।

मध्यकाल में पूर्वी यूरोप का बड़ा भाग तुर्क साम्राज्य के अंतर्गत था। कुछ काल तक तो तुर्क साम्राज्य जर्मनी की सीमा को छू गया था। सत्रहवीं शताब्दी में आस्ट्रिया, पोलैण्ड और वेनिस ने मिल कर तुर्क साम्राज्य से मोर्चा लेने को एक ईसाई पश्चिम संघ बनाया था। जिसमें रूस का महान पीटर भी सम्मिलित हो गया था। इन चार शक्तिशाली ईसाई राज्यों के संगठन का केवल इतना ही परिणाम हुआ—कि तुर्क यूरोप में आगे न बढ़ सके। परन्तु १८वीं शताब्दी में तुर्क साम्राज्य का पतन होने लगा। रूस ने काला सागर के तट पर स्थित क्रीमिया के अन्तरीप को और एज़ाफ के समुद्र तट पर विद्यमान प्रदेश को जीत लिया। इससे रूसी साम्राज्य की दक्षिणी सीमा काला सागर के साथ आ लगी। और अब रूस ने टर्की के मामलों में हस्तक्षेप आरम्भ कर दिया। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में ही, जब यूरोप में नैपोलियन का पतन हो रहा था, तुर्क साम्राज्य क्षेत्रफल के विस्तार की दृष्टि से यूरोप भर में रूस के बाद सब से बड़ा साम्राज्य था। एजीयन सागर के विविध द्वीप टर्की के अधीन थे, एशिया में एशिया माइनर, सीरिया, पेलेस्टाइन, मैसोपोटामिया, आर्मीनिया और अरब तुर्क साम्राज्य के ही अन्तर्गत थे। अफ्रीका में मिस्र से लेकर अल्जीरिया तक तुर्कों का अधिकार था।

परन्तु तुर्क जाति का बाहुल्य केवल एशिया माइनर में ही था। तुर्क साम्राज्य के अन्य प्रदेशों में तुर्क-मित्र अन्य विविध जातियाँ रहती थीं। मध्यकाल की समाप्ति पर जब यूरोप में राष्ट्रीयता के भावों का उदय हुआ तब इन विविध प्रकार की जातियों का एक शासन में रह सकना सम्भव नहीं रहा। और उन्नीसवीं शताब्दी में तो राष्ट्रीयता की प्रबलता ने तुर्क साम्राज्य को सर्वथा अस्वाभाविक बना दिया। और ये प्रदेश विद्रोही हो उठे। और उन्होंने अपनी राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए संघर्ष आरम्भ कर दिया, जो सौ वर्षों तक चलता रहा। तुर्क साम्राज्य के अधीन

इन विभिन्न जातियों का यह राष्ट्रीय संघर्ष अत्यन्त महत्वपूर्ण था। और संसार के इतिहास ने, जो उन्नीसवीं शताब्दी में एक नया मोड़ लिया, उस पर इस संघर्ष का बड़ा भारी प्रभाव है।

तुर्क साम्राज्य की यह विविधता केवल जातीय भेदों तक थी। धार्मिक भेद भी थे। तुर्क सुन्नी मुसलमान थे, पर शिया, बहावी आदि विविध इस्लामी सम्प्रदाय तुर्क साम्राज्य में बसते थे। फिर यहूदी ईसाई थे, ईसाइयों में भी रोमन कैथोलिक, ग्रीक, कैथोलिक, जार्जियन आदि सम्प्रदाय के लोग तुर्क साम्राज्य में रहते थे। तुर्क इन्हें काफिर कहते और इनसे घृणा करते थे। इस प्रकार तुर्क साम्राज्य राष्ट्रीयता की दृष्टि से सर्वथा अस्वाभाविक था। तुर्क साम्राज्य ही की भांति आस्ट्रिया का साम्राज्य भी तत्कालीन नई प्रवृत्तियों के प्रतिकूल था, इसलिए तुर्क साम्राज्य की भांति आस्ट्रियन साम्राज्य में भी राष्ट्रीय संघर्ष उठ खड़े हुए थे। परन्तु तुर्क साम्राज्य में केवल राष्ट्रीयता की ही समस्या नहीं थी, वहाँ एक बात राजा के स्वेच्छाचारी एकाधिकार की भी थी। जब यूरोप में लोकतन्त्री भावनाएँ जागीं, तो एकतन्त्र शासन यूरोप में असह्य हो गया। उन दिनों तक यूरोप में स्वेच्छाचारी, एकतन्त्री शासन थे पर तुर्क का सुलतान सम्राट् के साथ-साथ इस्लाम का भी खलीफ़ा—धार्मिक नेता था। इससे भी वह एक पक्षीय शासन बन गया था। उन दिनों तुर्क साम्राज्य में राज्य के बड़े-बड़े पद नीलाम हुआ करते थे। इसका परिणाम यह-होता था—कि सुलतान को भारी-भारी रकमें दे कर जो राजकीय पदाधिकारी हो जाते थे—वे अपने उस पद को अपनी आमदनी बढ़ाने का ही साधन मनाते थे—इस तरह वे भी स्वेच्छाचारी थे। राज्य में पूरी अव्यवस्था थी।

यूरोप में फ्रेंच राज्य क्रान्ति और नैपोलियन के युद्धों ने राष्ट्रीयता की बाढ़ लादी थी। उधर क्रीमिया की विजय के बाद रूस, जिसकी सीमा काला सागर से आ लगी थी—टर्की की इस अव्यवस्था से पूरा लाभ उठाना चाहता। उधर आष्ट्रिया की शक्ति जर्मनी में क्षीण हो

रही थी, और अपनी शक्ति के संतुलन के लिए वह बाल्कन प्रायःद्वीपों पर गृद्ध दृष्टि रखता था। फ्रेंच राज्य क्रांति का बाल्कन राज्यों पर भी प्रभाव था और वे भी राष्ट्रीय स्वतंत्रता के सुपने देखने लगे थे। अब रूस और आस्ट्रिया दोनों का हित इस बात में था कि टर्की कमजोर हो जाय, और बाल्कन प्रायःद्वीपों की लूट से वे अपनी क्षति-पूर्ति कर लें।

एशिया में इस समय जो विविध यूरोपियन राज्य अपना साम्राज्य बना रहे थे, उनमें रूस और ब्रिटेन प्रमुख थे। ब्रिटेन ने भारतवर्ष को पूरी तौर पर अपने अधिकार में ले लिया था और रूस प्रशान्त महासागर तक उत्तरी एशिया में अपना अधिकार स्थापित कर चुका था। अनेक स्थानों पर दोनों की सीमाएं आ मिली थीं। इससे दोनों को एक दूसरे से भय चरम सीमा तक पहुँच चुका था।

ब्रिटेन के लिए एक और गहरी समस्या थी। उसे अपने भारतीय साम्राज्य तक पहुँचने को निष्कंटक मार्ग चाहिए था। उन दिनों ब्रिटेन को भारत तक पहुँचने के लिए स्वेज के जलडमरूमध्य के सिवा दूसरा मार्ग न था। इस मार्ग के आस-पास के प्रदेशों पर किसका राज्य है, यह बात ब्रिटेन के लिए अत्यन्त महत्त्व रखती थी। तब तक स्वेज की नहर नहीं बनी थी। यूरोपियन लोगों के जहाज उन दिनों अलेक्जेंड्रिया पहुचते थे। वहाँ उनका माल असबाब उतारा जाता था और उसे काफ़लों द्वारा स्थल मार्ग से स्वेज पहुँचाया जाता था। वहाँ दूसरे जहाज तैयार रहते थे। उन पर सब माल लाद दिया जाता था और तब ये जहाज पूर्व में भारत आते थे। ऐसी स्थिति में यदि रूस टर्की की शक्ति को नष्ट कर बाल्कन प्रायःद्वीप पर अपना प्रभाव क़ायम कर ले, तो वह स्वेज के इस मार्ग के बहुत निकट पहुँच जाता था। भला अंग्रेज भारतीय साम्राज्य के इस शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी का अपने मार्ग के इतने निकट पहुँचना कैसे बर्दाश्त कर सकते थे। टर्की इस समय बहुत कमज़ोर हो चुका था। अंग्रेजों को उससे कुछ भय न था, पर अंग्रेजों का हित इसी में था कि टर्की को वे नष्ट न होने दें, तथा उसे मित्र बनाए रखें और उसमें इतनी ताकत रहे

कि वह बाल्कन प्राय:द्वीप पर अपना प्रभाव बनाए रहें। इस प्रकार बाल्कन राज्यों तथा टर्की के सम्बन्ध में रूस और ब्रिटेन की परस्पर विरुद्ध नीति थी जो परस्पर टकराती थी।

इस समय एक बात और थी। मिस्र का पाशा बहुत शक्तिशाली और महत्वाकांक्षी था, अभी तक वह टर्की का सामन्त था। पर टर्की की क्षीण होती हुई शक्ति को देख वह सिर उठा रहा था और अपनी शक्ति बढ़ाने की खटपट कर रहा था। यूरोपियन राज्यों के सम्मुख यह समस्या थी—कि वे टर्की को सहायता दें या मिस्र को। इस सम्बन्ध में ब्रिटेन का रुख समूचे यूरोप से भिन्न था। इंगलैंड का चिर शत्रु फ्रांस इस समय उत्तरी अफ्रीका में पैर फैला रहा था। इस लिए सभी यूरोपियन राज्यों में दाव-पेच चल रहे थे—कि अवसर से लाभ उठाकर रूस ने टर्की से एक संधि कर ली–जिसके कारण काला सागर समुद्र तट पर उसका एकाधिकार हो गया और रूस टर्की का संरक्षक बन गया। जब यूरोपियन राष्ट्रों, खासकर ब्रिटेन और फ्रांस को इस बात का पता चला तो वे बौखला उठे। शीघ्र ही वे तीनों राष्ट्र युद्ध पर आमादा हो गए। पर उस समय तो लड़ाई टल गई, परन्तु शीघ्र ही मिस्र और टर्की में युद्ध छिड़ गया। जिसमें फ्रांस ने मिस्र का और ब्रिटेन ने टर्की का पक्ष लिया। इस पर जो संधि हुई—तो टर्की पर से रूस का प्रभुत्व हट गया, काला सागर तट पर भी उसका एकाधिकार न रहा और टर्की पर अंग्रेजों का प्रभुत्व हो गया। फ्रांस को यह बात पसन्द न आई। परंतु यूरोपीय राष्ट्रों ने मिल-मिला कर फ्रांस-ब्रिटेन का यह विग्रह टाल दिया।

अब रूस ने नई चाल खेलीं। उसने ऐसा विचार किया कि टर्की के साम्राज्य को खत्म ही कर दिया जाय और उसका कुछ हिस्सा ब्रिटेन को को देकर कान्सटेन्टिनोपल पर अपना अधिकार कर लिया जाय। ब्रिटेन का स्वार्थ तो स्वेज मार्ग पर था। यदि मिस्र और स्वेज उसे मिल जाय तो फिर उसे कुछ न चाहिए। इसी इरादे को मन में रखकर रूस के ज़ार ने इंगलैण्ड की यात्रा की। बात चली, पर ब्रिटेन अपने भारतीय साम्राज्य

के मार्ग में अपने सबसे बड़े प्रतिस्पर्द्धी रूस को बढ़ने देना नहीं चाहता था। वह जानता था कि रूस कान्स्टेन्टिनोपल पर क़ब्जा कर लेगा तो बाल्कन प्रायःद्वीप पर भी उसका अधिकार हो जायगा, तब तो उसकी शक्ति की सीमा न रहेगी। स्थल शक्ति में तो रूस ब्रिटेन से बढ़ा चढ़ा था ही, जल शक्ति में भी वह अद्वितीय हो जायगा। ऐसी अवस्था में मिस्र और स्वेज पर ब्रिटेन का क़ब्जा हो भी जाय तो भी निकट पड़ौस में शक्तिशाली रूस का होना उसके लिए भयानक हो सकता था। इस लिए उसने रूसी योजना ठुकरा दी। इससे क्रुद्ध होकर अब रूस ने युद्ध द्वारा शक्ति-परीक्षा करने की ठान ली।

: ७ :

क्रीमिया की लड़ाई

अब रूस युद्ध का कोई बहाना खोज रहा था। सन् १८५३ में यह बहाना मिल गया। ईसाइयों के पवित्र तीर्थ पेलेस्टाइन और जेरूसलम शताब्दियों से तुर्क साम्राज्य के अन्तर्गत थे। यूरोप भर के यात्री वहां तीर्थ यात्रा के लिए आते थे—इन प्रदेशों में अधिक आबादी भी ईसाइयों की थी। इन ईसाई प्रजाजनों और यात्रियों के प्रति तुर्क अधिकारियों का सदा घृणा और तुच्छता का व्यवहार होता था। वे इन्हें काफिर कहते थे। ऐसी ही एक दो घटनाओं की शिकायतें रूस के सम्राट् के कान में पहुँचीं, उसने तुर्क सुलतान को एक अल्टीमेटम दिया जिस में यह मांग की गई कि सुलतान रूसी सम्राट् को ईसाई प्रजा का संरक्षक स्वीकार करे। उस समय टर्की में ब्रिटिश राजदूत लार्ड स्ट्रेटफोर्ड कुस्तुन्तुनिया में उपस्थित थे। उन्होंने सुलतान को सलाह दी कि वह रूसी सम्राट् की यह मांग स्वीकार न करे। बस, रूसी राजदूत तो कुस्तुन्तुनिया से लौटा—और रूसी सेनाएँ उस ओर अग्रसर हुईं। ब्रिटेन ने तत्काल अपनी सेनाएँ टर्की की सहायता को भेज दीं। इस समय फ्रांस

पर नेपोलियन तृतीय का अधिकार था। उसे भी अपने दादा नेपोलियन प्रथम का वैर भूला न था। अतः इस बार फ्रांस ने इंगलैण्ड से वैर भूल कर उसके साथ ही टर्की की सहायता के लिए अपनी सेनाएँ भेज दीं। और काला सागर के क्रीमिया अन्तरीप में सन् ५४ में युद्ध छिड़ गया।

रूस ने यद्यपि इस आक्रमण को धर्म का रूप दिया था, परंतु इंगलैण्ड ने इसे धार्मिक दृष्टि से नहीं देखा। इन दिनों इंगलैण्ड में एक बड़े ही विलक्षण राजनीतिज्ञ थे—उनका नाम था लार्ड पामर्स्टन। वह एक शक्तिशाली राजपुरुष थे। पहले वे बहुत काल तक इंगलैण्ड के परराष्ट्र-विभाग के मंत्री रह चुके थे। पूर्वी समस्या के संबंध में उन्होंने ब्रिटेन की यह नीति निर्धारित की थी कि ब्रिटेन का हित इसी में है कि टर्की का साम्राज्य टूटने न पाए। उन्ही ने इंगलैण्ड का ध्यान इस ओर आकर्षित किया था कि यदि तुर्की की शक्ति नष्ट हो गई तो रूस को एशिया माइनर की ओर पंख पसारने को खुला मैदान मिल जाएगा। और एशिया में रूस की शक्ति बढ़ जायगी, और ब्रिटेन को भारत वर्ष के साम्राज्य को सदा रूस का भय लगा रहेगा। लार्ड पामर्स्टन बड़े दंबग राजपुरुष थे। शासन कार्य में वह अपने सहयोगियों की अनुमति की भी परवाह न करते थे। यहाँ तक, कि कभी-कभी रानी विक्टोरिया को भी अपनी कार्यवाही का पता नहीं देते थे। इसी कारण उन्हें रानी ने परराष्ट्र-विभाग के मंत्री पद से हटा दिया था। पर अब रानी विक्टोरिया को इस पूर्वी समस्या के महान ज्ञाता की आवश्यकता पड़ी। और उसे ब्रिटिश साम्राज्य का प्रधानमंत्री बना दिया गया। यह इस राजपुरुष का ही कौशल था कि ब्रिटेन का चिरशत्रु तथा प्रतिद्वन्दी फ्रांस, इस युद्ध में ब्रिटेन के साथ मिल गया।

जिस समय क्रीमिया के युद्ध का सूत्रपात हुआ—तब रूस पर ज़ार निकोलस प्रथम का शासन था। निकोलस का शासन कठोर और क्रूर था। उसे गद्दी पर बैठते ही क्रांति और विद्रोह का शमन करना पड़ा था, इस लिए उसकी नीति कठोर हो गई थी, उसका विश्वास था कि पच्छिमी

यूरोप की स्वतन्त्र वायु रूस में प्रविष्ट न होने पाए। इस लिए उसने कड़ी आज्ञा दी थी कि बाहरी कोई यात्री रूस में प्रविष्ट न होने पाए। न कोई रूसी नागरिक रूस से बाहर बिना अनुमति के जा सके। न यात्रा के लिए, न व्यापार के लिए, न अध्ययन के लिए। यहां तक उसने कड़ा नियन्त्रण रखा था—कि जो पुस्तकें बाहर से छप कर आती थीं—उनकी भी पूरी छानबीन की जाती थी। और जिन में नवीन विज्ञान या विचारों का जरा भी पुट पाया जाता था वे रूस में जनता को नहीं पढ़ने दी जाती थीं। उसके हजारों गुप्तचर शिक्षा केन्द्रों, प्रेस, थियेटर आदि में इसी बात का निरीक्षण करते फिरते थे कि उन में नवीन विचारों का समावेश न होने पाए। उसके गुप्तचर जब चाहें जहाँ चाहें जिसको गिरफ्तार कर लेते थे, ज़ार के इस एकतन्त्री स्वेच्छाचारी शासन का प्रबल सहायक रूसी चर्च था। रूसी साम्राज्य में ईसाई धर्म का प्रचार कुस्तुन्तुनिया के पादरियों द्वारा हुआ था। उन दिनों ईसाई धर्म के दो संगठन थे। एक रोमन कैथोलिक चर्च जिसका केन्द्र रोम था, दूसरा ग्रीक कैथोलिक चर्च था जिसका केन्द्र कान्स्टेन्टिनोपल था। रूस ग्रीक कैथोलिक चर्च के अन्तर्गत था और शताब्दियों तक रहा। रूस के ईसाई शताब्दियों से कान्स्टेन्टिनोपल के पेट्रिआर्क को अपना धार्मिक नेता मानते रहे। जिस प्रकार रोमन कैथोलिक चर्च के मुखिया को पोप कहते थे, उसी भाँति ग्रीक कैथोलिक चर्च के मुखिया को पेट्रिआर्क कहा जाता था। जब पन्द्रहवीं शताब्दी में मुसलमानों ने कान्स्टेन्टिनोपल पर अपना अधिकार कर लिया तो वह ग्रीक कैथोलिक चर्च का केन्द्र न रह सका। उस समय से रूस के ज़ार ही वहां के चर्च के अधिपति बन गए थे। तथा चर्च राज्य का ही एक अंग बन गया था। अब इस समय, जब सम्पूर्ण पच्छिमी यूरोप में क्रांति की लहर चल रही थी, राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता को विज्ञान और उद्योग उड़ाए लिए जा रहे थे, तथा धार्मिक मामलों में भी लोग स्वतन्त्र होते जा रहे थे—यह स्वाभाविक था कि रूस के लोग भी धार्मिक स्वतन्त्रता से प्रेरित होकर सरकारी चर्च से अपने को

मुक्त करें। ज़ार इस बात को भी बड़ी चिन्ता की तथा कड़ी नज़र से देखता था। वह यह विश्वास रखता था कि रूस में एकता स्थापित रखने के लिए रूसी चर्च की भी अक्षुण्णता कायम रक्खी जाय। इस लिए निकोलस उन दिनों रोमन कैथोलिकों, प्रोटेस्टेण्टों, यहूदियों को पक्का धर्म-शत्रु और विधर्मी समझ कर उन पर कठोर अत्याचार कर रहा था। रूसी चर्च को छोड़ने पर उसे दण्ड दिया जाता था। इस प्रकार निकोलस सब प्रकार की धार्मिक–राजनीतिक और आर्थिक प्रगतियों का घोर विरोधी एवं घोर साम्राज्यवादी था। इसी से उसने बाल्कन प्रायःद्वीप की ईसाई जनता का पक्ष लेकर तुर्की साम्राज्य के मामलों में हस्तक्षेप शुरू किया था जिसे ब्रिटेन बर्दाश्त नहीं कर सका। और क्रीमिया का युद्ध आरम्भ हो गया।

परन्तु अभी क्रीमिया की लड़ाई चल ही रही थी कि निकोलस प्रथम का देहांत हो गया, और अलेक्ज़ेण्डर द्वितीय रूस का ज़ार बना। जिस समय वह गद्दी पर बैठा, क्रीमिया में निरन्तर रूस की हार होती जा रही थी। और लोग इस हार का पूरा दायित्व ज़ार के एकतन्त्री और स्वेच्छाचारिता से परिपूर्ण शासन पर लगाते थे। सर्वत्र रूस में सुधारों की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी। ज़ार अलेक्ज़ेन्डर द्वितीय अपने साम्राज्य की असली हालत से अपरिचित न था। वह एक समझदार और बुद्धिमान व्यक्ति था। उसने तुरन्त समझ लिया कि बिना सुधारों के रूस का उद्धार सम्भव नहीं। उस ने योग्य मंत्रियों का संगठन कर के तीव्रता के साथ सुधार आरम्भ किए। परन्तु क्रीमिया का युद्ध वह नहीं जीत सका। फ्रांसीसी और अंग्रेजी सेनाओं ने मिल कर रूस के प्रसिद्ध क़िले सेवस्टिपोल पर घेरा डाल दिया। इसके थोड़े ही दिन बाद रूसियों की सेना बेलेक्लावा तथा इन्करमैन के युद्धों में बुरी तरह परास्त हुई। और सेवस्टीपोल का दुर्ग उनके हाथों से निकल गया। अन्त में रूसियों को पैरिस की सन्धि पर हस्ताक्षर करने पड़े। और वे इंगलैण्ड के प्रधान मन्त्री पामर्स्टन की सब शर्तें मानने को वाध्य हुए। यह

निश्चित किया गया कि टर्की के साम्राज्य पर कोई आघात न होने पाएगा। तथा 'कृष्ण सागर' से रूसी अपना बेड़ा हटा लेंगे और सेवस्टीपोल किले की मरम्मत नहीं करेंगे।

इस संधि से रूस की जल-शक्ति को बड़ा धक्का लगा और बीमार तुर्क साम्राज्य की प्राण-रक्षा हो गई। परन्तु इस से पूर्वीय समस्याएँ हल नहीं हुईं और नई उलझनें बढ़ती चली गईं। अंग्रेज यह युद्ध जीते अवश्य परन्तु उनकी भी सैनिक शक्ति को बहुत धक्का लगा। जिसकी पूर्ति में उन्हें काफी शक्ति व्यय करनी पड़ी।

: ८ :

फ्लोरेन्स नाईटिंगेल

लंदन के हैम्पशायर उपनगर के एम्बले पार्क में एक छोटा-सा किन्तु सुन्दर ग्राम्यकुटीर था। उसमें एक ओर रंग-बिरंगे फूलों की क्यारियाँ लगी हुई थीं। बीच-बीच में चहलक़दमी करने के लिए पक्के रास्ते बने हुए थे। दूसरी ओर एक ऊँचा चबूतरा बना हुआ था। जिसके सामने फव्वारा था। जिससे नन्हीं-नन्हीं बूंदें चारों ओर बरस रहीं थीं। हम जिन दिनों की बात कह रहे हैं—वह सन् १८४९ का अगस्त मास था। गर्मी के दिन थे। सन्ध्या होने में अब देर न थी। सूरज की सुनहरी हल्की किरणों में चबूतरे के ऊपर कुछ स्त्री-पुरुष बैठे गप-शप कर रहे थे। उनमें जो सज्जन बड़ी कुर्सी पर बैठे थे—वह यूरोप के तत्कालीन महान सम्माननीय व्यक्ति थे—जिन्हें इंगलैण्ड में बेल्जियम का भाग्य-विधाता कहा जाता था। यह पुरुष इंगलैण्ड के प्रधान मंत्री लार्ड पामर्स्टन थे। उनकी उम्र साठ साल से भी ऊपर हो चुकी थी। परन्तु देखने में वह अभी वृद्ध नज़र नहीं आ रहे थे—शरीर उनका हृष्ट-पुष्ट था और चेहरे से निर्भीकता टपकती थी। उनकी बुद्धिमत्ता, व्यावहारिक शान और स्वतंत्र प्रियता—दयालुता, गम्भीरता और विवेकशीलता के बहुत से

क़िस्से इंगलैण्ड में प्रसिद्ध थे। ब्रिटिश जनता उन्हें आदर की दृष्टि से देखती थी। परन्तु महारानी विक्टोरिया और उनके पति की नजरों में वह खटकते ही रहते थे।

दूसरे भद्र पुरुष इस घर के स्वामी श्री विलियम नाइटिंगेल थे। शरीर के वह दुबले-पतले थे। और लार्ड पामर्स्टन से कोई दस साल छोटे थे। कैम्ब्रिज और एडिनबरा में उन्होंने उच्च शिक्षा पाई थी। पुस्तकों का उन्हें बड़ा शौक था। और अपने परिचितों में वह एक विद्वान पुरुष की भांति परिचित थे। उनकी पत्नी का नाम फैनी नाइटिंगेल था जो इस समय वहाँ बैठी कोई क़सीदा निकाल रही थी। यह एक दृढ़ स्वभाव की व्यवहार कुशल स्त्री थी। उसके विचार पुराने जमाने के समर्थक थे। उसके पति श्री विलियम नाइटिंगेल को एक निकटतम सम्बन्धी की मृत्यु होने पर एक भारी जायदाद मिल गई थी। परन्तु श्रीमती नाइटिंगेल के पास उन की अपनी भी कुछ जायदाद थी और बड़े-बड़े प्रभावशाली लोग उसके मित्र थे।

श्रीमती नाइटिंगेल एक छोटी-सी कुर्सी पर अपने बुनने का पिटारा लिए बैठी थीं। उनके हाथ और जीभ एक साथ चल रहे थे। लार्ड पामर्स्टन और उसके पति में जो वार्तालाप हो रहा था वह बीच-बीच में उस पर अपनी टीका-टिप्पणी देती जाती थी। इस समय इस चबूतरे पर एक चौथा व्यक्ति और था। इसका क़द लम्बा, बाल भूरे, शरीर छरहरा और मुखाकृति सुन्दर थी। यह कोई ४० साल की आयु का तरुण था। उसकी आँखें काली थीं और दाढ़ी-मूँछों के बाल सफाचट थे। उसके दुर्बल शरीर को देख कर आसानी से कहा जा सकता था कि वह कुछ रोगी रहता है। यह पुरुष सिडनी हर्बर्ट था, जो पार्लमेंट का एक साहसी और वाकपटु सदस्य था।

लार्ड पामर्स्टन के हाथ में एक पुस्तक थी। उसी पुस्तक के विषय को ले कर उनमें और गृहपति श्री नाइटिंगेल में विचार विनिमय हो रहा था। श्रीमती ने बीच ही में टोक कर कहा—"इस ग्रंथ के लेखक के

विचार कैसे हैं ?"

हर्बर्ट ने उतावली से कहा—"वह कहता है कि प्रत्येक व्यक्ति को परिश्रम करना चाहिए ।"

"वाह, बिल्कुल बेहूदा बात है । गरीब आदमी परिश्रम न करे तो खाय क्या ? पर धनवान क्यों परिश्रम करे ?"

पामर्स्टन ने हंसते हुए कहा—"अधिक धनी बनने के लिए ।"

इस पर श्रीमती नाईटिंगेल ने बिदक कर कहा—"आप क्या इसीलिए इतना परिश्रम करते हैं ?"

"नहीं ! मैं धन को महत्त्व नहीं देता । मुझे तो काम करने में आनंद आता है ।"

"काम करने में यदि आप को आनंद आता है तो वह परिश्रम नहीं कहा जा सकता । लेकिन क्या आप कर्तव्य समझ कर अपने देश की सेवा नहीं कर रहे ?" श्रीमती नाईटिंगेल ने हाथ रोक कर कहा ।

'देश-सेवा, शायद नहीं कहना चाहिए । मैं महत्वाकांक्षी पुरुष हूँ, और मैं जो कुछ करता हूँ अपने लिए । आलस्य से मुझे अरुचि है ।"

"यदि अपनी इच्छानुसार काम करना ही परिश्रम है, तब तो स्वामी और सेवक में कोई अन्तर ही न रहा ।" उन्होंने लार्ड पामर्स्टन की ओर देखा—उन्होंने मुस्करा कर कहा—"इस पुस्तक के लेखक का शायद यह अभिप्राय है कि श्रमजीवियों में भी आत्मा है ।"

"तो क्या वे समर्थ होकर हमारे सिर पर न चढ़ जायँगे ।"

"हो सकता है । परन्तु हमारा देश धनी होता जा रहा है और बेकारी बढ़ती जा रही है । एक ओर धनी अधिक धनी होते जा रहे हैं दूसरी ओर गरीब अधिक गरीब बनते जा रहे हैं । मैं समझता हूँ कि यह ज्यादा अच्छा है कि दोनों के बीच एक समानता का मार्ग निकल आए ।"

"लेकिन आप यह तो बतलाइए कि वे अमीरों के लिए काम न करेंगे तो उन्हें काम कहाँ मिलेगा ।"

"आप तो एकदम टोरी हैं श्रीमती जी", हर्बर्ट ने मुस्करा कर कहा ।

"ग्रौर तुम ? तुम कब से लिबरल बने, हर्बर्ट ।"

"मेरा अभिप्राय यह था कि समझदारी से काम लिया जाय तो हम अपने प्रतिपक्षी को भी अपनी ओर खींच सकते हैं।" हर्बर्ट ने कहा।

"अच्छा, तो हर्बर्ट, मैं यह आशा करूँ कि हर्बर्ट, ग्लेडस्टन और पील भी हमारे दल में आ सकते हैं", लार्ड पामर्स्टन ने व्यंग से कहा।

"माई लार्ड, क्या हाउस में कभी हमने मंत्रीमण्डल को बाधा पहुँचाई है।"

"नहीं दोस्त, मैं यह नहीं कहता। परंतु आने वाली पीढ़ी के लिए आखिर हमें एक ध्येय छोड़ना है।"

श्रीमती नाइटिंगेल ने एकाएक कहा—"सचमुच ऐसी किताबों का तो सरकार द्वारा प्रकाशन ही बंद कर देना चाहिए। इससे तो बच्चों के दिमाग़ खराब हो जाने का भय है। आप आगे की पीढ़ी की बात कह रहे थे न लार्ड पामर्स्टन ?"

"जी हाँ, परंतु मेरी सरकार की नीति यह है कि श्रेणियों के अंतर बढ़ने की अपेक्षा कम किए जायँ। परंतु श्रीमती जी, बातचीत व राय देने की स्वतन्त्रता पर बंधन नहीं लगाया जा सकता। आप तो चारटिस्ट हैं। आप अवश्य सहमत होंगी।"

'ओह, चारटिस्ट, आपने खूब याद दिलाया। ये जो बदमाश मजदूरों को बहकाते हैं, उन्हें जेल में ठूंस देना चाहिए क्योंकि वे देशद्रोही हैं।"

परंतु यह उन्नीसवीं सदी है। आप यह नहीं कर सकतीं।

"यह बड़ी विचित्र बात है कि यदि दूसरे देश के राजनीतिक क्रांतिकारी अपनी सरकार के प्रति विद्रोह की आग भड़काते हैं तो वीर कहाते हैं—परंतु हम अंग्रेज यदि अपनी सरकार पर दबाव डालना चाहते हैं तो हम बदमाश और टंटाखोरे कहे जाते हैं," हर्बर्ट ने जरा तेजी से कहा।

हर्बर्ट की इस बात पर श्रीमती नाइटिंगेल गम्भीरता से बोलीं—"इसका कारण यह है कि हमारे देश की सरकार सभ्य पुरुषों की सरकार है।"

"इस प्रमाणपत्र के लिए धन्यवाद", लार्ड पामर्स्टन ने हंसकर कहा।

इस पर और भी गम्भीर होकर श्रीमती नाइटिंगेल ने कहा—"बात यह है कि हम नहीं चाहते कि फ्रांस पर जो बीता है, वे दिन इंगलैण्ड को भी देखने पड़ें।"

अब तक विलियम नाइटिंगेल चुप अखबार के पन्ने उलट रहे थे। अब उन्होंने सिर उठा कर कहा—"लेकिन फ्रांस की राज्यक्रांति तो उन की घरेलु बात थी ?"

"क्यों ? यह तो यहूदियों के हथकण्डे थे।"

"क्या रोब्सपीयरो यहूदी था ?"

'वह न सही' उसके पिट्ठू तो थे। आखिर इतना रुपया आता कहाँ से था, जिसने तख्त ही उलट दिया।" हर्बर्ट ने कहा।

"तौबा-तौबा, ईश्वर न करे हमारे बच्चों में ये विचार उत्पन्न हों।" श्रीमती नाइटिंगेल बोलीं—लेकिन हमारी फ्लोरेंस ही को लो, अजब धुन की लड़की है।"

"फ्लोरेंस तो बड़ी धर्मात्मा तथा शान्ति प्रिय है। वह तो क्रांतिकारिणी नहीं हो सकती", लार्ड पामर्स्टन ने हंस कर कहा।

"खाक शांति प्रिय है। आप को ज्ञात है कि आधे से अधिक लंडन निवासी उससे विवाह करने को उत्सुक हैं। उसे सब प्रकार की सुख सुविधाएँ हैं। मैंने उसे सद्गृहिणी के योग्य शिक्षा दी है। वह ऐसी लड़की है जिस पर उसके माता पिता को गर्व हो सकता है। पर न जाने क्या सनक उसके दिल में समा गई है कि पता ही नहीं चलता।"

"क्या वह राजनीतिक नेता बनना चाहती है ?"

"वह चाहे तो चित्रकला और संगीत में अपनी योग्यता बढ़ा सकती है। पर वह तो नित्य सेल्सबरी अस्पताल में रोगियों के पास जा पहुँचती है।"

"क्या वहां वह कुछ शिक्षा पाना चाहती है ?"

"ईश्वर जाने। आप पूछिए। वह आ रही है।"

फ्लोरेंस नाइटिंगेल की आयु इस समय लगभग अट्ठाईस बरस की होगी। उसका क़द लम्बा, शरीर सीधा और आकर्षक था। उसके बाल सुनहरी, मुखाकृति कोमल और आँखें बड़ी बड़ी थीं। उसका चेहरा किंचित् लम्बा था—जिस पर एक प्रकार की आभा थी। उसका चौड़ा मस्तक बालों के खास तरीके से बांधने के कारण कुछ ढका हुआ था। उसके नाक, कान उभरे हुए थे। जो उसकी मानसिक उच्चता के द्योतक थे। नाक उसकी सुन्दर और ओंठ पतले और लाल थे। इस उम्र में भी उसके मुख मण्डल पर बच्चों जैसी प्रसन्नता के साथ साथ विचारों की गम्भीरता प्रकट होती थी। उसकी दृढ़—किंचित निकली हुई ठोड़ी और कोमल परंतु समर्थ हाथ थे। उसके साथ एक और स्त्री तथा एक तरुण था। स्त्री का नाम सेलीना ब्रेसब्रिज था। वह कोई बत्तीस वर्ष की रमणी थी।

युवक की आयु भी कोई बत्तीस बरस ही की थी। वह एक हृष्ट-पुष्ट चौड़े मस्तक वाला, सुन्दर और प्रभावशाली तरुण था। उसका नाम हेनरी ट्रेमेन था। वह एक लखपती आदमी था, और इंगलैण्ड के धनवानों में से एक था। हेनरी या उसके पिता ने अपने परिश्रम से धन उपार्जन नहीं किया था। भाग्य ने ही उन्हें करोड़पति बना दिया था। इसे कहते है छप्पर फाड़ कर देना। जब हेनरी अष्टम ने गिरजाघरों की सम्पत्ति हड़पनी शुरू की, तो उस समय बादशाह के कृपापात्र इनके पूर्वजों के हाथ भी एक गहरी जायदाद लग गई। इसके बाद इनके घराने के किसी पुरुष ने टामस क्रामवेल को सहायता दी थी, जिसके पुरस्कार स्वरूप उसे दो विहार मिल गए थे। अब इस खानदान के पीटर ट्रेमेन ने जो रबार्ट वालपोल के समय में था, और पार्लमेंट का सदस्य था, अपनी चातुरी से लंडन का एक स्क्वेयर व एक बाज़ार ही खरीद लिया था। इस प्रकार हेनरी ट्रेमन पोतड़ों का अमीर है। इसलिए वह आरामतलब, ऐयाश और एक हद तक घमण्डी आदमी है। वह कभी अपने आरलिंग्टन रोड़ वाले महल में रहता है और कभी अपने ग्राम निवास में। काम करने की

उसे कुछ आवश्यकता ही नहीं है। श्रीमती नाइटिंगेल इसी युवक से अपनी पुत्री फ्लोरेंस के विवाह के जोड़ तोड लगा रहीं थीं। अब जो उन्होंने फ्लोरेंस को दूसरी स्त्री के गले में बाहें डाले हंसते-बोलते आते और उनके पीछे अनमने से ट्रेमेन को आते देखा तो जल भुन कर खाक हो गईं। उन्होंने लार्ड पामर्स्टन की ओर देख कर कहा—"देखिए, कैसी बेवकूफ लड़की है।"

"क्यों, क्यों ? यह तो बड़ा सुन्दर दृश्य है।" लार्ड पामर्स्टन ने हँस कर कहा।

"खाक सुन्दर है। बेचारे ट्रेमेन ने उससे विवाह का प्रस्ताव करने के अवसर के लिए मुझ से कहा था। इसीलिए मैंने उसे हवाखोरी को उसके साथ भेज दिया। पर न जाने कहाँ से सेलीना ब्रेसब्रिज को उसने साथ घटीस लिया।"

"अरे, तो इसमें ऐसा हर्ज ही क्या है ?"

"हर्ज क्यों नहीं है लार्ड महोदय, उसने तो अपना ब्याह कर लिया, अब क्या मेरी लड़की कुँवारी ही रह जाय ? उसे उनके बीच में दखल देना उचित न था।" उसने जरा तीखी नजर पति पर डाली और कहा—"विलियम, सचमुच तुम्हारी लड़की बेवकूफ है।"

विलियम नाइटिंगेल ने हँस कर कहा—"लेकिन फैनी, वह तुम्हारी भी तो लड़की है।"

इसी समय फ्लोरेंस अपने साथियों सहित आ कर हँसती हुई वहीं बैठ गई। श्रीमती नाइटिंगेल ने कहा—

'कहाँ तक घूम आईं ?'

"हम लोग तो मीलों तक चले गए।"

"शायद सेलीना तेरे साथ नहीं गई।"

"वह तो नहीं चाहती थी माँ, लेकिन मैं ही उसे घसीट ले गई।"

"तो तुम ने सेलीना को थका मारा न।" बुढ़िया नें सेलीना की ग्रोर क्रुद्ध-दृष्टि से देखा। सेलीना ने हँस कर कहा—

"नहीं श्रीमती, मुझे तो घूमना ग्रच्छा लगता है।"

"फिर भी·······मेरा मतलब है कि तुम्हें उचित न था।" उसने रुखाई से कहा। फिर फ्लोरेंस से पूछा—"क्या जंगल की ग्रोर गई थी।"

"नहीं माँ, मैं इन्हें ग्रपने रोगी दिखाने ले गई थी।"

"कैसे रोगी ?" बुढ़िया ने नाक-भौं चढ़ा कर कहा।

लार्ड पामर्स्टन बीच ही में बोल पड़े—"मिस नाइटिंगेल, मैं जानना चाहता हूँ कि वे रोगी कौन-कौन हैं ?"

"एक तो वह दमा की मारी बेचारी मारगेरी ह्विटी, पोस्टमास्टर की बूढ़ी माँ है। बेचारी बड़ी ही दुखी है। जितनी तकलीफ उसे है, उतनी शायद सब रोगियों को मिला कर भी न होगी।"

"ग्रच्छा ग्रौर ?"

"दूसरा वह किसान है, जिसके एक गहरा जख्म हो गया है कि हड्डी तक पहुँच गया है। प्रतिदिन उसकी मरहम-पट्टी करनी पड़ती है।"

बुढ़िया को ये सब बातें ग्रच्छी नहीं लग रही थीं। उसने चिढ़ कर कहा—"फ्लोरेंस, यह कसाई की दुकान नहीं है।"

परन्तु फ्लोरेंस ने माँ की बात पर ध्यान नहीं दिया। उसने कहा—"तीसरा एक बच्चा है जिसकी माँ मर गई है। उसका बाप मेरी पीठ मुड़ते ही उसे गोश्त खिलाने का यत्न करता है। चौथी एक बुढ़िया है। जिसे गठिया हो गई है। इसलिए उसके कंधे की मालिश करनी पड़ती है।"

पुत्री की बात का मजाक उड़ाते हुए श्री नाइटिंगेल ने कहा—"उस बेचारे घसियारे का कुत्ता गढ़े में गिर गया है। इस से उस की टाँग टूट गई है। ग्रच्छा होता उसे गोली मार दी जाती।"

"पिताजी, गोली मारने की क्या जरूरत है। मनुष्य की हड्डी की तरह उसकी हड्डी भी जुड सकती है।"

बुढ़िया ने घूर कर बेटी को देखा, और कहा—"बेटी, तुझे पिता की बात का विरोध नहीं करना चाहिए। तूने ट्रेमेन को अपने रोगी दिखा कर थका मारा होगा। हमें अपने अतिथि का सत्कार करना चाहिए।"

फ्लोरेंस ने उठते हुए कहा—'तो मैं उनके नाश्ते के लिए कुछ लिए आती हूँ।"

ट्रेमेन ने सूखी हँसी हँस कर कहा—"नहीं, नहीं, मिस फ्लोरेंस, आप कष्ट मत कीजिए। मुझे तनिक भी इच्छा नहीं है। लेकिन, एक आवश्यक काम मुझे याद आ गया। अब मैं जाऊँगा।" यह कह कर ट्रेमेन उठ कर सब को प्रणाम कर के चल दिया। बुढ़िया भी गुस्से के मारे वहाँ से उठ कर चली गई।

: ६ :

स्वयंसेविका

"क्रीमिया से दर्दनाक खबरें आ रही हैं। निरपराध लोग कीड़ों-मकोड़ों की भांति मर रहे हैं।"

"क्या किया जाय। युद्ध तो युद्ध है।"

"तो हम लोग वहां घायलों की सेवा के लिए नर्स क्यों नहीं भेज रहे। फ्रांसीसी नर्सें तो वहाँ पहुँच चुकीं।"

"मैं सोचता हूँ कि इससे कुछ लाभ भी होगा?"

"आप सोच रहे हैं माई लार्ड, और वहाँ घायल मर रहे हैं। क्या आप की सरकार इसके लिए कुछ नहीं करना चाहती?"

"सरकार यह काम सर्वसाधारण की इच्छा और दया पर नहीं छोड़ सकती। परन्तु मैं एक ऐसी महिला की तलाश में हूँ जो यह दायित्व

अपने ऊपर ले ले। वह सच्चरित्र, योग्य और अनुभवी हो।"

"क्या मेरी सेवाएँ आप स्वीकार करेंगे?"

"क्या तुम यह त्याग करोगी, मिस नाईटिंगेल।"

"क्या कोई खास बात है महोदय?"

"तुमसे मैं स्थिति छिपाना नहीं चाहता। परन्तु बात यह है कि युद्ध का प्रबन्ध ठीक नहीं है। घायलों की सेवा के अतिरिक्त और बातें भी हैं। क्या तुम यह दायित्व ले सकती हो?"

"खुशी से। परन्तु क्या मंत्रिमण्डल यह पसंद करेगा कि मैं जो कुछ चाहूँ वह करूँ?"

"मैं समझता हूँ। मंत्रिमंडल तुम्हारे कार्यों में बाधक न होगा। तुम्हारा सीधा सम्बन्ध राज्य सचिव से होगा। लार्ड रेगलेन कमाण्डर-इन-चीफ हैं। वह तुम से सहयोग करेंगे।"

"ठीक है। मैं जाऊँगी। लेकिन माई लार्ड, आप मेरी माता से भी पूछेंगे?"

"मैं उनसे बात कर चुका हूँ। मैंने कहा सरकार फ्लोरेंस को अस्पतालों का प्रबन्ध करने क्रीमिया भेजना चाहती है।"

"तो उन्होंने आप को अनुमति दे दी?"

"दे दी है। उन्हें गर्व है।"

"तो मैं तैयार हूँ।"

"धन्यवाद मिस फ्लोरेन्स, तुम इंगलैण्ड की एक बड़ी सेवा में अग्रसर हो रही हो।"

: १० :

स्कुटारी अस्पताल

बड़ी भयानक सर्दी थी। क्रीमिया का संग्राम बड़े जोरों पर था। अस्पताल के एक छोटे से कमरे में एक साधारण मेज पर झुकी हुई

अस्पताल की सिस्टर सेलीना ब्रेसब्रिज कुछ हिसाब-किताब देख रही थी। काम-काज बहुत था। घायलों से भरे हुए दो जहाज आज सुबह ही अस्पताल आए थे। उनके लिए न बिस्तर थे, न कम्बल, न काफी दवा-दारू ही थी। इसी समय सर्जन ने आ कर कहा—"सिस्टर, मिस नाइटिंगेल कहाँ हैं?"

"वह स्टोर-कीपर के पास गई हैं—ताकि आज नए आए हुए घायलों के लिए कुछ कम्बल ले आए। आप को कुछ चाहिए डाक्टर?"

"शर्म की बात है कि मुझे मरहम-पट्टी करने तक का सामान नहीं मिला। इंगलैण्ड में आराम से अंगीठी के आगे बैठे हुए लोग शायद सोचते हैं कि युद्धक्षेत्र में थोड़े से इप्सम-साल्ट के अतिरिक्त और किसी दवा की आवश्यकता ही नहीं है।"

एक कारपोरल कुछ सामान सहेज रहा था। उसने कहा—"क्षमा कीजिए, आप शायद नए ही आए हैं।"

डाक्टर ने गुस्से से कहा—"हाँ, एक महीना हो गया। पर बदइन्तजामी को समझने के लिए यह काफी है।"

'आप शायद सिविलियन हैं?"

"क्या मतलब?"

"जनाब, मेरे कहने का मतलब यह है कि सिविलियन लोगों की नजर कुछ दूसरी ही होती है।"

डाक्टर को गुस्सा आ गया। उसने कारपोरल को डाँट कर कहा—"चुप बदतमीज।" फिर उसने सिस्टर की ओर देख कर कहा—"हमारे पास पट्टियाँ और रुई खत्म हो चुकी है। न घावों को धोने की दवा ही हमारे पास है। अब ये जो हजारों घायल आए पड़े हैं, इनके पास थैले भी नहीं हैं। न उनके पास चम्मच हैं, न काँटे, न छुरियाँ। न कमीज न जुराबें। बस जो गंदे चिथड़े वे पहने हैं, वही हैं। उनके घाव सड़ रहे हैं और उन सब को पेचिश हो गई है। आप कुछ कमीजें दे सकती हैं?"

सिस्टर ने नजर तिरछी करके कारपोरल की ओर देख कर कहा—"कुल कितनी कमीजें हैं ?"

"ठहरिए, गिनने में गड़बड़ हो रही है। शायद दो सौ हैं। बण्डलों पर गलत नम्बर पड़े हैं।"

"भाड़ में जाय तुम्हारा गिनना। लाओ, पचास मुझे दे दो।"

"तो आप एक रसीद लिख दीजिए।" श्रीमती ब्रेसब्रिज ने कहा—"क्योंकि यह हमारे पास सबूत रहे कि आप को स्टोर से नहीं मिलीं।"

"स्टोर से ? वहाँ से कभी किसी को कुछ मिला भी है ? वह बदमाश स्टोर-कीपर शायद बाहवाही लूटने को सब चीजें वापस इंगलैण्ड भेज देता है।"

"आप को कुछ पट्टियां और रुई भी तो चाहिए डाक्टर।"

"बड़ी कृपा है सिस्टर, मुझे इन चीजों की सख्त जरूरत है—घायलों की दशा बहुत खराब है।"

"तो लीजिए, कुछ पैकेट हैं, लेते जाइए।"

"वाह, मैं अभी एक आदमी भेजता हूँ वह ले जायगा।"

डाक्टर के चले जाने पर कारपोरल ने कहा—"सिस्टर, ये तुर्क साले बड़े बेईमान होते हैं। माल हमेशा कम और खराब भेजते हैं। यह देखिए इस बण्डल में पांच कम हैं और फलालेन की कमीजों में सूती भी घुसेड़ी हुई हैं। असल बात तो यह है श्रीमती जी, कि यहाँ का मेडीकल स्टोर युद्ध विभाग के ताबे है। उन्हें बन्दूकें, बारूद, अण्डों और शराब के अलावा और कुछ चाहिए ही नहीं।"

इसी समय एक नर्स ने आ कर कहा—"कुछ अरारोट की सख्त जरूरत है, लेकिन स्टोर-कीपर ने साफ जवाब दे दिया कि है ही नहीं।"

"क्या कुछ अण्डों से काम नहीं चलेगा ?"

जी, उन घायलों में कुछ इतने कमजोर हैं कि अण्डा हज्म नहीं कर सकते।"

श्रीमती सेलीना ने कारपोरल से कहा—"जीन्स, तुम जरा देखो—

स्टोर में अरारोट है भी या नहीं। मैं ने वहाँ से कल ६० पौंड लाइम क्लोराइड ढूंढ निकाला, जब कि वह कसम खा रहा था—कि रत्ती भर भी नहीं है।"

"अरारोट है क्यों नहीं? वहुत है। टर्किश कस्टम-हाउस में भी है। पर स्टोर-कीपर उन्हें खोल नहीं सकता—जब तक बोर्ड उन्हें सम्हाल न ले।"

"क्या ये लोग आदमी की जान की रत्ती भर भी परवाह नहीं करते?"

"खूब कहा आप ने। ये टर्किश कस्टम वाले तो जो माल पड़ा है समुद्र में डुबो देना पसन्द करेंगे—पर देंगे नहीं।"

इस समय मिस फ्लोरेन्स नाइटिंगेल वहाँ आ गईं। उन्होंने कहा—"आप लोगों को कुछ दिक्कत है?"

"जी हाँ, हम इस स्टोर-कीपर से परेशान हैं। वहाँ से हर चीज का जवाब इन्कार में मिलता है। इधर हजारों घायलों की जान का प्रश्न है।"

"उसका नाम बम्फोर्ड ही है न?"

"जी हाँ, वही स्टोर-कीपर है।"

"तो वह बाहर बैठे हैं। जरा बुलवा लीजिए।"

कारपोरल बम्फोर्ड को बुला लाया। मोटा ठिगना सा चंचल आदमी। आते ही उसने कहा—"मिस नाइटिंगेल, आप क्या चाहती हैं?"

"मैं तुम से यह पूछती हूँ कि क्या तुम जानते हो कि मैंने कितना सामान इस अस्पताल में अपने पास से दिया है। ग्यारह हज़ार कमीजें, साठ हज़ार से ऊपर छुरी-काँटे और दो हजार टर्किश गाउन। लेकिन वे सब चीजें मरीजों में बंट चुकी है।"

"तो मिस, मैं क्या करूँ? हम भी तो मुसीबत में हैं। आप शायद भूल गईं कि एक जहाज तूफान के कारण डूब चुका है।"

"उस जहाज के साथ क्या समूचे ब्रिटेन की धन दौलत भी डूब गई? फिर इस बात को तो कई सप्ताह बीत चुके। क्या तुम चाहते हो कि

मरीज हाथ से तोड़ कर रोटियां खाएँ और टोपियों में भर कर पानी पिएँ।"

"तो मिस नाइटिंगेल, यह तो युद्ध है।"

"इसी से ब्रिटिश फौज की उसके कमाण्डर के सामने यह दुर्दशा हो रही है। अयोग्यता, गन्दगी, बीमारी, यही इंगलैण्ड के रूस की अपेक्षा बड़े शत्रु हैं।"

"मुझे इस बात से कोई सरोकार नहीं।"

"लो यह लिस्ट है, ये सब चीजें मुझे अभी चाहिएँ।"

"बड़ी मुश्किल है। स्त्रियाँ सदा हुक्म चलाती हैं। युद्ध विभाग के नियम कायदे वे नहीं जानतीं।"

"बको मत। हमारे भी कुछ नियम हैं।"

"क्षमा कीजिए श्रीमती जी, सेना विभाग के भी कुछ नियम हैं।"

"तो तुम बुद्धि पर नियम को महत्त्व देते हो?"

"मैं तो हुक्म बजाना जानता हूँ।"

"तो बुद्धि से काम लो, दो जहाज खतरनाक जख्मी लोगों से भरे अभी आए हैं। हमें तुरन्त इन वस्तुओं की आवश्यकता है जो इस फिहरिस्त में दर्ज हैं।"

"अफसोस है, कि ये चीजें नहीं मिल सकतीं।"

"मैं जानती हूँ कि तुम्हारे स्टोर में इन चीजों की कई गांठें पड़ी हैं।"

"पर अभी वे बोर्ड ने पास नहीं की हैं। शायद अगले हफ्ते में बोर्ड की बैठक होगी।"

"तब तक तो आधे से अधिक रोगी मर जाएँगे। नहीं, नहीं तुम्हें वे चीजें देनी ही होंगी।"

"वे नहीं मिल सकतीं।"

"मैं आज्ञा देती हूँ।"

"श्रीमती जी, मैं आपके अधिकार में नहीं हूँ।"

"तब तो मुझे स्टोर कीपर को मंसूख करना होगा।"

'खैर देखा जायगा।"

"मुझे एक घण्टे के भीतर ये चीजें चाहिएँ। यदि मेरी इस आज्ञा का पालन नहीं हुआ, तो लार्ड पामस्टन तुम्हें मुअत्तिल कर देंगे। लो यह तार मैं उन्हें भेज रही हूँ।"

"तो इस लिस्ट में कुछ कमी कर दीजिए।"

"कमी नहीं की जा सकती। सब चीजें एक घण्टे में मिलनी चाहिए।"

"अच्छा तो मैं वे सब चीजें भिजवा रहा हूँ।" बम्फोर्ड चला गया। परंतु वह सीधा अस्पतालों के इंसपैक्टर जनरल डा० क्यूमिंग के पास पहुँचा, और इस बात की रिपोर्ट इंसपैक्टर जनरल को दी। डा० क्यूमिंग लम्बे क़द का एक कठोर आकृति का आदमी था, जो फौजी पोशाक में और भी कठोर दीख रहा था। उसने आकर नाइटिंगेल से कहा—"मिस नाइटिंगेल—मैंने सुना है आपने स्टोर कीपर को बोर्ड की अनुमति के बिना ही गांठें खोलने का हुक्म दिया है।"

"जी हाँ, अस्पताल में उन वस्तुओं की तुरंत आवश्यकता है।"

"लेकिन मैं आप से सहमत नहीं हूँ। मैं बोर्ड का एक सदस्य और अस्पतालों का इंसपैक्टर जनरल हूँ, और आप का विरोध करता हूँ।"

बम्फोर्ड उसके पीछे खड़ा मुस्करा रहा था। उसने कहा—"मैडम, मैंने तो पहले ही अपनी विवशता प्रकट कर दी थी।"

फ्लोरेंस ने कहा—"सज्जनो, कृपया मेरी उपस्थिति में आप शोर मत कीजिए।"

"लेकिन मैं कहता हूँ कि यह आपकी अनधिकार चेष्टा है। आप स्टोर-कीपर को हुक्म नहीं दे सकतीं।"

"आप रोगियों और घायलों की अपेक्षा कागजी कार्यवाही को अधिक महत्व दे रहे हैं। और घायलों की अच्छी तरह देखरेख करके उनको

जीवित रखने की अपेक्षा कायदे कानून की रक्षा करके मरने देना आप ठीक समझते हैं।"

"नहीं-नहीं।"

"तो शायद आप समझते हैं कि कायदे के मुताबिक उन्हें मरना नहीं चाहिए।"

"ओफ, पब्लिक सर्विस में स्त्रियों को लेने से यही झंझट उठ खड़ा होता है, कि जहाँ उन्हें कार्य विधान समझाने का यत्न किया जाता है वहीं वे इधर उधर की बातें ले बैठती हैं।"

"मैं आप से विवाद करना पसन्द नहीं करती। मिस्टर बम्फोर्ड, क्या वे चीजें आ गईं ?"

"जी, अभी नहीं।"

"तो यह तार पंद्रह मिनट के अंदर ही लार्ड पामर्स्टन को भेज दिया जायगा और यहां के आदमी बर्खास्त हो गए तो मेरा दोष नहीं है।"

बम्फोर्ड ने एक बार दबी नजर से डाक्टर क्यूमिंग की ओर देखा, फिर कहा—"मैडम, आप क्रुद्ध मत होइए, वे सब चीजें आ रही हैं।"

वह इतना कह कर तेजी से चलता बना। इसी समय सेलीना बेसब्रिज ने घबराई हुई आ कर कहा—"डा० सदरलैण्ड आए हैं।"

"तो मेरी प्यारी, उन्हें यहीं ले आओ। डाक्टर क्यूमिंग भी उन से मिल कर ही जाएँगे।"

डाक्टर सदरलैण्ड ने सहकारियों सहित भीतर आते ही पूछा—

"मिस नाइटिंगेल ?"

"जी मैं हीं हूं।"

"मैं सेनेटरी कमीशन का सभापति हूँ। डाक्टर गार्विन और मि० एलिन्सन मेरे सहकारी हैं, लेकिन यह तो बड़ा ही दुर्गन्धित स्थान है।"

"ये स्कुटारी के अस्पतालों के इंसपैक्टर जनरल डाक्टर क्यूमिंग।"

"आप से मिलकर प्रसन्नता हुई डाक्टर क्यूमिंग, पर अस्पताल के लिए आप ने यह स्थान क्यों चुना। यह तो क़ब्रिस्तान के उपयुक्त स्थान है।"

"लाचारी है। कोई दूसरी जगह थी ही नहीं।"

"इस से तो तम्बू और झोंपड़ियाँ ही ठीक रहतीं। मेरा ख्याल है। आप को गंदे पानी की नालियाँ नए सिरे से बनवानी होंगी।"

"इस के लिए मजदूर कहाँ मिलेंगे?"

"यह बताना मेरा काम नहीं है। पर यह काम अवश्य ही होना चाहिए।"

"यह किस का हुक्म है?"

"मेरा, लार्ड पामर्स्टन से मुझे पूर्ण अधिकार प्राप्त है।"

फ्लोरेन्स अब तक चुपचाप खड़ी मुस्करा रही थी, अब उसने कहा—"क्या आप सब वार्डों का निरीक्षण करेंगे? मैं आप के साथ एक नर्स किए देती हूँ। अगर आप चाहें तो डाक्टर क्यूमिंग को अपने साथ ले सकते हैं।"

"ठीक है।"

"क्या आप जाने से प्रथम यहाँ आने का कष्ट करेंगे? मैं आप की राय जानना चाहती थी। आप ठहरे कहाँ हैं?"

"अच्छा, मैं लौट कर आता हूँ। आप को सब बता दूंगा। पर अभी हमारे ठहरने का कोई ठीक स्थान नहीं। हम सोचते थे कि कुस्तुन्तुनिया के किसी होटल में ठहरें—पर अब देखता हूँ कि ठीक तौर पर देख-रेख रखने के लिए मुझे यहीं कहीं ठहरना चाहिए।"

डाक्टर क्यूमिंग को ले कर डाक्टर सदरलैण्ड चले गए। इस समय सेलीना ने आ कर कहा—"फ्लोरेन्स, तुम ने अभी तक कुछ खाया है या नहीं। "सुबह नाश्ता किया था—सिर्फ एक अण्डा, थोड़ी सी डबल रोटी और मक्खन।"

"समय कहाँ है। अभी तो मुझे बहुत सी आवश्यक चिट्ठियाँ लिखनी हैं।"

"मैं चाय और बिस्कुट ला रही हूँ। मेरी प्यारी फ्लोरेन्स, ईश्वर के

लिए खा कर पाँच-सात मिनट आराम कर लो। नहीं तो अपने से हाथ धो बैठोगी।"

"सेलीना, मुझे लेक्चर दे कर तंग न करो।"

"मेरी प्यारी, तुम बीमार पड़ जाओगी।"

"चिल्लाओ मत। यह बताओ हैजे के रोगियों के लिए क्या इन्तजाम किया। गर्म पानी और कुछ कम्बलों की तो तुरन्त आवश्यकता है।"

"सब ठीक हो गया है। तुम चाय पी लो—मैं अभी आई।"

इतना कह कर सेलीना चली गई। एक कारपोरल ने आकर कहा—

"मेडम, सब से पीछे आने वाले मरीजों को ले कर जहाज आ गया है।"

"ओहो, शाम हो रही है अब तो--जब तक वे अस्पताल में पहुँचेंगे, तब तक तो अन्धेरा हो जायगा। मिसेज विलियम, जरा यहाँ आओ।"

एक दुबली-पतली सी औरत ने आ कर कहा--"कहिए क्या काम है।"

"क्या घायल आ गए ?"

"वे फाटक तक आ पहुँचे हैं। बड़ी खराब दशा है सब की। उन के शरीर पर कपड़े तक नहीं हैं। हैजे के भी मरीज हैं। कुछ लोग तो एक दम अंग-भंग हो गए हैं। ओफ, इस कदर सर्दी है।'

फ्लोरेन्स एकदम अधीर हो कर उठ खड़ी हुई। उस ने कहा—"गर्म पानी तो काफी तैयार है न, शायद तुरन्त आपरेशन की आवश्यकता होगी। अच्छा, मैं एक-एक को देखती हूँ।" वह वार्ड की ओर बढ़ी। सेलीना चाय ला रही थी। उस ने पुकार कर कहा--"फ्लोरेन्स, तुम्हारी चाय।"

"अब इस वक्त मुझे फुर्सत नहीं है।" उस ने चलते-चलते कहा। लेकिन सेलीना ने लपक कर राह रोक ली। उसने कहा—"मेरी प्यारी फ्लोरेन्स, एक घूंट·······।'

फ्लोरेन्स ने प्याला उठा लिया। एक घूंट पी कर कहा--"इस में

तुम ने ब्राण्डी मिला रखी है।"

"तुम्हारे लिए उस की आवश्यकता है।"

"परन्तु वह तो मरीजों के लिए है। तुम्हें ऐसी वस्तु लापरवाही से खर्च नहीं करनी चाहिए। लो शेष तुम पी लो।" उस ने प्याला सेलीना के हाथ में थमा दिया—और तेजी से बीमारों के वार्ड की ओर चल दी।

: ११ :

कुस्तुन्तुनिया में

कुस्तुन्तुनिया के प्रसिद्ध मिसिरी होटल में दो अजनबी मेहमान लगभग एक ही समय में आकर एक-दूसरे के बिल्कुल निकट के कमरों में ठहरे। इन में एक व्यक्ति अंग्रेज था, वह एक लम्बे कद का अधेड़ उम्र का आदमी था। वह बहुत सफाई से कपड़े-लत्ते पहनता था, तथा नास सूंघने का उसे व्यसन था। वह बहुत कम लोगों से मिलता था और बहुत कम अपने कमरे से बाहर निकलता था। वह एक गम्भीर प्रकृति का व्यक्ति था। यह प्रसिद्ध अंग्रेज पत्रकार विलियम हावर्ड रसेल था, जो क्रीमिया की लड़ाई के समाचार भेजने के लिए यहाँ आया था।

दूसरा व्यक्ति एक भारतीय था। उसकी वेश-भूषा बड़ी विचित्र थी। वह सुन्दर-छरहरा और नवयुवक था। वह सदा भारतीय वेश पहनता और खूब सजधज कर बाहर निकलता था। वह उंगलियों में अंगूठियाँ और गले में एक कीमती पन्ने का हार पहने रहता था। सब लोग उसे भारतीय नवाब के नाम से जानते थे। पूर्वोक्त अंग्रेज मेहमान से इस की प्रकृति सर्वथा भिन्न थी। यह मिलनसार, हंसमुख आदमी था—और प्रायः दिन भर और बहुत रात तक घूमता रहता था। वह फ्रेंच और अंग्रेजी अच्छी तरह बोल लेता था। यह आदमी हमारा पूर्व परिचित धोंडूपन्त नाना साहब का दूत अजीमुल्ला था।

एक दिन दोनों अजनबियों में बातचीत हुई। साधारण मौसम की

चर्चा होने के बाद दोनों अपने-अपने मतलब की बातें करने लगे।

"तो आप लंडन से आ रहे हैं।"

"जी हाँ, मैं भारत के एक बड़े महाराज के दावे का—जो ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के खिलाफ था—असफल नतीजा ले कर लौट रहा हूं।"

"लेकिन आप के चेहरे से तो नहीं मालूम होता कि आप असफल हो कर लौटे हैं।"

"जी, इस की वजह यह है कि मैं उस मसाले का बना हूँ कि असफलता का मुझ पर असर नहीं होता।"

"यह तो आप एक यूरोपियन की तरह बोल रहे हैं।"

"माफ कीजिए, यूरोपियन की तरह तो आप बोल रहे हैं।"

"आप का मतलब क्या है ?"

"मेरा मतलब है कि आप एक भारतवासी का अपमान कर रहे हैं।"

"ओह, मैं दुखित हूँ, किन्तु मेरा ऐसा अभिप्राय न था। मैं कभी भारतवर्ष नहीं गया—पर मैंने सुना है कि वहाँ के लोग बहुत बोदे और निराश व्यक्ति हैं।"

"यह आप ने उन्हीं लोगों की जबानी सुना होगा, जिन के विरुद्ध मेरा मुकदमा था।"

"आप का मतलब ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के आदमियों से है।"

"जी हाँ।"

"खैर, तो मैं एक जीता-जागता भारतीय यहाँ आप की सेवा में उपस्थित हूँ।"

"आप से मिल कर मैं खुश हूँ। लेकिन आप यहाँ अपने रास्ते से दूर कुस्तुन्तुनिया में कैसे आए हैं।"

"मैं जरा महान् रुस्तमों के जौहर देखना चाहता हूँ—मैं जानना चाहता हूँ कि वे किस तरह अंग्रेजों से लोहा लेते हैं।"

"तो आप ने कुछ देखा ?"

"जी हाँ, हालांकि रूस की हालत अच्छी नहीं है, पर वह अंग्रेजी और

फ्रैंच सेनाओं की सम्मिलित शक्ति का पूरी तरह मुकाबिला कर रहा है। मैंने दूर से रूसी तोपखाने को काम करते हुए देखा है।"

"आप क्या समझते हैं कि अंग्रेज हार जाएँगे ?"

"आप भी तो अंग्रेज हैं। फिर आप 'हम' शब्द क्यों नहीं इस्तेमाल करते ?"

"ओह, मैं ऐसी तुच्छ बातों की परवाह नहीं करता। न मैं अंग्रेजों की बुराइयों का समर्थक हूँ।"

"आप की उदारता प्रशंसनीय है। परन्तु क्या यह जिज्ञासा उत्पन्न करने वाली बात नहीं है कि क्रीमिया में जो कुछ हो रहा है, उसका पूर्वीय समस्या पर क्या प्रभाव पड़ेगा ?"

"अवश्य, परन्तु आपका क्या ख्याल है ?"

अजीमुल्ला ने हँस कर कहा—"आप यदि अंग्रेज की तरह बात करते तो मैं आप को अपने जवाब से खुश कर देता।"

"आप क्या कहते ?"

"मैं कहता—कि जीत तो अंग्रेजों की ही होगी।"

'पर अब आप क्या कहते हैं ?"

"इसी वाक्य में एक वाक्य यह और जोड़ देना चाहता हूँ कि जीत तो अंग्रेजों की होगी, इसलिए कि रूस पिछड़ा हुआ देश है—परन्तु इस युद्ध में अंग्रेज जाति नंगी हो गई है, और उस की सारी शान फीकी पड़ रही है।"

"आप ठीक कहते हैं मेरे दोस्त। मैं आप की बातों की कद्र करता हूँ। वास्तव में हमारी सेनाएँ अत्यन्त हतोत्साह और दुर्दशा-ग्रस्त हैं।"

"फिर भी उस की दशा फ्रांसीसी सेना से अच्छी है।"

"आप क्या सीधे इंगलैण्ड से चले आ रहे हैं ?"

"जी नहीं, मैं फ्रांस और इटली होते हुए आ रहा हूँ। माल्टा में मैंने जब क्रीमिया युद्ध की बात सुनी तो मेरी इच्छा हुई कि मैं अपनी आँखों से यह युद्ध देखूं।"

"क्या आप इटली में गेरीवाल्डी से भी मिले ?"

"जी हाँ, मैं तीनों से मिला। गेरीवाल्डी, मेजिनी और काबूर से।"

"आप ने उनके कार्यों को पसंद किया ?"

"बहुत कुछ। यद्यपि तीनों के काम के ढंग एक-दूसरे से मेल नहीं खाते—पर उनसे इटली का भला हो रहा है।"

"मेजिनी और गेरीवाल्डी में आप ने क्या अंतर देखा ?"

"एक विचारक और आदर्शवादी है। दूसरा महज सिपाही, किंतु इटली की एकता और आजादी की लगन दोनों को है।

"और काबूर ?"

"इस बड़े खेल का वह तीसरा खिलाड़ी है। वह विक्टर एम्मेनुएल को बादशाह बनाना चाहता है, और इसके लिए छोटे-छोटे सरदारों को दबाने के लिए वह मेजिनी और गेरीवाल्डी से लाभ उठा रहा है।"

"मेरा ख्याल है मेरे दोस्त, आप अपने देश में एक जबंदस्त युद्ध शुरू करने की मुकम्मिल योजना जेब में रख कर यूरोप से लौट रहे हैं।"

"आप एक प्रसिद्ध पत्र से सम्बन्ध रखते हैं। मुझे आदत नहीं कि अपने देश की राजनीति के सम्ब्रन्ध में आप से कुछ कहूँ। परन्तु आप यह तो जान ही गए हैं कि मैं निराश नहीं हूँ।"

"आप जैसे व्यक्ति निराश नहीं हुआ करते मेरे दोस्त। मैं तो सत्य ही कहूँगा—कि इंगलैण्ड में यदि कभी आप को एक मित्र की आवश्यकता हो तो मेरी सेवाओं से लाभ उठाना न भूल जाना।"

"मैं याद रखूंगा मेरे दोस्त।"

"तो अब आप कब तक यहाँ हैं ?"

"कल मैं सुबह युद्धक्षेत्र की ओर जा रहा हूँ। वहाँ से लौटते ही मैं चल दूंगा।"

"बेहतर हो-आप एक बार स्कुटारी अस्पताल को भी देख लें। जहाँ फ्लोरेंस नाइटिंगेल रोगियों की सेवा कर रही हैं। मैं भी सुबह वहाँ जा रहा हूँ। आप को आपत्ति न हो तो मेरे साथ ही चलिए।"

"बड़ी खुशी से। तो दोस्त, कल सुबह तक के लिए विदा।"

"विदा मेरे दोस्त। गुडनाइट।"

"गुडनाइट।"

: १२ :

अजनबी दर्शक

ऐसे ही वे दिन थे जब युद्ध होते थे। लोग अंधाधुंध घायल होते थे। और युद्ध में मारे जाने की अपेक्षा दस गुने आदमी अस्पतालों में सड़-सड़ कर तड़प-तड़प कर मर जाते थे। जिन्हें कुत्तों की भांति बड़े-बड़े गढ़ों में डाल कर मिट्टी से गढ़े भर दिए जाते थे। जितने आदमी मर जाते थे, अस्पताल वालों को चैन मिलता था। उन्हें सांस लेने की फुर्सत मिलती थी। न सफाई का ठीक प्रबन्ध था, न चीर-फाड़ का। डाक्टर बहुत कम थे--अधिकांश में डाक्टर मशीन के पुर्जे और हृदयहीन होते थे। दवाइयाँ काफी युद्धक्षेत्र में नहीं पहुँच पाती थीं। आजकल की भांति उत्तम दवाइयों का तब तक आविष्कार नहीं हुआ था। और सेना सुश्रुषा की तो कोई बात ही न थी। इसी समय फ्लोरेंस नाइटिंगेल ने युद्धक्षेत्र में अपनी संगिनी कुछ स्त्रियों को ले कर रोगी सेवा का बीड़ा उठाया था। यह एक अनहोनी सी बात थी। तब तक इंगलैण्ड में और यूरोप में सम्भ्रांत कुल की स्त्रियाँ केवल विलास का जीवन बिताया करती थीं। अपने हाथ से काम करना उनकी शान के विरुद्ध बात थी। फिर युद्ध-क्षेत्र में आ कर घायलों की सेवा सुश्रुषा करना तो दूर की चीज थी। परन्तु यह कुमारी अंग्रेज बालिका इस प्रकार अपने से, अपने साथियों से और अधिकारियों से लड़ रही थीं। पीड़ित, असहाय, भाग्यहीन घायलों, मुमूर्षुओं और रोगियों के लिए। जिन पर युद्ध ने, जिससे उनका कोई वास्ता न था, दुर्भाग्य और मौत का फन्दा डाल दिया था।

समुद्र तट से अस्पताल तक मरे, अधमरे और रोगी घायलों की

क़तार लगी हुई थी। न इतने स्ट्रेचर थे, न परिचारक। बहुत से घायल और रोगी खुली भूमि में पड़े कराह रहे थे। कुछ को झाड़ियों का आश्रय मिल गया था। बहुतों को पेचिश और हैजा हो गया था और वे उसी असहाय बेसुध अवस्था में पड़े मलमूत्र त्याग रहे थे। उन्हें सम्हालने वाला कोई न था। बहुत लोग, पानी-पानी चिल्लाते दम तोड़ रहे थे। बहुत हिम्मत कर के जल्दी अस्पताल में पहुँचने के लिए लड़खड़ाते हुए उठ खड़े होते थे—परन्तु वहीं गिर कर धूल चाट रहे थे। कारपोरल स्ट्रेचर पर घायलों को उनके बीच से ले जा रहे थे। उन्हें देख कर बहुत से मरीज चीख रहे हैं। अजी, हमारी भी सुध लो। बहुतों के घाव सड़ गए थे। बहुतों ने घावों पर घास-फूंस लपेट रखी थी। बहुतों के पैरों में जूते तक न थे। बहुतों के कपड़े चिथड़े हो गए थे। और वे सर्दी में ठिठुर रहे थे।

एक रोगी की टाँग में गोली लगी थी। गोली तीन दिन से निकाली नहीं गई थी। टाँग बुरी तरह फूल गई थी, शायद टाँग काटनी पड़े। पर रोगी जीवट का था। वह घिसट कर एक झाड़ी का सहारा ले कर जरा सीधा हो कर बैठ गया। जेब से पानी की बोतल निकाल मुँह से लगा रहा था कि दूसरे एक घायल ने घिसट कर उसके हाथ से बोतल छीन कर अपने मुँह से लगा ली। रोगी ने हँस कर कहा—

"तुम्हीं पी लो दोस्त, तुम्हीं पी लो।" और वह मूर्च्छित हो कर लुढ़क गया।

एक रोगी जाड़े में ठिठुर रहा था। एक कुत्ता न जाने कैसे उससे हिल गया था। वह उसके शरीर से लिपट कर अपने को गर्म कर रहा था।

दो अजनबी आदमी इन मरतों-जीतों के बीच चारों ओर के दृश्यों को देखते चले आ रहे थे। इनमें एक थे श्री विलियम हावर्ड रसेल और दूसरे थे भारतीय क्रांति के अग्रदूत अजीमुल्ला खां।

अजीमुल्ला खां कह रहे थे—"यह तो एकदम असह्य है। नर्क से भी

बदतर है। कोई मुल्क अपने घायल वीरों की ऐसी दुर्दशा कैसे सहन कर सकता है।"

"लेकिन महाशय, किया भी क्या जाय। इस युग में युद्ध करने भी अनिवार्य हैं और वीरों का इस प्रकार कुत्ते की मौत मरना भी अनिवार्य है।"

"लेकिन यहाँ की दुर्दशा इस दर्जे तक पहुँच चुकी है, यह तो पत्रों में छपता नहीं। आप एक प्रतिष्ठित पत्रकार हैं। ये सब बातें आप क्यों जनता की आँखों से छिपा रहे हैं।"

"सिर्फ इतना ही नहीं, जो आप आँखों से देख रहे हैं, और भी बातें हैं जिन्हें मैं जानता हूँ।"

"वे बातें क्या हैं ?"

"अव्यवस्था, अकर्मण्यता, आलस्य और लुचपन।"

"ओफ, तो आप जानबूझ कर उन्हें जनता की आँखों से ओझल रख रहे हैं। आप जनता के सामने सब कुछ पहुँचाइए।"

"मैं केवल एक व्यक्ति का आदर करता हूँ। और उसी के कारण हर बार मैं रुक जाता हूँ।"

"वह व्यक्ति कौन है ?"

"फ्लोरेंस नाइटिंगेल, जो यहाँ ईश्वरीय दूत की भाँति सेवा-कार्य में रत है।"

"क्या उनकी सेवाएँ कुछ महत्त्वपूर्ण हैं ?"

"ओह महाशय, वह एक ईश्वरीय वरदान के रूप में यहाँ उपस्थित हैं।"

"क्या मैं उनके दर्शन कर सकता हूँ।"

"अवश्य ! उनके दर्शन किए बिना आप का यहाँ तक आना ही निरर्थक है।"

"मैं सारे यूरोप में घूमा हूँ। इंगलैण्ड में भी रहा हूँ। मैं भारतीय हूँ। भारत में अंग्रेज-जिस दम्भ और अहंमन्यता का परिचय देते हैं, यहाँ तो

देखता हूँ उसका एकदम दिवाला ही निकल चुका है।"

"परन्तु यहाँ जो युद्धक्षेत्र में गल्तियाँ हो रही हैं, और जिनकी बदौलत ब्रिटिश सैनिकों को घोर यन्त्रणाएँ सहन करनी पड़ रही हैं, वे भविष्य में फिर न दुहराई जाय। इसके लिए मिस नाइटिंगेल जीजान से जुटी हैं। यही उनके जीवन का उद्देश्य है। हमारे महामान्य प्रधान मंत्री लार्ड पामर्स्टन, जो इस क़दर दबंग है कि हर मेजेस्टी की भी परवाह नहीं करते, फ्लोरेंस की प्रत्येक आज्ञा का आदर करते हैं।"

"मैं अवश्य ही उनका दर्शन करके अपने इन क्षणों को धन्य करूँगा।"

"आइए, मैं समझता हूँ वह इस समय भी अपने काम में व्यस्त होंगी।"

दोनों व्यक्ति आगे बढ़ते चले गए। और वे उस दालान तक चले आए जहाँ फ्लोरेन्स नाइटिंगेल व्यस्त भाव से नर्सों और दूसरे आदमियों को समझा रही थीं। रसेल को देखते ही उन्होंने कहा—"आह रसेल, खूब आए, इस समय सैंकड़ों आदमी मौत के मुख में हैं। तुम ने इन जहाजों को देखा—जो घायलों को ला रहे हैं। उन की दशा ठीक करने का कुछ प्रयत्न करो। इतने गंदे, घृणित और दुर्गन्धपूर्ण हैं वे—कि तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। ये सब के सब घायल खून से—मल-मूत्र से लथपथ हैं। इन के सब घाव विषाक्त हो चुके हैं। डैक पर पड़े रहने के कारण चमड़ी छिल गई है। सोचो तो, घायल व्यक्ति इतना कष्ट सह सकते हैं?"

"मिस नाइटिंगेल, क्या इस समय मैं आप की कुछ सहायता कर सकता हूँ?"

"खुशी से, बेवक्त हो गया है। लेकिन तुम जल्दी करोगे तो काम बन जायगा।"

"आप आज्ञा कीजिए।"

"तो आप बाजार जा कर, जिस कदर भी अरारोट मिल सके खरीद लाइए।"

"ग्रौर कुछ ?"

"कुछ कमीजें, मोमबत्तियाँ, साबुन, सूई-डोरा ।"

"बस या ग्रौर कुछ ?"

"जूते भी तलाश करना । वे गर्म होने चाहिएँ । कोई एक हजार जोड़े ।"

"बस ?"

"बस, ग्रभी इतना ही ।"

ग्रजीमुल्ला ने ग्रागे बढ़ कर कहा—"मैं एक भारतीय विदेशी-पर्यटक हूँ—कृपया मेरा ग्रभिनन्दन स्वीकार कीजिए ।"

"ग्राप की बड़ी कृपा है ।"

"ग्राप का एक-एक क्षरण बहुमूल्य है । मैं उसे नष्ट नहीं करूँगा । केवल एक ग्रनुग्रह की याचना करूँगा ।"

"ग्राज्ञा कीजिए ।"

"ग्राप ने ग्रभी जिन-जिन चीजों को लाने की फर्माइश मेरे मित्र से की है, उस में मुझे भी सम्मिलित होने की प्रतिष्ठा दीजिए ।"

"बड़ी खुशी से ग्राप उन की सहायता कर सकते हैं ।"

"ग्रौर उन सब वस्तुग्रों का मूल्य मुझे ही चुकाने की ग्राज्ञा दीजिए, जो वह ग्रभी खरीद कर लाएँ ।"

"ग्राप बड़े उदार हैं मेरे भारतीय मित्र, ग्राप का यह ग्रनुदान मैं स्वीकार करती हूँ । हमें उस की ग्रावश्यकता है, ग्रौर इस के लिए मैं ग्राप के साथ ही भारत की भी कृतज्ञ हूँ ।"

"मैं कृतार्थ हुग्रा । ग्रब ग्राप का ग्रधिक समय नष्ट नहीं करूँगा ।"

दोनों चले गए । क्षरण भर के लिए फ्लोरेन्स के हाथों की गति रुक गई, ग्रौर वह गीली ग्राँखों से ग्रजीमुल्ला की ग्रोर देखती रही । फिर उस ने ठण्डी साँस ली ग्रौर काम पर झुक गई ।

: १३ :

तीन में न तेरह में

मनुष्य एक समझदार प्राणी है। इसलिए परिस्थितियाँ उस के जीवन में क्रान्ति लाती हैं। परन्तु वह क्रान्ति से एकाएक आहत नहीं होता। पुरानी प्रवृत्तियाँ संघर्ष करती रहती हैं और वह निकट से उन्हें देखता तथा अपने को उनके अनुकूल बनाता रहता है। फ्रांस में जो प्रथम राज्य क्रान्ति हुई, उस ने लोकतन्त्रवाद और राष्ट्रीयता को जन्म दिया। इसके बाद सन् १८३० में दुबारा क्रान्ति हुई—जो उसे राजसत्ता पर जनता का अंकुश रखने की भावना दे गई। इस के बाद सन् १८४८ की क्रान्ति से—जो उसे राजनीतिक दृष्टि प्राप्त हुई, उसने उस के प्रभाव को केवल फ्रांस तक ही सीमित नहीं रहने दिया। इस का एक कारण यह भी था, कि ४८ में सारे ही यूरोप में क्रान्ति की फुलझड़ियाँ छूट रही थीं। सन् १८३० में फ्रांस की जनता ने राजा चार्ल्स दशम को पदच्युत करके लुई फिलिप को राजा बनाया। परन्तु अब फ़्रांस राजाओं के लिए उर्वरा भूमि नहीं रह गई थी। अतः ४८ में लुई को सिंहासन पर से धकेल दिया गया। बड़ी बात हुई कि उसका सिर नहीं काटा गया। लुई फिलिप इंगलैण्ड भाग गया। फ्रांस में साम्यवादी व्यवस्था स्थापित हो गई। मजदूरों की राष्ट्रीय सेना संगठित की गई। परन्तु यह व्यवस्था नहीं चली और इस के बाद राष्ट्रीय सरकार का दूसरा प्रजातन्त्री शासन आरम्भ हुआ। इस पर साम्यवादी मजदूरों ने विद्रोह कर दिया। खूब कत्ल का बाजार गर्म हुआ। चार दिन में दस हजार आदमी पैरिस की रंगीली गलियों में कत्ल हुए और विद्रोह दबा दिया गया। नैपोलियन का भतीजा लुई नैपोलियन उस नाम के जादू के कारण राष्ट्रपति चुना गया। परन्तु उस ने भी अपने चचा बोनापार्ट की भाँति अपनी वैयक्तिक शक्ति को बढ़ा कर अपने को सम्राट् घोषित कर दिया और नैपोलियन तृतीय के नाम से सिंहासन पर आ बैठा। राष्ट्रीय सत्ता दो-चार साल भी न चली और

रिपब्लिक का अन्त हो कर राजसत्ता फिर स्थापित हो गई। इस का कारण यह था कि अभी तक फ्रांस की जनता को लोकसत्तावाद का अनुभव नहीं था। सर्वसाधारण भी उसे ठीक नहीं समझ पाते थे। जो लोग शताब्दियों तक स्वेच्छाचार के अभ्यस्त रह चुके हैं—वे ऐसे मामलों को ऐसी चीज समझते थे जो उन की पहुँच से बाहर थी—परन्तु फिर भी सन् ४८ की राज्य क्रान्ति ने फ्रांस को बहुत आगे बढ़ा दिया था और अब केवल राज-क्रान्ति ही की नहीं—फ्रांस अर्थ-क्रान्ति और उद्योग-क्रान्ति को भी निकट से छू रहा था। वहाँ इस सिद्धान्त को अब प्रथम बार क्रियान्वित किया जा रहा था—कि मनुष्य को अपनी रोजी कमाने और मजदूरी प्राप्त करने का अधिकार है।

लुई नैपोलियन का जन्म एक शानदार राजमहल में हुआ था और उस का बचपन राजकुमारों की भाँति सुख और वैभव में बीता था। यह वह जमाना था जब सम्राट् नैपोलियन के नाम से सारा यूरोप थर्रा रहा था और बोनापार्ट परिवार के नगण्य जन भी तब उच्च पदों पर पहुँच गए थे। बालकपन में लुई नैपोलियन राजकुमारों की भाँति ठाठ से रहता रहा था। परन्तु शीघ्र ही यह क्षणिक राजभोग अन्तर्धान हो गया और बोनापार्ट के सेन्ट हेलेना में कैद होने के बाद उस के परिवार के सभी व्यक्ति अत्यन्त दुर्दशा में ग्रस्त हो गए। यह सन् १८१६ की बात है। लुई नैपोलियन की आयु तब केवल ८ वर्ष की ही थी, और इसी अवस्था में उसे देश छोड़ कर भागना पड़ा था। उसके यौवन का प्रारम्भिक भाग जर्मनी और स्विटजरलैण्ड में व्यतीत हुआ था। अभी नैपोलियन का पुत्र 'रोम का बादशाह' जीवित था। नैपोलियन के नाम में एक जादू था—बहुत लोग नैपोलियन के भक्त अब भी फ्रांस में थे। वे सब 'रोम के बादशाह' को ही अपना नेता मानते थे। १८३२ में रोम के बादशाह की मृत्यु हुई और नैपोलियन दल का नेता लुई नैपोलियन बना। वह सोलह वर्ष मारा-मारा फिरता रहा, पर निरन्तर फ्रांस का सम्राट् होने का स्वप्न देखता और षड़यन्त्र करता रहा। वह उत्कृष्ट लेखक था और सदा क्रान्ति-

कारी विचारों का ही समर्थन करता रहता था—इस कारण वह धीरे-धीरे लोकप्रिय बनता चला गया। नैपोलियन नाम का जादू तो था ही। जब सन् ४० में नैपोलियन के अवशेष पैरिस में लाए गए तो इसी की चेष्टा से पैरिस में जोश का ज्वार उमड़ आया। उस ने नैपोलियन की वीर पूजा की घोषणा की और फ्रांस ने राष्ट्रीय वीर के अवशेष की भाँति उस की अस्थियों का सम्मान किया। इस अवसर पर अपने चचा के नाम की प्रतिष्ठा से लुई नैपोलियन ने पूरा लाभ उठाया और वह भी एक वीर पुरुष की भाँति फ्रांस में आदर की दृष्टि से देखा जाने लगा। लुई फिलिप ने जब उसे कैद में डाल दिया तब और भी लोग उसके भक्त बन गए। इसका परिणाम यह हुआ कि जब फ्रेंच रिपब्लिक के प्रेसीडेन्ट का चुनाव हुआ तब सबसे अधिक वोट उसी को मिले और वह प्रेसीडेन्ट चुना गया। राष्ट्रपति बनते ही उसने अपनी वैयक्तिक स्थिति को सुधारना आरम्भ किया। फ्राँस की अधिकांश जनता रोमन कैथोलिक थी—अतः रोम में जब पोप के विरुद्ध विद्रोह हुआ तो नैपोलियन ने पोप की सहायता की। उसने पदारियों, मजदूरों और मध्यम श्रेणी के लोगों को संतुष्ट करने के अनेक उपाय किए और एक दिन, जब पैरिसवासी प्रातःकाल सो कर जागे तो सब गलियों, दीवारों पर बड़े-बड़े पोस्टर चिपके हुए थे, जिनमें उल्लेख था कि नैपोलियन तृतीय ने राष्ट्र प्रतिनिधि सभा बर्खास्त कर दी है और वोट देने का अधिकार सब बालिग नागरिकों को दिया है। इसके बाद रिपब्लिकन नेताओं की गिरफ्तारियाँ की गईं। बहुत से लोग गोली से उड़ा दिए गए और इस प्रकार लुई बोनापार्ट फ्राँस का भाग्य-विधाता बन गया।

अब तो उसके अधिकार भी अपरिमित थे। उसे अपनी मनमानी करने के पूरे अवसर मिले। अब दस साल के लिए उसकी गद्दी सुरक्षित थी। परन्तु नैपोलियन तो सम्राट् बनना चाहता था। वह इससे भी संतुष्ट न हुआ। सन् १८५१ में उसने सम्पूर्ण फ्रांस की यात्रा की। और उसके बाद ही अपने को सम्राट् घोषित कर दिया।

परन्तु निस्संदेह वह षड्यंत्र द्वारा सम्राट् बना था। अतः उसका सिंहासन संघर्षों में ही डगमगाता रहा। पुराने राजकुल उससे असन्तुष्ट थे। रिपब्लिक दल वाले तो उसके प्रबल विरोधी थे। उस समय फ्रांस में इस दल के दस लाख अनुयायी थे। फ्रैंच साहित्यिक, विचारक और ऐतिहासज्ञ भी उन्हीं का दम भरते थे। जिनके नेता, थीयर, ह्यूगो, लुई ब्लां और ज्याजें सी आदि थे। निस्संदेह उसके १८ वर्ष के शासन-काल में फ्रांस में शांति रही। परन्तु उसकी विदेश नीति ने उसे अनेक युद्धों में फंसा दिया। जिससे फ्रांस के धन और जन की बहुत हानि हुई। लाभ इन युद्धों से कुछ भी नहीं हुआ। वह फ्रांस में इंगलैण्ड की भांति वैध राजसत्ता स्थापित करना चाहता था। परन्तु उसे सफलता न मिली। अपनी महत्वाकांक्षा ही के कारण उसने क्रीमिया के युद्ध में रूस के विरुद्ध टर्की की सहायता की। इस युद्ध में फ्रांस में ७५ हजार सैनिक मारे गए और सवा अरब रुपया खर्च हुआ। फ्रांस को लाभ कुछ भी न हुआ।

परन्तु नैपोलियन तृतीय ने फ्रैंच साम्राज्य विस्तार की भी चेष्टा की। पूंजीवाद के विकास के साथ ही फ्रैंच धनिक उपनिवेश की आवश्यकता समझने लगे थे। जहाँ कच्चा माल आसानी से मिल सके और पक्का तैयार माल खप सके। साम्राज्यवाद के प्रथम संघर्ष में फ्रांस ब्रिटेन से पिट चुका था। और भारत से फ्रैंचों को पीछे धकेल कर ही अंग्रेज अपना साम्राज्य स्थापित करने में सफल हुए थे। पर फ्रैंच इससे निराश नहीं हुए। १८३० में उन्होंने अल्जीरिया हथियाया और अटलांटिक सागर स्थित न्यू कैलिडोनिया पर अपना क़ब्जा किया। इसके बाद १८५८ में जब भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध उल्टी हवा बह रही थी फ्रांस निर्भय हो कर पूर्वी एशिया में कोचीन चायना और अनाम पर अपना अधिकार कर रहा था। मैक्सिको शुरू में स्पेन साम्राज्य के ताबे था। १८२३ में वहाँ रिपब्लिक की स्थापना हुई। पर वे लोग सुव्यस्थित शासन स्थापित न कर सके। और वे अनेक विदेश पूंजीपतियों के कर्ज-

दार हो गए। जिसका फल उन्हें नैपोलियन तृतीय के हाथ भोगना पड़ा पर किसी तरह अमेरिका के कारण उसकी गर्दन फंसते-फंसते बच गई। नैपोलियन तृतीय ने अमेरिकन महाद्वीप में अपने साम्राज्य विस्तार का जो प्रयत्न किया उसमें उसे असफलता ही हाथ लगीं।

: १४ :

तलवार और खून

शताब्दियों तक हैप्सबर्ग खानदान की अधीनता में आस्ट्रिया जर्मनी का एक शक्तिशाली राज्य रहा। बाद में प्रशिया का विकास हुआ। नैपोलियन ने इन दोनों राष्ट्रों को अच्छी तरह झंझोड डाला—उसका परिणाम यह निकला कि जर्मनी में एक राष्ट्रीयता उठ खड़ी हुई। इस तरह नैपोलियन ने अनजान में ही इटली की भांति जर्मनी में भी राष्ट्रीयता का बीज बो दिया था। नैपोलियन के जीवनकाल में ही महान् दार्शनिक नीत्शे ने जर्मनवासियों के लिए राष्ट्रीयता का मूलमंत्र रच दिया था। परन्तु नैपोलियन के पचास वर्ष बाद तक भी जर्मन छोटे-छोटे रजवाड़ों का क्रीड़ा-स्थल बना रहा। कई बार उनका संघ बनाने की व्यर्थ चेष्टाएं की गईं। आस्ट्रिया और प्रशिया दोनों के राजा इस संघ के मुखिया बनना चाहते थे। खूब बगावतें हुईं, दमन हुए, संघर्ष हुए। परन्तु दशा जैसी की तैसी रही। इस समय जर्मनी दार्शनिकों और वैज्ञानिकों के लिए प्रसिद्ध था। कुछ हिस्सों में कच्चा लोहा और कोयले की खानें भी थीं। इसलिए वहाँ का थोड़ा औद्योगिक विकास भी हुआ और थोड़े उद्योग केन्द्र भी स्थापित हो गए। परन्तु इसने एक मुसीबत यह पैदा कर दी कि वहाँ मजदूरों का एक वर्ग पैदा हो गया। परन्तु इसी समय प्रशिया में एक ऐसा जोरावर आदमी उठ खड़ा हुआ कि जिसने अपने आतंक का सिक्का सारे यूरोप में जमा लिया। यह आदमी आधे यूरोप के राजनैतिक आकाश में 'बदमिजाज बूढ़े' के नाम से विख्यात हुआ। इसका

नाम विस्मार्क था।

यह एक देहाती जमींदार था। वह वाटरलू संग्रामकाल में पैदा हुआ था, और कालिज में शिक्षा पाने के बाद कई देशों में राजदूत रह चुका था। अन्त में वह प्रशिया का प्रधानमन्त्री बन कर रहा। और प्रधान-मन्त्री बनते ही उसने अपने नए जर्मन राष्ट्र की यह नई नीति घोषित कर दी कि इस जमाने के बड़े-बड़े सवाल तकरीरों और प्रस्तावों से हल नहीं होंगे। उन्हें 'तलवार और खून' तय करेंगे।

तभी से जर्मन सिपाहियों का राष्ट्र बनना आरम्भ हो गया। विस्मार्क की 'तलवार और खून' की सूक्ति यूरोप भर में गूंज उठी। और जब उसने मजबूत क़दमों से अपनी नीति पर चलना आरम्भ किया तो यूरोप को उसने अपने इरादों के आगे झुका डाला।

अब वैज्ञानिकों और दार्शनिकों वाला जर्मनी तो पीछे धकेल दिया गया और तलवार और खून वाला जर्मन राष्ट्र अपनी हुंकारों से यूरोप की नींद हराम करने लगा। लोग कहने लगे विस्मार्क जर्मनी को बड़ा बना रहा है और जर्मनों को छोटा। जर्मनी देखते ही देखते उसके नेतृत्व में अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में बड़ा राष्ट्र बनता गया। यह देख कर जर्मन लोग खुशी-खुशी उसका दमन सहते चले गए। विस्मार्क का दिमाग़ साफ था। वह स्वयं लोहे की भांति दृढ़ था उस ने प्रशिया को समूचे यूरोप का नेता बनाने की ठान ली थी। इस वक्त तीसरे नैपोलियन के मातहत फ्रांस समूचे यूरोप का नेता समझा जाता था। पर विस्मार्क तो इन सभी छोटे-बड़े यूरोपीय राष्ट्रों को खेल खिलाने लगा। उसने प्रथम आस्ट्रिया को और फिर फ्रांस को उठा कर अपनी जेब में डाल लिया।

: १५ :

अफीम का गोला

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य भाग तक चीन का केन्द्रीय शासन देश

को एक सूत्र में बांधने में समर्थ था। इस समय जब क्रि ब्रिटिश उद्योगपति और पूंजीपति भारत की छाती पर जोंक की तरह चिपटे हुए उसका खून चूस रहे थे—चीन पर उन्होंने एक दूसरा ही चारा फेंका। चीन ने इन विदेशी आक्रान्ताओं का मुकाबिला किया और अपने को बचाया। भारत इससे सौ साल पहले ही, मुग़ल तख्त के ध्वंस होते ही तहस-नहस हो चुका था। इस समय चीन यद्यपि वह मंचू सम्राट् शियन लुंग का न था, जिसने ब्रिटेन के बूढ़े और खब्ती राजा जार्जतृतीय को वह शानदार खत लिखा था। फिर भी उसमे विदेशियों के अवरोध की शक्ति थी। सन् १८१६ में जब ब्रिटेन का राजदूत लार्ड एमहर्स्ट चीन गया तो उसने 'कोतो' की रस्म अदा करने से इन्कार कर दिया (कोतो, ज़मीन पर लेट कर दण्डवत करना) इसलिए चीनी सम्राट् ने उससे मुलाक़ात नहीं की। और उसे बिना ही मुलाक़ात लौटना पड़ा। इस समय अंग्रेज चीन में मुनाफे का एक नया रोजगार शुरू कर रहे थे—वह था अफीम का रोज़गार। यद्यपि चीन में अफीम का प्रचार पन्द्रहवी शताब्दी ही से हो गया था—पूर्व में कुछ लोग मलेरिया से बचने के लिए तम्बाकू के साथ अफीम मिला कर पीया करते थे। इन्हीं की मार्फत चीन में भी तम्बाकू के साथ अफीम मिला कर पीने की लत लग गई, जो बढ़ती ही गई। और अब बिना ही तम्बाकू के खालिस अफीम ही पी जाती थी। लोगों के स्वास्थ्य पर इसका बुरा प्रभाव पड़ रहा था और इसमें देश का बहुत रुपया बाहर जाता था। इसलिए चीन की सरकार इस व्यापार के विरुद्ध थी। उसने जब इसकी रोकथाम की तो यह व्यापार चोरी-छिपे होने लगा। और सन् १८३४ में जब ईस्ट इण्डिया का एकाधिकार खत्म करके ब्रिटेन की सरकार ने तमाम अंग्रेजों के लिए व्यापार खोल दिया तो अफीम का यह चोर बाज़ार इस क़दर बढ़ गया कि चीन सरकार ने इसके विरुद्ध सख्त क़दम उठाए। और कैंटन में जो इस व्यापार का मुख्य केन्द्र था, अफीम की बीस हज़ार पेटियां जबर्दस्ती विदेशी व्यापारियों से जब्त करके नष्ट कर डाली गईं। अफीम की रोक-थाम के लिए और भी

प्रतिबन्ध लगाए गए। और यह सख्त हुक्म जारी कर दिया गया कि अंग्रेजों का जो जहाज अफीम चीन में लाएगा, चीन सरकार उस जहाज के सारे माल को जब्त कर लेगी। परंतु अब वह ब्रिटेन न था, जो फ्रांस की क्रांति और नेपोलियन के ज़माने में था, जब उसे सांस लेने भर की फुर्सत न थी। अब तो उसके पर निकल आए थे। उसने चीन से युद्ध छेड़ दिया और चीन को परास्त होना पड़ा। और वह अफीम जिसकी रोक-थाम के लिए चीन ने इतनी सिरदर्दी उठाई थी—जबदस्ती चीन के मुँह में ठूँस दी गई। यह 'अफीम की लडाई' सन् ४० में हुई और अफीम की तिजारत के लिए पाँच चीनी बन्दरगाह, केन्टन,शघाई, आमाय, निंगपो और फ्यूचू खोल दिए गए। हाँगकाँग के बन्दरगाह पर भी ब्रिटेन ने अधिकार कर लिया और जो अफीम नष्ट की गई थी तथा युद्ध में जो खर्चा हुआ था, उसके बदले में बहुत भारी हर्जाने की रक़म चीन को देनी पड़ी। चीन के सम्राट् ने रानी विक्टोरिया के हुजूर में चीन पर लादी गई अफीम की हानियों का उल्लेख करके बहुत गाना-रोना किया—परन्तु बेकार। महारानी ने कोई जवाब ही नहीं दिया। चीन सम्राट् के ब्रिटेन के राजा को उस शानदार पत्र के लिखने के केवल पचास साल बाद ही यह रंग बदल गया।

परन्तु पश्चिमी शक्तियाँ जो मुसीबतें चीन पर अब लाने वाली थीं, उसका यह आरम्भ था। उसे विदेशियों की यह जबर्दस्ती की तिजारत ही नहीं, ईसाई प्रचारकों की धाँधली भी मंजूर करनी पड़ी। ईसाई प्रचारक सर्वत्र ही उनके साम्राज्यवाद के अग्रदूत के रूप में जबर्दस्त काम करते रहे हैं। चीन में उनका व्यवहार अत्यन्त धृष्टतापूर्ण था, सुलह के बाद जो नया अहदनामा हुआ था, उसमें एक यह भी धारा थी कि चीनी क़ानून और चीनी अदालतों का अमल गोरे विदेशियों ही पर लागू न होगा। उन पर उन्हीं की अदालतों में मुकदमा चल सकता है। अब मिशनरियों ने जिन चीनियों को ईसाई बनाया वे भी इस विशेषाधिकार की मांग करने लगे। इस तरह एक गाँव दूसरे के विरुद्ध भड़का दिया जाता था

ग्रौर बलवे होते थे, फिर उनकी पीठ पर साम्राज्यवादी शक्तियाँ ग्रा धमकती थीं। इसी प्रकार का एक भयानक बलवा सन् १८५९ में हुग्रा जिसका कर्ताधर्ता एक नौ ईसाई चीनी, हूंगसिन च्वान था। वह एक खब्ती सा ग्रादमी था। उसने चीन में यह नारा बुलन्द किया—कि बुतपरस्तों को कत्ल कर दो, उसके गिरोह के ग्रादमियों ने इस कदर खून खराबी की—कि इस बलवे ने ग्राधे से ग्रधिक चीन को तबाह कर दिया। लगभग बरसों यह उपद्रव चला ग्रौर इसमें दो करोड़ ग्रादमी मौत के घाट उतारे गए।

इस समय चीन में ऐसा हो रहा था—पहले मिशनरी प्रचारक ग्राते, उनके पीछे जंगी जहाज ग्रौर उसके बाद जमीनों-जायदादों की जब्ती। धीरे-धीरे चीन ग्रन्तर्विद्रोह का एक संघर्षमय देश बन गया ग्रौर मन्चू सरकार के विरुद्ध षडयन्त्र होने लगे। चीन की पुरानी व्यवस्था टूट गई। विदेशी माल ग्रौर खासकर ग्रफीम के व्यापार ने चीन की प्रचलित व्यापार व्यवस्था को खत्म कर दिया। नानकिन की संधि ने ब्रिटेन के लिए चीन के द्वार खोल दिए थे। फ्रांस ग्रौर ग्रमेरिका भी उनके पीछे लिपटे चले ग्राए थे। सबने मनमानी तौर पर चीन के साथ व्यापारिक सन्धियाँ कीं। ग्रब भी बहुत से चीनी इन विदेशियों से घृणा करते थे। इस समय ग्रंग्रेज ग्रब ग्रौर ग्रगला कदम बढ़ाने की सोच रहे थे ग्रौर सन् ५६ में उन्हें ग्रवसर मिल गया ग्रौर उन्होंने चीन पर सेना भेजना ग्रारम्भ कर दी, पर इसी समय भारत में सत्तावन की क्राँति फूट पड़ी ग्रौर उन सेनाग्रों का रुख भारत की ग्रोर फेर देना पड़ा।

: १६ :

सूरज का देश

चीन की इस मुसीबत, बदइन्तजामी ग्रौर कठिनाइयों का लाभ उठाया जापान ने। १७वीं शताब्दी में जापान चूहेदानी में बंद एक चूहा

था। वह दो सौ बरस से दुनिया से अलग रहता आया था। संसार में कहाँ क्या हो रहा है, जापान के कान में इसकी भनक भी नहीं पड़ती थी। दुनिया में ज्ञान का नया सूरज निकला है—जापान को इसका पता भी न था। भारतीय क्षत्रियों की भांति वहाँ एक समूराई सैनिक जाति थी। सामन्त-सरदार और समूराई लोगों के हाथ में असली ताक़त थी। उन दिनों जापान अनेक छोट-छोटी सामन्ती ताक़तों में बंटा हुआ था, जो निरंतर आपस में लड़ते रहते थे। बेचारे किसानों का ये लोग मिल कर खून चूसते थे।

फिर भी जापान धीरे-धीरे जाग रहा था और राष्ट्रीयता के साथ ही सम्राट् की सत्ता पुष्ट होती जाती थी। अन्य राष्ट्र जापान से सम्बन्ध क़ायम करने की निरन्तर कोशिश कर रहे थे। १९वीं शताब्दी में अमरीका खासतौर पर जापान में दिलचस्वी लेने लगा। वे अब पच्छिम में केलि-फोर्निया तक बढ़ आए थे। और सैनफ्रान्सिस्को एक खास बंदरगाह बनता जा रहा था। चीन से नया व्यापार-सम्बन्ध हुआ था—और प्रशांत सागर पार करने में लंबे सफर का झंझट था। इसलिए अमेरिका किसी जापानी बंदरगाह पर चीनी माल की रसद लेने की जुगत में था। सन् ५३ में एक अमेरिकन जहाजी बेड़ा अमेरिकन राष्ट्रपति का खत ले कर जापान आया। जापानियों ने सर्वप्रथम भाप से चलने वाला जहाज देखा। साल भर बाद शोगन दो बंदरगाह खोलने पर राजी हो गए। जब अंग्रेजों, रूसियों और डचों ने यह सुना तो उन्होंने भी अमेरिका का अनुगमन किया। इसके बाद इन विदेशियों का कुछ ऐसा जादू का डंडा चला कि जापान में विद्रोह हो गया और शोगनों का सात सौ वर्षों का राज्य खत्म हो गया।

: १७ :

मुकुटधारी-प्रजातन्त्र

ब्रिटेन का राज्य एक 'मुकुटधारी-प्रजातन्त्र' था। राजा के हाथों

ताकत कुछ न थी, वह वही करने को बाध्य था जो पार्लमेंट के विश्वास-पात्र मन्त्री चाहते थे। वह मन्त्रियों के हाथ की राजनैतिक कठपुतली था। पर कहा यह जाता था कि वह राजनीति से परे है। पर मजबूत इरादे का कोई आदमी कठपुतली नहीं बन कर रह सकता। इसलिए इंगलैण्ड के राजा और रानियों से मन्त्रियों के संघर्ष होते रहते थे। पर अंत में ढर्रा वही चलता था।

१९वीं शताब्दी के आरम्भ में ही समूचे यूरोप की एक पेचीदा परिस्थिति हो गई थी। उस युग की यूरोपियन सभ्यता, उद्योगवाद, पूँजीवाद, साम्राज्यवाद, समाजवाद और राष्ट्रवाद अन्तर्राष्ट्रवाद के मिश्रण का एक चूँ चूँ का मुरब्बा थी। सब मिल कर यूरोप की सभ्यता अमीरों की सभ्यता थी। जिसमें सारी सत्ता नए मध्यम वर्ग के हाथ आ गई थी, जिसका विकास नई पूंजीवादी प्रणाली के औद्योगिक साधनों पर हुआ था। यह सभ्यता देखते ही देखते उन्नति के शिखर पर पहुंच गई थी। और १९वीं शताब्दी के मध्यकाल में वह चरम सीमा पर थी। सारी दुनिया की आँखों में उसे देखकर चकाचौंध आ रही थी। इस समय समूचे पच्छिमी यूरोप का—जहां उद्योग का दौर-दौरा था—इंगलैण्ड ही नेता था। परन्तु मध्यम वर्ग की जो यह नई ताकत इस सदी के आरम्भ में यूरोप में उदय हो रही थी, उस पर यूरोप के तत्कालीन सामन्तशाही ढर्रे पर चलते हुए राजाओं और बादशाहों ने ध्यान नहीं दिया था। नैपोलियन को खत्म कर क वे राजा और बादशाह यही चाहने लगे कि अब जैसे बन हमारी हुकूमतें जैसी की तैसी बनी रहें। यद्यपि फ्रांस की भयानक रक्त-क्रांति और नैपोलियन की ठोकर से उनके कलेजे कांप गए थे। और अब स्वेच्छाचारी शासन करने का दैवी अधिकार अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए वे आपस में गठबन्धन कर रहे थे। इस काम में राजनीति और धर्म दोनों को गड्डमगड्ड कर लिया गया था। रूस का ज़ार इस प्रकार के उद्योग में सब का नेतृत्व कर रहा था। उसका देश इस समय भी बहुत पिछड़ा हुआ था। शहर कम थे, उद्योग ठप था, व्यापार नगण्य था।

देश भर में स्वेच्छाचारी शासन था। परन्तु यूरोप की हालत बदली हुई थी। ख़ासकर इंगलैण्ड में अब स्वेच्छाचारी शासन न था। वहाँ पार्लमेंट राजा पर भी शासन कर रही थी। पर इस समय पार्लमेंट जन-साधारण की सभा न थी, मुट्ठी-भर पूँजीपतियों की गुट्ट थी। इस प्रकार रूस के स्वेच्छाचारी जार और इन पूँजीपति शासक दल में जमीन-आसमान का अंतर था। फिर भी एक बात थी—कि दोनों ही क्रांति से भय खाते थे।

यह वही क्राँति थी, जिसकी ओर मार्क्स छठी शक्ति कह कर संकेत कर रहा था। परिस्थिति यह थी कि किसी भी प्रकार की उदारता मूलक आवाज उठती तो वह तुरन्त दबा दी जाती थी। इधर मध्यम एशियाई जातियाँ भूख से तंग आकर यूरोप की ओर मुँह करके यूरोप और एशिया पर निरन्तर हमले कर रहीं थी। परन्तु पश्चिम यूरोप का ढांचा आर्थिक आधार पर टिक चुका था। अब धार्मिक और खानदानों की पुरानी लड़ाइयाँ यूरोप में बन्द हो चुकी थीं। परन्तु अब राजनैतिक और आर्थिक संघर्ष एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र के हो रहे थे और युद्ध के मुद्दे आर्थिक आधारों पर केन्द्रित होते जाते थे। इंगलैंड की स्थिति सारे यूरोप से जुदा होती जाती थी। नई बात जो वहाँ उत्पन्न हुई थी, यह थी कि सत्ताधारियों के साथ पूँजीपति मध्यम वर्ग का एक रिश्ता क़ायम हो गया था। इससे यह वर्ग बढ़ कर सर्वसाधारण से आगे आ गया था और इस प्रकार इंगलैंड के समाज का ढाँचा ही बदल गया था और सर्वसाधारण की सामाजिक और आर्थिक स्थिति ऐसी बन गई थी कि उन्हें उन की ज़िन्दगी बोझिल हो उठी थी, यही कारण था कि उनके भीतर से मार्क्स की छठी शक्ति जन्म ले रही थी। परन्तु सत्ताधारी वर्ग, उसे जो कुछ मिल चुका था, उससे चिपटा हुआ था और बराबर सर्वसाधारण पर यह प्रचारित करता जा रहा था—कि समाज का जो ढाँचा है, उससे अच्छा दूसरा नहीं हो सकता। इस काम में जहाँ विश्वास की आवश्यकता होती थी, वहाँ धर्म से काम ले लिया जाता था और समाज का ऐसा जीवन बन गया था—कि जो जहाँ हैं वहीं पड़े रहें। भूखे लोग भूखों

भरते रहें और मौज मजा करने वाले मौज मजा करते रहें। तथा इस समाज व्यवस्था को अटल समझें।

परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य काल तक पहुंचते-पहुंचते मार्क्स की छठी शक्ति अपने पैरों चलनी आरम्भ हो गई। पोलैंड, इटली, बोहेमिया और हंगरी में बग़ावतें हुई और वहाँ राष्ट्रीयता की लहरें उठीं। देशभक्तों की आवाजें जहाँ-तहाँ यूरोप में गूंजने लगीं। हंगरी, फ्राँस, जर्मनी में भी निरंकुश शासन के विरुद्ध ज़ोरदार आवाजें उठने लगीं। परन्तु अभी तक सत्ता की पुरानी दीवारें मजबूत थीं। फ्रास में इसी समय राजनैतिक गड़बड़ी से लाभ उठा कर नैपोलियन का भतीजा लुई बोना-पार्ट क्राँति का अग्रदूत बन कर प्रथम प्रजातन्त्र का अध्यक्ष बना और फिर सेना के बल पर सम्राट् बन उसने अपने को नैपोलियन तृतीय घोषित कर दिया। इंगलैंड भी इन झगड़ों से न बचा, पर उसने सुधार करके जनता को सहमत कर लिया और वहाँ गृहयुद्ध होते-होते रह गया और सारे संसार के सम्मुख इंगलैंड अब एक मुकुटधारी प्रजातंत्र था।

: १८ :

छठी-सत्ता

एशियाई लूट की अटूट सम्पदा से सारा इंगलैंड धनधान्य से सम्पन्न हो रहा था। लंदन में देखते ही देखते बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ, बाजार और पार्क बनते जा रहे थे। वैस्टएण्ड मुहल्ला तो अमीरों का शानदार मुहल्ला था। फिर भी लण्डन के पूर्वी भाग में, जहाँ गरीब, मजदूर रहते थे दशा अब भी खराब थी। वहाँ अब भी भूख और गरीबी अपने साथ अनेक अनाचारों को पनपा रही थी। शाम होते ही वहाँ खून-खराबियां होने लगती थीं और दिन-दहाड़े आदमी की गाँठ काटी जाती थी। फटेहाल, शराब के नशे में धुत, मजदूर गालियाँ बकते गली-कूचों में चलते-फिरते नज़र आते थे। ऐसे ही एक मुहल्ले के टूटे-फटे एक पुराने घर में एक

अधेड़ वय के पुरुष छोटे-छोटे पाँच बच्चों को बहला रहे थे। बच्चे भूखे थे, और उनके नाश्ते का वक्त बीत चुका था। परन्तु उन्होंने नाश्ता नहीं किया था। बच्चों की माँ गोश्त लेने बाजार गई थी और इतनी देर हो जाने पर भी अभी नहीं लौटी थी। बच्चे पिता को परेशान कर रहे थे। पिता उन्हें हर तरह तसल्ली देने की चेष्टा कर रहे थे। बच्चों के पिता प्रौढ़ पुरुष थे। अवस्था उनकी पचास से ऊपर पहुँच चुकी थी। उनके चेहरे पर लापरवाही से दाढ़ी बढ़ रही थी। सिर के बाल भी खूब बड़े-बड़े थे। ऐसा प्रतीत होता था, उन महाशय को न शरीर की परवाह थी न कपड़े-लत्तों की। गहरी चिन्तन की रेखाएँ उनके मस्तिष्क में उभरी हुईं थीं। शरीर उनका हृष्ट-पुष्ट था और उनकी आँखों में एक तीव्र चमक देखने वालों को दीख जाती थी। पर इस समय बच्चों ने उन्हें बेहद परेशान किया हुआ था और वह अब अधीर होकर पत्नी की प्रतीक्षा कर रहे थे।

पत्नी उनसे भी अधिक परेशानी चेहरे पर लेकर लौटी। उन्होंने कहा– "मार्क्स, गोश्त वाले ने उधार गोश्त नहीं दिया। वह कहता है पिछले तीन हफ्तों के पैसे नहीं मिले। वह दो तो आगे गोश्त मिलेगा। लेकिन नानबाई ने पाव रोटी दी है। मक्खन भी है। आज तो हमें इन्हीं पर रहना होगा।'

"तो ग़नीमत है, कि भलेमानस नानबाई ने तो हमारा इतवार किया। लाओ, बच्चे बहुत भूखे हैं। इन्हें रोटी और चाय बना कर दे दो, मैं तब तक अपने एक दोस्त के पास जाता हूँ। कुछ उधार मिल गया तो कोशिश करूँगा। लेकिन तुम ज्यादा उम्मीद न रखना।"

"लेकिन तुम तो जा रहे हो। एक टुकड़ा रोटी खा कर दो घूंट चाय से हलक तर कर लो।"

"लेकिन तुम्हारे पास तो आवश्यकता के लिए भी नहीं है। मैं अपने दोस्त फ्रेडरिक एन्जलस के यहाँ जा रहा हूँ। वहाँ मैं नाश्ता ले लूंगा। तुम चिंता न करो।"

"यह ठीक म होगा। यदि उन्होंने न पूछा ?"

"तो मैं कह दूँगा कि मैं बिना नाश्ता किए आया हूँ।"

"तुम तो अपनी इज्जत का जरा भी ख्याल नहीं रखते।"

"मेरी प्यारी, मैं दुनिया के लाखों-करोड़ों ऐसे ही भूखों की इज्जत का ख्याल करता हूँ, जिनके बच्चे हमारे बच्चों ही की तरह भूख से बिल-बिलाते रहते हैं।"

"तो आखिर तुम्हारे सोचने-विचारने का कुछ नतीजा भी हुआ। तुम तो जहाँ जाते हो वहीं बिगाड़ कर लेते हो। जर्मनी में अच्छा-खासा तुम्हारा अखबार चल निकला था। पर तुम्हारी अफसरों से ही नहीं बनी।"

"मेरी प्यारी, मेरे जैसे आदमी की तो दुनिया में किसी से बन ही नहीं सकती। यह एक अजीब बात है, कि तुम से अब तक बनी हुई है।"

"चलो रहने दो। आखिर बात क्या है कि तुम्हारी किसी से नहीं बनती ?"

"बात सिर्फ यह है कि वे जो कुछ करते हैं मैं उसके विपरीत सोचता हूँ।"

"तो तुम्हारे ख्याल में दुनिया के सब आदमी ग़लत रास्ते पर हैं। सिर्फ तुम्हीं एक सही रास्ते पर हो ?"

"बेशक, तुम ने मुझे ठीक समझा।"

"पैरिस में भी तुम्हारे वही रवैये रहे। और वहाँ से भी खदेड़े गए।"

"यह तो होना ही था। समाजवाद और अराजकतावाद का मेल भला पूँजी से कहाँ ?"

"आखिर किसी से तुम्हारा मेल भी है ? कोई तुम्हारी बातों को पसंद भी करता है ?"

"मेरा दोस्त एञ्जल्स मेरी बातों को ध्यान से सुनता है। क़द्र भी करता है।"

"वह तो रुई के एक बड़े कारखाने का मालिक और सरमायादार है?"

"हाँ, पर वह लोगों की वर्तमान सामाजिक स्थिति से खुश नहीं है। वह अपने चारों ओर दीखने वाली गरीबी और शोषण को रोकने के उपायों की तलाश कर रहा है। वह राबर्ट ओवेन का अनुयायी है।"

"ग़नीमत है, तुम्हारा नहीं है।"

"उसे मेरे सिद्धांत अमान्य नहीं हैं। और हम दोनों मिल कर एक क्रांतिकारी समाज रचना की बातें सोच रहे हैं। हम एक मैनीफेस्टो निकाल रहे हैं।"

"खैर, मुझे इन बातों से क्या सरोकार है। मुझे रोटी, मक्खन, पनीर और गोश्त चाहिए। सोचो हमारे पाँच बच्चे हैं।"

"ठीक है प्रिये, मुझे ख्याल रहेगा।"

वह मुस्कुराया और भूखा ही अपने मोटे पुराने कोट की जेबों मे हाथ डाल कर घर से निकल गया। यही पुरुष प्रसिद्ध साम्यवादी विचारक कार्लमार्क्स था।

जब वह अपने मित्र के घर पहुंचा तो उसका मित्र नाश्ता खा कर मज़े से आग के सामने बैठा अखबार पढ़ रहा था। उसने उठ कर मार्क्स की सादर अभ्यर्थना की। कार्लमार्क्स ने कहा—

"तुम शायद नाश्ता कर चुके ?"

"हाँ !"

"तो मेरे वास्ते मंगवाओ। आज गोश्त वाले ने साफ इन्कार कर दिया। तीन सप्ताह तक बेचारा उधार देता रहा। लेकिन नानबाई अभी हमारी साख मानता है। उसने रोटियाँ और मक्खन दे दिया है।" कार्लमार्क्स वीतराग महर्षि की भांति स्वच्छ हँसी हँस दिए। एन्जल्स ने व्यस्त भाव से उठ कर नौकर से झट नाश्ता लाने का हुक्म दिया—फिर कहा—"मार्क्स, तुम्हें जल्दी तो नहीं है ? मेरा ख्याल है लंच ले कर ही यहाँ से जाना।"

"इससे अच्छी क्या बात हो सकती है। लेकिन भाई, कुछ रुपए भी उधार दे देना।"

"हाँ, हाँ, जितने चाहो। हाँ, वह तुम्हारी किताब खत्म हुई या नहीं?"

"खत्म ही समझो। एक नजर देख रहा हूँ। अब सवाल छपाने का है। लेकिन, प्रकाशक तो सब पूँजीपति हैं। मेरी किताब कौन छपाएगा?"

"क्यों? क्या मैंने तुम से उसी दिन नहीं कह दिया था कि किताब के छपाने का सब खर्चा मैं दूंगा।'

"मेरा ख्याल था, तुम ने यों ही बिना सोचे-समझे जल्दी में कह दिया था।"

"खैर, तो अब पुख्ता बात समझो। लेकिन, तुम्हारी किताब का नाम क्या है?"

"डास-कैपिटल।"

"बिलकुल ठीक नाम है। परंतु हमें पहले वह मैनीफेस्टो प्रकाशित करना होगा, जिसकी उस दिन चर्चा हो चुकी है। मैंने उसका एक ढाँचा बना लिया है, तुम एक नजर जरा देख लो। इस वक्त सुधारवादी गधे जिस स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृभाव की लोकसत्तावादी आवाज़ उठा रहे हैं, उसका सर्वसाधारण से कोई सम्बन्ध ही नहीं है। हाँ, मध्यम श्रेणी के धनिकों की स्वेच्छाचारिता को अच्छा पर्दा मिल गया है। मैनीफेस्टो में मैंने इसी बात पर प्रकाश डाला है।"

"खैर, मैं देख लूंगा। लेकिन उसमें हमें अपने समाजवाद के उसूलों को भी साफ-साफ लिख देना चाहिए और सारे दुनिया के मजदूरों से इन शब्दों में अपील करनी चाहिए—संसार के मजदूरो एक हो जाओ। तुम्हें खोना कुछ नहीं है, सिवाय अपनी गुलामी की जंजीरों के। और पाने को संसार पड़ा हुआ है।"

"बेशक मार्क्स, यह महत्वपूर्ण घोषणा होगी। यह तो काम करने की पुकार है। मैं तुम्हें बता देना चाहता हूँ कि यूरोप में एक बड़ा संकट-काल आ रहा है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम मजदूरों को उसका मुकाबिला करने को तैयार रखें। जिससे वे समय पर पूरा फायदा उठा सकें।"

"तुम ठीक कहते हो एञ्जिल्स। हमें यह न भूलना चाहिए कि यूरोप

में एक छठी सत्ता भी है जो खास-खास मौकों पर पाँचों कहानेवाली सत्ताओं पर अपनी प्रभुता रखती है और उन सबको थरथरा देती है। यह सत्ता क्रांति की सत्ता है। यह अब तक चुप थी। अब भूख और मुसीबत ने इसे युद्ध घोषणा करने को विवश कर दिया है। सच जानो एञ्जिल्स, एक इशारे भर की जरूरत है। यह यूरोप की छठी सब से बड़ी ताक़त फौलादी जिरहबख्तर पहन कर आने वाले यूरोपियन युद्ध में सबसे आगे बढ़ कर मोर्चा लेगी।

"तो तुम्हारी यह पुस्तक 'डास-कैपिटल' ही इस मामले की अग्रदूत होगी।"

"मैं नहीं जानता कि लोग उससे क्या-क्या नतीजे निकालेंगे। परंतु मेरी यह पुस्तक शुद्ध वैज्ञानिक पुस्तक है। इसमें मैंने प्रचलित आर्थिक सिद्धान्तों की पूरी तरह छानबीन की है, और उनकी बुराई भलाइयों की विवेचना अपने समाजवादी सिद्धान्तों पर विस्तार से की है। मैंने निश्चित रीति पर सारी अनिश्चित आदर्शवाद की थोथी बातें छोड़ कर व्यवहारिक ढंग से निष्पक्ष होकर इतिहास और अर्थशास्त्र के विकास का निरूपण किया है। मैंने बड़ी-बड़ा औद्योगिक मशीनों की चर्चा खास तौर पर की है और इससे मानव समाज में जो वर्ग युद्ध को उत्पन्न करने वाले परिणाम सामने आते हैं उनका निरूपण किया है। संक्षेप में मैंने अपनी इस पुस्तक में 'वैज्ञानिक, समाजवाद के मूल सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है।"

"विश्वास करता हूँ कि मार्क्स, तुम्हारी यह किताब संसार की उन इनी-गिनी पुस्तकों में गिनी जाएगी जिनसे लोगों के सोचने विचारने के तरीकों पर असर होता है। मानव-समाज का एक नया संगठन करने में तुम्हारी किताब एक ज्योतिमयी शक्ति प्रमाणित होगी।"

"और एक बात मैं तुम्हें बताना चाहता हूँ एञ्जिल्स।"

"क्या?"

"कि मैं प्रथाओं को बदलना चाहता हूँ। धर्म लोगों के लिए

अफीम है, मैं यह कहना चाहता हूँ।'

"लेकिन तुम क्या इंगलैण्ड के सम्बन्ध में एक बात जानते हो ?"

"यही न, कि अंग्रेजों का समाजवाद सबसे नर्म है। यह यूरोप भर में सबसे कम क्रांतिकारी है। सुधार के लिए वह बहुत धीरे-धीरे आगे बढ़ता है। जब कभी व्यापार में गड़बड़ होती है, मन्दी फैलती है, बेकारी बढ़ती है, तब इंगलैण्ड में भी क्रांति की लहर आती है। पर ज़रा हालत सुधरी की सब जोश ठण्डा हो जाता है।"

"तुम्हारी बात ठीक है एञ्जिल्स, पर इसका कारण इंगलैण्ड की वह खुशहाली है जो भारत पर अधिकार की बदौलत उसने प्राप्त की है। तुम जानते हो खुशहाली और क्रांति में दोस्ती नहीं हो सकती।"

"क्या तुम समझते हो—कि इंगलैंड की यह खुशहाली सदा कायम रहेगी और हिन्दुस्तान कभी चेतेगा नहीं ?"

'यह तो परिस्थितियों पर निर्भर है एञ्जिल्स, यह उन्नीसवीं शताब्दी इंगलैंड की महत्ता का काल है। अठारहवीं शताब्दी में वह उद्योग क्रांति करके जो दूसरे देशों से आगे बढ़ गया, उसकी वही अग्रगामिता आज उन्नीसवीं शताब्दी में भी क़ायम है। इस समय वह दुनिया भर का बाज़ार बना हुआ है और दुनिया के कोने-कोने से यहाँ रुपया बरस रहा है। हिन्दुस्तान और दूसरे उपनिवेशों से जो अटूट दौलत उसके पास चली आ रही है, उसने संसार में उसकी प्रतिष्ठा खूब बढ़ा दी है। इसी से जब सारे यूरोप में क्रांति के बादल छाए हुए थे, इंगलैण्ड में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ, फ्रांस में प्रजातन्त्रों और राज्यतन्त्रों का ताँता बँधा, इटली में कठिन संघर्ष के बाद सारा प्रायद्वीप एक राष्ट्र बन गया। जर्मनी ने एक संगठित साम्राज्य को जन्म दिया। बैलजियम, डेनमार्क और यूनान में तब्दीलियाँ हुईं। आस्ट्रिया के पुराने राजघराने फ्रांस, इटली और प्रशिया के लगातार धक्कों से डगमगा गए। पर इंगलैण्ड जहाँ का तहाँ खड़ा है, अटल चट्टान की तरह। अपनी दौलत, साम्राज्य और समुद्री तट के बल पर। सारी दुनिया पर उसका असर है, सिर्फ पूर्व में रूस बेशक पुराने ढर्रे

पर कायम है। पर वह पिछड़ा हुआ किसानों का राष्ट्र है। नए विचारों से बहुत दूर।"

"मार्क्स, सच तो यह है कि रानी विक्टोरिया बड़ी ही भाग्यवान है। देखते ही देखते उसका इंगलैण्ड फलफूल रहा है। कनाडा में बग़ावत हुई पर अंग्रेजों ने बात न बढ़ने दी। स्वशासन का बड़ा भाग दे कर उसे राजी कर लिया गया। अब हिन्दुस्तान भी पूरी तरह उनका हो गया।"

"लेकिन, एञ्जिलस, याद रखो, हिन्दुस्तान में ज्वालामुखी फूटने ही वाला है।"

"यह तुम किस आधार पर कहते हो मार्क्स ? क्या उस मुसलमान नवाबजादे की बात तो नहीं कहते ?"

'अजीमुल्ला की बात कह रहे हो न ? हाँ, मैंने उसकी बातों में तत्व देखा था।"

"परन्तु आज इंगलैण्ड के पास दौलत भी है और ताक़त भी।"

"यह सच है मेरे दोस्त, मगर याद रखो, साम्राज्य की भूख कभी नहीं मिटती। सीमाएँ बढ़ती जाती हैं। फिर भी वे यथेष्ट नहीं समझी जातीं। मैं जानता हूँ यद्यपि जैसा तुम कहते हो कि इंगलैण्ड दौलतमंद भी है और ताकतवर भी, यह सच है। परन्तु मैं अच्छी तरह जानता हूँ आज उसे इस बात की चिंता नहीं है कि और ज्यादा कैसे लिया जाय। उसे चिंता इस बात की है कि जो मिल गया है उसकी रक्षा कैसे की जाय। हिन्दुस्तान उसके लिए सोने की चिडिया है। उसे वह किसी भी कीमत पर खोना नहीं चाहता। उसकी आज की सारी वैदेशिक नीति का आधार ही यह है कि हिन्दुस्तान उसके कब्जे में रहे। और पूर्वी समुद्र के रास्ते उसके लिए सुरक्षित रहें। इसीलिए उसने मिस्र, ईरान और अफगानिस्तान पर हाथ डाला है।

"लेकिन इंगलैण्ड और आस्ट्रिया ने टर्की को क्यों बचाया ?"

"रूस की प्रतिद्वंद्विता के डर से।"

"वाह, आप ने सुना नहीं, जार ने टर्की की ओर इशारा कर के ब्रिटेन के राजदूत से कहा था—हमारे पास एक बीमार है। न जाने कब हमारी गोद में उसका दम निकल जाय।"

"हां. हां, यह तो सुन चुका हूँ।"

"तो उसी साल जार ने इस मरीज का गला घोंटना चाहा। बस, क्रीमिया की लड़ाई का असल मुद्दा यहीं तो था।"

"मैं समझ गया! यदि कुस्तुन्तुनिया पर कब्जा हो जाता तो उसे भूमध्यसागर में एक बढ़िया बन्दरगाह मिल जाता। और वह हिन्दुस्तान के रास्ते ही के पड़ोस में एक जंगी बेड़ा रख सकता था। इसी से इंगलैण्ड ने टर्की को बचा लिया।"

"और अब क्रीमिया की लड़ाई के बाद टर्की को यूरोपियन रंग में रंगने की पूरी कोशिश की जा रही है।"

"लेकिन सुना है क्रीमिया की लड़ाई में हार कर रूस की आंखें खुल गई हैं। बड़े-बड़े सुधार हो रहे हैं।"

"रूस का क्या जिक्र। वह एक इंच आगे बढ़ता है, तो मीलों लंबी प्रतिक्रिया पैदा हो जाती है। वह किसानों का पिछड़ा हुआ देश है। किसान सब करीब-करीब गुलाम हैं। अपने-अपने खेतों से उनकी तकदीरें बंधी हुई हैं। कुछ अफसर अलबता शिक्षित हैं। परन्तु मध्यम वर्ग वहां है ही नहीं। जनता बिल्कुल अनपढ़ और पिछड़ी हुई है।"

"तो अब तो इंगलैण्ड की ओर ही दुनिया का रुख है।"

"और हम उसे संसार की छठी शक्ति की ओर फेर देना चाहते हैं।"

"मैं तुम्हारे साथ हूँ मार्क्स। इतमीनान रखो।"

"तो लाओ भाई कुछ रुपए उधार दो। जिस से इस हफ्ते के लिए बेफिक्री हो।"

एञ्जिल्स ने हँस कर कुछ रकम कार्लमार्क्स की जेब में डाल कर कहा—"तुम्हें मेरी कसम है मार्क्स, गिनना नहीं।"

मार्क्स ने मुस्कुरा कर सिर हिलाया और चल दिया।"

: १६ :

ब्रिटेन का जनतन्त्र

ब्रिटेन में उद्योग क्रांति होने पर भी राजसत्ता रही लार्डस के ही हाथों में, जो पुश्तैनी जमींदार थे, और अपनी जमीनों को किसानों को लगान पर देते थे या मजदूर लगा कर खेती कराते थे। १८१५ में इन्हीं के लाभ के लिए 'कार्न-ला' बना। जिसके द्वारा बाहर से अनाज की आमद रोक कर इन लार्ड लोगों के मुनाफे के लिए अनाज महँगा रखा गया। इसके बाद सन् ३२ में ब्रिटेन के मजदूरों के संघर्ष के फलस्वरूप सुधार कानून बना—परन्तु सत्ता अब भी अभिजात वर्ग के हाथों ही में रही। सन् १८३२ से ५७ तक ब्रिटेन में जो कुछ हुआ—वह सब कुछ भारत सम्बन्धी संघर्ष था। इस काल में भी ब्रिटेन के किसानों की बुरी हालत थी। उनके पास एक ही टूटा-फूटा कमरा होता था, जो दुर्गन्धपूर्ण और खटमलों से भरा रहता था। उसी एक कमरे में हर उम्र के ८।७ नर-नारी रात भर के लिए ठुंसे पड़े रहते थे। गंदगी और व्यभिचार अनिवार्य था। उनके मस्तक बुद्धिहीन और दृष्टि पशुओं जैसी होती थी। उनके जीवन उच्छृङ्खल, बर्बरतापूर्ण और पापाचार में डूबे रहते थे। छोटे-बड़े की कोई मर्यादा उनमें न थी। दूसरी ओर बड़े-बड़े जमींदार थे। स्काटलैण्ड के हाउस आफ लार्डस के एक सदस्य के अधिकार में एक बड़ा प्रांत था। ड्यूक आफ वेडफोर्ड और ड्यूक आफ डेवेनशायर के अधिकार में सत्तर-अस्सी मील भूमि थी। ऐसे जमींदार उस समय एक-दो नहीं ब्रिटेन में सात सौ से ऊपर थे। इन लोगों के हाथ में ब्रिटेन के जनतन्त्र की बागडोर थी। ये लोग ही राजसत्ता का सम्पूर्ण उपभोग कर रहे थे

और अपनी जमींदारी की प्रथा में पूंजीवादी सत्ता को नहीं प्रविष्ट होने देते थे। ब्रिटेन के कानून ऐसे थे कि न जमीन बेची और खरीदी जा सकती थी, न बड़ी-बड़ी जमींदारियां बांटी जा सकती थीं। और सम्पत्ति तो बांटी जा सकती थी—पर जमींदारी की जमीन पर बड़े बेटे ही का हक रहता था। इस व्यवस्था के कारण सौ-सौ साल से जमींदारियां एक ही के ताबे बनी हुई थीं। और यह सब उस आठ सौ साल पुराने कानून के आधार पर चला आ रहा था—जब मुट्ठी भर सामन्तों के हाथ सत्ता बनाए रखना जरूरी थी। टोरी दल वाले इंगलैण्ड की पुरानी राजनीतिक व्यवस्था और धार्मिक संस्था के पक्षपाती थे—क्योंकि उनकी मदद ही से बड़े-बड़े जमींदार अब तक इंगलैण्ड पर शासन करते आए थे। इन जमींदारों में और पूंजीपतियों में इतना अंतर था कि लगान रूढ़िवादी आय थी और मुनाफा प्रगतिशील। जमीन का लगान राष्ट्रगत था—और मुनाफा विश्वगत। इस समय ब्रिटेन के राजनीतिज्ञ ह्विग और टोरी दो दलों में विभक्त थे—पर दोनों ही बड़ी-बड़ी जमीदारियों के पोषक थे—केवल ह्विग पूंजीपतियों को थोड़ी सुविधाएँ देना चाहते थे। दूसरे शब्दों में पूंजीपतियों के अभिजात प्रतिनिधि थे। १८३२ में और फिर १८४६ में जो सुधार कानून और मुक्त व्यापार की सुविधाएँ मध्यम वर्ग को दी गईं उस का अभिप्राय केवल यही था कि विरोध का वेग रुक कर क्रांति का रूप न धारण कर ले। और वे अपने स्थान से न डिगने पाएँ। ह्विग और टोरी दोनों दल मिल कर और लड़ कर सत्ता अपने ही हाथों में रखते रहे थे।

देहातों में ये लार्डस सर्वशक्तिमान् थे, खेत-मजदूरों को मतदान का अधिकार न था। शेष व्यक्ति भी इन लार्डों की मर्जी के खिलाफ मतदान न दे सकते थे। घूस, शराब और गुंडागर्दी की चुनाव में खुली छूट थी। बंदूकों और संगीनों के बल पर भी जबर्दस्ती वोट लिए जाते थे। कभी-कभी ये लार्ड कत्लेआम तक कर डालते थे। पैसे और शराब के द्वारा वोट खरीदना आम बात थी। परन्तु पूंजीपति इन बातों के विरोधी होते जाते थे। सन्

१८५५ में ऐसा ही ब्रिटिश प्रजातन्त्र था। शासन के बड़े-बड़े पदों पर, फौज में और जल-सेना में तथा चर्च में इसी जमींदार वर्ग के लोग थे। सिविल सर्विस में घूस और बेईमानी का बोलबाला था। उच्च पदस्थ अफसर तब अपना पद नीचे के अफसर को बेच सकते थे। इस समय राज्यसत्ता और शासन व्यवस्था में इंगलैण्ड को आदर्श नहीं कहा जा सकता था। फ्रांस की राज्यक्रांति होने पर वहाँ का अभिजात वर्ग खत्म हो गया था। उन पर ब्रिटेन के उदारपन्थी विचारकों की नजर थी। फिर उनके सामने अमेरिका था, जहाँ न सम्राट् न बन्दूक, न लार्ड थे। न रियासत पर केवल बड़े लड़के का हक माना जाता था, न मतदान पर ब्रिटेन की भांति बड़े लोगों की लगाई हुई पाबंदियाँ थीं। इन सब कारणों से अब ब्रिटेन का विकास दूसरे स्वतंत्र देशों की अपेक्षा मंद हो रहा था। पर अब वहाँ मजदूर-दल प्रबल हो रहा था। उनके क्रांतिकारी प्रदर्शन हो रहे थे। जब भारत में सत्तावन की क्रांति की ज्वालाएँ सुलग रहीं थीं—इंगलैण्ड में एक कानून बनाने की बात उठ रही थी, जिसका अभिप्राय यह था कि इतवार को श्रमिक अखबार न पढ़े, हजामत न बनवाएँ, और किसी प्रकार के आमोद-प्रमोद में भाग न लें। श्रमिकों की दो लाख की भीड़ इस बिल के विरुद्ध प्रदर्शन करने हाइड पार्क में एकत्र हुई थी। यह प्रदर्शन वास्तव में एक प्रकार का विद्रोह था। ऐसे प्रदर्शन बारंबार हुए। उन्हें बलात् दबाया गया। इस समय तक भी मजदूरों को इंगलैण्ड में मतदान का अधिकार न था। वे अब बालिग़ मताधिकार की माँग कर रहे थे। पूंजीपति इस काम में उनके साथ थे। क्योंकि उनकी पूंजी का लाभ और सुरक्षा मजदूरों का साथ देने में था। ऐसे ही ये दिन थे जब मार्क्स और एन्जिल्स ने अपना घोषणापत्र प्रकाशित किया।

: २० :

डारविन और मिल

वैज्ञानिक आज के युग के जादूगर हैं। परंतु यूरोप में इनका आदि

पुरुष डारविन हुआ। यह उन्नीसवीं शताब्दी का सब से महामान्य महापुरुष था। क्योंकि उसी ने मानवीय सभ्यता का मुंह विज्ञान की ओर फेरा। अठारहवीं शताब्दी में और इससे प्रथम वैज्ञानिकों को जादूगर होने के नाते जिन्दा जला दिया जाता था। रोम के पादरियों के जाववर्नो ब्रूनों को जिन्दा जला दिया था······प्रसिद्ध भूतत्त्ववेत्ता गैलीलियों फांसी पाते-पाते ही बचा था। उसका क़सूर यह था कि उसने कहा था कि पृथ्वी सूरज के चारों ओर घूमती है। इसी जुर्म में वह जीता जलाए जाने से केवल इस लिए बच गया कि उसने धर्म गुरुओं से माफी मांग ली थी। इस प्रकार यूरोप में बहुत दिन तक धर्मान्धता ने विज्ञान के विकास को रोका।

विज्ञान बिना प्रमाण के कोई सिद्धान्त स्थिर नहीं करता। वह दिमाग़ को खुला रखने की प्रवृत्ति को बढ़ाता है। प्राचीन काल में भारत, चीन, मिस्र और यूनान में विज्ञान चिकित्सा—रसायन की काफी खोज हुई थी। पर अभी तक यूरोप इससे वंचित था। मध्य-युग का यूरोप विज्ञान में बहुत कुछ अरबों का चेला रहा। परंतु अरब में भी कभी सच्ची विज्ञान की प्रगति नहीं हुई। रसायन, कीमिया और पारस पत्थर की खोज में, तथा अमृत की खोज में बहुत लोग—अरब, मिस्र और भारत में मारे मारे फिरते रहे। जादू टोने का भी इन अन्धविश्वासों के साथ विकास हुआ। भारत में तन्त्र शास्त्र का जन्म हुआ। परंतु इन सब जादू टोनों और ढकोसलों से विज्ञान का कोई सरोकार न था।

यूरोप में सच्चे विज्ञान की आधारशिला सत्रहवीं शताब्दी में आइज़क-न्यूटन ने रखी। उसने पृथ्व आकर्षण का रहस्य भी लोगों को समझाया। और सूर्य तथा दूसरे ग्रहों की चालों को भी समझाया। धार्मिक कट्टरता अन्ततः ज्ञान को न दबा सकी। प्रथम इगलैण्ड और फ्रांस में, और फिर जर्मनी, अमेरिका में विज्ञान का विकास हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि इसने बुद्धिवाद का शिक्षित वर्ग में एक नया आदर्श स्थापित कर दिया।

इस समय फ्रांस में रूसो, वाल्टेयर और अन्य फ्रेंच विद्वान ग्रन्थ पर ग्रन्थ लिख रहे थे, और लोगों को बुद्धिवाद की ओर खींच रहे थे, विज्ञान-वाद इसी बुद्धिवाद पर पनपा। औद्योगिक क्रान्ति, यन्त्रों का प्रादुर्भाव, भाप से चलने वाली रेल और जहाजों के इंजन, और उसके बाद बिजली का तार—इन सब ने अब अन्धविश्वास से ऊपर विज्ञान को प्रतिष्ठित कर दिया।

जिन दिनों ये सब बातें यूरोप में हो रही थीं, उसी समय डारविन प्राणी विज्ञान की छानबीन में लगा था। यद्यपि उसे यूरोप में कभी बड़ा वैज्ञानिक नहीं माना गया। पर उसकी खोज से यूरोप का सामाजिक दृष्टिकोण बदल गया। इस समय यह खब्ती सा आदमी पदार्थ विद्या का अध्ययन करता हुआ दक्षिण अमेरिका और प्रशान्त महासागर में इधर उधर भटक रहा था। उसने बहुत सी सामग्री और प्रमाण एकत्रित किए थे, और वह लोगों को यह दिखा रहा था कि हरेक पशु जाति एक दूसरे में प्राकृतिक रीति पर मिल कर किस तरह परिवर्तन और विकास करती है। उस समय तक लोग यही समझते थे कि मनुष्य और दूसरी जाति के प्राणियों को ईश्वर ने पृथक्-पृथक् बनाया है। और वे अनादिकाल से ही अलग अलग हैं। तथा उन में किसी प्रकार के परिवर्तन नहीं हुए हैं। इन बातों का अभिप्राय यह था कि एक प्राणी समूह दूसरे में परिवर्तित नहीं हो सकता। पर डारविन ने प्रमाणों के आधार पर यह बताया कि ये समूह आपस में बदलते हैं, और यही विकास का साधारण ढंग है। उसने यह भी बताया कि यही नियम पौधों, जानवरों तथा मनुष्यों पर भी लागू होता है। यह सम्भव है कि भिन्न भिन्न प्राणी समूह और वनस्पति का कोई एक पुरखा रहा हो। यद्यपि उसकी प्रसिद्ध पुस्तकें बाद में प्रकाशित हुईं। जिन्होंने उसे प्रसिद्ध कर दिया—परन्तु उसके विचारों का यूरोप के लोगों पर इतना प्रभाव पड़ा कि वे समझने लगे कि मानवीय पूर्णता का ध्येय चाहे कुछ भी हो, पर वह पूर्णता की ओर अग्रसर है।

जिस समय डारविन विकासवाद के सम्बन्ध में एक के बाद दूसरे प्रमाण संग्रह कर रहा था—तभी एक और अंग्रेज दार्शनिक और अर्थशास्त्री मानवीय अधिकारों की व्याख्या कर रहा था। इसका नाम जान-स्टुअर्ट मिल था। वह समाजवादी विचारधाराओं का आदमी था। अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र से सम्बन्धित अपना पूर्ववर्ती साहित्य उसने पढ़ा था। और अब वह इंगलैण्ड को ऐसी दिशा में ले जा रहा था जहां आर्थिक विचारों में थोड़े समाजवादी उसूलों का प्रवेश था। अन्त में उसने उपयोगितावाद का सिद्धान्त लोगों के सम्मुख रखा। यूरोप के लिए यह नया सिद्धान्त था। इसका खास तत्त्वज्ञान उपयोग था। इसकी विचारसारिणी इस आधार पर थी कि अधिक से अधिक लोगों को अधिक से अधिक सुख मिले। भलाई बुराई की यह कसौटी थी। जो काम जितना सुख देने वाला होता वह उतना ही अच्छा कहा जाता था। मिल की दृष्टि में सरकार और समाज दोनों का संगठन अधिक से अधिक लोगों को सुख पहुँचाना होना चाहिए। इस से पूर्व यूरोप की विकसित विचारसरणी में जो लोक सत्तात्मक सिद्धान्त था, जिस में सब को समान अधिकार मिलना मुख्य था—उससे मिल का यह सिद्धान्त भिन्न था। मिल के सिद्धान्त के अनुसार अधिक लोगों को अधिक सुख पहुँचाने के लिए कुछ लोगों को दुःख देने में हानि न थी। वह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का प्रचारक था। आगे उसने इसी सिद्धान्त पर अपने ग्रन्थ लिखे।

: २१ :

चिड़िया की नजर

१६वीं शताब्दी में पच्छिमी यूरोप जो औद्योगिक पूंजीवाद पर सवार हो कर दुनिया का जो नेता बन गया—इसका मूलाधार, कोयला और कच्चे लोहे की खानें थीं—जो उसे प्रकृति ने दी थीं। और बड़ी-बड़ी मशीनों को चलाने के लिए जिनकी अत्यन्त आवश्यकता थी। इसी पूंजी-

वाद ने यूरोप में राष्ट्रीयता और साम्राज्यवाद को जन्म दिया। जिसने यूरोप को परस्पर बांधा भी और बखेरा भी। इसका परिणाम यह हुआ कि सारे यूरोप में दो भावनाएँ बद्धमूल हो गईं— एक तो यह कि—प्रत्येक मुल्क में देश-भक्ति जाग्रत हुई, दूसरी यह कि—दूसरे देश वालों के प्रति दुर्भाव और प्रतिस्पर्द्धा उत्पन्न हुई। १९वीं शताब्दी का मध्यकाल आते-आते यूरोप का प्रत्येक राष्ट्र एक-दूसरे को भेड़िए की तरह गुर्रा कर देखने लगा। इंगलैण्ड की इस समय चांदी थी—इससे सभी राष्ट्र उससे चिपटे रहना चाह रहे थे। परन्तु दूसरे देश जिनमें जर्मनी अगुआ था, इंगलैण्ड की ओर गुस्से की नजर रखते थे। इसलिए १९वीं शताब्दी का सारा ही पूर्वार्द्ध लड़ाई-होड़ और आर्थिक शोषण का काल था। इस तरह पूर्व में यूरोप का राष्ट्रवाद, जो वास्तव में यूरोपियन साम्राज्यवाद का मूलाधार था, अब उसका घातक सिद्ध हो रहा था। तो भी पूंजीवादी सभ्यता ने संगठन, कार्य संचालन की कुशलता, समय की पाबंदी आदि के अनेक सुगुण मानव को सिखाए। जब तक मनुष्य अमली तौर पर इन नियमों का मुस्तैदी से पालन नहीं करते तो न रेल चल सकती थी, न फैक्टरियां। पाश्चात्य पूंजीवाद ने संसार के मनुष्यों को यह भी आशा दिलाई कि दुनिया में उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के काफी साधन हैं और अब वे गरीब न रहेंगे। लोगों में यह विश्वास फैल गया कि मशीन और विज्ञान की सहायता से अब आप को यथेष्ट खाना, कपड़ा और जीवन-यापन की यथेष्ट सामग्री प्राप्त होगी। परन्तु उत्पादन की यह आशा बस आशा ही रही। सम्पत्ति का उपार्जन तो हुआ—पर उससे गरीब और अधिक गरीब हो गए और अमीर और अधिक अमीर हो गए। खास कर इस सदी के मध्य भाग में जब ये यूरोपियन पूंजीवादी लुटेरे निर्दयतापूर्वक पूर्वीय देशों में आर्थिक शोषण करने लगे तो लोग उससे निराश होने और घृणा भी करने लगे।

परन्तु दुनिया की दौलत तो उनकी जेबों में भरती ही गई। पर भीतर ही भीतर यूरोप के लोगों की दो जातियां बन गईं। एक अमीरों

की, दूसरी गरीबों की। इन दोनों जातियों में परस्पर न कोई सहानुभूति थी, न सम्पर्क। दोनों की आदत, विचार और भावनाएँ भी एक-दूसरे से भिन्न और अपरिचित थीं। उनका शासन भी एक ही कानून के मातहत न था। यह एक ऐसी भयानक बात थी—कि जिसने आगे चल कर राष्ट्रवादी संगठन को छिन्न-भिन्न कर डाला और एक सर्वभौम छठी शक्ति को जन्म दिया।

उद्योग केन्द्रों के कारीगरों और मजदूरों के जीवन किसानों और खेतों पर काम करने वाले मजदूरों से सर्वथा भिन्न थे। किसान प्रायः वर्षा पर निर्भर रहते थे, जो उनके बस की बात नहीं थी—दैवी आधीन थी। इस दैवी भावना ने उन्हें अंधविश्वासी और भाग्यवादी बना दिया था। परन्तु फैक्टरी में काम करने वाला मजदूर तो सोलह आना उद्योगवादी था। वर्षा हो या तूफान—उसका काम रुकता न था। वह माल तैयार करता था। सम्पत्ति का उपार्जन करता था। पर उसने जब यह देखा कि इस धन का बड़ा भाग दूसरों की जेबों में जाता है, जो कुछ भी काम नहीं करते हैं और वह गरीब ही रहता है—तो उसने इसके लिए भाग्य को दोष नहीं दिया, उसने समाज के पूंजीवादी संगठन को ही दोषी ठहराया—जिसके सिर पर पूंजीपति मिल-मालिक बैठे थे। और उसके परिश्रम की गाढ़ी कमाई का अधिकांश अपने मोटे पेट में डालते थे। उसने देखा—ये पंजीपति उसे अपना शिकार बनाए हुए हैं—इससे उस के मन में उनके प्रति विद्रोह और ईर्षा के भाव उत्पन्न हो गए। आरम्भिक विद्रोह विचारहीन और कमजोर थे—पीछे उन में स्थिरता आती चली गई। और उन के अनेक यूनियन और संघ बनते चले गए। और उनका आपस में सहयोग भी बढ़ता चला गया। इस तरह इस शताब्दी के मध्यकाल तक पहुंचते-पहुंचते जहां एक ओर पूंजीवादी सत्ताएँ अन्तर्राष्ट्रीय रूप धारण करती चली गईं, वहां मजदूरों का संगठन भी अंतर्राष्ट्रीय बनता चला गया। इस प्रकार यह १९वीं शताब्दी पूंजीवाद, राष्ट्रवाद, साम्राज्यवाद, राष्ट्रीयता, अंतर्राष्ट्रीयता, अमीरी-गरीबी का

एक अजीब मांजून मुरक्कब था। ये सब बेमेल बातें थीं—और ज्यों-ज्यों इनका संघर्ष अन्ततः संगठन को समाप्त करता गया—यूरोप और अमेरिका के राष्ट्र नियन्ताओं के माथे पर चिंता की रेखाएँ उभरती चली गईं। नैपोलियन के पतन के बाद इस शताब्दी के आरम्भ में सभी यूरोपियन देश एक प्रकार से सत्ताधारियों के हाथों में पिस रहे थे। परन्तु अमेरिका और फ्रांस की राज्यक्रांतियों से लोगों के सिर फिर गए थे। और प्रजातन्त्र की ओर लोगों का रुख था, जिसका यह अर्थ समझा जाता था कि राज्य प्रत्येक जन को सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि से समान समझे। अनुदारदली उन्हें दबाने की सिरतोड़ कोशिश कर रहे थे। फिर भी प्रजातन्त्र इस सदी का महान आदर्श था। और एक प्रकार से इस समूची शताब्दी को प्रजातन्त्र की शताब्दी कहा जा सकता है।

: २२ :

हिन्दुस्तान

नेपोलियन की लड़ाई के दिनों में ही भारत और यूरोप में ब्रिटेन के प्रबल प्रतिद्वन्द्वी फ्रैंच भारत से उखाड़ फेंक दिए गए। मराठों, टीपू और सिखों ने अंग्रेजों से लोहा लिया—पर अंग्रेज उनसे जोरावर रहे। उनके हथियार बढ़िया, संगठन उम्दा और सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण उनकी पीठ पर समुद्री मदद थी। जिसके कारण वे नई मदद निरन्तर मंगा सकते थे, और उन्हें जड़ से नहीं उखाड़ा जा सकता था। परन्तु भारतीय सभी शक्तियां ऐसी थीं कि यदि वे परास्त हों तो फिर उनके खड़े होने को कोई स्थान न था। केवल यही बात न थी, कि अंग्रेज हिन्दुस्तानियों से ज्यादा चालाक—मुस्तैद और व्यवस्था से लड़ने वाले थे—अपितु उनकी कूट चाल ऐसी थी कि वे परस्पर विरोधियों के झगड़े से पूरा लाभ उठाते रहते थे। यही कारण था कि ब्रिटिश सत्ता भारत में पैर फैलाती और प्रतिद्वन्द्वियों को एक के बाद एक को पछाड़ती चली गई। दुर्भाग्य ही

कहना चाहिए—कि इन भारतीय सामन्त सरदारों को आपस में मिलकर एक होने और इस विदेशी शत्रु को पछाड़ने का विचार तक न हुआ। प्रत्येक अकेला लड़ता और निश्चित रूप से हारता रहा, अंग्रेजी सत्ता ज्यों ज्यों भारत में बढ़ती गई—वह सख्त और निर्दयी होती गई। जरा-सा बहाना मिलते ही वह लड़ाई ठान बैठती—जीत उसी की होती। और अन्ततः उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में वे प्रतिद्वन्दी विहीन हो गए। अफ़गानिस्तान से लेकर बंगाल तक उनका डंका बजने लगा। अन्ततः सन् १८५६ में उन्होंने अवध को अपने राज्य में मिला कर पूर्णाहुति दे दी। युद्ध और राज्यविस्तार का यह चक्र तो अभी और भी आगे को चलना था। अंग्रेजों के भारत में उठ खड़ा होने से प्रथम ही यहाँ का पुराना आर्थिक ढांचा टूट चुका था। जिन राजाओं को अंग्रेजों ने हराया वे वास्तव में बीते हुए युग के ध्वंसावशेष मात्र थे। परन्तु अंग्रेजों ने एक ज़बर्दस्त काम यह कूटनीति का किया—कि एक ओर उनका पूरी तौर पर खात्मा भी कर दिया—दूसरी ओर उनका ऊपरी ढांचा बनाए रखा। और इस तरह युग के प्रभाव से भारत को आगे बढ़ने से रोक दिया। इस तरह अंग्रेज इस शताब्दि के मध्य तक उस ऐतिहासिक दौर में सामन्ती भारत को खींच लाए जो पूंजीवादी औद्योगिक ढांचे में ढल रहा था। परन्तु तब शायद न अंग्रेज़ और ये भारतीय राजा ही इस तत्त्व को ठीक ठीक समझ पाए। और टूटते हुए सामन्ती वर्ग ने सन् सत्तावन के विद्रोह के रक्त से एक बार फिर अंग्रेजों को निकाल कर अपनी सत्ता जमाने का यत्न किया पर बेकार।

इस समय परिस्थितियां बेशक अंग्रेजों के खिलाफ एकत्रित हो गईं थीं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का एक मात्र काम था रुपया बटोरना। उसके अफसर उन दिनों अन्धे होकर हददर्जे की मूर्खता और लालच का प्रदर्शन कर रहे थे। चारों ओर तबाही मच रही थी। यहाँ तक कि नमकहलाली के मूल्य पर खून बहाने वाली फौज में भी असन्तोष व्याप रहा था। सामन्त सरदारों के वंशज स्वभावतः अंग्रेजों की नई ताक़त के खिलाफ

थे। और सब से ज्यादा तूमार का ज़ोर बंधा था उत्तर प्रदेश और मध्य-भारत में। यह एक सार्वजनिक विद्रोह की भावना थी, ज्यों-ज्यों दिन बीतते गए—यह विद्रोह विदेशी शत्रु के प्रति घृणा और क्रोध को उत्तेजित करता गया। और उसका स्वरूप भारतीय स्वाधीनता का बन गया—पर यह स्वाधीनता सामन्ती ढर्रे ही की थी, जिसके मुखिया एकतन्त्री राजा और बादशाह थे, जन-साधारण की आज़ादी की इसमें कोई चर्चा ही न थी। पर जनता अंग्रेजी अमल में तबाह और ग़रीब हो गई थी—इससे वह भी बड़े बड़े ज़मींदारों के प्रभाव में आकर उनका साथ दे रही थी। इस विद्रोह में राजनीति में ज़रा सा धार्मिक जोश भी मिला दिया गया था—जो इस समय ताक़त की दवा का असर कर रहा था।

अंग्रेजी राज का पहला दौर किस्मत आज़माने वाले साहसिक जनों का था—जिन्होंने तिजारत और लूटमार की खूब अंधेरगर्दीम चाई, और इस तरह ईस्ट इण्डिया कम्पनी और उसके कारिन्दे बेशुमार दौलत लूट ले गए। कहने को यह व्यापार था—पर भारत को इससे रत्ती भर भी फायदा न हुआ था। प्लासी की लड़ाई के बाद से तो भारत की पुरानी संचित सम्पत्ति का एक बड़ा भाग इंगलैण्ड चला गया। जिसने इंगलैण्ड को औद्योगिक पर लगा दिए। लूटपाट का यह पहला दौर अठारहवीं शताब्दी की समाप्ति के साथ ही समाप्त हो गया।

१९वीं शताब्दी के साथ ही अंग्रेजी राज का दूसरा दौर चला। जिसमें भारतवर्ष इंगलैण्ड के कल-कारखानों को भेजे जाने वाले कच्चे माल का एक प्रधान साधन और इंगलैण्ड में तैयार हुए माल का एक जबर्दस्त बाजार बन गया। इससे भारत की आर्थिक उन्नति चकनाचूर हो गई। इस समय तक भी भारत में ईस्ट इण्डिया के नाम से राज हो रहा था। परन्तु ब्रिटिश सरकार वास्तव में उसी वर्ग की प्रतिनिधि संस्था थी, जो ईस्ट इण्डिया कम्पनी को संचालित कर रहा था। भारत और इंगलैण्ड में इस काल जब-जब अधिक टक्कर लगती तभी तब जीत इंगलैण्ड की ही होती—क्योंकि शक्ति इंगलैण्ड के ही हाथ में थी। शासनकर्ता होने की

हैसियत से तो ईस्ट इण्डिया का हित इसी में था कि भारत में लाया हुआ विलायती माल यहाँ सस्ता बिके और भारत का माल विलायत में मंहगा बिके। परन्तु वह एक विदेशी व्यापारी कम्पनी थी—इसलिए उसने अपने भारतीय राज में बिल्कुल उल्टी नीति चलाई—कि विलायती माल यहाँ खूब मंहगा बिके और यहाँ का माल खूब सस्ता खरीदा जाय। संक्षेप में शासक की हैसियत से उसके हित शासित देश के पक्ष में थे—पर व्यापारी की हैसियत से उसके हित इंगलैण्ड के पक्ष में थे। यद्यपि मुगलों के पतन के बाद भारत में राजनैतिक अव्यवस्था और अराजकता पैदा हो गई थी, परन्तु १८वीं शताब्दी के अंत तक भारत बड़ा जबर्दस्त औद्योगिक और कृषि प्रधान देश था। भारत के करघों पर बने माल की एशिया और यूरोप के बाजारों में भारी खपत थी। एक तौर से इस काल के संसार भर के बाजारों पर भारत का कब्जा था। इन दिनों भारत में मध्यम वर्ग पैदा हो रहा था। यदि अंग्रेज बीच ही में न कूद पड़ते तो भारत भी सामन्ती वर्ग को पीछे धकेल कर यूरोप ही की भांति संसार का समर्थ उद्योग केन्द्र बन जाता।

आरम्भ में अंग्रेजों ने भारतीय उद्योगों को प्रश्रय दिया। इससे उन्हें धन मिलता था। बाद में उन्होंने भारतीय उद्योग का निर्दयतापूर्वक गला घोंट दिया और ब्रिटिश उद्योग को आगे बढ़ाया। भारतीय वस्त्रों का उद्योग इतना बढ़ा-चढ़ा था कि इंगलैण्ड की मशीन का कपड़ा भी उसका सामना न कर सकता था—उसकी रक्षा करने के लिए अंग्रेजों ने इस समय भारतीय माल पर अस्सी प्रतिशत चुंगी लगा दी थी। परिणाम यह हुआ कि भारत का कपड़े का कारोबार चौपट हो गया। इसी भांति भारत के दूसरे उद्योग—धातु की कारीगरी, जहाज बनाना, काँच और कपड़े के कारोबार सब चौपट होते जा रहे थे। १९वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध भारत के औद्योगिक तबाही का काल था। जुलाहे और कारीगर, जो कस्बों और शहरों में आबाद थे—लौट कर गाँवों में बसते जा रहे थे। शहर कस्बे उजड़ते जा रहे थे—गाँव बढ़ते जा रहे थे, जहाँ का रहन-

सहन एकदम अशुभ और निराशाजनक था। इस युग में जब संसार भर में उद्योगक्रांति के कारण शहर आबाद हो रहे थे—भारत में वे उजाड़ होते जा रहे थे। और सब प्रकार के पेशेवर लोगों की आजीविका का भार खेती पर आ पड़ा था। यह भारतीय जीवन को दरिद्रता के गढ़े में धकेले जाने की कहानी थी।

सब लोगों के पास जमीनें न थीं। जिनके पास थोड़ी जमीनें थीं—वे उनके परिवार में बँटते-बंटते और भी छोटी-छोटी हो गई थीं, और उनसे उनकी गुजर नहीं हो सकती थी। इसके अतिरिक्त वे मौसम, आसमान और बरसाती हवाओं की दया पर निर्भर थे। उनकी जमीन के इस छोटे से टुकड़े पर उनका अपना पेट था, उनके बाल-बच्चे थे और आश्रितजन थे। वे दरिद्र और भूख से जर्जर होते ही चले गए। फिर तो रोग, शोक और अविद्या ने उनके भाग्य को अस्ताचल पहुँचा दिया। यह एक-दो आदमियों की जीवन-गाथा नहीं, करोड़ों भारतीयों की जीवन-गाथा थी जो अंग्रेजों द्वारा उनके उद्योग रोजगार छीन लेने से गाँवों में खदेड़ दिए गए थे। इनमें बूढ़े भी थे, बालक भी थे, कुल-वधूटिएं भी थीं, माताएँ और दादियाँ भी थीं। यही अंग्रेजी हुकूमत में १९वीं शताब्दी के मध्ययुग का भारत था। जो दिन पर दिन देहाती होता जाता था।

गाँवों का जीवन बड़ा नीरस था। स्थानीय स्वतन्त्रता अवश्य वहाँ थी। पर वहाँ का सब कुछ पिछड़ा हुआ था। वहाँ अनेक जाति के लोग रहते थे। एक-दूसरे से पृथक्। गाँवों को मिलाने वाली सड़कें न थीं। कम्पनी की सरकार सड़कों पर बहुत कम रुपया खर्च करती थी। शिक्षा, सफाई और सिंचाई पर कुछ भी नहीं। इस समय भी अंग्रेजी सरकार समुद्र तट पर बम्बई, कलकत्ता, मद्रास आदि शहरों का निर्माण कर रही थी। पर ये शहर यूरोप के शहरों जैसे न थे। जहाँ दिन-दिन कारखाने खुलते और दूसरे उद्योग केन्द्र बढ़ते जा रहे थे। ये तो केवल विदेशी तैयार माल को भारत में भेजने और भारत के कच्चे माल को विलायत रवाना करने वाले गोदाम मात्र थे!

बम्बई में इस समय रेल की पटरी बिछी थी। और रेलगाड़ी उस पर चलने लगी थी। जहाँ-जहाँ अपनी सेनाओं को लाने और ले जाने की सुविधा चाहिए थी वहाँ सड़कें भी बनाई जा रही थीं।

कम्पनी के अमले बड़ी बेरहमी से लगान वसूल करते थे। समय पर लगान न देने से बड़े-बड़े मालगुजार तक को जेल में ठूंस दिया जाता था और उसकी जमीन छीन ली जाती थी। इस समय नील वाले साहबों का जुल्म नया रंग ला रहा था। कुछ अंग्रेज नील की खेती करने के लिए जमींदार बन बैठे थे। वे अपने आसामियों से गुलामों से बदतर व्यवहार करते थे। यह भी किसानों की तबाही का एक रूप था। सब ओर से निराश हो कर उसे साहूकार की शरण जाना पड़ता था। जो बनिया होता था यह बड़ा निर्दय, स्वार्थी और लालची होता था। और गरीब असहाय किसानों के खून पर पलता था। और उसके फौलादी पंजे से कभी उसका पिंड न छूटता था।

: २३ :

वफादारी की सनद

"हमने उन के लिए राज्य पर राज्य जीते, जिसके परिणाम स्वरूप देश की चारों दिशाओं में उन के झण्डे गड़ गए। पर इसका हमें क्या इनाम मिला, जानते हो?"

"जानते हैं। हमारे राजाओं को ज़लील किया गया, परजा को लूटा गया। और हमारा धर्म भ्रष्ट किया गया।"

"हिन्दुस्तानी फौजों ने कम्पनी बहादुर की वफादारी से खिदमत की। लड़ाइयां लड़ीं, और कलकत्ते से पेशावर तक का मुल्क जीत कर उन्हें दिया। इसका हमें क्या इनाम मिला? बता सकते हो?"

"हाँ, हाँ बता सकते हैं। पहले मालगुजारी जहाँ दो सौ थी—वहाँ तीन सौ वसूल की गई और जहाँ चार सो थी—वहां पांच सौ वसूल की गई। अब और भी मांग बढ़ रही है।"

"यह मांग कभी घटेगी नहीं। भले ही रियाया तबाह हो जाय। इन्होंने चौकीदारी कर दुगना चौगुना और दस गुना कर दिया है। पढ़े लिखे भले लोगों का सब कारोबार चौपट है। करोड़ों लोग पेट की आग बुझाने को दर-दर मारे-मारे फिर रहे हैं। उन्हें न तन ढांपने को कपड़ा मिलता है—न पेट का गढ़ा भरने को एक मुट्ठी अन्न।"

"और जब उन्हें नौकरी की तलाश में एक जिले से दूसरे जिले में जाना हो तो राहदारी का फी आदमी ६ पाई और फी गाड़ी चार से आठ आना तक देना पड़ता है। जो पैसा दे सकते हैं—उन्हें ही आम सड़क पर चलने की इजाज़त होती है।"

"और अब यह कारतूस? हिन्दू मुसलमान सभी का धर्म गया समझो।"

"हम मर मिटेंगे—धर्म नहीं देंगे।"

"लद गए दिन मर-मिटने के। अब तो हम खून की नदी बहाएंगे। अंग्रेजों के सफेद खून से कलेजा ठंडा करेंगे।"

"अब हमारी विधवाएं सती नहीं हो सकेंगी? परलोक में पति को प्राप्त न कर सकेंगी।"

"और गोद भी हम नहीं ले सकते। हमें सदा नरक में सड़ना होगा। पिण्ड दान देने वाला कोई न रहेगा।"

"आज यह बात हिन्दुओं पर है, कल मुसलमानों के धर्म पर बीतेगी।"

"तुम ने यह भी सुना कि पुरी में जगन्नाथ जी के मन्दिर पर भी कम्पनी की सरकार ने कब्जा कर लिया है। अब उन्हें बिना टैक्स दिए कोई भगवान के दर्शन नहीं कर सकता।"

"अब तो हर तीर्थ और हर मन्दिर पर सरकारी टैक्स लगेगा।"

"मिशनरियों का जाल भी तो देखो देश में फैल रहा है। स्कूलों में अस्पतालों में, जेलखानों में, बाजारों में जहाँ देखो ईसाई पादरी अपना काम कर रहे हैं। वे हमारे देवी-देवताओं को गालियां देते हैं। उनका मज़ाक उड़ाते हैं।"

"अजी उनका एक लाट पादरी है, जो लाट साहब के बराबर है।"

"अजी, हमारा लड़का सरकारी स्कूल में पढ़ता है। उससे जब मैंने पूछा कि बेटा स्कूल में तुम क्या पढ़ते हो—तो उसने कहा—क्या तुम्हें पता है—कि हमारा ईश्वर कौन है। और हमारा उद्धारक कौन है? मैंने कहा—भगवान राम हमारे ईश्वर हैं। श्री कृष्ण हमारे उद्धारक हैं। तो उसने हंस कर कहा—तुम कुछ नहीं जानते बाबा! ईसूमसीह हमारे उद्धारक हैं और ईश्वर हैं। हमारे स्कूल के बड़े साहब ने हमें बताया।"

"तो भई, सरकारी स्कूलों में पढ़ कर तो हमारे लड़के हाथ से गए। वे हमारा पिण्डदान नहीं कर सकते।"

"अजी, ये स्कूल तो ईसाइयों के ताजी मछली फंसाने के जाल हैं। सभी सरकारी अफसर जज—मैजिस्ट्रेट—हाकिम इन्हीं ईसाइयों का दम भरते हैं।"

"अब तो जेलों में सब ऊँच-नीच एक ही जगह पकाया खाना खाते हैं। जेल भी काटो और धर्म भी खोओ। अब सुना है फौज में भी यही कानून जारी होगा। सिपाही अपना अपना खाना नहीं पका सकेंगे। एक ही जगह पकी रोटियां खानी पड़ेंगीं।"

"जेल में तो मुसलमानों का ईमान भी सलामत नहीं है, भाइयो," हिदायतअली जमादार ने गुस्से में आकर कहा—"मुझे मालूम है कि जब किसी मुसलमान को जेल में भेजा जाता है—उसकी डाढ़ी मूंड दी जाती है और मूंछ काट ली जाती है।"

"राम, राम," भला कोई हमारी मूंछ काटे तो सही। सिर न काट लूं तो नाम नहीं।" मंगल पाण्डे ने शेर की तरह हुंकार भर कर कहा।

"अजी, बनारस की जेल में दंगा भी हो गया। कई जाने भी गईं। पर आखिर वहां सब ऊँच-नीच को एक ही जगह का पका खाना खाना पड़ा। ये अंग्रेज करते हैं—जेल में हम किसी के धर्म की परवाह नहीं करते।"

"मेरे चचा आए थे सहारनपुर से। वे सुनाते थे कि सहारनपुर में

अस्पताल खुला है। जहाँ सब जाति के लोगों को एकसाथ दवा दी जाती है। सरकार ने हुक्म चढ़ाया है कि रोगी चाहे मर्द हो या पर्दानशीन औरत, ब्राह्मण हो या चमार, सब को यहाँ इलाज कराने को आना होगा। हकीम-वैद्य अब इलाज नहीं कर पाएंगे।"

"तौबा, तौबा, ! क्यों भई, हकीम-वैद्य इलाज क्यों नहीं कर पाएँगे ? कोई जबर्दस्ती है भला। अजी वही तो बात है—ये अंग्रेज सब की इज्जत और आबरू लूटने पर तुले बैठे हैं।" हिदायत अली ने मुँह बना कर कहा। फिर उसने जरा धीरे से कहा—"सुना नहीं तुम ने बोलारम का किस्सा, वहाँ के मुसलमान घुड़सवारों ने अपनी कम्पनी के कर्नल कालिन मैकेन्जी को मौत के घाट उतार दिया। उसने मुहर्रम के जुलूस में दस्तंदाजी की थी।"

"तो अब तो यहाँ भी एकाध का सिर उड़ाया जाय तो इनकी गोरी अक्ल ठिकाने लगे। अजी, ये मुट्ठी भर अंग्रेज हैं ही कितने, हम एका कर लें तो एक ही दिन में भून डालें।" मंगल ने जोश में कहा।

"जरा सब्र करो, पाण्डे। वह दिन भी अब दूर नहीं है।"

"बस, मेरा तो खून खौल रहा है। अब तो सब्र किया नहीं जाता। अब तो बस अंग्रेजों का प्याला भर ही चुका।"

"तो तेल देखो, तेल की धार देखो, घबराते क्यों हो।"

"अब सुनो, यह नया लाट आया है। सुना है, वह सब की तनख्वाह में कटौती कर रहा है। यह लाट कम्पनी का रुपया बचाने के लिए ही भेजा गया है।"

"भला देखो तो यह अन्याय। हम बाल बच्चेदार आदमी। तनख्वाह साढ़े छह रुपया माहवार और उस पर भी कटौती ?"

"और उधर इन अंग्रेज अफसरों को देखो। पूरे नवाबी ठाठ से रहते हैं। इनमें न ईमानदारी है, न नैतिकता। एक छोटा अफसर भी कई-कई नौकर रखता है। वह कभी धूप में बाहर नहीं निकलता। या तो घोड़े पर चलता है या पालकी पर। उसे पंखा झला जाना चाहिए। उसके

पास एक खानसामा, एक खिदमतगार, एक सरदार बैरा; दो छोटे बैरे, तथा आधा दर्जन और नौकर चाहिएँ। एक हुक्का-बरदार, एक छाता-बरदार, एक शराब पिलाने के लिए, एक उसकी कुर्सी साफ करने के लिए। क्यों साहब, ये सब काम क्या एक ही नौकर नहीं कर सकता ?"

"क्यों करें भला ? यहाँ हराम का माल चीरने को ही तो ये फिरंगी आए हैं। वह भला कुएँ से पानी खींचेगा ? अपना खाना आप पकाएगा ? अपने जूते आप साफ करेगा ? अपनी डाढ़ी आप बनाएगा ?"

"अरे साहब, हमारी कम्पनी के एडजुटेंट आफिसर को नहीं देखा—सुबह जब वह सोता ही होता है तभी हज्जाम उसकी डाढ़ी बना जाता है। इसमें जरा भी चूक हुई तो चाबुक की मार हज्जाम पर।"

"यह तो हुई ऐयाशी, फिजूलखर्ची और आरामतलबी ? पर रात को डिनर खा कर जो जुआ चलता है, सो ?"

"इसी से तो हम बाल बच्चेदार साढ़े छह रुपये में गुजारा करते हैं। और उनका डेढ़ सौ में भी पूरा नहीं पड़ता। हमेशा कर्जा माँगते रहते हैं। सीताराम से दबती है इन पाजियों की नस।"

"क्यों न दबेगी। सीताराम तनख्वाह बाँटता है। और तनख्वाह की रकम में से उन्हें कर्जा देता है—ऊँची ब्याज की दर पर। रकम मर जाने का उसे डर नहीं है। क्योंकि वह तनख्वाह में से काट लेता है।"

"अफसर भी यह बात जानते हैं पर छूट देते हैं।"

"क्यों नहीं देंगे। हवलदार सीताराम साहब लोगों को कर्जा जो देता है। हालांकि कानूनन ऐसा उसे नहीं करना चाहिए। पर पूछता कौन है। और बिना कर्जा लिए तो उनका काम ही नहीं चलता। ये साले गोरे जुआ न खेलें तो इनकी शराब इनके पेट में पचती ही नहीं।"

"लेकिन उनकी तनख्वाहें भी कितनी ज्यादा हैं।"

"तो इससे क्या, वे उनके लानतान के लिए पूरी नहीं है, और अब तो साहब लोगों को घुड़दौड़ का नया शौक लगा है।"

"घुड़दौड़ भी तो एक जुआ ही है।"

"जुआ नहीं तो क्या है ? मेम लोग भी शौक से घोड़े पर दाव लगाती हैं।"

"घोड़े पर ? अजी वह अपने ही पर दाव लगाती हैं। इस फिजूल-खर्ची में उनके खसम मदद नहीं करते। बस, यारों पर ही उनका यह शौक पूरा होता है। यार लोग ब्याज वसूल कर ही लेते हैं।"

"हम ने बड़े-बड़े खेल देखे हैं। आँखों के सामने सब खेल होते हैं। पर साहब लोगों को नहीं दीख पड़ते।"

"कैसे दीखें, वे औरों की औरतों से खेल खेलते हैं।"

"अच्छा-खासा है यह अदल-बदल का खेल ?"

"और इन रंडियों को देखो, जिन्हें ये अफसर अपने हृदय में रखते हैं। किस कदर पूरी रेजीमेन्ट पर अपना रुआब जमाती हैं। सुसरी छदाम की डोमनी, अब साहब को खुश करना हो तो इन्हें रिश्वत दो। इनके तलुए सहलाओ।"

"उस नालायक हुसैनबख्श का कमीनापन देखो। बजाहिरा साहब का बैरा है, पर अपनी जोरू साहब को सौंप रखी है। अब जिस पर वह खुश उस पर साहब खुश।"

"लानत ऐसी जिंदगी पर। हम बीस बिस्वे के मिसिर, भला इन बेस्वाओं की खुशामद करेंगे ?" मंगल पाँडे बड़ी देर से चुप गम्भीर बना बैठा था। अब उसने कहा—

"अब तो इधर या उधर हो कर ही रहेगा, मिसिर। अब तक तो हमारा ध्यान अपने इन गोरे मालिकों के लिए नमक का हक अदा करने और इनके लिए लड़ाई करने में बीता। इतने दिन हम जो कम्पनी की सरकार के वफादार बने रहे—इसका कारण यही था—कि अफसरों का हमारे साथ अच्छा सुलूक था। और हमें कम्पनी सरकार का सिपाही होने का गर्व था। पर अब तो विश्वासघात और बेइज्जती ने वफादारी को खत्म ही कर दिया। अफसरों का धर्म और जाति और, मुलुक और। और हमारा धर्म और जाति और, और मुलुक और। उनकी बोली और

खाना-पीना और, हम उन्हें गुणों में अच्छा समझ कर अपना अफसर मानते रहे। पर अब तो जूते का जोर दिखाया जा रहा है। हम कोई चमार-डोम नहीं हैं, जूते का जवाब हमारे पास भी जूता है। मुल जूता हमारा काला है उनका गोरा। पर देखा जायगा कि जोर किस में है।"

"और देखो विधवा को सती होने का सनातन से रिवाज चला आया है। अब अंग्रेजों ने कानून बनाया है कि जो कोई सती के झमेले में शरीक पाया जाएगा, उसे फाँसी दी जाएगी।"

"आज हम हिन्दुओं के साथ यह जबर्दस्ती की गई है कल मुसलमानों के साथ की जाएगी।"

"और काबुल की बात क्यों भूले जाते हो। काबुल की लड़ाई में जो हिन्दू सिपाही गए वे स्नान-पूजन नहीं कर सके। उन्हें मुसलमानों का छुआ भोजन खाना पड़ा। घर लौटने पर उन सब का हुक्का-पानी बन्द हो गया।"

"सो तो होवे ही गा। भला जिसने धर्म खो दिया—वह कैसे जाति में रह सकता है।"

"मुझे तो हिदायत अली सूबेदार सरदार बहादुर ने बताया था कि हम ने एक भी गोली निशाने पर नहीं चलाई। भला मुसलमान मुसलमान को मार सकता था ?"

"अजी मेरे चचा की राम-कहानी सुनिए। मेरे चचा सूबेदार सीताराम उस मुहिम में काबुल गए थे। वे कहते थे—कि कोई हिन्दू सिन्धु पार जाने को राजी न था। क्योंकि वह देश भारत की सीमा से बाहर था। इसका हमारे धर्म में निषेध है। देश बाहर जाने से जाति चली जाती है। बहुतों ने छुट्टी ले ली। बहुत यों ही भाग खड़े हुए। हमें रेगिस्तानी मैदानों में हो कर कूच करना पड़ा, और म्लेच्छों के शहर से गुजरना पड़ा। जब कोई हिन्दू मर जाता तो दाहसंस्कार के लिए लकड़ी भी नहीं मिलती थी। वहाँ से काशी, प्रयाग और गंगा बहुत दूर थी। जो हिन्दू वहाँ मरा—उसकी गति नहीं हुई। क्योंकि सियार उसे घसीट

ले गए। मेरे चचा सीताराम काबुल की हार के बाद पकड़ा गया और गुलाम के तौर पर बेच दिया गया। एक परिचित व्यापारी ने बड़ी मुश्किल से उसे ५०० में खरीद लिया। जब वह फिरोजपुर में कमिश्नर साहब बहादुर से मिलने गया तो उन्होंने उसे फिर सेना में रख लिया—परन्तु उसके साथियों ने कहा कि वह भ्रष्ट हो गया है। और वे उसे न छू सकते हैं, न उसके साथ हुक्का-पानी कर सकते हैं। न उसे पास बैठाते न उससे बात करते थे। जब वह गाँव में लौटा तो उसके भाई ने उसे घर में नहीं घुसने दिया। और उसकी पत्नी और पुत्र ने भी उसे त्याग दिया। वह निराश हो कर फिर फौज में चला गया और तब से उसका कुछ भी पता नहीं—मरा कि जिया।"

"अरे भाइयो, यह पक्की बात समझ लो—कि अंग्रेजी सरकार जन-भक्ति के आधार पर नहीं—हमारे भुजबल के आसरे पर ठहरी हुई है। हम अब तक अंग्रेजों के वफादार रहे—पर अब अंग्रेज हमारे बाप-दादों का धर्म ही छीन रहे हैं। और हमें जानवरों से बदतर समझते हैं। तो हम भी अब उसकी गुलामी का जुआ उतार फेंकते हैं। जो होगा देखा जाएगा। जवानो, कमर कस लो और तैयार हो जाओ।"

: २४ :

इन्फील्ड-राइफल के कारतूस

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक कम्पनी के सैनिकों के पास ब्राउन बेस बन्दूकें थीं। उन्हीं से उन्होंने बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ जीती थीं। परंतु सन् १८५३ में क्रीमिया संग्राम में एक नए प्रकार की परिष्कृत बंदूक का प्रयोग हुआ था। जिसका नाम इन्फील्ड राइफल था। इस राइफल में कुछ नए सुधार किए गए थे और वे अपेक्षाकृत शीघ्र और लम्बी मार करती थीं। सन् १८५६ में भारत में उसका प्रयोग आरम्भ किया गया। इस राइफल में एक नए प्रकार के कारतूस लगते थे—जिनमें ग्रीस लगा

हुआ था। शुरू में वे कारतूस इंगलैंड से आए थे, बाद में इनको तैयार करने के लिए—मेरठ, दमदम और कलकत्ते में कारखाने खोले गए और इन नए कारतूसों तथा राइफलों के इस्तेमाल करना सीखने के लिए कुछ सैनिक दमदम, स्यालकोट, अम्बाला के प्रशिक्षण केन्द्रों में भेजे गए थे। ये कारतूस दाँत से काट कर प्रयोग किए जाते थे।

दमदम में एक दिन एक ब्राह्मण सिपाही—जो प्रशिक्षण के लिए बैरकपुर से आया था—कुएँ पर स्नान कर रहा था। तभी एक मेहतर ने जो वहाँ के कारतूस बनाने के कारखाने में नौकर था—ब्राह्मण सिपाही से पीने को पानी माँगा। परंतु परंपरा के अनुसार ब्राह्मण ने मेहतर को पानी नहीं पिलाया, यह कह कर इन्कार कर दिया कि मेहतर के पानी पिलाने से उसका लोटा अशुद्ध हो जायगा। इस पर मेहतर ने व्यंग से हँस कर कहा—महाराज, हमको पानी पिलाने में तो आपका लोटा अशुद्ध होता है, पर तुम लोग जो दाँत से काट कर कारतूस लगाते हो तो तुम्हारा धर्म कहाँ रहा ? उनमें तो सूअर और गाय की चर्बी लगती है ?

मेहतर तो यह बात कह कर वहाँ से चला गया। पर वह ब्राह्मण सिपाही यह सुन कर जड़ हो गया। जब उसने सिपाहियों से यह बात कही तो सिपाहियों में बड़ी बेचैनी फैल गई। आग की तरह यह खबर प्रशिक्षण केन्द्र में फैल गई। अंग्रेज़ अफ़सरों तक के कानों में भी यह बात गई। इस घटना के दूसरे दिन दमदम मस्केटरी डिपो के संचालक मेजर वोन्टीन ने सारे भारतीय सिपाहियों की परेड कराई। जिसमें सिपाहियों ने नई राईफल में दाँत से काट कर कारतूस लगाने तथा उन अशुद्ध कारतूसों को हाथ से छूने से इन्कार कर दिया। मेजर वोन्टीन ने इस घटना की रिपोर्ट अपने अफ़सर को भेज दी। यह घटना २२ जनवरी के दिन घटी। इन कारखानों में जो ये कारतूस बन रहे थे—उनके लिए ग्रीज और चर्बी की सप्लाई का ठेका एक बंगाली ब्राह्मण को दिया गया था। यह ब्राह्मण ठेकेदार भेड़-बकरी की मँहगी चर्बी न लेकर सूअर और बैलों की सस्ती चर्बी सप्लाई करता रहा था और उसी का प्रयोग इन

कारतूसों में होता रहा था।

बाद में कलकत्ते के फोर्ड मेजर ने इस बात की जांच के लिए एक कमीशन बैठाया, तो उसे सलाह दी गई कि एक हिंदू और एक मुसलमान को भी इस कमीशन में नियुक्त किया जाना चाहिए। किंतु शस्त्रशाला के अधिकारी इससे सहमत नहीं हुए। फलतः इन कारतूसों का वास्तविक रहस्य सिपाहियों से छिपा रहा और असंतोष के साथ उनके संदेह बढ़ते ही रहे। जिसे देखकर कर्नल टेकर ने सैनिक बोर्ड को चेतावनी दी कि यदि भारतीयों को ये कारतूस दिए गए तो उसके बुरे परिणाम निकलेंगे। इन कारतूसों में चर्बी की तीव्र दुर्गन्ध आती थी। और ये ही कारतूस दिल्ली और उत्तर भारत के दूर प्रदेशों में प्रशिक्षण के लिए भेज दिए गए।

जनरल हियरसे ने, जो बैरकपुर में कमाण्डेट आफीसर था—यह सुझाव दिया था कि सिपाहियों को कारतूसों पर अपनी इच्छानुसार ग्रीज लगाने की अनुमति दी जानी चाहिए। परंतु २८ जनवरी तक इस सुझाव पर सरकार ने कोई ध्यान नहीं दिया। लेफ्टीनेन्ट के रिपोर्ट देने और कलकत्ते से सरकार का उत्तर आने में ६ दिन बीत गए। इस बीच सिपाही अत्यंत क्षुब्ध हो उठे और वे आवेश में भरकर यह चर्चा करने लगे कि सब सिपाहियों को भ्रष्ट करने और उन्हें ईसाई बनाने का यह सरकार का षडयंत्र है। परंतु इसी बीच एडजुटेन्ट जनरल को यह सरकारी आदेश दे दिया गया कि ग्रीज लगा कर कोई कारतूस मेरठ से न भेजा जाय। तथा अंबाला और स्यालकोट के सिपाहियों को सूचित कर दिया जाय कि वे अपनी मनपसन्द का ग्रीज, मोम और तेल का बना कर प्रयोग में ला सकते हैं। यह भी फैसला किया गया कि प्रधान सेनापति ऐसी ही एक सामान्य घोषणा कर दें। परंतु एडजुटेन्ट जनरल के विरोध के कारण ये आदेश वापस ले लिए गए। यह स्पष्ट था कि हिंदुओं के लिए गोमांस निषिद्ध था और मुसलमानों के लिए सूअर। और अफसर इस बात का खण्डन नहीं कर रहे थे—कि उक्त कारतूसों में सूअर और गाय की चर्बी नहीं लगी है। इसी प्रकार मार्च का महीना आ गया और

मार्च में जनरल हियरसे को सूचित किया गया कि वह दमदम में चाँदमारी के समय इन कारतूसों का प्रयोग बंद कर दें। परंतु अब काफी देर हो चुकी थी और आज्ञाएँ अस्पष्ट थीं। विवाद का मूल कारण पूरी तौर पर नहीं हटाया गया था, सरकार ने केवल यही आदेश दिए थे—कि डिपो में सिपाही चाहें तो मोम और तेल के ग्रीज़ का प्रयोग कर सकते हैं, परंतु इस बात का कोई आश्वासन नहीं दिया गया था कि युद्ध क्षेत्र में उन्हें वे कारतूस नहीं दिए जाएँगे। इसी समय सेना में एक और अफवाह फल गई—कि सिपाहियों को जो आटा दिया जाता है, उसमें हड्डियों का चूरा है तथा कुएँ के पानी को अपवित्र कर दिया गया है।

इन सब कारणों से सेना में अनुशासन का ह्रास होता जा रहा था। और अफसरों को इसकी चिंता हो रही थी। जनरल हियरसे एक समझदार और साहसी अफसर था। उसने अपनी जवानी में पंजाब के विद्रोह को दबाया था। वह सिपाहियों की भाषा बोलता था और उनसे सहानुभूति रखता था। परन्तु कर्नल ह्वीलर जनरल हियरसे से बिल्कुल ही भिन्न प्रकृति का अफसर था। उसे बैरकपुर आए थोड़े ही दिन हुए थे। वह पिछले बीस वर्षों से सैनिकों में ईसाईधर्म का प्रचार करता रहा था। वह कहा करता था—मैं सरकार को सरकार की चीजें और ईश्वर को ईश्वर की चीजें देता हूँ। परन्तु इस प्रकार के पादरी अफसर बैरकपुर में तथा अन्यत्र छावनियों में और भी थे। इनके धर्माग्रह के कारण सिपाही जनरल हियरसे की उदार बातों को थोथी और बनावटी ही मानते थे। यद्यपि ह्वीलर ३४वीं पल्टन का अफसर था—पर उसके धर्माग्रह के कारण सभी सेनाओं में असंतोष चरम सीमा को पहुँच गया। बैरकपुर और उसके आस-पास तथा रानीगंज में आग लगाने की छुट-पुट घटनाएँ होने लगीं। असन्तोष का यह श्री गणेश था। इस के बाद ही कुछ अधिक गम्भीर दुर्घटनाएँ मुर्शिदाबाद के निकट बहरामपुर में घटित हुईं, जो अब नाममात्र को नवाबों की राजधानी थी।

बहरामपुर में कर्नल मिचल की कमान में १९वीं देशी पैदल सेना

तैनात थी। मिचल एक तेज मिजाज और अदूरदर्शी अफसर था। कारतूसों की चर्चा बहरामपुर में पहले ही पहुँच चुकी थी। और एक ब्राह्मण हवलदार इस सम्बन्ध में बहुत पूछताछ करता रहता था। इसी समय ३४वीं देशी पैदल सेना की दो टुकड़ियां बैरकपुर से बहरामपुर भेजी गईं। इस रेजीमेंट के सिपाहियों से कातूरसों की बात और भी पुष्ट हो गई। अतः परेड के समय १९वीं रेजीमेंट ने कारतूस की पेटी पहनने से इन्कार कर दिया। कर्नल मिचल ने इस समय सैनिकों की भावना की परवाह नहीं की। वह क्रुद्ध हो कर गालियाँ बकने लगा। और सेना को सख्त सजा देने की उसने धमकी दी। और सब भारतीय अफसरों को बुला कर उसने कहा—कि यदि कल से सिपाहियों ने कारतूस लेने से इन्कार किया तो उन्हें कठोरतम दण्ड दिया जाएगा। और सब को चीन या बर्मा भेज दिया जाएगा। जहाँ वे सब मार डाले जाएँगे।

परन्तु दूसरे दिन भोर होने पर कवायद से प्रथम ही तोड़-फोड़ आरम्भ हो गई। सिपाहियों ने शस्त्रशाला को तोड़ डाला। और अपने हथियारों पर बलपूर्वक क़ब्जा कर लिया। और अपनी-अपनी बंदूकें भर लीं। कर्नल मिचल ने शक्ति से उनका मुक़ाबला करने का इरादा किया। यद्यपि उसके पास यूरोपियन सेना नहीं थी, पर वह भारतीय घुड़सवार और तोपखाना ले कर विद्रोही सेना के सामने पहुँचा। स्थिति अत्यन्त गम्भीर हो गई थी। परन्तु भारतीय अफसरों के समझाने से उसने घुड़सवार रिसाला और तोपखाना वापस भेज दिया। और इस प्रकार एक भयानक दुर्घटना होते-होते बच गई।

परन्तु अनुशासन के नाम पर सेना को दण्ड देना अनिवार्य था। एडवोकेट जनरल क्वीथ यंग ने राय दी थी कि सेना को चीन या ईरान तुरन्त भेज दिया जाय। परन्तु गवर्नर-जनरल ने फैसला दिया कि सारी रेजीमैंट को अविलम्ब भंग कर दिया जाय। इस अवसर पर भय था कि सैनिक राजी से हथियार नहीं रखेंगे। परन्तु यह भी भय था कि भारतीय घुड़सवार और तोपखाने वाले शायद अपने

साथियों पर गोली चलाने को राजी न हों। ऐसी दशा में यदि १९वीं रेजीमेंट यदि प्रतिरोध करती है तो खाड़ी के उस पार से रंगून से ८४वीं अंग्रेजी रेजीमेंट को बुलाना अनिवार्य होगा। अतः वह कार्य भी तुरन्त अमल में लाया गया और रंगून से ८४वीं रेजीमेंट को लाने के लिए जहाज रवाना कर दिया गया।

इस समाचार से सिपाहियों मन में भय और क्षोभ की लहर दौड़ गई। शीघ्र ही ८४वीं अंग्रेजी रेजीमेंट आ गई और उसे चिनसुए में रखा गया और मिचिल को हुक्म हुआ कि वह १९वीं रेजीमेंट को बैरकपुर ले जाय।

१९वीं रेजीमेंट ज्योंही बैरकपुर पहुंची तो चारों ओर सनसनी फैल गई। सब यही चर्चा करने लगे कि अब यह रेजीमेंट भंग कर दी जाएगी। सिपाही इससे और भड़क गए और हथियार रख देने की अपेक्षा उनका उपयोग करने को तैयार हो गए।

परन्तु ठीक समय पर सिपाहियों ने धैर्य का परिचय दिया। यथावत् परेड पर बुला कर सब हथियार छीन लिए गए। चूंकि सिपाहियों ने प्रकट में कोई विरोध प्रदर्शन नहीं किया—उनके साथ यह रियायत की गई कि उनके केवल हथियार छीन लिए गए किन्तु उन्हें अपनी वर्दी पहने रहने का अधिकार दे दिया गया। उन्हें वेतन और पेंशन के हक से तो वंचित कर दिया गया परन्तु घर तक जाने का खर्चा दे दिया गया। और ऐसा प्रतीत हुआ कि यह जोखिम भरा काम आसानी से पूरा हो गया। परन्तु यह वास्तव में क्रांति का श्रीगणेश था।

: २५ :

मंगल पाण्डे

१९वीं इन्फेण्ट्री के भंग होने पर यद्यपि प्रत्यक्ष में कोई दुर्घटना नहीं हुई परंतु भारतीयों और अंग्रेज़ों को यह भान हो गया कि अब कुछ अन-

होनी घटना होने वाली है। वातावरण बहुत बोझिल हो गया था। अंग्रेज़ अफ़सरों और देशी अफसरों में अब वह पहले जैसा विश्वास और एकता का भाव न था। सभी नज़रें बदली हुई थीं। अविश्वास, भय और आशंका की घटाएँ चारों ओर छाई हुई थीं।

अभी १९वीं इन्फैण्ट्री का मामला ठण्डा भी नहीं हुआ था कि दूसरी इन्फैण्ट्री ग्रिनेडियर्स के दो सिपाहियों को राजद्रोह के अपराध में १४-१४ वर्ष का कठोर कारावास का दण्ड दिया गया था। सिपाही इस उत्तेजना को अभी दमन नहीं करने पाए थे कि जमादार सालिगरामसिंह का कोर्ट-मार्शल कर के उसे बर्खास्त कर दिया गया। उस पर यह आरोप था कि उसने कारतूसों के सम्बन्ध में उत्तेजक अफवाहें सेना में फैलाई हैं।

सब मिला कर अंग्रेज अफसर केवल अनुशासन पर ही ध्यान दिए हुए थे। वे सिपाहियों की भावना का जरा भी विचार नहीं करते थे। न वे आने वाली गम्भीर स्थिति का ही ख्याल करते थे। देशी अफसरों तक से अंग्रेज अफसर बुरा व्यवहार करते थे। सेना में यद्यपि अंग्रेज अल्प-संख्यक थे—और हिन्दुस्तानी सिपाहियों की संख्या बहुत अधिक थी, पर उनके बीच कोई भाईचारे की भावना नहीं थी। कम्पनी के आरम्भिक दिनों में भाईचारे की जो भावना थी—अब उसका कहीं नामोनिशान भी न था। उन दिनों तो अंग्रेज सैनिक भारतीयों से दोस्ती का व्यवहार करते थे। गर्मियों में उनके बहुत से काम भारतीय कर देते थे। परन्तु अब तो मिलने पर प्रत्येक अंग्रेज ब्लडी, फूल, सूअर, कुत्ता आदि कह कर बात करते थे। सार्जेण्ट अफसर गाली-गुप्ता तो देते ही थे, मार-पीट भी कर बैठते थे। इस समय सिपाहियों की प्रत्येक कम्पनी के साथ एक यूरोपियन सार्जेण्ट रहता था, जिसका व्यवहार सदैव ही सिपाहियों के साथ जंगली होता था। एडजुटेंट आफीसर भी सदैव सार्जेण्ट का पक्ष लेता था। बात-बात में उन्हें काला आदमी कहते थे। प्रत्येक अंग्रेज प्रत्येक भारतीय से हीन-पशु की भांति व्यवहार करने ही में अपनी जातीय श्रेष्ठता समझता था। आफीसर अपने बंगले पर मिलने आने वाले प्रत्येक

भारतीय सिपाही से क्रुद्ध हो कर बात करता था। बहुधा भारतीय कमीशन प्राप्त अफसरों को भी अपने से कम उम्र और अनुभवहीन अंग्रेज अफसरों के इशारे पर नाचना और उनकी गालियाँ सुननी पड़ती थीं। इन सब बातों ने भारतीय सिपाहियों का आत्मसम्मान और ईर्षा का भाव जगा दिया था।

भारत की प्राचीन परम्परा यह थी—कि प्रायः क्षत्रिय ही सैनिक होते तथा युद्ध करते थे। इस परम्परा का भंग दक्षिण में हुआ जब मराठा जाति का नवीन संगठन हुआ। और मराठों की हीन जातियाँ ऊँची उठ कर सितारा, ग्वालियर, इंदौर, कोल्हापुर और बड़ौदा में राज्य पदासीन हुईं। मुसलमान सैनिक सदैव हिन्दू विरोधी सैनिक थे। परन्तु अंग्रेजों ने अपने झण्डे के नीचे हिन्दुओं और मुसलमानों ही को नहीं—हिन्दुओं की दूसरी ऊँची जातियों को भी सैनिक श्रेणी में ला खड़ा किया। एक तरफ उन्होंने जहाँ नीच जाति के गोप, कैवर्त और शूद्रों को राजाबहादुर और महाराजा बना दिया, वहाँ दूसरी ओर कुलीन ब्राह्मणों को सिपाही बना दिया। इन ब्राह्मण सिपाहियों में अवध के कुलीन ब्राह्मण ही अधिक थे। उनमें कुलाभिमान था। पर अंग्रेज तो सभी हिन्दू-मुसलमानों को नीच समझते थे। अतः अंग्रेजों की हीन भावना का सब से घातक प्रभाव इन ब्राह्मण सिपाहियों पर ही पड़ा। मंगल पाण्डे एक ऐसा ही तरुण ब्राह्मण था। वह स्वभावतः ही उग्र था। फिर गोपाल पाण्डे की उत्तेजना उसकी नस-नस में भर गई थी। वह अंग्रेजों को विष दृष्टि से देखता था। और इधर जो नई-नई घटनाएँ हो रही थीं उन्हें देख कर उसका खून खौल रहा था। उसे ज्ञात था कि शीघ्र ही एक बड़ा विस्फोट होने वाला है। परन्तु वह धैर्यरहित हो गया और अपने मस्तिष्क का संतुलन खो बैठा।

२६ मार्च रविवार का दिन था। बहुत से अफसर और अंग्रेज सैनिक गिरजे में गए हुए थे। यद्यपि सब कुछ साधारण-सा ही लग रहा था परन्तु किसी के मन में उत्साह और आनन्द न था। दोपहर का समय

था। अंग्रेज अफसर और उनकी मेमें गिरजे से लौट रही थीं। सभी की जबान पर देशी सैनिकों के आचरण की बात थी। ३४वीं इन्फैण्ट्री परेड के लिए सफ बांध कर खड़ी थी। अकस्मात् ही मंगल राइफल उठा कर पंक्ति से बाहर आया। उसने अपनी तलवार भी म्यान से निकाल ली—और उसे हवा में घुमाता हुआ चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगा—"बहादुरो, किस सोच में पड़े हो। उठो, उठो, आगे आओ। तुम्हें धर्म की सौगन्ध है। हिन्दू को गंगा और मुसलमान को मक्का की आन है। आगे बढ़ो जवानो! इन अंग्रेज दुश्मनों के खून से अपने कलेजे की आग ठण्डी करो। धर्म-युद्ध का समय आ चुका।"

सारी पल्टन में हलचल मच गई। मंगल लपकता हुआ बिगुलर की ओर चला—और उससे तेज आवाज में कहा—

"देखते क्या हो, बिगुल बजाओ और सारी फौज को इकट्ठा करो।"

लेकिन बिगुलर ने समझा कि मंगल भंग के नशे में बौखला रहा है। वह उसकी बात सुन कर हँसने लगा।

उसी कम्पनी के सार्जेण्ट मेजर ह्यूसन ने चिल्ला कर सिपाहियों को आज्ञा दी कि—"इसी समय इस बज्जात को गिरफ्तार करो।"

परन्तु कोई सिपाही अपने स्थान से नहीं हिला। इस पर सार्जेन्ट मेजर ह्यूसन स्वयं आगे बढ़ा। मंगल ने निशाना साधा। राइफल दाग दी। गोली ने सार्जेण्ट की खोपड़ी चकनाचूर कर दी। वह मर कर तुरंत भूमि पर गिर पड़ा।

छावनी में हलचल मच गई। समाचार पाते ही एडजुटेण्ट लेफ्टिनेण्ट बफ और सार्जेण्ट हडसन घोड़ों पर सवार होकर घटनास्थल पर पहुंचे। मंगल ने एक तोप की आड़ देकर गोली दाग दी। गोली बफ के घोड़े को लगी—घोड़ा अपने सवार को लेकर गिर गया। परंतु बफ ने तुरंत उठ कर पिस्तौल मंगल पर दाग़ दी। निशाना चूक गया। मंगल की बंदूक अब खाली थी, वह तलवार लेकर बफ़ पर टूट पड़ा। इसी समय हडसन ने आगे बढ़ उसके सिर पर बंदूक की नाल से वार किया। पर

मंगल बड़ी फुर्ती से तलवार चला कर दोनों से भिड़ गया। दोनों अफ़सर मिलकर भी इस बफरे हुए शेर का कुछ न बिगाड़ सके। वे घायल हो गए। इसी समय कर्नल व्हीलर ने चिल्ला कर कहा—"पकड़ो-पकड़ो, गिरफ्तार करो।" इस पर शेख पलटू ने आगे बढ़ कर मंगल का हाथ पकड़ लिया। इस समय क्वार्टर की ड्यूटी पर जो सैनिक थे, वे निकट ही खड़े तमाशा देख रहे थे। उन्होंने पलटू से चिल्लाकर कहा—'खबरदार पाण्डे के हाथ न लगाना। वरना जान न बचेगी।" पलटू घबरा गया और उसने मंगल को छोड़ दिया। दोनों अंग्रेज़ अफसर वहाँ से भाग गए। मंगल ने फिर अपनी राइफल में गोलियाँ भर लीं।

इसी बीच जनरल हिअरसे को इस घटना की सूचना मिली। वह तुरन्त अपने दोनों लड़कों और कुछ गोरे सैनिकों की टुकड़ी लेकर घटना-स्थल पर पहुँचा। जनरल को आते देख मंगल ने पुकार लगाई—"जवानों, आगे आओ, धर्म युद्ध करो। ये हमारे शत्रु अंग्रेज हमारे धर्म के दुश्मन आ रहे हैं। इन्हें खत्म कर दो।" परन्तु पलटन के लोग कुछ दूर हट गए, कुछ चुपचाप पत्थर की मूर्ति की भाँति खड़े रहे। मंगल की पुकार पर कोई आगे न बढ़ा। तब उसने अपना अन्त समय निकट जान कर जोर से चिल्ला कर कहा—"मैं ब्राह्मण हूँ, विधर्मी चाण्डाल के हाथ मेरे गले में फाँसी का फंदा नहीं डाल सकते," इतना कह कर राइफल अपनी छाती से लगा कर दाग़ दी और उसका लोहू-लुहान शरीर भूमि में पड़ कर छटपटाने लगा।

: २६ :

पादरी लेफ्टीनेण्ट

जान फिलिप कानपुर की देशी पल्टन में पादरी लेफ्टीनेण्ट के नाम से प्रसिद्ध था। वह बहुधा हिन्दू-मुसलमान सिपाहियों को ईसाई बनने का उपदेश देता और उनके धर्म की निन्दा किया करता था। उसकी

मातहती में एक मुसलमान सिपाही मुहम्मद याकूब था। याकूब अपने रोज़ा-नमाज़ का पक्का और सच्चा सिपाही था। एक दिन लेफ्टीनेन्ट ने उसे अपने आफ़िस में बुला कर कहा—"तुम्हारा यह ढीला पायजामा तो एकदम वाहियात है। इसे न पहना करो, जाओ।"

"बहुत अच्छा हुज़ूर," इतना कह कर वह सलाम करके जाने लगा। लेफ्टीनेण्ट ने पुकारा—"ठहरो"

याकूब ने फिर सेल्यूट किया—"हुक्म ?"

"तुम्हारी यह दाढ़ी भी बेतुकी है।"

"हुज़ूर हमारे कुरानेपाक में डाढ़ी रखना मजहबी उसूलों में माना गया है।"

"कुरान वाहियात किताब है, तुमने कभी इन्जील पढ़ी है ?"

"नहीं हुज़ूर, मैं हमेशा कुरान शरीफ पढ़ा करता हूँ।"

"लेकिन इन्जील भी पढ़ा करो।"

"बहुत अच्छा हुज़ूर," वह फिर जाने लगा तो लेफ्टीनेण्ट ने उसे रोक कर कहा—'ठहरो।'

सिपाही ने फिर सैल्यूट किया और खड़ा हो गया। लेफ्टीनेण्ट ने कहा—

"क्या तुम यह समझते हो कि कुरान पढ़ने से तुम्हारे गुनाह माफ हो सकते हैं ?"

'हुज़ूर, रसूले अल्लाह ने कहा है कि तौबा करने से गुनाह माफ हो सकते हैं।"

"लेकिन तुम्हारा रसूले अल्लाह तो इस वक्त दोजख़ में है, तुम यदि उसी पर ईमान लाए रहोगे तो तुम भी दोजख में जाओगे।"

"बहुव अच्छा हुज़ूर," वह सैल्यूट कर चल दिया तो लेफ्टीनेन्ट ने रोक कर कहा—"ठहरो।"

वह फिर रुक कर और सैल्यूट करके एटेन्शन खड़ा हो गया। लेफ्टीनेन्ट ने कहा—"ठहरो।"

यूसुफ़ फिर एटेन्शन में खड़ा हो गया। सामने से एक सिपाही गोपालसिंह जा रहा था। लेफ्टीनेन्ट ने कहा—"उसे बुलाओ।" यूसुफ गोपालसिंह को बुला लाया। लेफ्टीनेन्ट ने उससे कहा, "यह क्या हिमाक़त है कि नंगे बदन घूम रहे हो और तुम्हारे सिर पर यह इतना बड़ा चुट्टा क्यों है।"

"हुज़ूर, आज एकादशी है। मैं गंगा नहा कर आ रहा हूँ और पूजा करके कपड़ा पहन सकता हूँ।"

"बेहूदा और जंगली तरीके हैं तुम्हारे। यह माथे पर तुमने क्या लगाया है।"

"यह तिलक है, हुज़ूर।"

"इसे पोंछ दो और आइन्दा बैरक में तिलक नहीं लगा सकते।"

"बहुत अच्छा हुज़ूर," वह चलने लगा। लेफ्टीनेण्ट ने कहा—"ठहरो।"

गोपालसिंह रुक गया। उसने भा सैल्यूट किया। लेफ्टीनेन्ट ने कहा, देखो—तुम दोनों, हिंदू-मुसलमान गुमराह हो। तुमको लाजिम है सच्चे ईश्वर और उसके बेटे ईसूमहीस की शरण आओ और दगाबाज और खराब राम और मुहम्मद का पल्ला छोड़ दो।"

"बहुत अच्छा हुज़ूर।"

"तुम यदि ईसाई बन जाओगे तो हम तुम्हें तरक्की देंगे। तुम्हारा ओहदा बढ़ेगा। सिपाही को हम हवलदार और हवलदार को सूबेदार-मेजर बना देंगे।"

"बहुत अच्छा हुज़ूर।"

दोनों सिपाहियों ने सैल्यूट किया और चल दिए।

: २७ :

हींदन

ग्राम तौर पर सरकारी तथा व्यक्तिगत पत्र व्यवहार में ग्रंग्रेज़ों ने भारतीय हिन्दू ग्रौर मुसलमानों का एक संयुक्त नाम रखा था—'हींदन'। यह नाम घृणा ग्रौर तुच्छता का द्योतक था। इसका ग्रर्थ था—जंगली, मिथ्या विश्वासी। ग्रौर हिन्दू-मुसलमान दोनों को ग्रर्धसभ्य बनाने के लिए ग्रंग्रेज सारे भारतवर्ष के निवासियों को ईसाई बनाना चाहते थे।

जिस समय ग्रंग्रेज़ इस प्रकार भारत के पैरों में दासता की बेड़ियाँ डाल रहे थे, उस समय वे सारे संसार में धर्माक्रमण का ग्रारम्भ कर चुके थे। ग्रफ्रीका ग्रौर ग्रमेरिका के मूल निवासियों को ईसाई बना लेने से उनका साहस बढ़ गया था, ग्रौर ग्रब वे भारत के इन हींदनों पर ईसूमसीह के क्रास की छाया डालना चाहते थे। वे उन दिनों यह सपना देख रहे थे—कि एक बार पश्चिमी सभ्यता का चकाचौंध से चमत्कृत होकर हिन्दुस्तान के ये हींदन ग्रपने धर्म पर लज्जित होंगे, उसे त्याग देंगे ग्रौर वेद कुरान की ग्रपेक्षा इंजील को पवित्र मानेंगे। उनके मन्दिर-मस्जिद एक दिन गिरजा बन जाएँगे। इसी भावना से उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथमार्ध का प्रत्येक ग्रंग्रेज ग्रपने लेखों, भाषणों ग्रौर भावों में यही प्रकट करता था कि ईसाई धर्म का झंडा भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक लहराने के लिए ही भारत का विशाल साम्राज्य—खुदावन्द करीम ने हमारे हाथों में दिया है। इस लिए समूचे भारत को ईसाई बनाने के महान् कार्य को ढील न देकर शक्ति भर चेष्टा करनी चाहिए। इसी भावना से प्रेरित होकर सन् १८३६ में मैकाले ने यह गर्वोक्ति की थी कि तीस वर्षों में भारत में एक भी मूर्ति-पूजक न बचेगा।

भारत में ईसाई धर्म को फैलाने का इतना तीव्र ग्राग्रह ईस्टइंडिया कम्पनी का इसलिए था—कि ग्रंग्रेज समझते थे कि यदि एक बार हिन्दुस्तान से धर्म का लोप हो जाय, तो फिर वहां की राष्ट्रीय भावना

अपनी मौत मर जायगी, पनपने ही न पाएगी और आत्मतत्व और आत्माभिमान रहित जाति पर शासन करना आसान होगा। हकीकत तो यह थी कि ईसाइत के प्रचार का दृष्टिकोण भी धार्मिक न था, शुद्ध राजनीतिक था। इसलिए अंग्रेज़ों ने इस काम में पोर्चुगीजों तथा औरंगज़ेब की भाँति तलवार का उपयोग नहीं किया—कुटिल राजनीति बरती। उस युग के साम्राज्य की राजनीति की वे भली-भांति जाँच कर चुके थे और अत्यन्त चतुराई से धीरे-धीरे—लगातार हिन्दुस्तान को ईसाईस्तान बनाने का कारोबार प्रच्छन्न रूप में उन्होंने जारी रखा था। इसी दृष्टिकोण को लेकर तत्कालीन रेवरेण्ड केनडी ने कहा था—कि जब तक हमारा साम्राज्य भारत में है, हमें किसी प्रकार की अड़चनों की परवाह न करके भारत में हिमालय से लंका तक ईसाई धर्म का विस्तार करना होगा। और जब तक समूचा भारत ईसाई न बनेगा और हिन्दू-मुसलमानों के धर्म की निन्दा न करेगा तब तक हमें अपना काम जोरों से करना चाहिए। हमें जी जान से बल और अधिकार के प्रयोग से ऐसा उपाय करना चाहिए कि भारत पूर्व में ईसाइयों का एक सुदृढ़ गढ़ बन जाय।

इसी बात को दृष्टिकोण में रख कर ईस्टइंडिया कम्पनी की राजनीति चली। उस बात को छोड़िये कि कितने ईसाई मिश्नरियों ने भाँति-भाँति के प्रलोभन, धमकियां और आश्वासन देकर लोगों को ईसाई बनाया। इनाम, कमीशन और लेप्स की कुटिल नीति के फलस्वरूप जब राजा, नवाब, सरदार, जागीरदार, ज़मींदार खुश हो गए तो सैकड़ों मन्दिर, पाठशाला, मकतबों को जो सहायता मिलती थी, बंद हो गई :, तथा ऐसी संस्थाओं को जो गाँव, ज़मीन और वार्षिक इनाम भी मिलते थे, वे भी ज़ब्त हो गए।

इसके बाद जब सती-प्रथा को बन्द्र करने और विधवा विवाह जारी करने के कानून बने, तो लोग लोग चौकन्ने हो गए और यह सोचने लगे—कि ये विदेशी हमारी सामाजिक और धार्मिक रीतियों में भी दखल देना चाहते हैं। जब कलकत्ते में सती प्रथा बन्द होने का आन्दोलन चल रहा

था तभी सरकार ने यह भी घोषणा की थी—कि कैदियों को धार्मिक रिवाज पालन करने का हक नहीं है और जब विधवा विवाह कानून कौंसिल में पास हो रहा था—तब लार्ड कैनिंग ने राय दी थी—कि बहु-पत्नीत्व निवारण का निर्बन्ध भी लेजिस्लेटिव कौन्सिल में लाया जाय और इसके तुरन्त बाद ही वह लाया भी गया। और कोशिश की गई कि उसे जल्द से जल्द कानून का रूप दे दिया जाय। इस कार्य में लार्ड कैनिंग ने बड़ी तत्परता दिखाई थी।

यद्यपि ये सुधार अत्यावश्यक थे और जन-जागरण के बाद जन-नेताओं द्वारा होते। उस काल में भी राजा राममोहन राय और उनके साथी इन सुधारों में सहायक थे। पर जनता में आम तौर पर न तब जागरण था, न राजा राममोहन राय जैसे सुधारकों को बहुमत प्राप्त था। जनता तो अन्धविश्वासों में जकड़ी पड़ी थी और शताब्दियों की रूढ़ियों ने उसकी विचारसत्ता को सुला दिया था। अब उनके जागरण से प्रथम ही विदेशियों ने जो इस प्रकार की चेष्टाएँ कीं, तो अपढ़ और साधारण कोटि की बहुसंख्यक जनता में यह भावना फैल गई कि यह स्पष्ट ही हिंदू मुसलमानों के धार्मिक रीति-रिवाजों पर आक्रमण हो रहा है। और यह विदेशी सरकार हमारे धर्म, विश्वासों और रीति रिवाजों में दखल देती है। स्पष्ट था कि इन धार्मिक रीति-रिवाजों की अच्छाई-बुराई पर जनता विचार नहीं करती थी, परन्तु इतना वह समझती थी कि धर्म शास्त्रों में बताए गए सामाजिक रीति-रिवाजों में किसी तरह हेर-फेर करने का अधिकार केवल समाज के विद्वान धर्म-शास्त्रज्ञों ही को है, विदेशियों को नहीं। इसके अतिरिक्त ऐसे मामलों में जल्दी और ज़बरदस्ती करना भी किसी तरह उपयुक्त न था। जहाँ-तहाँ लोग कहने लगे—लो साहब, सती होना बन्द हुआ, आज विधवा विवाह का चलन हो गया, कल देवी-देवताओं की पूजा भी बन्द होगी। बस, हिन्दू धर्म का बेड़ा ग़र्क।

आम लोगों की इस अशान्त भावना को ईसाई मिशनरियों ने और बढ़ा दिया। वे खुल्लमखुल्ला डींग हांकते थे—कि समूचा भारत ईसाई

होने वाला है। लोग कहते थे—यह तो औरंगजेवी जुल्म हैं। क्या आज कोई शिवाजी जैसा वीर और गुरु गोविन्दसिंह जैसा महापुरुष नहीं जन्म लेगा, जो इन विधर्मी, अत्याचारी विदेशियों को देश से निकाल बाहर करे।

अभी ये बात जनता में चल ही रही थीं कि—रेलगाड़ी चलने लगी और तार लग गए। रेलगाड़ी में छूत-अछूत सभी एक साथ बैठने लगे। इसकी रोक न होने से हिन्दू जातिनिष्ठा को भारी चोट पहुँची। रेल की पटरी और तारों के जाल को देख कर लोग कहते थे, लो यह अब तो ईश्वर ही कृपा करे। धरती माता बांधी जा रही हैं। कुछ लोग कहते—अजी, सब हिन्दू-मुसलमान लोहे की पटरी के द्वारा धुएँ की गाड़ी में बैठा कर रूस भेज दिए जाएंगे। जहाँ भालू उन्हें खा जाएंगे। हिन्दुस्तान में अब अंग्रेज रहेंगे।

इस समय मिशनरियों के स्कूल-कालेज बन गए थे और उनमें धड़ल्ले से बाइबिल हिन्दू-मुसलमानों को पढ़ाई जाती थी। तथा लार्ड कैनिंग की सरकार ने उन्हें बड़ी-बड़ी रकमें सहायतार्थ दी थीं, जब कि देशी पाठशालाएं और मकतब तोड़ दिए गए थे। ईसाई अपने व्याख्यानों में कहते थे—कि जो हिन्दू-मुसलमान ईसाई हो जायगा उसकी ज़मीन-ज़ायदाद, धन-माल पर उसी का पूरा कब्जा रहेगा। ऐसा कानून बन चुका है। यह सत्य भी था कि उन दिनों ईसाई मिशनरियों को मोटी-मोटी तनख्वाहें भारतीय खजाने से दी जाती थीं। उन दिनों साधारण गोरे सरकारी कर्मचारी से लेकर बड़े से बड़े अफसर तक की यह चेष्टा रहती थी कि जल्द से जल्द उनके मातहत सब काले आदमी ईसाई बन जायें। उस समय लार्ड कैनिंग और उनके कौंसिलर ही सरकार थे। इन सब कारणों से लोगों में एक अशान्ति थी, अंग्रेजों के प्रति विद्रोह की भावना घर करती जाती थी और अब इस विचार से कि यदि कभी भारतीय प्रजा विद्रोह करे तो उसकी आँच सैनिकों तक न पहुँचने पाए, देशी सैनिकों में भी ईसाई धर्म का प्रचार जोरों से होने लगा था।

लड़ाई जब नहीं होती थी तो सिपाही लोग फुर्सत में रहते थे, और तब अंग्रेज कर्नल कप्तान उन्हें ईसाई धर्म का उपदेश देते थे। ये उपदेश सीधी सादी नर्म भाषा में नहीं होते थे। उनमें धमकी, कटु व्यंग और हिंदू देवी-देवता तथा मुसलमानों के पैगम्बर को गाली-गुफ्ता तक होती थी। बहुधा मूर्तियाँ भ्रष्ट कर दी जाती थीं। तिलक छाप और चोटी की हिन्दुओं तथा डाढ़ी की मुसलमानों को मुमानियत की जाती थी। सिपाहियों को सब कुछ सुनना और सहना अनिवार्य था। पर ये पेशेवर वीर इन बातों के कारण अंग्रेजों से घृणा करते तथा उनके प्रति विद्रोही बनते जाते थे। यदि कोई सिपाही इन गोरे अफसरों के इन व्यंगों का जवाब देना चाहता था तो उसकी घी-रोटी बन्द कर दी जाती थी। इस प्रकार हिन्दू-मुसलमान सभी सिपाही यह आम राय रखते थे कि अंग्रेजी फौज की बारकों में रहना अपने धर्म-ईमान को खोकर ही हो सकता है। यदि कोई सिपाही ईसाई हो जाता तो उसे तुरन्त इसी कारण हवलदार-सूबेदार बना दिया जाता और योग्य व्यक्ति मुँह ताकते रह जाते।

उन दिनों प्राय: ये सब गरीब-गँवार असहाय और अल्पदर्शी, बेसमझ होते थे। उन्हें धर्मभ्रष्ट और पथभ्रष्ट करना आसान था। इसलिए एक बार अंग्रेज़ों की यह भावना दृढ़ हुई कि पहले इन सब सैनिकों को ही ईसाई बना लिया जाय। उन दिनों कुछ कमाण्डर और कर्नल खास तौर पर इसी अभिप्राय से भरती हुए थे, और सिपाहियों को ईसाई बनाना अथवा सैनिक मिशन समझते थे। उन दिनों देश में ऐसे बहुत से मुल्ला और हिन्दू पण्डित थे जो फिरंगियों का कत्ल करने का फ़तवा दिया करते थे।

ऐसा ही अशान्त वातावरण था जब डलहौजी ने सदियों से प्रचलित दत्तक पुत्र के अधिकारों को अमान्य करके उन्हें पिता की सम्पत्ति से विरत कर दिया। इससे सारे देश का वातावरण क्षुब्ध और क्रुद्ध हो उठा। यह सब हो रहा था कि नए कारतूसों ने जैसे धधकती क्रोधाग्नि पर घी डाल दिया।

: २८ :

महारानी रासमणि

उन दिनों कलकत्ते के दक्षिण अंचल में जान बाज़ार की एक बस्ती थी। जान बाज़ार में महारानी रासमणि दासी रहती थीं। रासमणि बड़ी धनी और धर्मात्मा प्रसिद्ध थीं। उनकी दानशीलता की बड़ी धूम थी। उनके श्वसुर वारेनहेस्टिंग्स के दाहिने हाथ थे। राजा नन्दकुमार को फांसी दिलाने में उनका बड़ा हाथ था। वारेनहेस्टिंग्स की कृपा से उन्होंने बहुत धन-सम्पत्ति एकत्र कर ली थी तथा उन्हें महाराज का खिताब भी मिल गया था। उनकी मृत्यु पर उनके पुत्र महाराज राजचन्द्र वसु ने कम्पनी सरकार की अथक सेवा कर के सम्पत्ति एकत्र की थी। उनकी मृत्यु को भी अब चार साल बीत चुके थे। इस समय रानी रासमणि दासी ही पति की सम्पूर्ण सम्पत्ति की अधिकारिणी थीं। इस समय उनकी अवस्था चालीस बरस की थी और उनकी संतति में चार कन्याएं थीं। तीन कन्याओं का विवाह हो चुका था, किन्तु तीसरी बेटी का प्रसव वेदना में देहांत हो गया था। रानी ने सोचा कि अब उनके एकमात्र आधार दामाद मथुरानाथ कदाचित उनसे नाता तोड़ कर अपने घर चले जायँ, इसलिए उन्होंने अपनी कनिष्ठ कन्या जगदम्बा का विवाह उनके साथ कर दिया था।

रानी जाति की केवट थीं। अंग्रेज़ों की कृपा से बहुत केवट, ग्वाले, वाग्दी आदि उन दिनों राजाबहादुर और महाराजा हो गए थे। परन्तु बंगाल में ब्राह्मणों का श्रेष्ठत्व और जातपात का अहंकार अभी भी बहुत था। रानी रासमणि को देवी का इष्ट था। उनके जमींदारी के क़ागज़ों पर उनकी जो मुहर लगाई जाती थी, उसमें—कालीपद अभिलाषी श्रीमती रासमणि दासी' अंकित रहता था। रानी की बड़ी अभिलाषा थी कि वह काशी जा कर श्री विश्वनाथ का दर्शन करें। इसके लिए उन्होंने बहुत भारी रक़म पृथक् रख छोड़ी थी। परन्तु उस समय बंगाल का

कोई निष्ठावान ब्राह्मण उनके साथ जा कर उन्हें विश्वनाथ जी के दर्शन कराने को राजी नहीं हुआ। इससे हताश हो कर उन्होंने कलकत्ते ही में गंगा तट पर विश्वनाथ बाबा की प्रतिष्ठा कर के भोग-पूजा के बन्दोबस्त करने का इरादा किया। रानी ने गंगा के पच्छिम तट को वाराणसी तुल्य समझ मंदिर के लिए ज़मीन की तलाश की। और उत्तरपाड़ा के गाँवों में स्थान ढुँढवाया। वे उचित से अधिक मूल्य भी देने को राजी हो गईं। परन्तु वहाँ के ज़मींदारों ने यह कह कर ज़मीन बेचने से इन्कार कर दिया कि हम लोग अपने इलाके में केवट के धन से बने घाट पर पैर नहीं रखेंगे। तब लाचार हो रानी को दूसरे किनारे दक्षिणेश्वर में ही ज़मीन लेनी पड़ी। ज़मीन पर भव्य मंदिर बनने लगा, बाग़ीचा भी लगने लगा। कई साल तक काम चला। अभी बहुत काम शेष था—कि रानी ने अपने जीवन की क्षणभंगुरता पर विचार कर के प्रथम देवता की प्रतिष्ठा करने का निश्चय किया। परन्तु वे जाति की केवट थीं, इसलिए प्रतिष्ठा और पूजा के लिए कोई ब्राह्मण नहीं मिला। रानी मन्दिर में देवता की प्रतिष्ठा करा सकती हैं—इसकी किसी भी पण्डित ने व्यवस्था नहीं दी। बड़ी दौड़-धूप और मिन्नत-चिरौरी करने से झामा-पुकुर की पाठशाला के पण्डित जी ने यह व्यवस्था दी कि रानी यदि प्रतिष्ठा से पहले ही देवालय और सम्पत्ति किसी ब्राह्मण को दान में दे दें, और फिर वह ब्राह्मण मन्दिर की प्रतिष्ठा करा के भोग-राग की व्यवस्था करे तो शास्त्र की मर्यादा भी रह जायगी और मन्दिर में ब्राह्मण आदि उच्चवर्ण के लोगों को प्रसाद ग्रहण करने में कुछ दोष भी न लगेगा।

निरुपाय रानी ने अपने कुलगुरु को वह मन्दिर और सम्पत्ति दान कर दी। और उनकी अनुमति से उनकी कर्मचारी की हैसियत से मंदिर-निर्माण तथा प्रतिष्ठा का प्रबन्ध करने लगीं। परन्तु इतने पर भी बंगाल के पण्डितों का विरोध कम न हुआ। उन्होंने कहा—शास्त्र विरुद्धता की कठिनाई तो दूर हो गई, परन्तु फिर भी कोई ब्राह्मण यहाँ न आएगा।

निदान कोई ब्राह्मण शूद्र द्वारा प्रतिष्ठित देवी-देवता को हाथ जोड़ने तथा पूजा करने को राज़ी नहीं हुआ। रानी के गुरुवंश वालों को भी दूसरे ब्राह्मण एक प्रकार से शूद्र ही मानते थे। इसके अतिरिक्त उस वंश में कोई ऐसा विद्वान् ब्राह्मण न था जो प्रतिष्ठा और पूजा का कार्य सम्पन्न करा सके। रानी ने अधिक वेतन और बहुत-सा पारितोषिक देना स्वीकार कर के पुजारी और भण्डारी के पद के लिए ब्राह्मण की तलाश की। परन्तु कोई कुलीन ब्राह्मण राज़ी न हुआ। बड़ी कठिनाई से अपनी पदवृद्धि की आशा से रानी की कचहरी के कारकुन महेशचन्द्र चट्टोपाध्याय ने अपने बड़े भाई क्षेत्रनाथ को राधागोविन्द की मूर्ति का पुजारी नियत किया। किन्तु काली की पूजा करने के लिए पुजारी नहीं मिला। परन्तु अब ब्राह्मणों की भर्ती का मार्ग खुल गया था। झामापुकुर की पाठशाला के अध्यापक रामकुमार भट्टाचार्य महेशचन्द्र के परिचित थे। उनमें परस्पर कुछ गांव का रिश्ता भी था। भट्टाचार्य शाक्त थे। और उन्होंने कभी-कभी चोरी-छिपे कलकत्ते के कायस्थों के यहाँ पुजारी का का काम किया भी था। परन्तु भरोसा न था कि वह शूद्रारानी के यहाँ आ कर भी काम स्वीकार कर लेंगे। फिर भी महेशचन्द्र के कहने से रानी ने बड़ी दीनता से रामकुमार के पास पत्र द्वारा प्रार्थना की—कि जगन्माता की प्रतिष्ठा का कार्य आप की ही दी हुई व्यवस्था के अनुसार हो रहा है, सारी तैयारी हो चुकी है। राधागोविन्द की पूजा के लिए पुजारी मिल चुका है परन्तु काली की पूजा के लिए ब्राह्मण नहीं मिल रहा है। इसलिए आप इस कार्य में सहायता करें।

महेशचन्द्र ने रानी का पत्र रामकुमार को देकर और समझा-बुझा कर तथा लोभ-लालच से वश करके अन्त में उन्हें इस बात पर राजी कर लिया कि जब तक दूसरा उपयुक्त ब्राह्मण न मिले तब तक काली के पुजारी पद का भार वे ही ग्रहण करे और अन्ततः राज़ी होकर दक्षिणेश्वर चले आए। रामकुमार भट्टाचार्य की असंभावित कृपा से रानी की बड़ी प्रसन्नता हुई और फिर बड़ी धूमधाम से जगदम्बा काली की प्रतिष्ठा

की गई। बड़ा भारी दान, भोज का आयोजन हुआ। कन्नौज, काशी, सिलहट, उड़ीसा आदि दूर से पण्डित लोग उस उत्सव में निमन्त्रित हुए। उन सबको रेशमी धोती, दुपट्टा और एक-एक मुहर विदाई में मिली। अनगिनत अतिथि अभ्यागत और दीनदुखी जनों को रानी ने मुक्त हस्त से दान दिया। मन्दिर बनवाने और प्रतिष्ठा कराने में रानी ने ९ लाख रुपया खर्च किया और दो लाख २६ हजार में त्रैलोक्य नाथ ठाकुर से उनका दीनाजपुर ज़िले का इलाका खरीद कर राग-भोग के लिए मंदिर को दे दिया।

मन्दिर की प्रतिष्ठा होने से प्रथम ही रानी विधि से कठोर तपस्या करने लग गई थीं। वे तीन बार स्नान करतीं, हविष्य भोजन करतीं, भूमि पर सोतीं और हर समय जप-पूजन करती रहती थीं। परन्तु कैसी अद्भुत बात थी कि इस धर्मभीरु, चरित्रवती रानी का शूद्रत्व तनिक भी कम न होता था। शूद्रा थीं, अछूत थीं। उनके प्रतिष्ठित देवता भी ब्राह्मणों के लिए अस्पृश्य थे। इन दिनों बंगाल में छूत-छात और जात-पांत का ऐसा ही असाध्य रोग चल रहा था।

: २९ :

अनोखा ब्राह्मण

दक्षिणेश्वर के बगीचे में उत्तर की ओर, गंगा किनारे एक बहुत बड़ा बरगद का पेड़ है। इसका तना और प्रशाखाएँ कोई बीघे भर भूमि में फैली हुई हैं। बीच-बीच में जो बरोहें लटक कर जमीन में आ लगी हैं, वे उसके लिए थूनी का काम देती हैं। इसके दक्षिण में एक छोटी सी फूंस की कुटिया थी, अब उसकी जगह पक्का इंटों का घर बन गया है। उसी कुटिया के आगे एक ब्राह्मण चुपचाप कहीं से आकर बैठ गया था। तेजस्वी और गम्भीर था, वह न किसी से कुछ बोलता था, न किसी ओर देखता था। वह शान्त मुद्रा में चुपचाप बैठा मन्दिर की प्रतिष्ठा के समारोह

की धूमधाम को देख रहा था। हज़ारों नर-नारियों की भीड़ उस समय मंदिर में भरी थी। ब्रह्मभोज हो रहा था। भाँति-भाँति के पक्वान्न ढेर के ढेर तैयार होते और भण्डार से बाहर आते जा रहे थे। बड़े-बड़े चोटी वाले ब्राह्मण भोजन करके पेट पर हाथ फेरते—और मुहर दक्षिणा में लेते जा रहे थे। परन्तु यह ब्राह्मण चुपचाप सबको देख रहा था। उसने यहाँ भोजन भी ग्रहण नहीं किया था।

एक और बारह बरस का बालक उस दिन बड़ी दौड़धूप कर रहा था। उसका निवास इसी कुटिया में था। वह बारंबार वहाँ आता और तेजी से चला जाता। उस बालक की आकृति और रूप रंग तो साधारण था—पर उसके व्यवहार में बड़ा आकर्षण था। जब-जब वह बालक उधर से गुजरता या कुटिया में आता जाता तो यह ब्राह्मण बड़े ध्यान से उसको देखता, पर बालक इतना व्यस्त था और उसकी चेतना कुछ ऐसी तल्लीन थी कि उसे इस बात पर ध्यान ही नहीं गया—कि कोई आगन्तुक यहाँ बैठा है। ब्राह्मण ने भी उसे टोका नहीं। पर वह बड़े ध्यान से उस बालक को देख रहा था।

दोपहर ढल गया और अतिथियों की भीड़-भाड़ छंट गई। बालक की व्यस्तता कुछ कम न हुई तो कुटी की ओर आते हुए उसका ध्यान इस ब्राह्मण पर गया। बालक ने ब्राह्मण के पास आकर कहा—

"आप कौन हैं?"

"एक अभ्यागत अतिथि?"

"क्या आप ब्राह्मण हैं?"

"जन्म तो ब्राह्मण के घर ही हुआ था, पर उसका मुझे अभिमान नहीं है।"

"भोज हुआ?"

"न"

"क्यों? सब ब्राह्मण तो भोजन कर गए।"

"तो इससे मुझे क्या?"

"आप भी भोजन कीजिए, दक्षिणा लीजिए, रानी मोहर दक्षिणा दे रही हैं।"

"मैं भिक्षुक ब्राह्मण नहीं हूं। भोजन और दक्षिणा के लिए यहाँ नहीं आया।"

"तो किसलिए आए हैं?"

"दर्शन करने के लिए।"

"तो चलिए, देवदर्शन कीजिए।"

"मैं देवीदर्शन करने आया हूँ।"

"उधर कालीमाई का दर्शन है। चल कर उन्हीं का दर्शन कीजिए।"

"काली माँ के दर्शन की मुझे उत्सुकता नहीं है। मैं बड़ी माँ के दर्शन करना चाहता हूँ।"

"बड़ी माँ कौन?"

"जिनके पुण्य-प्रताप का यह सुफल दीख रहा है। जिनके हृदय की उदारता, पवित्रता, सौजन्य तथा साधुता का सौरभ इस भूमि में व्याप्त हो रहा है। मैं उन्हीं धर्मात्मा रानी माता के दर्शन करना चाहता हूँ।"

"रानी माँ पूजा में हैं। तीन दिन से वे निराहार हैं। जब तक सब ब्राह्मण भोजन नहीं कर लेंगे वे जल भी ग्रहण नहीं करेंगी। अतः अभी उनका दर्शन नहीं हो सकता।"

"तो जब हो सकता है तभी सही।"

"क्या आप उनसे कुछ माँगना चाहते हैं?"

"मैं उन्हें कुछ भेंट अर्पण किया चाहता हूं।"

"कैसी भेंट?"

"यह उन्हीं को बताई जा सकती है।"

"अच्छी बात है, मैं अवसर पाते ही उनसे कहूँगा। किन्तु आप भोजन तो कीजिए।"

"उनके दर्शन करने के बाद भोजन भी हो जायगा।"

बालक जाने लगा तो ब्राह्मण ने पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है

भैया ?"

"मैं रामकृष्ण हूं। और यहाँ दक्षिणेश्वर में राधामाधव के शृङ्गार करने क कार्य पर नियुक्त हूँ।"

"तुम्हारे भीतर तो भैया कोई महान आत्मा वास कर रही है। क्या तुम ने भोजन किया ?"

"नहीं," कह कर बालक तेजी से भाग गया।

: ३० :

देवी और पुजारी

सूर्यास्त से कुछ पहले ही वह बालक रानी रासमणि को ले कर ब्राह्मण के पास आया। रानी ने दोनों हाथ जोड़ कर ब्राह्मण को प्रणाम किया। पर इससे प्रथम ही ब्राह्मण ने धरती में लोट कर रानी को साष्टाङ्ग प्रणाम किया।

रानी ने दोनों कानों पर हाथ धर कर कहा—

"यह आप ने क्या किया ब्राह्मण देवता ? मैं शूद्रा हूँ, अस्पृश्या हूँ। आप ने मुझे प्रणाम किया, मुझ पर पातक चढ़ाया।"

"आप दिव्यरूपा हैं, सर्व मनुष्यों में श्रेष्ठ और पूज्या हैं। आप के दर्शन से मनुष्य की मुक्ति हो सकता है। मैं प्रातःकाल ही से आप के दर्शन करने की अभिलाषा से यहाँ बैठा हूँ।"

"आप ने भोजन नहीं किया ?"

"नहीं।"

"तो भोजन कीजिए।"

"आप अपने हाथ से रांध कर भात दें तो भोजन कर सकता हूँ।"

"किन्तु यह कैसे हो सकता है, मैं जाति की केवट हूं।"

"तो इससे क्या ? मैं ब्राह्मण हूँ। परन्तु आत्मा जो मेरे अन्तर में वास करता है वही आप के अन्तर में भी है। अन्तर इतना ही है कि

आप धर्मात्मा और पवित्र हैं। और मैं अधम हूँ।"

"शिव, शिव, यह आप कैसी बात कहते हैं, आप ब्राह्मण हैं।"

"ब्राह्मण तो सदा सत्य बोलता है। मैंने भी सत्य कहा है। मैंने आप के सम्बन्ध में सब बातें सुनीं। ब्राह्मणों ने आप का कितना तिरस्कार किया यह भी सुना। जाति-अभिमान में ये मूढ़ अच्छे-बुरे और धर्माधर्म का विचार भी खो बैठे हैं। फिरंगी लोग इनके सिर पर पैर रख कर जो शासन चला रहे हैं वहाँ इन ब्राह्मणों की चाल नहीं चलती। उन्हें माई-बाप बनाते इनको लज्जा नहीं आती। जिस दिन नैष्ठिक ब्राह्मण नन्दकुमार को कलकत्ता में फाँसी दी गई, तब ये ब्राह्मण और इनके शास्त्र कहाँ चले गए थे। इन्होंने शाप दे कर अंग्रेज़ों को क्यों नहीं भस्म कर दिया। ये ढोंगी, पाखण्डी, मूर्ख, घमण्डी ब्राह्मण एक धर्मात्मा रानी का ही नहीं, देवता का भी तिरस्कार करने में नहीं शर्माए। आप जाति से शूद्र हैं, इसलिए आप के द्वारा प्रतिष्ठित देवता का पूजन-नमन भी ये नहीं करेंगे? मैं चाहता हूँ कि मैं इन सब ब्राह्मणों को गोली से उड़ा दूं और हिन्दू-धर्म को इनकी दासता से मुक्त कर दूं।"

रानी ने हाथ जोड़ कर कहा—"आप तेजस्वी ब्राह्मण हैं। जो चाहे कहें, पर मैं स्त्री हूं, शूद्र हूँ, असहाय हूँ, मैं कुछ नहीं कह सकती। मैं तो यही समझती हूं कि मेरा पुण्य सफल हो गया, देवता की प्रतिष्ठा हो गई, और मेरा धन सत्कर्म में लग गया। अब मैं प्रसन्न हूँ।"

"आप केवल शरीर से ही शूद्र नहीं हैं, आप का मन भी इन ब्राह्मणों की दासता में फँसा है। आप आत्म-सम्मान खो चुकी हैं। नहीं तो इतना अपमान करने वाले इन ब्राह्मणों का तो आप को मुँह भी न देखना चाहिए था।"

"ऐसा मत कहिए। ब्राह्मण पृथ्वी का स्वामी है। वह भूसुर हैं।"

"पर वह ब्राह्मण हो भी तो? जिसने अपनी इन्द्रियों को वश में कर के वासना से मुक्ति पा ली हो, और जो सब बन्धनों से मुक्त वीतराग शान्त महात्मा हो, वही तो ब्राह्मण है। ये दक्षिणा के लोभ में निमन्त्रण

खाने वाले पेटू ब्राह्मण थोड़े ही हैं। ब्राह्मण के रूप में बैल हैं।"

"आप समर्थ हैं जो चाहे कहिए, परन्तु कृपा कर भोजन कर लीजिए। आप भोजन करलें तो मैं भी ठाकुर का चरणामृत लूं।"

"कह तो चुका—अपने हाथों से भात रांध कर देंगी तो ही भोजन करूंगा, नहीं तो नहीं।"

"मैं ब्राह्मण को अपने हाथ का भात कैसे खिला सकती हूँ?"

"विश्वास रखिए महारानी, आप का भात खाकर भी मैं ऐसा ही ब्राह्मण रहूँगा। मैं कच्चा ब्राह्मण नहीं हूँ। मेरा ब्राह्मणत्व खूब पक्का है।"

"परन्तु ब्राह्मण सुनेंगे तो आपको जातिच्युत कर देंगे?"

"मैं तो प्रथम ही इन सब भोजन भट्टों को जातिच्युत कर चुका हूँ। वे अब मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते।"

"मैं ब्राह्मण के हाथ से पृथक् भोजन आपके लिए बनवाए देती हूँ।"

ब्राह्मण के हाथ का भात तो मैं खाऊँगा नहीं। आप ही के हाथ का भात खाऊँगा। आप मातृरूपा हैं। जगद्धात्री का स्वरूप हैं। तन मन से शुद्ध हैं। आपके हाथ का भात खाकर मैं उन सब ब्राह्मणों के कुकृत्य का परिशोध करूंगा, जिन्होंने शूद्र कह कर आपका अपमान किया है।"

"तो फिर मेरे महल में पधारिए?"

"न, न यहीं भात राधिए। यहीं सब ब्राह्मणों के सामने खाऊँगा।" रानी ने फिर आग्रह नहीं किया। उसने बालक से कहा—"रामकृष्ण भैया, तू इसी बटवृक्ष के नीचे सब सामग्री जुटा दे। मैं अभी गंगा स्नान करके आती हूँ।"

बालक ने आनन्दातिरेक से ताली पीटकर कहा—"मैं भी तुम्हारा भात खाऊँगा मां।"

रानी ने जवाब नहीं दिया। वह आँचल से आँखें पोंछती हुई घाट की ओर चली गई। बालक भी तेजी से भण्डार की ओर चला। ब्राह्मण पत्थर की मूर्ति की भाँति बैठा रहा।

ब्रह्मभोज

आग की भाँति सर्वत्र दक्षिणेश्वर में यह खबर फैल गई—कि एक ब्राह्मण शूद्रा रानी के हाथ का भात खाएगा। रानी उसके लिए भात राँध रही है। नैष्ठिक ब्राह्मण भीत-चकित होकर एक दूसरे को देखने लगे। इसका अभिप्राय यह था कि घोर कलियुग आ गया है। अब धर्म नहीं बच सकता।

बहुत से ब्राह्मण वटवृक्ष के नीचे जमा हो गए। जहाँ रानी भात राँध रही थीं और वह ब्राह्मण पत्थर की मूर्ति की भाँति निश्चल बैठा था। एक ब्राह्मण ने कहा—

"तुम ब्राह्मण हो कि चमार।"

"मैं ब्राह्मण हूँ।"

"कौन ब्राह्मण हो?"

"पाण्डे हूं। बीसविश्वे का।"

"नाम क्या है तुम्हारा?"

"गोपाल पाण्डे मेरा नाम है।"

"काम क्या करते हो?"

"पाखण्ड और अत्याचार का विरोध करता हूँ।"

"रहते कहाँ हो?"

"बारह वर्ष से देश भर में घूम रहा हूँ।"

"तो तुम शूद्रा के हाथ का भात क्यों खाते हो?"

"मैं साक्षात् जगद्धात्री अन्नपूर्णा के हाथ का भात ग्रहण कर रहा हूं, इससे मेरा और सब ब्राह्मणों का कल्याण होगा?"

"तुम चमार हो?"

"चमार तो वे हैं जो चमड़े को परख कर जाति का पता लगाते हैं।"

"और तुम?"

"मैं ब्रह्म ज्ञानी हूँ। मैं ब्रह्म की एकता को जानता हूँ।"

विवाद होता रहा और ब्राह्मण शान्त भाव से आक्षेपों का उत्तर देता रहा। उसने राम और शीवरी के उदाहरण दिए। धर्म शास्त्र और महाभारत के प्रमाण दिए, और जात-पांत की कट्टरता का पूरा विरोध किया।

अंत में केले के पत्ते पर रानी ने भात परसा। ब्राह्मणों के देखते ही देखते वह बालक भी भात खाने आ बैठा। राधामाधव के शृंगार कर्ता को रानी के हाथ का भात खाते देखकर ब्राह्मण बौखला गए। वे बड़ी देर तक गर्जन तर्जन करते रहे और फिर चले गए।

ब्राह्मण ने भोजन करके कहा—"बस मां, अब मैं जाऊँगा। आप से एक अनुरोध करता हूँ, आप मानेंगी ?"

"आप जो कहेंगे वही मैं करूँगी।"

"तो सुनिए। बारकपुर की छावनी में जो बड़े साहब हैं कमांडिंग जनरल, उनकी स्त्री का नाम शुभदा देवी है। वह ब्राह्मण कन्या है। वह आपही की भाँति निष्ठावाली स्त्री है। भारत में शीघ्र ही एक महा उत्पात उठेगा। एक ज्वालामुखी का विस्फोट होगा। जिसमें सब अंग्रेज फिरंगी भस्म हो जाएंगे। मेरा आप से अनुरोध है कि आप उनसे जाकर मिलें। उन्हें अपनी सखी और मित्र बनाएँ, और विपत्ति के समय उन्हें अपने यहाँ रक्षण दें। मैंने उन्हें सौभाग्यवती रहने का आशीर्वाद दिया है। मेरे इस आशीर्वाद को आप सफल कीजिए। संभव है मैं समय पर उन तक न पहुँच सकूं, इसी से यह भार आपको सौंपता हूँ।"

इतना कह कर वह ब्राह्मण तेजी से वहां से चल दिया। उसने मुंह फेर कर भी नहीं देखा। रानी एक मुहूर्त भर उसी ओर देखती रही, जिस ओर यह अद्भुत ब्राह्मण गया था।

: ३२ :

शुभदा और ब्राह्मणी

जानबाजार की रानी रासमणि मुलाकात के लिए आई हैं ; यह सूचना पाते ही शुभदा एकबारगी ही व्यस्त हो उठी। और वह बंगले के बाहर चली आई। बाहर आ कर देखा—बहुमूल्य कमख्वाब से ढकी एक पालकी सेहन में लगी थी और लकदक सुनहरी पोशाक पहने आठ कहार उसकी बगल में खड़े थे। उनके पीछे पन्द्रह-बीस सवार बंदूकें लिए लाल और हरी बानात के अंगे पहने सफ बाँध कर खड़े थे। सेहन से बाहर मैदान में एक हाथी सुनहरी झोल से सुसज्जित सूण्ड हिला रहा था। फाटक से सट कर रानी के दीवान महेशचन्द्र चट्टोपाध्याय मूल्यवान रेशमी चादर कन्धे पर डाले चुपचाप खड़े थे। उनके पीछे आठ-दस बेहंगी रखी थीं। उन पर बहुत से थाल, झाबे और सन्दूक थे। थालों और झाबों में मिठाइयाँ, पक्वान्न और बक्सों में कीमती वस्त्र भरे थे।

शुभदा देवी को देखते ही रानी रासमणि पालकी से निकल आईं, उन्होंने शुभदा की चरण रज ली। शुभदा देवी ने उन्हें रोक कर कहा—"हैं-हैं, यह आप क्या कर रही हैं ?"

"रानी ने हँसते हुए कहा—"आप उम्र में मेरी बेटी के बराबर हैं, पर आप ब्राह्मण की बेटी हैं, मैं शूद्र हूँ। आप की चरण-रज लेना मेरा धर्म है। मैं जानबाजार की रानी रासमणि हूँ। आप के पिता का गाँव मेरी ही जमींदारी में है। आप के पिता मेरे पति के विद्या-गुरु थे। आपके सम्बन्ध में बहुत दिन हुए मैंने सुना था। पर आप यहाँ हैं, यह नहीं जानती नहीं थी। अब जाना तो दर्शन करने चली आई।"

"मेरा बड़ा भाग्य जो आप ने दर्शन दिए। बड़ी कृपा की आप ने। आप का शुभ नाम और धवल यश मैं सुन चुकी हूँ—आप तो पुण्य-दर्शना हैं। दक्षिणेश्वर भी मैं देख आई हूँ— बड़ा सुन्दर देव-धाम बनाया है आप ने। किन्तु आप मुझे बेटी कहती हैं—फिर भी 'आप' कह कर क्यों

बोलती हैं। तथा दर्शन करने आई हैं, यह क्यों ? दर्शन देने आई हैं, यह क्यों नहीं कहतीं।"

रानी ने हंस कर शुभदा देवी की ठोड़ी उंगली से छू कर उंगलियों की पोर चूम कर कहा—"अच्छा बेटी, तुम कहती हो तो 'आप' नहीं कहूंगी। पर तुम ब्राह्मण हो—ब्राह्मण की बेटी हो—हमारी पूज्य हो।"

"ब्राह्मण हूं ; ब्राह्मण की बेटी—पर यह सब ऊँच-नीच के और जात-पाँत के ढकोंसले मैं नहीं मानती। आप तो जानती हैं कि मैं एक क्रिस्तान अंग्रेज अफसर की पत्नी हूँ। आइए—भीतर आइए।"

रानी ने भीतर आ कर बैठते हुए कहा—

"अब तो आ ही गई हूँ बेटी। परन्तु अनुमति दो—"बिटिया के लिए यों ही कुछ थोड़ा फल-मूल ले आई हूँ। उन्हें यहां मंगा लूं।" उन्हों ने महेशचन्द्र को संकेत किया। महेशचन्द्र बहंगियों को लिए हुए दालान तक चले आए। इतनी भारी उपानय सामग्री देख शुभदा देवी हक्का-बक्का रह गईं। उनके दिल में सन्देह हुआ—कि जैसी भारतीयों की आदत है—रानी इतनी भारी डाली ले कर किसी मतलब से तो नहीं आई हैं ? उन्होंने कहा—

"यह सब आप क्यों ले आई हैं—मेरे पति तो यह स्वीकार नहीं करेंगे ?"

"दूसरी बात क्यों सोचती हो बेटी, मैं तुम्हारे पति से बात कर लूंगी—वे भला बेटी, और माँ के बीच क्या बोल सकते हैं। कहाँ हैं तुम्हारे पति, बेटी ?"

"छावनी में बहुत गड़बड़ हो गई है। एक सिपाही ने मस्तिष्क का सन्तुलन खो दिया है। उसने अपने अफसरों को मार डाला है और स्वयं भी गोली मार कर आत्मघात करने की चेष्टा की—पर वह मरा नहीं। आज उसका कोर्ट मार्शल है। मेरे पति वहीं गए हैं।"

"वह सिपाही कौन है ?"

"एक ब्राह्मण है, बनारस की ओर का पाण्डे है।"

"तो बेटी, ब्राह्मण की प्राण रक्षा अवश्य होनी चाहिए। तुम्हारे पति भी क्या उसके विरुद्ध हैं ?"

'नहीं, वे भरसक उस के जीवन की रक्षा का उपाय करेंगे। परन्तु सेना की दशा बहुत खराब है। ये अपढ़ मूढ़ सिपाही झूठी-सच्ची बातों पर विश्वास करके व्यर्थ ही उत्तेजित हो रहे हैं। सब लोग कहते हैं— कि देश में एक ऐसा आन्दोलन चल रहा है कि सब अंग्रेजों को मार डाला जायगा। कारतूस की बात तो आप ने सुनी ही होगी।"

"कारतूस की बात कैसी ?"

"कि नए कारतूसों में सूअर और गाय की चरबी लगी है। इस बात की झूठ-सच की जाँच किए बिना ही सिपाही उत्तेजित हो रहे हैं।"

"कुछ और भी तो कारण हो सकता है बेटी। खैर, मैं तो तुम से इसी मामले में बातें करने आई हूँ।"

"क्या आप मेरे पति से कोई अनुरोध करेंगी ?"

"नहीं बेटी, मैं तो तुम्हीं से बात करूंगी।'

"तो कहिए, क्या आज्ञा है ?"

"एक ब्राह्मण मेरे पास गया था। उसने कहा—कि एक बड़ा भारी विप्लव होगा—उसमें मैं तुम्हारी और तुम्हारे पिता की रक्षा करूंगा।"

"बड़ी विचित्र बात है। क्या आप उसकी बात पर विश्वास करती हैं ?"

"विश्वास कर के ही यहाँ आई हूँ बेटी। मेरा तो वैसे भी तन-मन ब्राह्मण ही की सेवा-चाकरी के लिए है। सो मैं तुम से और तुम्हारे पति से यह अनुरोध करने आई हूँ कि यदि भगवान् न करे कभी ऐसा दुर्दिन आए तो तुम जानबाजार के महल को अपना ही समझना। मेरे तहत में दो सौ सिपाही हैं। और भी आदमी हैं। वहाँ कोई तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं कर सकेगा। तुम अपने पति और इष्टमित्रों सहित वहीं आ जाना।"

"आप का आश्वासन और कृपा असाधारण है। मैं अपनी ओर से तथा अपने पति की ओर से आप को धन्यवाद देती हूं।"

"बेटी हो कर माँ को धन्यवाद देती हो ? कलियुगी बेटी हो तुम बिटिया।" रानी यह कह कर हँस दीं। फिर कहा—"इस समय तुम्हारे पति से भेंट न हो सकी। पर मेरा संदेश तुम उनसे कह देना। अथवा यह अधिक अच्छा होगा—कि एक बार तुम उन्हें ले कर जान बाजार आ ही जाओ तो आवश्यकता होने पर क्या-क्या प्रबन्ध व्यवस्था करनी होगी, इसका ठीक ठिकाना कर लिया जाय।

"मैं ज़रूर उनसे कहूँगी।"

"मुझे पत्र लिखोगी या मैं चट्टोपाध्याय महाशय को तुम्हारे पास भेजूं ?"

"मैं ही आदमी भेजूंगी।"

"तो बेटी, भूल न करना। कहीं ऐसा न हो—ब्राह्मण की आज्ञा-पालन में मुझ से चूक हो जाय—और मेरा धर्म-कर्म सब नष्ट हो जाय।"

"नहीं महारानी, ऐसा नहीं होगा। किन्तु आप क्या इस भ्रष्टा ब्राह्मणी के यहाँ कुछ भी खाएँ-पिएँगी नहीं ?"

"नहीं बेटी ! नाराज मत होना। मैं तीसरे पहर गंगाजल से स्नान कर के केवल एक जून हविष्यान्न भोजन करती हूं। तथा केवल गंगाजल को छोड़ और कुछ ग्रहण नहीं करती। शूद्र हूं बेटी, गत ग्यारह बरस से मेरा यही नियम चल रहा है। स्वार्थवश ही यह कर रही हूँ—इससे कदाचित मेरा शूद्र जाति से उद्धार हो जाय।" यह कह कर रानी आसन छोड़ उठ खड़ी हुईं।

शुभदा ने कहा—"माँ, आप दिव्यरूपिणी हैं। कौन आप को शूद्र कहता है। जहाँ आप जैसी साध्वी की चरण-रज पड़ेगी—वह भूमि तो एक योजन तक पवित्र हो जायगी।" इतना कह कर हठात् शुभदादेवी ने गले में आँचल डाल कर भू-पतित हो—रानी के चरणों में मस्तक टेक दिया।

"यह क्या किया, यह क्या किया बेटी—गोविन्द, गोविन्द, तुम ने तो मुझे पातकी बना दिया। ब्राह्मण की कन्या हो कर मेरे पैरों में सिर दे दिया। छी, छी।"

"माँ, अपने सारे जीवन में आज मुझ से एक पुण्य कार्य हुआ। मेरा जीवन धन्य हुआ।"

शुभदा की आँखों से आँसू बह चले। रानी ने फिर उसकी ठोड़ी छू कर अपनीं उँगलियाँ चूमीं। और आ कर पालकी में बैठ गई।

: ३३ :

भारतीय नारी और अंग्रेज़ पुरुष

मेजर जनरल व्यस्त भाव से बंगले में आए। उनके चेहरे पर स्पष्ट ही परेशानी की रेखाएँ पड़ी थीं। शुभदा ने शंकित चित से उनकी ओर देख कर कहा—"क्या कोई और दुर्घटना हो गई है ?"

"मंगल पाण्डे का कोर्ट मार्शल हो गया। उसे फाँसी का हुक्म हुआ है।"

"क्या उसे बचा नहीं सके ?"

"मेरी तो सभी कोशिशें बेकार गईं।"

"बड़ी खराब बात है। ब्राह्मण को फाँसी होगी। बंगाल की भूमि को अंग्रेज ब्राह्मण ही के रक्त से क्यों सींच रहे हैं। महाराज नन्दकुमार के बाद अब मंगल पाण्डे ?"

"इस तरह नामों की सूची एकत्र करने से क्या लाभ है शुभदा, भिन्न-भिन्न समयों में भिन्न-भिन्न कारण परिस्थिति वश उत्पन्न हो जाते हैं।"

"तो क्या तुम भी पाण्डे को फाँसी देने के पक्ष में थे ?"

"मैं तो कमीशन का सदस्य नहीं था। फिर मैं तो तुम्हारे अनुरोध की रक्षा कर रहा था। पाण्डे के दोष पर मेरी नजर नहीं थी।"

"तो पाण्डे को अब फाँसी ही होगी ?"

"एक मुश्किल आ पड़ी है शुभदा, बैरक का कोई जल्लाद पाण्डे को फाँसी पर चढ़ाने को राज़ी नहीं होता।"

"क्या ही अच्छा हो कि कमीशन के सदस्यों की भी यही राय हो जाय।"

"यह संभव नहीं है, परन्तु कलकत्ते से जल्लाद बुलाए गए हैं।"

"लेकिन वह तो अभी घायल है। घायल आदमी को फाँसी दी जायगी? यह तो अमानुषिकता की हद है।"

"कभी-कभी अमानुषी काम भी करने पड़ते हैं शुभदा। सैनिक अनुशासन बड़े कठोर हैं।"

"इसका परिणाम क्या होगा। क्या यह कोई नहीं सोचता?"

"विचारक को अपनी सीमा से बाहर सोचने का अधिकार नहीं है।"

"तो आप क्या समझते हैं, कि कलकत्ते से जल्लाद आ जायगा?"

"मैं समझता हूँ आ जायगा।"

"कब तक?"

"परसों तक।"

"तो उसे हम कहीं भगा या छिपा नहीं सकते?"

"इससे क्या होगा? पाण्डे का प्राण तो बचेगा नहीं जल्लाद दूसरा आएगा।"

"तब तक न जाने क्या हो जाय। क्या उसे भगा देने की अनुमति देते हो?"

"इससे प्रथम मुझे नौकरी से इस्तीफा देना होगा।"

"क्यों?"

"मैं अपने दायित्व को कैसे भुला सकता हूँ। शुभदा, तुम्हीं कैसे इसे बर्दाश्त कर सकोगी।"

"उसने तो गोली मार ली थी। अच्छा होता, उसी से यह अभागा ब्राह्मण मर जाता, चाण्डाल का स्पर्श तो उसे न करना होता।"

शुभदा देवी का मुँह बादलों से भरे आकाश के समान गम्भीर हो गया। फिर उन्होंने कहा—"क्या आप ने यह भी सोचा है कि उसकी प्रतिक्रिया क्या होगी?"

"तुम्हारा अभिप्राय मैं समझता हूँ, शुभदा, परन्तु यह अकेले मेरे ही करने की बात नहीं है। इसका सम्बन्ध ब्रिटिश राजनीति से है।"

"लेकिन तुम तो स्वयं अंग्रेज हो, और साथ ही विचारशील बड़े अफसर हो। क्यों नहीं तुम सरकार से कहते ?"

"मैं सिपाही हूँ। सरकार को सलाह देना मेरा काम नहीं है। सरकार की आज्ञा-पालन करना मेरा काम है।"

"भले ही वह आज्ञा अनुचित हो ?"

"आज्ञा के औचित्य पर भी विचार करने का मुझे अधिकार नहीं है। हाँ, मैं नौकरी छोड़ सकता हूँ।"

"इसका मतलब यह—कि बिना आत्मघात किए हम सीधी राह नहीं चल सकते।"

"तुम ने संसार की राजनीति की सब से सुन्दर व्याख्या कर दी शुभदा।"

"क्या मैं उस ब्राह्मण से मिल सकती हूं ?"

"नहीं।"

"क्या उसे कुछ सहायता पहुँचा सकती हूँ ?"

"नहीं।"

शुभदा बड़ी देर तक गुमसुम चुप बैठी रही। फिर उसने कहा—"भीतर आओ।"

मेकडानल्ड ने भीतर जा कर देखा—थालों में बहुत-सी मिठाइयां कीमती साड़ियाँ और वस्त्र हैं।"

"कहाँ से आए ये सब ?"

"दहेज आया है।"

"दहेज ?"

"मैं तो यही कहना चाहती हूँ।" उसने रानी राममणि का आना, उसकी स्नेह-निष्ठा और संदेश सभी कुछ पति को बता दिया।

सुन कर मेकडानल्ड ने कहा—"तुम ने उन्हें रोका नहीं।"

"बहुत कहा। अब उचित है कि एक बार उनके यहां चलो।"

"यही मुनासिब है। तो खैर चलो, अब खाना खा लें। मुझे अभी आफिस जाना है। कुछ बहुत आवश्यक हुक्म आए हैं। उनकी तामील करनी है।"

दोनों पति-पत्नी भोजन करने बैठे। और फिर सारी ही बातों का केन्द्र रानी रासमणि ही रही।

: ३४ :

फांसी और उसकी प्रतिक्रिया

फांसी का फन्दा मंगल पाण्डे के गले में डाल दिया गया, जल्लाद काली टोपी लेकर आगे बढ़ा। मेजिस्ट्रेट, जेलर और जेल का डाक्टर पत्थर की मूर्ति बने पास ही खड़े थे।

मेजिस्ट्रेट ने कहा—

"घर संदेश भेजना चाहते हो।"

"घर को नहीं—देश भाइयों को।" मंगल की आँखें लाल हो गई, उसने एक बार घूर कर अंग्रेज मेजिस्ट्रेट की ओर देखा और कहा—"देश भाइयों को मेरा खून देना और कहना जब तक बदला न लें चुप न बैठें। मरना है तो कुत्तों की मौत नहीं—इन्सान की मौत मरना चाहिए।"

जल्लाद ने काली टोपी मुँह पर डाल दी, रूमाल हिला और तख्ता हटा।

वीर पुरुष का शरीर रस्सी पर झूल गया। न जाने मानव जीवन में कब से यह बर्बर युग समाया बैठा है कि जीवित आदमी को मार डालना न्याय का एक अंग माना गया है।

चौतीसवीं रेजीमेन्ट, जिसमें मंगल सिपाही था अपने उत्तम आचरण के लिए प्रामाणिक था। अपने कमाण्डर ह्वेलर के अधीन इस रेजीमेन्ट ने उत्तम शिक्षा पाई थी। तथा इसके सूबेदार ने द्वितीय-ग्रेनेडियर के दो सैनिकों को, जो राजद्रोह के लिए उकसाने आए थे, सजा दिलाई थी।

जांच अधिकारियों के समक्ष भी यह प्रमाणित नहीं हुआ कि बरहमपुर के उपद्रवों के साथ उनका कोई सम्बन्ध है। यह एक अकस्मात ही की बात थी कि इस रेजीमेन्ट के वहां पहुँचते ही मंगल ने यह उत्तेजना का काम किया। परन्तु मंगल पाण्डे के उपद्रव करने पर ईश्वरी पाण्डे तथा उसके साथियों की उदासीनता से रेजीमेन्ट पर संदेह हो गया। कुछ लोगों का कहना था कि मंगल भंग के नशे में था। परन्तु इसमें संदेह नहीं कि सिपाही अपने अंग्रेज अफसरों से घृणा करते थे। यही कारण था कि जब मंगल ने लेफ्टिनेन्ट वफ पर प्राणघातक आक्रमण किया—तो वे उदासीनता से चुपचाप देखते रहे। असल में ग्रीज़ लगे कारतूस के कारण सिपाहियों के मन में जो घृणा अंग्रेज अफसरों के विरुद्ध उठ खड़ी हुई थी, उससे उन्हें सैनिक अनुशासन की याद दिला कर नहीं रोका जा सकता था।

उन्नीसवीं इन्फैन्टरी के हथियार छीन लिए गए और उसे भंग कर दिया गया। इस समय भी कोई अप्रत्याशित घटना नहीं घटी। सिपाहियों के केवल हथियार ही लिए गए। उनको वर्दियां पहने रहने दिया गया। उनके वर्तन और पैंशन तो ज़ब्त करली गईं, पर घर लौटने का राह खर्च उन्हें दे दिया गया। परन्तु इसका परिणाम यह हुआ कि—मंगल पाण्डे के दुःस्साहस और जघन्य कारतूसों की कहानी सुनाने के लिए ये सैनिक दूर-दूर तक गांवों में बिखर गए और उन्होंने ग्रामीण जनता को अतिरंजित वर्णनों से उत्तेजित कर दिया। जनरल सर आर्थर कैवेन चाहता था कि इस समय इन सिपाहियों को चीन पर अभियान में भेज दिया जाय, जो शायद अधिक उपयुक्त होता। सिपाही सम्भवतः इस तरह अपमानित होने की अपेक्षा समुद्र पार जाना पसन्द कर लेते। परन्तु विदेश सेवा की सम्भावनाओं पर सेना में दो बार उपद्रव हो चुके थे। अतः अधिकारीगणों का इस उत्तेजना के अवसर पर ऐसा करने का साहस नहीं हुआ।

जनवरी ही में नए कारतूसों से धर्मभ्रष्ट होने की चर्चा सेना में चली, परन्तु सरकार ने इससे उत्पन्न उत्तेजना को महत्व नहीं दिया।

विदेशी सत्ता नहीं चाहती थी कि उसकी महत्ता को धक्का लगे। और उसकी प्रतिष्ठा भंग हो। अनेक अफसर तो ईमानदारी से यह विश्वास रखते थे कि सिपाहियों की भावना की कतई परवाह न करनी चाहिए। उन्हें कोई भी रियासत देने का अर्थ होगा—अपनी कमजोरी प्रकट करना। जनरल हिअरसे अवश्य सिपाहियों को समझाने की नीति रखता था। मंगल को फांसी दे दी गई थी। १९ तथा ३४ नम्बर की पल्टनों पर यह संदेह था कि वे विप्लव की गुप्त मंत्रणा करती हैं। ३४ नम्बर की पल्टन के सूबेदार—को इस अपराध में फाँसी दे दी गई थी। इससे यहाँ गुप्त मन्त्रणाएँ होती थीं। इक्के-दुक्के और भी फौजी मुकदमे सिपाहियों पर चल रहे थे और उससे सिपाही भीतर ही भीतर उद्विग्न हो रहे थे। उन्हें अब कारतूसों की चर्चा करने मात्र से ही दण्डित किया जा रहा था। उन्नीसवीं इन्फैन्टरी को भंग कर देने का यह असर हुआ कि लोगों के मन में धर्म परिवर्तन सम्बंधी धारणाएं और जड़ पकड़ गईं। सिपाही यह नहीं मानते थे कि यदि कारतूस में निषिद्ध चर्बी नहीं मिली है—तो सरकार उसकी शुद्धता का प्रमाण क्यों नहीं देती।

इस प्रकार सेनाओं में सन्देह और अविश्वास तथा असन्तोष का वातावरण बढ़ता ही गया। २६ फरवरी को बरहमपुर में दंगा हुआ और २९ मार्च को मंगल पाण्डे की घटना हुई। बंगाल का सैनिक वातावरण यद्यपि इतना अशान्त था, पर उच्च अफसरों को इसकी कुछ चिन्ता न थी। मार्च में प्रधान सेनापति शिमला जाते हुए अम्बाला से गुजरे। उन्होंने इस अवसर पर गवर्नर जनरल के साथ रहना आवश्यक नहीं समझा। अम्बाला तीन प्रशिक्षण केन्द्रों में से एक था। जहाँ विभिन्न रेजीमेन्टों के कुछ सैनिकों को नई राइफलों के चलाने सीखने को भेजा गया था। इन में एक हवालदार कासीराम तिवारी भी था। दूसरा व्यक्ति ३६वीं भारतीय इन्फैन्ट्री का नायक जिऊलाल दुबे था। ३६वीं इन्फैन्ट्री के कुछ सैनिक प्रधान सेना के अंग-रक्षक टुकड़ी में थे। जब ये दोनों गैर सरकारी कमीशन प्राप्त अफसर टुकड़ी के सूबेदार के पास गए

तो उसने उन से भाई-बरादरी का व्यवहार नहीं किया। न उनका पान-तमाखू से सत्कार किया। उस ने कहा कि तुम निषिद्ध कारतूस छू कर ईसाई हो गए हो। अतः जातिच्युत और धर्म-भ्रष्ट हो। इस से इन दोनों सैनिकों को बड़ा दुःख हुआ। और लौट कर उन्होंने यह बात अपने शिक्षक लेफ्टिनेन्ट मार्टिन से कही। साथ ही यह भी कहा कि जब हम अपने गाँव लौट कर जाएँगे तो हमारा क्या होगा। जात-बरादरी में हमारा हुक्का-पानी बन्द हो जायगा तथा हमारे बालबच्चों का ब्याह भी न हो सकेगा। लेफ्टिनेन्ट मार्टिन ने यह बात प्रधान सेनापति महोदय से कही। इसके बाद जनरल एन्सन ने चांद मारी डिपो का मुआइना किया तो केवल इतना कहा—कि कारतूस के सम्बन्ध की जो अफवाह है वह झूठी है। उन्होंने लेफ्टिनेन्ट मार्टिन से यह भी कहा—कि वह सूचित करे कि उसके भाषण की सैनिकों पर क्या प्रतिक्रिया हुई है। इस पर मार्टिन ने एक रिपोर्ट प्रधान सेनापति को दी—जिसका अर्थ यह था कि वे सेनापति की बात पर विश्वास करते हैं—परन्तु उनके गाँव ब्रादरी के लाखों मनुष्य हैं। जिन्होंने उन्हें जाति-ब्रादरी से बहिष्कृत कर दिया है। वे राजभक्त है। पर इस राजभक्ति का उन्हें भयानक दण्ड भोगना पड़ेगा और सामाजिक दृष्टि से वे कहीं के न रहेंगे। उनका भय निराधार नहीं है। अतः सूबेदार के विरुद्ध जो शिकायत की गई है उसकी जाँच अवश्य की जाय।

परन्तु जाँच नहीं की गई। पर यह घोषित कर दिया गया कि सूबेदार हरपालसिंह का आचरण अनुचित—एवं सैनिक के लिए अशोभनीय था। साथ ही इन दोनों अफसरों को भी अछूता नहीं छोड़ा गया। और उन पर ये आरोप लगाए गए कि उन्होंने डिपों में ऐसी बात कह कर उत्तेजना फैलाई और अन्य रेजीमेन्ट के सिपाहियों के मन में यह भय उत्पन्न कर दिया कि जब वे अपनी सेना में लौटेंगे तो उनके साथ भी यही व्यवहार किया जायगा। उनकी पदोन्नति रोक दी गई। और उन्हें खुलेआम निन्दित किया गया। और उन्हें रेजीमेन्ट के नाम पर धब्बा

लगाने वाला कहा गया।

इसके बाद दूसरे ही दिन उनके पूर्वाग्रह और भय के विपरीत उन्हें उन कारतूसों का प्रयोग करने को विवश किया गया।

मेरठ के लेफ्टिनेन्ट कर्नल हाग फर्वरी में ही एक वक्तव्य प्रकाशित कर चुके थे कि कारतूसों को दाँत से काटने की आवश्यकता नहीं है। उन्हें हाथ की चुटकी से दबा कर काम में लिया जा सकता है। सरकार ४ मार्च को यह आदेश भी जारी कर चुकी थी कि कार्तूसों को दाँत से काटने की प्रथा बन्द कर दी जाय। परन्तु सिपाहियों को यह आदेश नहीं बताया गया। ३ मई को लखनऊ में अवध की सातवीं इर रेगुलर इन्फ़ेन्ट्री के रंगरूटों ने अपने कार्तूस लेने और दाँत से काटने से इन्कार दिया। और जबर्दस्ती करने पर अफसरों को जान से मार डालने की धमकी दी। परन्तु भरी हुई गोली बन्दूकों के सामने आते ही वे भाग खड़े हुए, केवल १२० ने हथियार रख दिए। सरकार ने उन्हें सैनिक कानून के अनुसार दण्ड की व्यवस्था कर दी। इसके बाद ४ मई को बैरकपुर में ३४ नम्बर पल्पन को भंग कर दिया गया। सिपाहियों के हथियार ले लिए गए और उनकी वर्दियाँ भी अपमानजनक ढंग से उतरवा ली गईं। केवल किल्मर नाक टोपियाँ जिनकी कीमत उन्होंने स्वयं चुकाई थी उन्हें रखने दिया गया। सिपाहियों ने अफसरों के सामने ही उन टोपियों को घृणापूर्वक पैरों से रोंद डाला। और अपने दण्ड को ग़ुलामी से छुटकारा होना समझ खुशियाँ मनाने गाँवों और देहातों में बिखर गए। उन्होंने घर-घर और गाँव-गाँव में विप्लव के संदेश देने आरम्भ किए। और अब स्थान-स्थान से अंग्रेजों के बंगलों में आग लगाने की खबरें लखनऊ, मेरठ और अम्बाले से आने लगीं। अफसरों ने आदमियों का पता लगाने की बहुत कोशिश की, परन्तु पुलिस भी इनसे सहानुभूति रखती थी अतः कुछ भी पता न लगा।

: ३५ :

बिठूर में नई हवाएँ

जब यह तय ही हो गया कि पेशवा बाजी राव को उसने दक्षिणी साम्राज्य से दूर ले जाकर बसाया जाय, तो पेशवा ने काशी में रहना पसन्द किया था। परन्तु अंग्रेज़ों को यह ठीक नहीं जँचा। इस समय काशी में बहुत से भ्रष्ट देशी राजा निर्वासन का जीवन व्यतीत कर रहे थे। अब एक शक्तिशाली हिन्दुराज्य के अधिष्ठाता को हिंदुओं के इस प्रसिद्ध तीर्थ में रखना खतरे से खाली न था। क्योंकि वहां वह अपनी प्रजा के बहुतेरे लागों से निर्बाध रूप से सम्पर्क स्थापित कर सकता था। अंग्रेज़ उसे मुँगेर या गोरखपुर में धर-पटकना चाहते थे, पर मुंगेर बहुत गर्म था, और गोरखपुर में कोई प्रसिद्ध मंदिर न था। इसलिए पेशवा ने स्वीकर न किया। वह चाहता था कि अंग्रेज़ों को आपत्ति नहीं वह तो मथुरा या जमुना किनारे के किसी शहर में बसा दिया जाय। पेशवा दिल्ली में भी रहने को तैयार था, पर सरकार ने बहुत सी बातों पर सोच विचार करके कानपुर से कुछ ही अन्तर पर बिठूर में बसा दिया। वहाँ उसे एक जागीर दे दी गई, और उसे १८३२ के नियमन द्वारा देश की साधारण दीवानी और फौजदारी अदालतों के अधिकार क्षेत्र से मुक्त कर दिया गया। आठ लाख रुपया वार्षिक पैन्शन उसके और उसके परिवार के जीवन निर्वाह के लिए बांध दी गई। पेशवा भी आराम पसंद आदमी था। उसने अपने को इस निर्वासन जीवन का अभ्यस्त बना लिया। अब भी उसके आश्रितों की संख्या बहुत थी और वे सब उसका सम्मान करते थे। परन्तु सरकार ने उसकी पुरानी पदवी—पंत प्रधान को अस्वीकार कर दिया था। यह पेशवा को बुरा लगा। पर पत्र व्यवहार में अंग्रेज उसे महाराज ही लिखते थे। उसके पास संचित धन बहुत था। और वह समय-समय पर अंग्रेज सरकार को कर्ज देता रहता था। पर उसे यह बात ना पसंद थी कि सरकार ने उसके घसियारों पर टैक्स लगा

दिया था, जिसे उसे ही अदा करना पड़ता था। अंग्रेज़ों के लिए बाजीराव अंत तक चिंता का ही कारण बना रहा। कई बार तो यह अफ़वाह उड़ चली कि वह नेपाल के राजा से मिल कर षडयंत्र कर रहा है। या नर्मा और तिब्बत से सांठ-गांठ कर रहा है। यह एक विचित्र बात है कि बाजीराव के परिवार के लोग तो दीर्घ जीवी न थे। बाजीराव का स्वास्थ्य भी ठीक न था, अंग्रेजों को आशा न थी कि—वह इतने दिन तक जीवित रहेगा और इस पर इतना रुपया खर्च करना पड़ेगा। पर बिठूर में वह सत्तर पार करके मरा।

अपने जीवनकाल में उसने हीन पुत्र गोद लिया, धोंधूपंत उर्फ नाना, सदाशिव पंत उर्फ दादा और गंगाधर अब उर्फ बाला। दादा की बाजीराव के जीवन काल में ही मृत्यु हो गई थी। इसका एक पुत्र पाण्डुरंग था, जो आगे राव साहब के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

बाजीराव योगबाई और कुसुमवाहे नामक दो लड़कियां भी छोड़ गया था जो अभी नाबालिग थीं। उसका एक पड़नाती जो उसके भाई चिन्ना जी ऊपा की पुत्री द्वारिका बाई का लड़का था, स्वर्गीय बाजीराव का एक आश्रित था। सन् १८३९ मे एक वसीयत करके बाजीराव ने अपने दत्तक पुत्र नाना को अपनी पदवी और जागीर का उत्तराधिकारी बनाया था। पर सरकार ने नाना को न पदवी का उत्तराधिकारी माना न पेन्शन का। बाजीराव मरते समय जो रुपया छोड़ गए थे वह तीस लाख से अधिक न था। नाना ने इस पर अधिकार कर लिया तो परिवार में फूट पड़ गई। दोनों नाबालिग लड़कियों की ओर से उनके बाबा बलवंत राव ने पेन्शन का दावा पेश किया। उनका कहना था—कि औरत के पुत्र न होने की दशा में पुत्री को अधिकार पहुँचता है। परंतु सरकार ने धोघू पंत ही को परिवार का मुखिया माना। परंतु फिर भी यह पारिवारिक कलह का चर्खा देर तक चलता रहा। अब उनके विशेषाधिकार भी खत्म हो चुके थे, अतः नाना और उनके भाई का दर्जा सामान्य पुरुष की ही भाँति रह गया। जिससे आवश्यकता होने पर उन्हें

अदालत में हाजिर होना पड़ा। यह अपमानजनक स्थिति तो थी ही पर अब बाजीराव के परिवार के पास कहीं एक हाथ भी भूमि नहीं थी। पुरानी परंपरा के अनुसार पेशवाओं के मरने पर पांच महादान दिये जाते थे—हाथी-घोड़े, सोना-जवाहरात और भूमि। बाजीराव का श्राद्ध यद्यपि ठाठ से किया गया था, पर महादान के लिए उसके उत्तराधिकारी के पास भूमि नहीं थी। तब सरदार रघुनाथ राव विंचूरकर दे जो उन दिनों विठूर ही में थे कहा—कि इसकी जागीर के ५२ गांव पेशवाओं के ही दिये हुए हैं। उसमें से जितना चाहे महादान में दे दीजिए। यह सुन कर धोधूपन्त नाना रो पड़े।

नाना को अपने पिता की मुहर का उपभोग भी नहीं करने दिया गया। और नाना को नई मुहर बनवानी पड़ी। अंग्रेज यद्यपि नाना को भी महाराज ही सम्बोधन करते थे—परंतु उसके साथ सख्ती इस प्रकार होती थी। जिससे नाना का मन खट्टा होता गया।

उन दिनों सभी राजा महाराजा भारत सरकार के विरुद्ध ब्रिटिश सरकार से सदा सपरिषद् गवर्नर-जनरल के विरुद्ध कोर्ट आफ डाइरेक्टर से अपील करने के आदी थे। अन्य पदच्युत राजाओं की भाँति इसी से कोई अन्य डायरेक्टर के पास अपना दूत अजी मुल्ला को भेजा था। परंतु उसे निराश लौटना पड़ा।

नाना यद्यपि खान-पान में कट्टर थे—पर अंग्रेज की दावतें ठाठ की करते थे। वे अक्सर कानपुर छावनी के अंग्रेज अफसरों को दावतें देते पर कभी उनका निमन्त्रण स्वीकार नहीं करते थे—क्योंकि उनके सम्मान में सलामी देने की प्रथा का पालन नहीं होता था। सब कुछ होने पर भी नाना अंग्रेजों के विश्वास पात्र अभी तक थे पर और जब उन पर संकट आया तो सब स्थानीय अफसर उन्हीं की शरण गए।

कानपुर इस समय एक महत्वपूर्ण अंग्रेजी छावनी थी। यह शहर और जिला पहले अवध के राज्य का हिस्सा था। जब यहाँ सहायक सेना रखी गई तब अवध राज्य की ओर से यह जिला और नगर १८०१ में

सेना के खर्च के लिए अंग्रेजों को दे दिया गया था। कानपुर गंगा के किनारे बसा हुआ था। जिसमें छोटी-छोटी नावें बारहों महीने चलती रहतीं थीं। बरसात में भारी जहाज भी चलते थे। नगर का व्यवसायिक महत्व भी था और यहाँ चमड़े की भारी मण्डी थी। इलाहाबाद यहाँ से सौ मील और लखनऊ केवल चालीस मील थे। इस प्रकार कानपुर की स्थिति ऐसी थी कि जिसके एक ओर ग्रान्डट्रंक रोड, दूसरी ओर अवध को जाने वाली बड़ी सड़क थी। इसी से इसका सैनिक महत्व भी अधिक था। और इस समय यहां बड़ी सेना रखी गई थी। इस समय कानपुर में ५७ वीं ५६ वीं तथा पहली ये तीन हिन्दुस्तानी रेजीमेंट, दूसरी घुड़ सवार सेना तथा कुछ हिन्दुस्तानी तोपचियों के रेजीमेंट के अतिरिक्त ६१ यूरोपियन तोपची और छः तोपें यहां था। अंग्रेज सैनिक भी तीन हजार के लेग-भग थे। यहाँ के कमांडिग अफसर जनरल ह्यू ह्वीलर के०सी०डी० थे। जिन्होंने पचास वर्ष सैनिक सेवा की थी। वे लार्डलेक की आधीनता में कभी काम कर चुके थे, और जब लेक ने सन् १८०४ में दिल्ली दखल की थी, तब ये भी उनके साथ थे। बाद में अफ़गानिस्तान और पंजाब की लड़ाइयों में भी इन्होंने बहुत नाम कमाया था। यद्यपि ये अत्यन्त बूढ़े थे, पर इनकी धाक बहुत थी। अंग्रेज उन्हें संकट काल में शक्ति के स्तम्भ समझते थे।

नाना से जनरल ह्वीलर और अन्य अंग्रेज अफसरों के सम्बन्ध बहुत अच्छे थे, और यह कहना अत्युक्ति न होगी कि पेशवा के विठूर में आ रहने से कानपुर का महत्व बढ़ गया।

: ३६ :

बिठूर के महाराज

आज बिठूर के राजप्रासाद में बड़ी धूम धाम थी। कुछ ऊँचे दर्जे के अंग्रेज राज्याधिकारी और उनके बीबी बच्चे—बिठूर के महाराज के अतिथि हुए थे। पेशवा नानाराव ने अपने भाई वालाजी भट्ट को उनके

स्वागत-सत्कार का भार सौंपा था। सब मलाकर कोई पन्द्रह मिहमान थे। वे सब महाराज के ऐश्वर्य को देखकर ग्राश्चर्यचकित हो रहे थे। बालाजी भट्ट स्त्रियों को ग्रन्तःपुर में भी मिलाने ले गए थे। वहाँ मृत पेशवा बाज़ीराव की विधवा रानियों से ग्रौर पेशवा के चचेरे पौत्र की ग्रल्पवयस्का बधू से मिलकर ग्रौर उन्हें सिर से पैर तक जवाहरातों में सम्पूर्ण ग्राभूषित देख कर वे ग्रत्यन्त प्रभावित हुईं थी। ग्रतिथि कोई एक महीने से बिठूर के महाराज का ग्रतिथ्य पा रहे थे। विदाई के दिन महाराज नाना राव से उनकी खास नशिश्तगाह में बैठकर बातें हुई। श्रीमन्त नाना साहब पूरी पेशवाई पोशाक में थे। उनके शरीर पर ग्रास्मानी विलायती बानात का लम्बा ग्रंगा था। जो लगभग सारा ही हीरे मोतियों की बेल बूटियों से लदा था। उनके कण्ठ की मोतियों की माला नाभि तक भूलती थी जिस का मूल्य लाखों रुपया था। उनकी पगड़ी पर जो हीरे-पन्ने की कलगी ग्रौर तुर्रा लगा था—वही केवल ढाई लाख रुपए के मूल्य का था। उनकी कमर में जो तलवार बंधी थी, उसका मूल्य तीन लाख रुपए था।

महिला महिमानों को ग्रन्तःपुर से भेंट भलाई में बहुत से रत्नमणि मिले थे, ग्रौर वह बहुत प्रसन्न थीं।

नाना साहब ने पूछा—इस ग़रीबखाने में ग्राप लोगों का ठीक-ठीक ग्रातिथ्य हमसे नहीं बन पड़ा, परंतु यह ग्राप ही का घर है यह समझकर ग्राप हमारी त्रुटियों को क्षमा करेंगे।"

"यह ग्राप क्या कह रहे हैं महाराज—हमें ग्राए यहाँ एक महीना बीत रहा है। परन्तु ऐसा लगता है, ग्रभी कल ही ग्राए हैं। यहाँ से जाने को मन ही नहीं होता।"

"तो कृपा कर ग्रौर कुछ दिन यहीं मुकाम कीजिए।"

"बिलकुल लाचारी है। सरकारी काम का बहुत हर्ज हो रहा है।"

"यही सोचकर मैं ज़्यादा इसरार नहीं करता। क्या मैडम को मेरा बिठूर पसंद ग्राया।"

"जी हाँ महाराज—मेरे लिए तो यह सब एक स्वप्न का जादू है। भारतवर्ष की समृद्धि की बात मैंने इंगलैंड में सुनी थी। पर यहाँ जो देखा—उसकी तो हम कल्पना भी नहीं करते थे।

"मैं तो राज्य पाट से भ्रष्ट अंग्रेज़ी सरकार की पैन्शन पर जीने वाला ग़रीब आदमी हूँ। और अब सरकार ने पैन्शन भी बन्द कर दी है। यह तो आपने सुना होगा।"

"जरूर सुना है। लेकिन महाराज, आपके घर में तो हीरा-मोती लाल कंकड़ पत्थर की तरह भरे पड़े हैं। आपको भला अंग्रेजी सरकार की पैन्शन की क्या आवश्यकता है?"

"मैडम, कम्पनी सरकार ने पैन्शन हमारे राज्य के बदले में दी थी, और उसमें कोई शर्त नहीं रखी गई थी।"

"मुझे आप क्षमा करें महाराज, हम लोग तो आप से सौंवाँ भाग भी धनी हों—तो कभी नौकरी न करें।"

"ख़ैर, आप यह कहिए कि यहाँ की कौन वस्तु आपको पसंद आई है जो मैं आप की भेंट करूँ।"

"आपकी उदारता और अतिथि सत्कार संसार में प्रसिद्ध हैं महाराज, आप से प्रथम ही रानी साहबा ने अनेक कीमती जवाहरात और वस्त्र मेरी पत्नी और बच्चों को दे दिए हैं। यद्यपि इसकी कोई आवश्यकता नहीं थी। परंतु निस्संदेह वह आप की उदारता और प्रेम का उपहार है।"

"ख़ैर, तो वह घोड़ा जिस पर आप शिकार करते रहे हैं, क़बूल फर्मा कर मुझे प्रसन्न कीजिए।"

"यह आप क्या कह रहे हैं महाराज, वह घोड़ा अरब नस्ल का है। उसकी कीमत एक हजार रुपयों से कम नहीं।"

"अफसोस यह है कि मैं आज पूना में नहीं हूं, और इससे ज्यादा बढ़िया भेंट मैं आप जैसे प्रतिष्ठित मिहमान को नहीं दे सकता।"

"यह आपका शिष्टाचार है महाराज, निस्संदेह आप एक अवतारी पुरुष हैं।"

"मैडम, मैं आप से अनुरोध करूंगा कि जब तक कानपुर में हैं, कभी-कभी आजाया कीजिए। साहब को तो फुर्सत नहीं, मगर आप तो आ सकती हैं।"

"ज़रूर आऊँगी महाराज, खास कर आप के महल में जो गुड़िया सी सुन्दर अल्प-वयस्का वधू है। उसने मेरा मन मोह लिया है। उसे देखने अवश्य आऊँगी, परन्तु महाराज, आप लोग इतनी छोटी उम्र में शादी क्यों कर लेते हैं?"

"इसलिए—कि विवाह को हम एक धर्मानुष्ठान और जन्म-जन्मान्तर से सम्बन्धित मानते हैं, यह परिवार का मंगल सूत्र है।"

"परन्तु इतनी छोटी आयु में तो उनमें परस्पर प्रेम भाव नहीं रह सकता।"

"प्रेम को हम विवाह के लिए गौण समझते हैं। मुख्य बात आत्मा की एकता की है। यद्यपि हमारे यहां विवाह के बाद प्रेम होता है, परन्तु बहुत कम जोड़े असफ़ल होते हैं।"

"बिलकुल अद्भुत बात है।"

नाना साहब हंस पड़े। उन्होंने कहा—"इससे भी अधिक अद्भुत बात यह है कि हिजएक्सिलेन्सी लार्ड डलहौजी ने कर्नल स्लीमैन की बात मान ली और अवध के बादशाह को गद्दी से उतार दिया।"

"क्या महाराज को यह बात अच्छी नहीं लगी? आप तो जानते ही हैं, कि अवध के बादशाह सलामत रियासत के कामों में बिलकुल ही दिलचस्पी नहीं लेते थे।"

"जो बात नई निराली होती है, वह मुझे ज़रूर अच्छी लगती है। लार्ड डलहौजी का यह काम अपना जोड़ नहीं रखता। और इसके समर्थन में अभी आपने जो बात कही है, वह भी बेजोड़ है।"

"महाराज शायद व्यंग कर रहे है।"

"आप ऐसा क्यों सोचते हैं। मैं तो सच ही कह रहा हूँ।"

"परन्तु क्या यह सच नहीं है कि अवध के प्रजाजन नबाव की

राजनीति से ऊब चुके थे।"

"इस का जवाब देने में मैं असमर्थ हूँ।" हिजएक्सिलेन्सी गवर्नर जनरल ने अभी हाल ही में भारत को छोड़ते समय जो शब्द कहे हैं—वह शायद आप के प्रश्न का आंशिक उत्तर हो सकता है।"

"आप का अभिप्राय हिजएक्सिलेन्सी के किन शब्दों से है।"

"उन्होंने कहा था—मैं भारत की भूमि को समतल बनाने आया था"

"उनका अभिप्राय ब्रिटिश साम्राज्य में अम्नो-आमान क़ायम करना था।"

'मैं समझता हूँ कि हम लोगों की अपेक्षा लार्ड डलहौजी ही अधिक अच्छी तरह अपने वक्तव्य के अर्थ को समझ सकते हैं।"

"मेरा खयाल है. लार्ड डलहौजी की नीति महाराज को जंची नहीं।"

"आप जानते ही हैं मेरे दोस्तों, कि मैं अंग्रेज नहीं हूँ—केवल अंग्रेज का दोस्त हूं।"

"तो महाराज, हम ताजीस्त आपकी दोस्ती को, मिहमान नवाजी को, मिहरवानियों को आपकी उदारता को याद रखेंगे।'

"बड़ी कृपा है आप की।"

"तो अब अलबिदा।"

"आप आनन्द से जायं।"

: ३७ :

विठूर के राजमहल में

विठूर बड़ा ही दर्शनीय नगर था। वह पुण्यश्रोता भगवती जान्हवी के किनारे एक तीर्थ की भांति प्रथम ही से प्रसिद्ध था। किन्तु अब, जब प्रसिद्ध पेशवा यहां २६ वरस तक रह चुके थे। उनके साथ बहुत-सी सेना-सेवक—हाथी-घोड़े, रथ-यान नौकर-चाकर, दास-दासी, सरदार, कुटुम्ब कबीला था। बाजीराव बड़े ठाठ से रहते थे। उनकी रानियां भी दान-पुण्य बहुत करती थीं। इन सब कारणों से विठूर इन दिनों अत्यन्त

दर्शनीय हो गया था। बाजीराव के जीवन काल में विठूर में पृथक् थे, अंग्रेज कमिश्नर रहता था—जो वास्तव में पेशवा की गति विधि देखने के लिए था। परन्तु पेशवा से अंग्रजों का इस प्रकार सतर्क रहना व्यर्थ ही था। बाजीराव के रक्त में वह गर्मी ही न थी—कि वह उकसता। वह पूरा आराम तलब, विलासी, कायर और निराशावादी था। अंग्रेजों की इस कैद में वह खुश था, और उसने पूरे २६ वर्ष इस कैद में खूब ठाठ से काटे थे।

परन्तु नानाराव धोंधूपन्त कुछ दूसरे ही ढंग का आदमी था। वह एक तेजस्वी, उद्ग्रीव और महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। उसका तरुण रक्त था, और वह विश्व की राजनीति में दिलचस्पी लेता था। अंग्रेजों के सहवास का उसे शौक था। बहुत अंग्रेज अफसर और उनकी में-में बाजीराव के जीवन काल में ही विठूर आतीं, जिनका स्वागत-सत्कार नानाराव करते थे। उनके साथ सैर-सपाटा, शिकार-सवारी करते और चलती बार उन्हें बहुमूल्य सौगातें भेंट देकर विदा किया करते थे। इससे नानाराव का अतिथि सत्कार अंग्रेजी तवकों में प्रसिद्ध हो उठा था, और वह उन दिनों अंग्रेजों के भारी मित्र माने जाते थे।

बाजीराव के मरने पर यद्यपि सरकार ने उनकी पेन्शन और दूसरी पेशवाई सुविधाएँ बन्द कर दीं थीं, और उन्हें असहाय स्थिति में डाल दिया था। पर उनका रंगढंग, तौरो तरीक नहीं बदला था। अंग्रेज अफसरों का उनके यहाँ आना जाना और उनका स्वागत सत्कार वे अब भी उसी प्रकार करते थे।

पेशवाओं का राजमहल ठीक गंगा के किनारे था। गंगा उसकी किलाबन्दी से टकराती थी। राजमहल की बारहदरी से गंगा की बहार स्निग्ध चांदनी रात में बहुत आकर्षक दृष्य उपस्थित करती थी। ग्रीष्मकाल में दूर तक फैला हुआ भागीरथी का प्रशान्त जल, और उसके तट पर आनन्द से मज्जन क्रीड़ा करने वाले नर-नारियों के जनरव—मधुर स्तोत्र पाठ और भावनापूर्ण भजनों से ब्रह्ममुहूर्त में ही स्वर्गीय वातावरण की

सृष्टि होती थी। बाजीराव और उनकी रानियों ने गंगातट पर अनगिनत मंदिर बनवाए थे। जिनका शिल्प कौशल अपूर्व था। बालसूर्य की सुनहरी किरणों में उनके स्वर्ण कलश बड़े ही भले लगते थे। राजमहल का प्रांगण बहुत भारी था। सब सरदारों के और उनके परिवारों के आवास उसी प्रांगण में थे। उसमें प्रशस्त राजपथ, बाज़ार और अनेक कार्यालय थे। वहीं मन्त्रीमण्डल के भी प्रधान भवन थे। राजभवन में जो दरबार हाल था—उसकी सजावट अद्वितीय थी। उसमें कीमती ईरानी कालीन बिछे थे, और विलायती झाड़ फानूसों में हज़ारों मोमबत्तियाँ जल कर एक अजब छटा दिखाती थीं। द्वारों पर रंगीन चिकें बिछी रहतीं थीं। बाजीराव कला प्रेमी था। उसने दूर-दूर से सुन्दर सजावट की वस्तुओं का संग्रह किया था। बढ़िया कारीगरी की चीजें, बड़े-बड़े शीशे। हाथी दांत और चन्दन की पच्चीकारी की विविध वस्तुओं से पेशवा का वह राजमहल शोभा में अपनी समता नहीं रखता था। भोग-विलास के उपयोग की ऐसी कोई वस्तु नहीं थी जो वहाँ न हो।

शीतकाल था। बारहदरी में एक जड़ाऊ चौकी पर नाना धोंधूपन्त और उनके साले संवलो के पटवर्धन मसनद पर बैठे थे। उनके अंग पर कीमती शाल-दुशाले और रत्नमणि मुक्ताओं से सुसज्जित वस्त्र थे। सामने अंगीठियों में कोयले धधक रहे थे और गंगा जमनी काम के पेचवान रखे थे—जिनकी खमीरी तमाखू की मीठी महक बारहदरी में फैली थी। नानाराव की आयु अभी तैंतीस ही वर्ष की थी, और पटवर्धन राव भी लगभग उनके समवयस्क थे। दोनों गम्भीर मुद्रा में बात-चीत कर रहे थे। सांगली राव ने कहा—

"अब आपने क्या करना सोचा है?"

"सोचना-विचारना क्या है। मेरा जैसा उच्चकुल और वीर वंश है उसी अनुरूप या तो वैभवशाली जीवन व्यतीत करूँगा, या मर मिटूँगा।"

"तो अब कम्पनी सरकार से कुछ आशा नहीं।"

"मैं तो यही समझता हूँ। उन्होंने नाटक की समाप्ति कर दी हैं।

मैंने यह सोच कर, कि शायद लंदन से न्याय हो, अजीमुल्ला खाँ को अपना दूत बना कर वहाँ भेजा था। परन्तु उसका पत्र मिला है कि पेन्शन मिलने की कुछ भी आशा नहीं है। वह रानी विक्टोरिया तक से मिल लिया है।"

"परन्तु पेशवा के श्रेष्ठ परिवार के साथ कम्पनी सरकार ने साधारण जनों के समान व्यवहार करके महा अन्याय किया है। इसे मराठे सहन नहीं करेंगे।"

"स्वर्गीय श्रीमन्त बाजीराव साहब ने जब अपना राज सिंहासन कंपनी को सौंपा था तो स्पष्ट यह तय हुआ था—कि उसके बदले में कम्पनी वार्षिक आठ लाख रुपए देगी।"

"तो अब यदि पैन्शन आगे सदा के लिए चालू न रखना हो तो फिर पन्शन के बदले छोड़ा हुआ राज्य वे वापस कर दें।"

"बस, यही तो मैं कहता हूँ।"

"कम्पनी का यह काम अन्यायपूर्ण, असंगत और बाहियात है। आखिर उनकी युक्ति क्या है।"

"वे कहते हैं—स्वर्गीय श्रीमन्त ने पैन्शन से बचाकर बहुत-सी रक़म जमा कर ली है। वह इतनी अधिक है कि उनके परिवार के खर्च के लिए काफी है।"

"पर कम्पनी की सरकार यह भूल जाती है कि यह पेन्शन आपस की संधि की एक शर्त के अनुसार मिलती थी। और उसके खर्च करने के तरीके पर कोई नियन्त्रण की शर्त नहीं थी। इसलिए पैन्शन किस तरह खर्च की जाय यह पूछने का कम्पनी को क्या अधिकार है?"

"अधिकार नहीं है, पर हरेक की शर्तों को ठुकराने का बहाना भी तो चाहिए।"

"मैंने यही सब बातें लिख कर तर्क संगत निवेदन पत्र लेकर अजीमुल्ला खां को इंगलैण्ड भेजा था।"

"क्या वह विश्वासी और योग्य व्यक्ति है?"

"निस्संदेह, उसमें असाधारण बुद्धि है। उसकी सूझबूझ मौलिक है, वह अंग्रेज़ी और फ्रैन्च भाषा का परम ज्ञाता है। तथा बहुत दिन तक अंग्रेजों की सोहबत में रह कर उनकी मनोवृत्तियों का पूरा जानकार हो गया है।"

"क्या वह निराश हो कर लौट रहा है?"

"नहीं, उसने लिखा है कि वह—इटली, फ्रांस और रूस जायगा। जहाँ अंग्रेज़ों से युद्ध हो रहा है। वहाँ के रंगढंग देखेगा, और उन देशों को अपने कार्य में सहायता के लिए तैयार करेगा।"

"किस कार्य में सहायता के लिए?"

"उसने लिखा है कि उसने एक अत्यन्त महत्वपूर्ण योजना बनाई है। जो अत्यन्त गुप्त है, उसे वह यहाँ आ कर ही बताएगा।"

"वह योजना क्या उसी की है?"

"एक और व्यक्ति भी उसके साथ है, वह भी लण्डन में बैठा है।"

"वह कौन है?"

"उसका नाम गोजी बापूजी है। वह सतारे का नयदूत बन कर गया था। पर अजीमुल्ला की भांति उसे भी निराशा ही मिली, अब वे दोनों कोई बहुत भारी योजना बना कर यूरोप के देशों में घूम-घूम कर सहायता जुटा रहे हैं।"

"मैं समझता हूं, वह अंग्रेज़ों को भारत से निकालने की योजना है।"

"मैं भी यही समझता हूँ।"

"तो श्रीमन्त, अच्छे और बुरे में मैं आपके साथ हूँ। साहस न त्यागना, जो संकल्प किया है उसे पूरा उतारना। आप प्रतिष्ठित पेशवाओं के उत्तराधिकारी हैं। यह पेशवा बाजीराव प्रथम, पानीपत के सदाशिव-राव भाऊ, राजवंशी विश्वासराव, महात्मा माधवराव और नानाफड़नवीस के ये चित्र कुछ मौन संदेश दे रहे हैं। वह संदेश क्या है जानते हैं आप?"

"जानता हूँ, अच्छी तरह जानता हूं। पूज्य पुरुषों की निन्दा करना पातक तो है, पर मैं कहता हूं कि यदि स्वर्गीय श्रीमन्त पेशवा के कुल में

होते हीं नहीं। उनके स्थान पर मैं होता तो आज पूना के भाग्य का सितारा न अस्त होता।"

"तो श्रीमन्त, आप जिस यशस्वी कुल के प्रतिनिधि हैं। और जिस महान् हिन्दु साम्राज्य के उत्तराधिकारी हैं उस साम्राज्य की—पैन्शन अपने शत्रु से अर्जी प्रार्थनाओं द्वारा मांगना—श्रीमन्त का अपमान है।"

"तो आपकी समझ में मैं क्या करूँ?"

"श्रीमन्त, क्या आप पुण्यपुरुष छत्रपति शिवाजी को भूल गए? क्या प्रतिशोध और क्रोध का वेग आपके मन में उदय ही नहीं होता? क्या आपने नहीं सुना कि अपमान से मृत्यु ही अच्छी।"

"मैं तो कह ही चुका, जीऊँगा तो शान से, नहीं मर मिटूंगा। एक बात आप शायद नहीं जानते?"

"कौन बात?"

"मेरे यहाँ अंग्रेज छोटे-बड़े अफ़सर आते हैं। मैं उनका यथा सम्भव अच्छा, अतिथि सत्कार करता हूँ। परन्तु स्वयं कभी अंग्रेजों का निमन्त्रण स्वीकार नहीं करता।"

"यह क्यों?"

"इसलिए कि वे पेशवा के सम्मान में तोपें दाग़ना नहीं पसन्द करते।"

"आपका आत्मसम्मान देखकर सुखी हुआ। अब मैं चलता हूँ। आप ऐसे ही भाव मन में रखिए। और मुझे अपने साथ ही समझिए।"

"आपका सहारा पा कर मैं कृतार्थ हुआ।"

इतना कह कर नाना साहब उठ खड़े हुए। उन्होंने अंक भर कर अपने सम्बन्धी से भेंट की और प्रेमपूर्वक विदा किया।

: ३८ :

अजीमुल्ला खां का तर्क

उसी प्रसिद्ध बारादरी में दो राजपुरुष बैठे थे। एक थे महाराज नानाराव, धोंधूपन्त और दूसरे थे अजीमुल्ला खां। बातचीत का विषय

अति गम्भीर था। नानाराव ने कहा—

"तो आप खाली हाथ लौटे, मेरी पैन्शन नहीं लाए ?"

"पैन्शन नहीं लाया, मगर खाली हाथ नहीं लौटा हूँ।"

"खाली हाथ नहीं तो मेरे लिए आप क्या लाए हैं ?"

"भारतवर्ष का सिंहासन मैं आपके लिए लाया हूँ श्रीमन्त।"

"आपका अभिप्राय क्या है ?"

"यही, कि बस आप कमर कस कर उठिए और अपनी तलवार म्यान से बाहर कीजिए।"

"किस के खिलाफ ?"

"अंग्रेजों के।"

"क्या मैं पूना का पेशवा हूँ जिसकी कमान में दो लाख मरहटों की तलवारें सदा तैयार रहती थीं ?"

"यक़ीनन आप पूना के पेशवा हैं महाराज, आज दो-चार लाख मराठे ही क्यों, सारा हिन्दुस्तान तलवार लेकर आपके झंडे के नीचे आ जायगा।"

"लेकिन अजीमुल्ला साहब, आजकल अंग्रेजों की जागती जोत है, कौन उनके सामने सिर ऊंचा कर सकता है ?"

"पेशवा की गद्दी के उत्तराधिकारी को छोड़ और किस में यह ताक़त है।"

"लेकिन मेरी ताक़त तो भाई बहुत महदूद है।"

"वह जल्द ला महदूद हो जायगी। उत्तर और दखिन में वह आग जलेगी कि बुझाए न बुझेगी। उसमें सब अंग्रेज जल कर खाक होंगे।"

"यह आप सुपना देख रहे हैं अजीमुल्ला खां साहब।"

"मेरा सुपना सच्चा होगा महाराज। बस आपको उठ खड़े होने भर की देर है।"

"लेकिन अंग्रेज तो मेरे दोस्त हैं। उनके साथ मेरे दोस्ती के ताल्लुक़ात हैं। कैसे मैं उनसे लड़ सकता हूँ।"

"बादशाहों का कोई दोस्त नहीं हुआ करता महाराज। उनकी तलवार

ही उनकी सच्ची दोस्त होती है।"

"खैर, तो आप अपनी योजना बताइए। मैं भी तो समझूं कि कहां तक कुछ किया जा सकता है।"

"महाराज, मैंने देश-देश की खाक छान ली। दुनिया के सच्चे दर्शन किए। मैं इंगलैण्ड से फ्रांस गया, तुर्किस्तान गया, तथा रूस गया। सभी जगह मैंने एक वस्तु देखी, जिसकी हम यहां हिन्दुस्तान में कल्पना भी नहीं कर सकते थे।"

"वह कौन-सी वस्तु थी ?"

"क्रान्ति ?"

"कैसी क्रान्ति ?"

"महाराज, आपने फिरंगियों की रेलगाड़ी का इंजन तो अवश्य ही देखा है। उसमें कितने छोटे बड़े पुर्जे लगे हैं। अनगिनत चक्र, पेच और पुर्जों के काम और उद्देश्य सब कोई नहीं समझ सकता। पर उसकी प्रचण्ड शक्ति सब ने देखी है। किस तरह आग खाती और धुंआ उगलती यह रेलगाड़ी सब से तेज चाल से धरती को दहलाती हुई सैंकड़ों आदमियों को लिए चली जाती है। बस महाराज, क्रान्ति भी ऐसी ही एक चीज़ है। जिसकी प्रचण्ड शक्ति मैं अपनी आंखों से देख आया हूं।"

"आपने क्या देखा ?"

"महाराज मैंने देखा, कि क्रान्ति की जड़ में एक सर्वक्षोभक सिद्धान्त काम करता है। जिसके कारण लाखों मनुष्य अपने व्यक्तिगत स्वार्थों और हानि लाभ को छोड़ कर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को उद्यत हो जाते हैं, और युद्ध का निमन्त्रण स्वीकार करते हैं। उनके प्रचण्ड वेग से सिंहासन डांवाडोल हो गए। राजमुकुट धूल में मिल गए, और अनगिनत जन हंसते-हंसते अपने ही लोहू में डूब गए।"

"यह अपने देखा है ?"

"महाराज, इस समय महात्मा गेरीवाल्डी इटली में क्रान्तियज्ञ कर रहे हैं। मैं उनसे मिला। उन्होंने मुझे क्रान्ति की राह दिखाई। और

महाराज, उन्होंने बचन दिया है कि वे भारत को अंग्रेजों की दासता से मुक्त करने स्वयं सेना लेकर आएंगे।"

"आप सच कह रहे हैं?"

"महात्मा गेरी बाल्डी ने ही मुझे क्रान्ति का मन्त्र दिया है। उस क्रान्ति का—जिस की छाया में हज़ारों वीरों की तलवारें रणक्षेत्र में चमकेंगी। जंग लगे राजमुकुट फिर से जगमगाएंगे। डगमगाते सिंहासन अचल चट्टान बनेंगे। केवल सिपाही ही नहीं—शन्ति प्रिय नागरिक भी इस क्रान्ति में योग देंगे।"

"किन्तु कैसे?"

"हमें एक ऊँची आवाज उठानी हैं—हे भारत के हिन्दु और मुसलमानों! उठो। अंग्रेजों के पापों का घड़ा भर चुका है, धर्म युद्ध के लिए तलवार उठाओ और रणक्षेत्र में कूद पड़ो।"

"आवेश में आकर अजीमुल्ला खड़े हो गए। उन्होंने हाथ उठाकर सतेज वाणी से कहा—"महाराज, अंग्रेज समझते हैं कि हिन्दुस्तानियों को किसी न किसी तरह फ़टे पुराने वस्त्र और रूखी-सूखी रोटियां मिल जाएँ तो वे इसी में खुश हैं। उन्हें इससे अधिक और किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। परन्तु इतिहास हमें बताता है कि रोटी के लिए लाखों मनुष्य नहीं कटाए जाते। पाण्डव कौरव युद्ध, ग्रीक और ईरानियों के युद्ध, रोम ने महाराज की पृथ्वी की विजय, यूरोप के जंगलियों का दक्षिण में आना, अरबों का जंगलों में भटकना, जेरूसलम की दीवारों पर क्रूज़ेडरस का धावा बोंलना। पैग़म्बर मुहम्मद का नंगी तलवार लेकर मैदान में आना, प्रोटस्टेन्ट और रोम कैथोलिको के सदियों के खूनी झगड़े, फ्रान्स के प्रजातन्त्र के सामने समस्त यूरोप का अड़ जाना, रूस और तुर्क का धर्भ के बहाने लड़ पड़ना, और अंग्रेजों का इस देश में सब के सिर पर लोहा बरसा कर अधर्म का बहाना, यह सब किस लिए? क्या एक टुकड़ा रोटी के लिए? या अंग ढकने के लिए? नहीं, नहीं। राम, अर्जुन, दुर्योधन, अलेक्जेन्डर, सीज़र, नेपोलियन, पिथारस, हानिवाल, सीथियों, लियोनिडास,

पोरस क्या एक टुकड़ा रोटी के लिए धरती को कम्पायमान करके लाखों करोड़ों प्राणियों के लोहू से धरती को लाल कर गए ? नहीं। इन में और भी गम्भीर प्रश्न हैं ? राज्य सत्ता-नीति-धर्म रक्षण। स्वातन्त्र्य, अधिकारों का रक्षण इसके कारण है। ये कारण अमर हैं। हिन्दुस्तान के बच्चे इन बातों को भूले नहीं हैं। कभी भूलेंगे भी नहीं। वे सदा लड़े हैं और आगे लड़ते रहेंगे।"

नाना साहब भी चुपचाप खड़े हो गए। उनका हाथ तलवार की मूंठ पर था, और उनके होंठ कांप रहे थे। उनकी दृष्टि सामने फैले हुए हुए गंगा के विस्तार पर तैर रही थी। वे कुछ सोच रहे थे। अजीमुल्ला ने कहा—

"क्या सोच रहे हैं महाराज।"

"यही, कि करो या मरो।"

"जय हो, महाराज, जय हो। बस यही बात है। यही क्रान्ति का मूल मन्त्र है। "करो या मरो" बस, हम पलासी का बदला लेंगे। महाराज, पलासी के संग्राम को आज सौ साल बीत रहे हैं। भारत की आत्मा ने बदला लेने की उसी समय प्रतिज्ञा की थी। यही क्रान्ति का बीज था। इसे सींचा अंग्रेजों ने, अपने काले-कारनामों से। बनारस, रुहेलखण्ड तथा बंगाल में वारेन हेस्टिंग्स ने इसकी मूल में कुटिलता का खाद दिया। फिर मैसूर, असई, पूना, सतारा, और उत्तर भारत की हरीभरी भूमि पर वेलजली ने वही किया। क्रान्ति के इस खेत को उन्होंने बंदूकों और तलवारों से जीता। पूना के शनि बार बाड़े पर, सह्याद्रि की दुर्गम चोटी पर, आगरे के क़िले पर और दिल्ली के सिंहासन पर अत्याचार की चोटें की गईं। कितने राजा रजवाड़े धूल में मिल गए। महाराज, पूरे सौ साल तक अंग्रेज देशी सैनिकों को जुल्म जबर्दस्ती की चक्की में स्वेच्छा से पीसते रहे। अरथर वेलजली—अंग्रेजी सेना का कमान्डर—जिन भारतीय सिपाहियों की बदौलत देशों को जय करता था—उन्हें घायल होने पर अस्पताल न भेज कर तोप से उड़ा देता था। जब

इन अंग्रेजों का पाप से घड़ा भरने लगा—तो नैलोर में क्रान्ति की आग भड़क उठी। यह क्रान्ति का प्रथम दर्शन था। आज उस घटना को पचास बरस बीत गए हैं। उस में जनता और राज पुरुषों ने सिपाहियों को अपने बश में कर लिया था। बाजारों में फकीरों का स्वांग भरे सैकड़ों प्रचारक तब प्रचार कर रहे थे। उन्होंने क्रान्ति का चिन्ह रोटियों को बताया था। और उस में हिन्दु और मुसलमान दोनों एक हो कर उठे थे। अब महाराज, समय आ गया है कि जिस क्रान्ति का यह पूर्व रूप था, उसका विराट अनुष्ठान हो। और आप ही इस धर्मयज्ञ के पुरोहित बनें।"

नानाराव जड़ बने खड़े रहे। उनके मुंह से एक शब्द नहीं निकला। अजीमुल्ला कह रहे थे—"पलासी के बाद ही से अंग्रेजी सेना के भारतीय सिपाही असन्तुष्ट रह रहे हैं। और अब वह असन्तोष चरम सीमा को पहुँच चुका है। अब तो समूचे भारत के मन में यह प्रश्न घुमड़ रहा है, कि कम्पनी का राज यहां रहे ही क्यों ? एक तरफ देश में यह भावना जड़ पकड़ रही है, दूसरी ओर डलहौजी ने अंग्रेजी हड़प नीति से आग में घी डाला है।

पहिले उसने पंजाब के शेरों पर वार किया। पंजाब केसरी रणजीत सिंह के मरते ही पंजाब पर हाथ साफ किया, रानी जिन्दाकौर बनारस में बैठी कुढ़ रही है, और उसका बेटा दिलीपसिंह फिरंगी शत्रु के फेंके टुकड़े चबा रहा हैं। परन्तु इससे क्या ? पंजाब पर हाथ साफ होते ही ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार हिमालय से कन्याकुमारी तक हो गया। अंग्रेजों की चिरभिलाषा पूरी हुई। इसके बाद उसने वर्मा का गला घोटा, और अब हिमालय से रामेश्वर तक समूचा प्रदेश लाल रंग में रंग गया। अब महाराज, अपनी तलवार मियान से निकालिए, इस लाल रंग पर गोरे फिरंगियों के रक्त का ताजा लाल रंग बखेरिए।"

नाना साहब की आँखों में आँसू भर आए। उन्होंने गद्-गद् कण्ठ से कहा—'आह ! पंजाब ? पचास हजार वर्गमील का भूभाग—जिसकी

आबादी ४ करोड़ है जहाँ पुरातन ऋषियों ने वेदमन्त्रों का उच्चार किया था। पंच नदियों के किनारे सम्राटों ने अश्वमेघ यज्ञ किए थे। जिसे जीतने की लालसा से सिकन्दर यूनान से दौड़ा आया था, उसे डलहौजी ने जीत कर दासता की बेड़ी पहना दी ?"

नाना साहब की वाणी कांपने लगी। उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया। अजी मुल्ला ने कहा —"हाँ, महाराज, वह पंजाब इस तरह जेर किया गया। परन्तु डलहौजी पक्का अंग्रेज था। वह अपने साम्राज्य की चारों ओर की सीमाएँ बढ़ा कर ही सन्तुष्ट न हुआ, उसने भारत भर में फैली हुई राज्य मर्यादाओं को एक-एक करके उखाड़ फेंकना आरंभ किया। उसे डर था—कि कहीं प्राचीन राज्यों के इन अर्धमृत सिंहासनों से एक दिन प्रतिशोध की हुँकार न उठ खड़ी हो, और महाराज, क्या सचमुच ही सतारे के सिंहासन पर हिन्दू साम्राज्य का एक सिंह शावक नहीं पल रहा था ? पर ज्योंही सितारे के महाराज अप्पा साहब मरे—कि डलहौजी ने सितारे को जप्त कर लिया। यह कह कर—कि महाराज निस्संतान मरे। निस्संतान मरने पर तो देहात के एक किसान की झोंपड़ी भी जब्त नहीं की जाती। फिर सितारा तो अंग्रेजी राज का मित्र था। सो मित्र ही का गला घोटा गया। इससे प्रथम क्षत्रपति प्रतापसिंह को ब्रिटिश शत्रु कह कर गद्दी से हटा दिया गया था। और अब तो दत्तकों को खुले रूप में अवैध कह कर उन्हें अधिकारच्युत कर दिया गया है। शिवाजी के सिंहासन के डलहौजी ने टुकड़े-टुकड़े कर डाले। सितारे की दुखद गाथा बहरे कानों में सुनाने के लिए निष्ठावन्त रंगोजी बापू लन्दन गए। लाखों रुपए उन्होंने वहाँ के बैरिस्ट्ररों की जेबों में डाले। लंडन हाल की राह की खाक छानी। यहाँ तक कि घर लौटने तक—को पाई न रही, तो कह दिया गया, सतारे का राज्य कभी न मिलेगा। उधर रंगोजी अपना उद्योग कर रहे थे—उधर डलहौजी नागपुर की भौंसले की गद्दी को हज्म कर रहा था। डलहौजी ने ७६ हजार वर्गमील का भूभाग हड़प लिया। जिस की जन-संख्या पचास हजार और वार्षिक आय ५० लाख थी। इतना ही

नहीं, उजड्ड गोरे राजमहल में घुस गए। अस्तबल से घोड़े खोल लिए, हाथियों पर चढ़ी रानियों को उतार कर हाथियों को कौड़ी के तीन कर के नीलाम कर दिया। राजमहल की अतुल सम्पदा, हीरा, मोती, स्वर्ण, रत्न सब लूट लिए। बीस-बीस रुपए में घोड़े और सौ-सौ में हाथी बेचे गए। रानियों के अंग से ज़ेवर तक उतार लिए गए। परन्तु अभी भी कसर रह गई तो राजमहल को खोद कर तालाब कर दिया। वे रानी के शयनागार में घुस गए, पलंग तोड़ दिया और पलंग के नीचे की भूमि खोद डाली गई। महल में अंग्रेजी कुदाल चल रही थी, और महारानी अन्नपूर्णा वाई रुग्णशैया पर मृत्यु की घड़ियाँ गिन रहीं थी। महाराज, ये अंग्रेजों की मित्रता के उपहार थे। आप भी इस उपहार से वंचित नहीं रहे। आप भी अंग्रेज़ों के मित्र हैं और उनके विरुद्ध तलवार उठाने में संकोच कर रहे हैं।

नानाराव धोंधूपन्त का अंग प्रत्यंग क्रोध से कांप रहा था। उन्होंने एक झटके के साथ अपनी तलवार खींच ली। उसे हवा में घुमा कर उन्होंने सिंह गर्जना की, और कहा—"मैं नानाराव धोंधूपन्त पेशवा प्रतिज्ञा करता हूँ—कि जब तक एक भी अंग्रेज़ भारत में हैं, मेरी यह तलवार म्यान में नहीं जायगी, और मैं या तो भारत की भूमि से अंग्रेज़ों को निकाल बाहर करूँगा या मर मिटूंगा।"

: ३६ :

हिन्दुस्तानी कूटनीति

"महाराज की जय हो। खुशखबरी है। मोरलेण्ड बिठूर आ रहे हैं।" अजीमुल्ला ने महल में प्रविष्ट होते हुए प्रसन्न हो मुद्रा में कहा। महाराज नानाराव यह सूचना सुनते ही प्रसन्न गए। उन्होंने कहा—"तब तो हमारा काम बन गया समझिए। मोरलेण्ड हमारा शुभचिन्तक और सज्जन अंग्रेज है।"

"महाराज, अभी तक तो सभी अंग्रेज अफसर आपके शुभचिन्तक हैं, आगे देखा जायगा।" उसने मुस्कराकर कहा—"किन्तु मोरलेण्ड से ऐसी युक्ति से काम लेना चाहिए कि साँप मरे न लाठी टूटे।"

"मोरलैण्ड मेरे बहुत से कंकड़-पत्थर पचाए बैठा है। स्वर्गीय श्रीमन्त के ज़माने में वह, जब कानपुर का न्यायाधीश—था उसे हमने हीरे-मोतियों से भर दिया था। वह अभी नौकरी छोड़कर चला जाय तो भी उसकी सात पुश्त के लिए वह काफी है।"

"तो श्रीमन्त, मोरलैण्ड ने भी आपके नमक का हक़ अदा किया। उसने आपको पेशवा की सनद और मसनद तथा पैन्शन दिलाने के लिए लेफ्टीनेन्ट गवर्नर थामसन से बहुत माथा पच्ची की, पर थामसन एक ही काँइयाँ और डलहौज़ी का गुर्गा था, उसने मोरलैण्ड की एक न सुनी। मोरलैण्ड से उसका झगड़ा तक हो गया।"

"खैर, ग़नीमत है कि दुनिया में एक अंग्रेज ऐसा है तो—जो किसी हिन्दुस्तानी के नमक का हक़ अदा कर रहा है। अब तक तो हम हिन्दुस्तानी ही अंग्रेजों के नमकखार थे।"

"जो भी हो, मोरलेण्ड से फायदा उठाना चाहिए। इस वक्त वह आगरे में जज है। उसकी काफी प्रतिष्ठा है। खासकर हेनरी लारेन्स तो उसे चचा कहता है।"

"कुछ लिखा है उन्होंने—बिठूर में कै दिन ठहरेंगे?"

"सिर्फ दो दिन श्रीमन्त, उन्हें ज्यादा छुट्टी नहीं है।"

"तो खैर, आपके ठहरने—शिकार विनोद के सब उम्दा सामान एकत्र कर दीजिए। वह प्रसन्न होकर जाय।"

"आप निश्चिन्त रहें श्रीमन्त, सब ठीक हो जायगा। मेरा ख्याल है वह आज शाम तक आ जायगा।"

"तो आप लखनऊ अपना कासिद भेज दीजिए। ऐसी युक्ति कीजिए कि हम लखनऊ हो भी आएँ—और किसी को सन्देह भी न हो।

श्रीमन्त, हम इतना बड़ा आयोजन कर रहे हैं, यह सम्भव नहीं

है कि अंग्रेजों के कान में इसकी भनक न पहुँचे। परन्तु वे अपने अधिकार के नशे में मस्त है। एक दर्जे तक बेवकूफ भी हैं। वे अभी तक इस बात को नहीं जानते—कि भारत में किसी जाग्रत जन-शक्ति का जन्म हो चुका है। वे तो शक्ति का आधार केवल राजा-रजवाड़ों को ही अब भी समझ रहे हैं। और अपनी समझ में वे उन्हें खत्म भी कर ही चुके हैं। उनकी समझ में तो अब भारत में उनका सामना करने वाली कोई शक्ति हैं ही नहीं। जो राज्य हैं—वे उनके आश्रित हैं। आज तो जो रियासतें बची हैं, उनके राजा ही नहीं—दीवान, वज़ीर, सेनापति और सब राज्य-कर्मचारी उन्हीं के गुलाम हैं। क्या मजाल, ज़रा चूं करें। फिर भला उन्हें डर काहे का।"

"आप ठीक कहते हैं खान, पर हमारी यह नवीन जन-शक्ति जन्म तो ले चुकी है। पर अभी बच्चा हैं। हमें सावधानी से काम लेना चाहिए।"

"तो महाराज, आप तीर्थ यात्रा के मिस दिल्ली, पंजाब और मध्य भारत तक की यात्रा कर आए। बादशाह सलामत तक से मश्विरा हो चुका। कहीं कोई संदेह की बात हुई?"

"नहीं हुई, यह ठीक है, पर अंग्रेज बड़े चालाक हैं।"

'कौवा भी बड़ा चालाक होता है श्रीमन्त, मगर खाता है ग़लीज।"

"खैर, तो हमारी योजना पूरी हो जाय, और समय से प्रथम वह प्रकट नहो—हम तो महज इतना ही चाहते हैं।"

"श्रीमन्त, हमें अपने तीन केन्द्र बनाने हैं—दिल्ली, कानपुर और बिहार। दिल्ली में सब कुछ तय हो चुका, वहाँ हमारे आदमी काम कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त अब मुगल तख्त की भी मौत और ज़िन्दगी हमारे ही हाथ में है।"

"यह ठीक है।"

"उत्तरी भारत, मध्यभारत और पश्चिमी भारत की जनता कुछ गिने हुए राज्यों को छोड़कर हमारे साथ है। दिल्ली, अवध, झांसी, बिहार, तथा

बंगाल के जागीरदार और शासक सभी हमारी ओर आशा की नजर से देख रहे हैं। अब हम अंग्रेजी फौजों को भी अपनी ओर तोड़ चुके हैं। बस शंख फूकने की देर है।"

"मैं आशा करता हूँ कि हमारे बाहरी मित्र भी हमारी समय पर सहायता करेंगे।"

"इटली के वीर गेरीवाल्डी के वचन से मैं श्रींमन्त को अवगत कर चुका हूँ। इसके अतिरिक्त दो शक्तियाँ—जो अंग्रेजी ताकत के बराबरी की है—हमारा साथ देंगी। हसन अस्करी ईरान में काम कर के वापस आ गए हैं। अब वे उत्तरी भारत के छोटे-बड़े राज्यों का दौरा कर रहे हैं। और मैं रूस से बात करके आया हूं।"

"फिर भी अवध की बेगम का पर्दे से बाहर आना आवश्यक है। बंगाल रेजीमेन्ट के सारे जवान अवध के निवासी हैं। वे सब अवध के बादशाह की राज्यच्युति पर क्षुब्ध हैं। अब यदि अवध की बेगम हमारा साथ देती हैं। तो हमें बड़ी मदद मिलेगी।"

"श्रीमन्त, बंगाल, पटना इलाहाबाद, कानपुर, मेरठ और अम्बाला सर्वत्र ही सेना में विद्रोह का बीज पनप रहा है। इन सभी केन्द्रों की सेनाएँ हमसे विद्रोह में साथ देने के लिए वचन बद्ध हो चुकी हैं।"

"तब तो बस अब लखनऊ ही रह गया।"

"लखनऊ श्रीमन्त का एक बार जाना अत्यन्त आवश्यक है। वहाँ से अवध के राजाओं और ताल्लुकेदारों को अपने साथ लेना है। निश्चय ही लखनऊ इस स्वतन्त्रता संग्राम का भारी मोर्चा बनेगा। अंग्रेज भी यह जानते हैं। मौलवी अहमद शाह अवध में काम कर रहे हैं। खासकर अवध के साहूकारों का संगठन आवश्यक है। हमारे संग्राम का सारा खर्चा वही सम्हालेंगे, और मौलवी अहमद शाह उन्हें ठीक कर रहे हैं। अब हसन अस्करी साहब भी लखनऊ पहुँचना चाहते हैं। बस, श्रीमन्त को वहाँ जाने का यही अवसर है।"

"हमें अवध के साहूकारों ने निमन्त्रण भी दिया है।"

"तो बस, कालपी में विहार के शेर महाराज कुँवर सिंह से श्रीमन्त की मुलाक़ात हो ही चुकी है, और उन्होंने दानापुर छावनी के सब सैनिकों को साथ लेने का भार अपने ऊपर ले लिया है।"

"किन्तु अच्छा होता कि महाराज कुँवरसिंह भी लखनऊ की गुप्त सभा में हमारा साथ देते।"

"पर अब इसका समय नहीं रहा है श्रीमन्त। इसके अतिरिक्त उनके ऊपर काम का जो भार है, उसे उन्हें पूरा करने दीजिए।"

"तो बस, अब तो मोरलैण्ड को काबू करना आपके हाथ है।"

"मैं आशा करता हूँ—सब काम निहायत खूबसूरती से अंजाम दे दिया जायगा।"

"तो मैं निश्चिन्त हूं। आप आवश्यक प्रबंध कर दीजिए।

अजीमुल्ला उठ कर चले आए। नाना साहब अनेक गम्भीर चिंताओं में निमग्न हो गए।

: ४० :

बदले की मुलाक़ात

मोरलैण्ड साहब महाराज नानाराव से भेंट करके, उनके अतिथ्य सत्कार से खुश होकर कानपुर चले गए। उसके दूसरे ही दिन इतवार था। भोर ही उन्हें सूचना मिली कि महाराज नाना साहब आपसे बदले की मुलाक़ात करने हाज़िर आए हैं। मोरलैण्ड भौचक रह गए। उन्होंने विठूर जाकर नाना से व्यक्तिगत भेंट की थी, वह नहीं चाहते थे—कि उसका कोई राजनैतिक उपयोग हो। नाना से वे डरते भी थे, वह जानते थे कि भारत सरकार उन्हें संदिग्ध पुरुष समझती है, और वह नहीं चाहते थे—कि उनसे उनकी कोई घनिष्टता प्रकट हो। उन्होंने नाना साहब के आगमन का समाचार सुनकर कहा—"लेकिन आज तो इतवार है।"

नाना साहब का विश्वस्त अनुचर बावाभाट आगमन कर संदेश लेकर

गया था, उसने आगे बढ़ कर कहा—"हुजूर, श्रीमन्त से तो आपके घरू संबंध हैं। फिर उन पर आपके अहसानात भी कितने हैं, यह कितनी अकृतज्ञता और असभ्यता होती—कि आप तो इतनी दूर चल कर बिठूर तक उनसे मिलने को पधारें और वह यहाँ आकर आप से बदले की मुलाकात तक न करें।"

मोरलेण्ड ने कुछ असमंजस में पड़ कर कहा—"खैर बुलाओ।"

नाना साहब ने हँसते हुए आकर मोरलेण्ड से हाथ मिलाया और कहा—"आप तो स्वर्गीय श्रीमन्त के मित्र है। अतः मेरा भाव आप के प्रति वैसा ही है जैसा स्वर्गीय श्रीमन्त के प्रति। आपका असुविधा का मैं विचार ही न कर सका। मेरा मन न माना—मिलने चला आया। इससे मैंने आपको नाराज तो नहीं कर दिया।"

मोरेण्ड साहब ने कहा—"नहीं महाराज, आपका यहाँ स्वागत कर के मैं प्रसन्न हुआ। पर आपने यह नाहक तकलीफ उठाई।"

"तकलीफ कुछ नहीं। मेरे छोटे भाई राव साहब कुछ काम से लखनऊ जा रहे हैं। सोचता हूँ—मैं भी दो दिन को चला जाऊँ। लखनऊ मेंने देखा नहीं है। इसके अतिरिक्त मैं लखनऊ के कमिश्नर सर हेनरी लारेन्स से भी भेंट करना चाहता हूँ। मुझे कुछ नई असुविधाएँ हुई हैं। चाहता हूँ—उनसे कहूँ कि जरा ख्याल रखें। आखिर अब तो मेरी दौड़ वहीं तक है।"

"क्या हर्ज़ है। सर हेनरी लारेन्स बड़े सज्जन हैं। आपकी प्रार्थना यदि गैर कानूनी न हुई तो वह जरूर आपका ख्याल करेंगे।"

"तो मेरे लिए ज़रा-सा कष्ट कीजिए, एक परिचय पत्र मुझे दे दीजिए, जिससे उन्हें इतना तो मालूम हो जाय कि आप मेरे मुरब्बी हैं।"

"बहुत खुशी से।"

और मोरलेण्ड साहब ने एक परिचयपत्र उन्हें लखनऊ के कमिश्नर के नाम लिख दिया। अपने कार्य में कृतकृत्य होकर नाना साहब लखनऊ को तत्काल चल पड़े। उनके साथ अजीमुल्ला खाँ, राव साहब तथा कुछ

अन्य विश्वस्त अनुचर भी लखनऊ पहुंचे। कुछ व्यक्ति अलग-अलग गुप्त रूप से लखनऊ पहुँच गए।

: ४१ :

हेनरी लारेन्स और उनका असिस्टेन्ट

लखनऊ के कमिश्नर सर हेनरी लारेन्स एक जबर्दस्त कूटनीतिक अंग्रेज राज पुरुष थे। ये वही व्यक्ति थे जिन्होंने पंजाब में अंग्रेजी हुकूमत की स्थापना करके दुर्दान्त सिखों को पालतू बनाया था। सर हेनरी लारेन्स का क़द लम्बा, उठान शानदार, शरीर सुदृढ़ और मुख मण्डल प्रभावशाली था। उनके ललाट की रेखाएँ उनके गहन चिन्तन का परिचय देती थी। चिन्ताओं तथा राजनीतिक उलझनों के कारण उनके नेत्रों में ज़रा रुखाई दीख पड़ती थी, परन्तु उनकी चमकती दृष्टि और गहन चितवन उन्हें विचारवान व्यक्ति प्रकट करती थी। उन्हें सदा भारी परिश्रम करना पड़ता था—इस लिए वे थके से दीख पड़ते थे, परन्तु वह काम और परिश्रम से कभी न घबराते थे, वह विचारशील, स्वभाव और उदार विचारों के पुरुष थे। वह उन लोगों में थे—जिनकी ज़बान नर्म और काम सख्त होते हैं। लखनऊ आने से पूर्व वह राजस्थान के पोलिटिकल एजेन्ट गवर्नर जनरल थे, और स्वास्थ्य सुधारने के विचार से विलायत जाने का विचार कर रहे थे—कि इतने ही में लार्ड कैनिंग ने उन्हें लखनऊ का कमिश्नर नियुक्त करके तुरंत वह भार सम्भालने का आदेश दे दिया। लार्ड कैनिंग के वह खास विश्वापात्र थे।

इस समय लखनऊ तत्तातवा बना हुआ था। बादशाह वाजिद अलीशाह की सिंहासन च्युति साधारण घटना न थी। इससे अवध के सब तालुकेदार—राजा, उमराव, जागीरदार बिगड़ बैठे थे। अवध के देहातों से ठठ के ठठ लोग लखनऊ में आ रहे थे, वे सब अपने मन में वह ज़हर अंग्रेज़ों के लिए लाए थे—जो बंगाल से प्रताडित अवध के सिपाहियों ने

उनमें भर दिया था। वे सब क्रुद्ध और अशान्त थे, और अब तरह-तरह की अफवाहें लखनऊ में उड़ती रहती थीं। इसलिए लार्ड कैनिंग ने लखनऊ के कमिश्नर के पद पर उनकी नियुक्ति करके आराम की सांस ली थी।

परन्तु अभी लखनऊ आए उन्हें दो मास भी नहीं हुए थे। इसी बीच लखनऊ के राज-परिवार, जागीरदार और तालुकेदार आदि के पेचीदा क़जिए उन्हें चुभाने पड़े थे। इसी समय उनके असिस्टेन्ट मार्टिन्स गुविन्स ने उन्हें सूचना दी—कि नानाराव महाराज बिठूर लखनऊ में आए हैं, और उनसे मुलाकात करना चाहते हैं। नानाराव की लखनऊ में अवाई सुन कर उनका माथा ठनका। नानाराव के सम्बन्ध में वे विशेष कुछ नहीं जानते थे। परन्तु इतना ज़रूर उन्हें मालूम था कि वह पदच्युत पेशवा का पुत्र है और उसके साथ सावधानी बरतनी आवश्यक है।

उन्होंने अपने असिस्टेन्ट मार्टिन्स गुविन्स की नानाराव के सम्बन्ध की सब जानकारी सहित तलबी की। मार्टिन्स गुवन्सि बड़े बिगड़ेदिल मिज़ाज के अफसर थे। भूतपूर्व कमिश्नर जैकसन से उनकी कभी नहीं बनी। गवर्नर-जनरल की मंशा थी—कि लखनऊ के राजपरिवार तथा सामन्तों से अच्छा व्यवहार किया जाय—पर गुविन्स को यह बात पसन्द न थी। वह भारतीयों को काला निगर कहा करते थे तथा सभी भारतीयों के प्रति उनके तुच्छ भाव थे। गुवन्सि यद्यपि तेज मिजाज थे और भारतीयों के प्रति द्वेषभाव अवश्य रखते थे—पर अपने काम में पूरे चौकस थे। इस समय लखनऊ में वह अर्थ-व्यवस्था की देख-भाल कर रहे थे।

गुवन्सि ने आकर उन्हें बताया कि महाराज नानाराव लखनऊ देखने और आप से मुलाकात करने की इच्छा से आए हैं—तथा आगरे के न्यायाधीश मोरलेण्ड का सिफारिशी खत लाए हैं।

"क्या यह पदच्युत पेशवा का पुत्र है ?"

"जी हां, लेकिन इसे न पिता की पदवी प्राप्त हैं, न पैन्शन, न विशेषाधिकार। वह महज अंग्रेज़ सरकार का प्रतिष्ठित प्रजाजन हैं।"

"इसके अाधीन कितना इलाका विठूर में है ?"

"इलाक़ा तो अब सब ज़ब्त हो गया है। सिर्फ विठूर गाँव पर उसका अधिकार है।"

"भूतपूर्व पेशवा को क्या तोपों की सलामी भी थी ?"

"जी हाँ, पर इसे सलामी प्राप्त नहीं है।"

"क्या सरकार ने इसे पेशवा का उत्तराधिकारी माना है ?"

"केवल पारिवारिक सम्बंधों और सम्पत्ति को उत्तराधिकारी तक सीमित उसके राजनैतिक अधिकारों का नहीं।"

"तो इसका निर्वाह कैसे होता है।"

"पेशवा बहुत धन छोड़ कर मरा है सर।"

"इस नानाराव का रहन-सहन कैसा है।"

"बहुत शानदार। वह बड़ा शाहखर्च आदमी है। सब लोग—भारतीय और अंग्रेज उसे महाराज बिठूर कहते हैं।"

"क्या उसका आचरण कुछ संदिग्ध है ?"

"ठीक नहीं कहा जा सकता। कुछ लोग कहते हैं कि वह अंग्रेजों के विरुद्ध विचार रखता है। पर हक़ीकत तो यह है कि वह हर तरह अपने को अंग्रेज़ों का मित्र प्रकट करता हैं। बहुत अंग्रेज़ अफसर उसके मित्र हैं। और उसकी महमाननवाजी का लाभ उठाते हैं। वह बड़ा उदार और अतिथि-सत्कार करता है, वजाहिर कोई प्रमाण उसके विरुद्ध नहीं है।

"मोरलेण्ड ने उसके सम्बन्ध में क्या लिखा है ?"

"उसने मित्र कह कर उसका परिचय दिया है।"

"आप कह सकते हैं कि वास्तव में मोरलेण्ड उससे मित्रवत् व्यवहार रखता है ?"

"सर, अभी मोरलेण्ड कानपुर एक सरकारी काम से आए थे, और वह विठूर उससे मिलने गए थे।"

"क्या आप कह सकते हैं कि मोरलेण्ड को उसके तथा उसके परिवार के साथ पुराने सम्बन्ध कैसे थे।'

"मोरलेण्ड जब कानपुर में जज थे—तब सदैव वह पेशवा बाजीराव के अनुकूल रहे। उसके मरने पर जब इस नानाराव की पैन्शन जब्त हुई, तब मोरलेण्ड ने उसकी सिफारिश लेफ्टिनेन्ट गवर्नर थामसन से की थी।"

"आपने मुझे इतनी ज्ञातव्य बातों से परिचित कराया, मैं आपका कृतज्ञ हूँ। लेकिन क्या आपको उसके लखनऊ आने और मुझ से मुलाक़ात करने में कुछ उज्र है।"

"लखनऊ में तो वह आ ही गया है। अब अनुमति न देना तो ठीक न होगा। क्योंकि शहर के लोगों को उसका आना विदित हो गया है। और वे उसका धूमधाम से स्वागत करना चाहते हैं। यदि हम नानाराव को रोक देते हैं, तो शहर वालों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा, जो वर्तमान बिगड़ी हुई स्थिति में हानिकर होगा।"

"नानाराव के साथ कितने आदमी हैं?"

"पूरा लश्कर है। पर मुख्य पुरुषों में उसके साथ अजीमुल्ला उसका सेक्रेटरी, उसका भाई राव साहब और एक सम्बन्धी और है।"

"क्या ये सब प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं?"

"अजीमुल्ला वही आदमी है जो उसका एल्ची बन कर लण्डन गया था। और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के विरुद्ध कोर्ट आफ डाइरेक्टर की सेवा में अपील की थी। यद्यपि उसे सफलता नहीं मिली, पर उसने नानाराव की पैरवी बखूबी की थी। मुझे सूचनाएं लण्डन से मिली हैं कि वहाँ इस आदमी की अच्छी आवभगत हुई थी।"

"खैर, बाकी आदमी?"

"एक नाना का छोटा भाई है। दूसरा कोई खानदानी व्यक्ति है।"

"क्या आपने उससे मुलाकात की।"

"उसने मुझ से मिलना चाहा था। पर उसने अपने साथियों के लिए भी कुर्सियों की माँग की। जिसे मैंने स्वीकार नहीं किया। मैं इन भारतीयों को ज्यादा मुंह लगाना पसन्द नहीं करता—फिर जब वह हमारे साधारण प्रजाजन हैं। तो हम उन्हें कुर्सी कैसे दे सकते हैं। मैं नानाराव

को कुर्सी देने तथा उससे अकेले मुलाक़ात करने को तैयार था। पर उसने यह स्वीकार नहीं किया। परन्तु मैं समझता हूँ कि हमें उसके साथ सम्मान का व्यवहार करना चाहिए। केवल इसलिए नहीं कि हम उसे प्रसन्न करना चाहते हैं। बल्कि इसलिए भी—कि इससे लखनऊ के छोटे-बड़े सभी प्रसन्न होंगे। इन पदच्युत राजाओं का मन हमारी ओर से खट्टा है। अब अपने सदव्यवहार से हम यदि उनके मन की विरक्ति को कम कर सकें तो हर्ज नहीं है।"

"मैं उससे मुलाक़ात करूँगा। आप उसे इत्तला दे दीजिए।"

"आपका यह तो अभि:प्राय नहीं—कि हम उसकी ओर से एकदम निश्चिन्त हो जायं।"

"नहीं मिस्टर गुविन्स, मैं नहीं चाहता कि आप सतर्क न रहें। मैं सिर्फ इतना ही चाहता हूँ कि हमारा आचरण विश्वासोत्पादक होना चाहिए। सावधानी और सुरक्षा के सम्बन्ध में आप मेजर एन्डरसन और जुडिशियल कमिश्नर मिस्टर ओमाने निकल से सहायता ले सकते हैं।"

"लेकिन शहर वाले तथा जमींदार लोग उसका धूमधाम से स्वागत करना चाहते हैं। उसका जुलूस निकालना चाहते हैं।"

"वह ठहरा कहाँ है?"

"फरहत बख्श महल में। बेगम हजरत महल का मेहमान है वह।"

"आपको इसमें एतराज़ है?"

"मैं केवल सतर्क रहना चाहता हूँ।"

"आप सतर्क रहिए। मगर उनके काम में हारिज मत होइए। और जब वह लौट जाय तो मुझे आप एक विस्तृत रिपोर्ट दीजिए—कि उसकी लखनऊ-यात्रा का उद्देश्य क्या था—और उसका इस यात्रा की यहाँ कैसी प्रतिक्रिया हुई है?"

सर लारेन्स उठ खड़े हुए। उन्होंने हाथ मिलाते हुए कहा—मिस्टर गुन्विस, आप जैसे सतर्क और सावधान अफसर के रहते मैं सर्वथा निश्चिन्त हूँ।

"मैं आपका तथा आनरेबुल कम्पनी सरकार का आज्ञाकारी सेवक हूँ सर।"

उन्होंने सिर झुकाया और तेज़ी से चले गए।

: ४२ :

लखनऊ में नाना

विठूर के महाराज नानाराव पेशवा की लखनऊ में धूम मच गई। आबालवृद्ध जिसने सुना—विठूर के विश्रुत महाराज को देखने को उदविग्न हो उठा। नानाराव के साथ अजीमुल्ला शाह का नाम भी लोगों की जवान पर था। उसके सम्बन्ध में बहुत से अतिरंजित किस्से अवध में फैले हुए थे—और बहुत लोग उसे देखने को उत्सुक थे। पेशवाओं के ऐश्वर्य, दान और शान की लोग हज़ार मुँह से चर्चा कर रहे थे। गांव देहात से ठठ के ठठ किसान सिपाही उसे देखने आ रहे थे। बहुत साधू सन्त—ब्राह्मण भी दान पाने की अभिलाषा से आए थे। स्त्री और पुरुष सभी अपनी-अपनी मति के अनुसार पेशवा—अंग्रेज, अवध राज्य, अजीमुल्ला की सेना की चर्चाऐं कर रहे थे। चर्चाओं में दैवी चमत्कार, पीरों की करामात, दिल्ली के बादशाह को औलियापन के किस्से भी मिले हुए थे। लोग कहते थे—विठूर के महाराज महाराजों के पेशवा है।

नगर निवासी और तालुकेदारों ने मिलकर नाना का जुलूस शाही ठाठ से निकाला था। सुनहरी साजबाज से सिर से पैर तक सजेधजे हाथी पर सुनहरी ओहदे में नाना राव और उनके भाई बैठे थे। उनके बाद दूसरे हाथी पर अजीमुल्लाखां और मालवी अहमदशाह बैठे थे। उनके बाद हाथियों, घोड़ों, रथों और बग्घियों पर शहर के रईस उमरा थे। बाजे-गाजे—निशान—और भीड़-भाड़ की धूम इतनी थी—कि जिसकी कल्पना अंग्रेजअधिकारियों ने भी नहीं की थी। सबसे आगे फौजी बैंड-बाजा—था जो बेगम हज़रत महल ने अंग्रेजों से मांग लिया था। उसके

बाद लखनऊ और पेशवाई हुकूमत के झण्डे और उनके पीछे सिपाहियों की भीड़ थी। जो एक प्रकार से नियन्त्रण से बाहर हो रही थी। किसी के कन्धे पर बन्दूक, किसी की कमर में तलवार किसी के हाथ में नेज़ा। कोई वर्दी कसे और कोई सादा लिवास में। पेशवा के हाथी के पीछे घुड़सवारों का एक दस्ता था—जो भाले बर्छे से लैस था। पेशवा के ऊपर का छत्र लगाया हुआ था। और इस समय उनकी धज एक बड़े महाराज के समान हो रही थी। अजीमुल्ला अपने हाथी पर से रुपए और मुहरें लुटाते आ रहें थे। नानाराव निरन्तर दोनों हाथ उठा कर लोगों के अभिवादन का जवाब देते जा रहे थे। जय-जयकार के नारों से वातावरण भरा था। घरों की छतों पर से नगर बधूटियां पुष्प वर्षा कर रहीं थीं। बहुत लोग हाथ बांधे आंखों से आँसू बहा रहे थे।

हेनरी लारेन्स को आशा न थी कि नानाराव का ऐसा भव्य स्वागत लखनऊ में होगा। उन्हें सूचना मिली थी कि लोग उत्तेजना मूलक नारे लगा रहे थे। परन्तु सर हेनरी लारेन्स ने अत्यन्त गम्भीरता का परिचय दिया। उस समय लखनऊ में कोई हंगामा न उठ खड़ा हुआ, यही बड़ी बात समझी गई।

और जब नानाराव सर हेनरी लारेन्स से मिलने आए—तो उनके साथ अजीज़मुल्ला—राव साहव, तथा पटवर्धन थे। सर लारेन्स ने सब का खड़े होकर स्वागत किया। सब को कुर्सी दी। और फिर अत्यन्त विनम्र वाणी से कहा—

"विठूर के महाराज का यहाँ लखनऊ में स्वागत करने का मुझे गर्व है। क्या मैं महाराज की कोई सेवा भी कर सकता हूँ।"

"सर लारेन्स, आपके इतना कहने ही से मुझ पदच्युत भाग्य हीन पेशवा का सत्कार हो गया। मेरा प्राप्तव्य तो लंदन के दर्बार से भी न मिला। अब आप से क्या यांचना करूँ? केवल यही चाहता हूं, कि कभी विठूर पधार कर मुझे कृतार्थ करें।"

"अवसर पाते ही मैं आऊँगा महाराज,।"

"मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी।"

"क्या आप जल्दी ही लौट रहे हैं?"

"कल सुबह ही।"

"इतनी जल्दी क्यों। अभी लखनऊ देखिए।"

"सब देख लिया सर लारेन्स। मुझ वैरागी को तो गंगा तट ही अधिक प्रिय है।"

मुलाक़ात खत्म हुई। और नानाराव अपने डेरे पर आए।

रात को फरहत बख्शं महल के गोल कमरे में गुप्त मन्त्रणा हुई। गोल कमरे के बाहर के कमरे में लखनऊ की प्रसिद्ध वेश्याओं के मुजरे हो रहे थे। तबले खड़क रहे थे। कहक़हे उड़ रहे थे—परन्तु भीतर गोल कमरे में छै व्यक्ति नपीतुली भाषा में सावधानी से बातें कर रहे थे। छै व्यक्तियों में एक थे नानाराव, दूसरे राव साहब, तीसरे थे अजीमुल्ला चौथे थे मौलवी अहमद शाह, पांचवीं बेगम हजरत महल—जो चितलन में बैठी थीं। छठे थे राजा वेनीमाधव।

बहुत रात तक मन्त्रणा होती रही। बहुत बातों पर तर्क-वितर्क हुआ। सब बातों पर गम्भीरता से विचार करने के लिए तीन व्यक्तियों की योजना परिषद बना दी गई—ये तीन आदमी थे—अजीमुल्लाखां, मौलवी अहमदशाह और तांतिया टोपे।

: ४३ :

त्रिकूट

लखनऊ के फ़रहत महल में बैठकर जिस त्रिकूट ने सत्तावन क्रान्ति की योजना बनाई उसका प्रमुख सूत्रधार अजीमुल्ला खां था। यह एक विचित्र मेधावी और आकर्षक व्यक्ति था। सन् ३७-३८ के अकाल में उसे और उसकी मां को—जो भूखे मर रहे थे—एक किसी एंग्लोइंडियन ने कानपुर में अपने यहाँ आश्रय दिया। उसकी मां को आया की

नौकरी दे दी गई, और उसे कानपुर के फ्रीमिशन स्कूल में दाखिल कर दिया गया। पैटन नाम के एक अध्यापक मिशनरी की देख-रेख में उसकी शिक्षा आरम्भ हुई और तीन रुपया मासिक वजीफ़ा भी उसे मिलने लगा। बालक सुन्दर और होनहार था—अतः मिशन वाले चाहते थे—कि वह ईसाई हो जाय। परन्तु उसकी मां कट्टर मुसलमान थी, इसलिए उसने ईसाई होने का विरोध किया। इस स्कूल में पढ़कर तथा एंग्लो-इंडियन परिवार के साथ रह कर उसने अंग्रेजी और फ्रेंच भाषा का अच्छा अभ्यास कर लिया। वह दस वर्ष तक उस स्कूल में पढ़ता रहा—बाद में वहीं अध्यापक भी हो गया। दो साल बाद वह ब्रिगेडियर स्काट का मुन्शी हो गया। जब स्काट विलायत जाने लगे—तो उन्होंने अपने उत्तराधिकारी अंशवर्नहम का उसे मुन्शी बना दिया। परंतु अशवर्नहम से उसकी पटी नहीं। इसी समय नानाराव की नजर उस पर पड़ी और वह उसे बिठूर ले आए। उसकी प्रतिभा से प्रभावित होकर उन्होंने उसे अपना वकील बना कर इंगलैंड, भेजा वहाँ से लौटती बार वह भारतीय क्रांति की ज्वलंत रूप-रेखा इटली के जोजेफ मेजनी और गेरींवाल्डी के सम्पर्क से बना लाया। उसने रूस के ज़ार को भीं भारत में दिलचस्पी लेने की प्रेरणा दी—तथा वह गेरीवाल्डी से सहायता का वचन लेकर भारत लौटा था।

दूसरे व्यक्ति थे मौलवी अहमद उल्लाशाह। जिनका वास्तविक नाम सिकन्दशाह था। ये फैज़ाबाद के मौलवी के नाम से प्रसिद्ध थे। वे एक सम्पन्न सुन्नी परिवार के सदस्य थे, जो मद्रास प्रेसीडेन्सी के अर्काट इलाके में रहता था। वह अरबी फारसी के पण्डित और अंग्रेजी के भी ज्ञाता थे। डील-डौल उनका लम्बा था किन्तु शरीर के वे दुबले-पतले थे। परन्तु शरीर उनका मजबूत था। ओठ पतले और नाक उभरी हुई थी। वे लंबी दाढ़ी रखते थे, उसमें से झांकती हुई उनकी चमकदार आँखें—प्रत्येक पुरुष पर अपना प्रभाव रखने में समर्थ थीं। पहले लखनऊ में छसियारी मण्डी में एक साधारण मकान में वह रहते थे। व्यवहार में वह शिष्ठ

ग्रौर रूप-रंग में कोई रईस प्रतीत होते थे, इस समय इनकी ग्रायु चालीस वर्ष के लगभग थी। वह ग्रपने साथ दस-बीस ग्रादमी तथा झण्डा ग्रौर नक्कारा रखते थे, ग्रौर डंके की चोट पड़ते ही कहते थे कि मैं ग्रंग्रेजों का नाश करने ग्राया हूँ। बाद में ग्रंग्रेजों ने उन्हें लखनऊ से निकाल दिया—तो वह फैजाबाद में रहने लगे थे। पर चोरी-छिपे लखनऊ ग्राते रहते थे। उन्होंने लखनऊ की बेगम हजरत महल को क्रांति की साथी बनाया था। वह जैसे प्रभाशाली वक्ता ग्रौर लेखक थे—वैसे ही संगठन कर्ता भी थे। वीर ग्रौर साहसी भी खूब थे। सम्पूर्ण उत्तर भारत ग्रौर खास कर ग्रवध में उनके नाम का डंका बजता था। नक्कारा साथ रखने के कारण उनका नाम नक्कारा शाह भी प्रसिद्ध हो गया था।

तांत्याटोपे ग्राज की इस गुप्त मन्त्रणा में उपस्थित न थे। परन्तु नानाराव ने ग्रपने प्रतिनिधि के तौर पर उनका नाम उपस्थित किया था। तांतियाटोपे देशस्थ दाक्षिणात्य ब्राह्मण श्री पाण्डुरंग भट्ट के पुत्र थे—जो गोलाग्राम के निवासी थे, ग्रौर ग्रब क्रांतियज्ञ के प्रस्तोता बनकर बिठूर, कालपी ग्रौर झांसी में चक्कर लगा रहे थे। नानाराव, कुँवरसिंह ग्रौर झांसी की रानी को उक्त सूत्र में गुथने तथा समूचे मध्यभारत में क्रांति की ज्वाला सुलगाने का काम इन्होंने सम्भाला था। पाण्डुरंग भट्ट बाजीराव पेशवा के ग्रनन्य भक्त ग्रौर उनके ग्राश्रित थे। तथा उनके साथ ही बिठूर में ग्रा बसे थे। उनके ग्राठ पुत्रों में ज्येष्ठ रामचन्द्र थे—जो तांत्याटोपे के नाम से विख्यात हुए थे। तांत्या, लक्ष्मीवाई ग्रौर नानाराव का वाल्लकाल साथ ही बीता था। टोपे का शरीर मझोला ग्रौर गठा हुग्रा था, रंग सांवला था। चेहरे पर चेचक के दाग थे। ग्रांखें बड़ी-बड़ी थी, ग्रौर मुख मुद्रा दृढ़ थी। नाना ग्रौर ग्रजीमुल्ला की क्रांतिधारा में यह नैसर्गिक सैनिक तत्व मिल गया था।

ग्रागे चल कर इस त्रिकूट ने क्रांति-युद्ध का जैसा विराट् तानाबाना पूरा, ग्रौर जिस ग्रद्भुत शक्ति का परिचय दिया–वह ग्रसफल होने पर भी सौ सफलताग्रों के बराबर था।

: ४४ :

सूरज नहीं डूबता और खून नहीं सूखता

एक तेरह फीट लम्बी और छै फीट चौड़ी जेल की कालकोठरी में एक कैदी बैठा चुपचाप कुछ सोच रहा था। इंग्लैण्ड में इस साल बड़ी कड़ाके की सर्दी थी। कोठरी में वर्फ और पानी की इतनी बौछार आती थी। कि सारी कोठरी उस से भर जाती थी। यह कैदी इस कोठरी में जेल यात्रा का दूसरा साल व्यतीत कर रहा था। उसके आगे जमीन पर बाइविल की एक पोथी पड़ी थी। रह-रह कर वह कभी उस पर उदास दृष्टि डालता और कभी उठा कर उसके दो चार पन्ने पलट लेता था। यह कैदी इंग्लैण्ड का प्रसिद्ध मजदूर नेता अर्नेस्ट जौन्स था। जो सन् १८४८ की क्रान्ति में गिरफ्तार करके जेल में ठूंस दिया गया था।

लार्ड और पूंजीपति सत्ता के लिए किस तरह संघर्ष करते थे, उस पर जौन्स ने विचार प्रकट किए थे। उसने मजदूरों से कहा था—"हथियार रख दो, घर जाओ और जब तक हम सुधार करें तब तक तुम प्रतीक्षा करो। उसने कहा था—एक पीढ़ी भूखों मरती है, और खत्म होती है। जनता की भुखमरी से लाभ उठाकर पूंजीपति मालामाल हो जाते हैं। जनता का दुःख दूर करने के लिए पुलिस की संख्या दूनी कर दी जाती है। बड़े-बड़े भवनों में नाच और दावतें होती हैं। बाहर शहरों में चीथड़ों और भुखमरी का राज है। न्याय का उपयोग जनता को आतंकित करने को किया जाता है। लोगों को हर सार्वजनिक स्थान में सभा करने का अधिकार है—पर पुलिस उन्हें रोकती हैं। न्यायाधीशों का दिमाग किराए पर उठता है। आप संगठित होते हैं तो यह षड़यन्त्र माना जाता है। मन्त्री मण्डल या पार्लमेंट की आलोचना करते हैं तो यह राजद्रोह माना जाता है। चर्च की आलोचना कुफ्र है। पूंजीपति ग़रीबों से कहते हैं—देश बहुत छोटा है, हमारे पैर फैलाने को ही काफी नहीं है। तुम ग़रीब हो—दूसरे देशों में जा बसो। अमीरों ने यह नुसखा

निकाला है।

भला ये बात ब्रिटेन की सरकार को कब सहन हो सकती थीं—उसने उसे पकड़ कर जेल में ठूंस दिया।

दो साल से वह इस काल कोठरी में अकेला बन्द था, उसे लिखने पढ़ने की भी सामग्री नहीं दी गई थी। उसे दो वर्षों से यह भी समाचार नहीं मिलते थे—कि उसकी पत्नी और बच्चों का क्या हाल है। लंदन में उन दिनों हैजा फैला था। आदमी फटाफट मर रहे थे—और यह धैर्यवान् पुरुष चुपचाप बैठा सोचा करता था कि न जाने उसकी पत्नी और बच्चे मरे हैं या जीते। वह जानता था—कि उसकी सज़ा कम कराने के लिए उसकी पत्नी ने सिरतोड़ कोशिश की थी। और इस परिश्रम से वह क्षयरोग ग्रसित हो गई थी। और आज एकाएक ही उसे सूचना दी गई थी—कि उसकी पत्नी का देहान्त हो गया है। पर यह नहीं बताया गया—कि उसके बच्चे कहाँ किस हालत में हैं। आज उसका अचल धैर्य भी छूटा जा रहा था—वह सोच रहा था—वैभव में उसने जन्म लेकर और पलकर मेरी ग़रीबी का साथ दिया। और मैं, जो ग़रीबों और मजदूरों के लिए पवित्र काम कर रहा हूँ, उसमें उसने मेरा हाथ बंटाया। उसके सगे-सम्बन्धी उससे मुंह मोड़ कर चले गए। और आज यदि उनमें से कोई जीवित होगा तो देखेगा कि उच्च कुल और वैभव में पलकर उसे जो नाम मिला था—उसकी अपेक्षा मेरी पत्नी की हैसियत से उसका गौरव अधिक है। उसने सोचा—मैं संगमर्मर की उसकी समाधि नहीं बना सकता, परन्तु मैं उसे अपने हृदय के उच्चे उद्गार अर्पण करूँगा उसने एक बार बाइविल की उस पोथी को उठा कर और उसे उलट-पुलट कर देखा। फिर उसके दो पन्ने फाड़ डाले—और उन पर अपने रक्त से लिखना आरम्भ किया—

"जय हो जय हो, अमेरिका महादेश की, जिसने अपने शैशव ही में चर्च और बादशाही को खत्म कर दिया। यहाँ पादरियों की कट्टरता और सामन्तों का अहंकार नहीं है। किन्तु हाय, इस प्रजातन्त्र पर भी

गुलामी का काला धब्बा लगा है। ये श्वेतवर्गी लोग सोने और लोहे के गुलाम बनते जा रहे हैं। रात दिन यह प्रजातन्त्र भी अपने साम्राज्य स्थापित करेगा। उसके जहाज जापान पहुँचेंगे। चीन के मैदानों में उसकी सेना का खून बहेगा। युद्ध होगा। हथियारबन्दी होगी। ब्रिटेन धर्म के नाम पर भारत में उत्पीड़न कर रहा है। वहाँ लड़ाई के जहाजों में भर कर विशप भेजे जा रहे हैं। ईश्वर के बचन के नाम पर निर्दय कृत्य और निर्मम हत्याएँ की जा रही है। हिन्दुस्तान में विद्रोह फूटेगा, बूढ़ा ब्रिटेन उसे दबाने को जोर लगा रहा है। लेकिन हिन्दुस्तान का सितारा बुलन्दी पर है। वह डरता नहीं है। अंग्रेजों की संगीनों से एक दस्ता बिखर जाता है। तो दूसरा उसकी जगह सामने आता है। ब्रिटेन की फौज के कमीशन खरीदने वाले अफसर उनका मुकावला नहीं कर पाते हैं। साठ साल का एक बूढ़ा अफसर सेनापति बनाया गया है, पर उसके सैनिकों में उत्साह नहीं है? क्या तुम समझते हो कि सैनिक देश-भक्तों की भूमिका अदा करते रहेंगे। अरे ब्रिटेन के श्रमिको, तुम्हारे युवा पुत्रों की सेना दूसरों को गुलाम बनाने गई है। वे उनसे लड़ेंगे, जिन्हें ईश्वर ने उनका शत्रु नहीं बनाया है।"

"सब से पवित्र तीर्थ मानव हृदय है। अंग्रेजों के राज्य में सूरज कभी नहीं डूबता, पर उनकी धरती पर खून भी कभी नहीं सूखता।"

सोना और खून

भाग दूसरा--तीसरा खण्ड

: १ :

बुलबुल हज़ार दास्तान

ठीक साढ़े तीन बजे, सारी दिल्ली सो रही थी। लालकिले के बारूद खाने की ऊपरी मंजिल में गंगा जमनी पिजरें के भीतर से—जिस पर कारचोबी की वस्तनी चढ़ी थी, बुलबुल हजार दास्तान ने अपनी कूक लगाई। रात के सन्नाटे में उस सुरीले पक्षी का यह प्रकृत राग रात की विदाई का सूचक था। कूक सुनते ही बहराम खाँ गोलन्दाज कलमा पढ़ता हुआ उठ बैठा, और उसने तोप पर बत्ती दी। मोती मस्जिद में अज़ान का शब्द हुआ। चप्पी, मुक्कीवालियाँ शाही मसहरी पर आ हाज़िर हुईं, और धीरे-धीरे बादशाह के पाँव दबाने लगीं। बादशाह बहादुरशाह 'जफर' की नींद खुली। वह तुरंत उठ खड़े हुए। नित्य कृत्य से निपटे, और मस्जिद में आ नमाज में सम्मिलित हुए। सबके साथ नमाज पढ़ी, और फिर वजीफा पढ़ने लगे।

सूर्योदय के साथ ही वह मस्जिद से निकले। चारों ओर मुजरा करने वाले खड़े थे। दरवाजे पर पहुँचते ही हाथ में सुनहरा बल्लम लिए जसोलनी ने आगे बढ़कर पुकारा—"पीरो मुर्शिद, हुजूरे आली, बादशाह सलामत उम्र दराज।" तीन बार यह वाक्य उसने घोषित किया। इसके बाद ही दरबारी गण अदब से झुके। एक सम्मिलित मर्मर शब्द हुआ—"तरक्किए-इकबाल—दराजे उम्र।" बादशाह ने दीवाने फरहत में प्रवेश

किया। असीलें अदब से सिर झुकाए खड़ी थीं। आंगन में एक सुसज्जित तख्त बिछा था। बादशाह उस पर बैठ गए। जसोलिनी दारोगा दोनों हाथों में अतलस चढ़ी बुकचियाँ लिए हाजिर हुईं। गुस्लखाने के दारोगा ने सामने आ सिर झुकाया। बादशाह उठ कर गुस्ल करने चल दिए।

जौनपुरी खली, सुगंधित वेसन, चमेली, शब्बो, मोतिया, वेला, जुही गुलाब के तेल बोतलों में भरे तरतीब से रक्खे थे। शकावे में एक ओर ठंडा और दूसरी ओर गर्म पानी भरा था। चाँदी के लोटे और सोने की लुठिया जगमगा रही थी। गुस्ल हुआ। बादशाह पोशाक के कमरे में चले गए। ख्वाजा हसन बेग दारोगा ने आकर आदाब बजाया। उसने लखनऊ की चिकन का कुर्ता दोनों ओर तुकमें, घुड़ियाँ, लट्ठे का चौड़े पायते का पाजामा हाज़िर किया। बादशाह ने पोशाक पहनी, मखमखी चप्पल पहनी।

अब शमीम खाने का दारोगा आ हाजिर हुआ। उसने सिर में तेल डाला, कंघा किया, कपड़ों में इत्र लगाया। बादशाह तस्बीह खाने में आए, माला फेरी और दुआएँ पढ़ीं। फिर दीवाने खिलवत में चले गए। दवाखाने के मुन्तजिम ने आगे बढ़कर कोर्निश की, और हकीम अहसन की सील मुहरबंद शीशियाँ पेश की। मुहर तोड़ी गई और याक़ूती प्याली तैयार की गई। तभी खवास ने चाँदी की तश्तरी में छिलकों समेत दो तोला भुने चने पेश किए। बादशाह ने याक़ूती की प्याली पी, फ़िर चनों से मुंह साफ किया और बेगमी पान की गिलोरी खा कर मिट्टी के कागजी हुक्के को मुंह लगाया।

इतने में ही खबरों का अफसर उपस्थित हुआ। रात भर की खबरें सुनाई गईं। बादशाह ने पान की एक और गिलौरी खाई, और उठ कर दीवाने खास को चले।

बादशाह तख्त पर बैठे। प्रत्येक विभाग के अधिकारी तथा अमीर उमरा हाथ बाँधे, नोची नज़र किए चुपचाप निश्चल खड़े थे। नकीब ने पुकारा—"जल्लेइलाही बरामद कर्द, मुजरा अदब से।" बढ़ा—

बादशाह की कोर्निश की यह सुनते ही प्रत्येक अमीर सहमता हुआ आगे बढ़ा—और हट कर पीछे अपने स्थान पर आ खड़ा हुआ। नक़ीब ने उसकी हैसियत के अनुसार उस की विरद बखानी। सब दर्बारी मुजरे और कोर्निश की रस्म पूरी कर चुके, तो बादशाह ने एक मृदु मुस्कान के साथ कृपा पूर्ण दृष्टि से सबकी ओर देखा और फर्माया, आज हमने एक गजल कही है—उसका पहला शेर पेश करता हूँ—

यारे देरीना है, पर रोज है वह यार नया।
हर सितम उसका नया—उसका है हर प्यार नया॥

दर्बार में संयुक्त कण्ठों का एक शोर उठा—"सुभानअल्ला, कलामुलमलूक मलूकुल कलाम।" बादशाह ने आगे गज़ल पढ़ी—

"नई अंदाज का है दामे बला तुर्रए यार।
रोज़ है एक न एक उसमें गिरफ्तार नया॥
तेरी 'हाँ' में है 'नहीं' और 'नहीं' में 'हाँ'।
तेरा इकरार नया है, तेरा इन्कार नया॥
कैसें बेदर्द दिल आज़ार को दिल हमने दिया।
रोज है दर्द नया, रोज एक आजार नया॥
क्या कयामत है सितमगर तेरी तर्ज खराम।
फ़ितना हर गाम पर उठा दमे रफ्तार नया॥
करे वो किसकी दवा देखतेहैं रोज तबीब।
तेरे इस नर्गिसे बीमार का बीमार नया॥
फेरे इसमें 'जफर' दिल का जो सौदा फिर जाय।
एक मौजूद है उसका खरीदार नया॥

ग़जल के हर शेर और हर मिसरे पर दरबार में हलचल मची और बढ़-बढ़ कर तारीफें हुईं।

इस वक्त शाही दरबार में बादशाह के पीर, मौलाना फखर के पुत्र मियाँ कुतुबुद्दीन भी उपस्थित थे। वह बड़े आलिम समझे जाते थे। मियाँ कुतुबुद्दीन के पुत्र नसीरुद्दीन उर्फ काले साहब को बादशाह ने अपनी

शाहजादी ब्याह दी थी। इसके अतिरिक्त शाह गुलाम हसन चिश्ती एक पहुंचे हुए महात्मा भी दरबार में थे। इन सबने बादशाह की बेकसी और दर्द से भरी हुई ग़ज़ल में उनकी मजबूरियों को साक्षात देखा, तथा दाद दी। "सुभान अल्लाह"—कहा और बारम्बार "कलामुलमलूक, मलूकुल-कलाम" कहा।

अभी यह वाहवाही हो ही रही थी, और शाही दरबार एक मुशायरे का रूप धारण कर चुका था—कि एक चीत्कार ने सब का ध्यान भंग कर दिया। एक भंगन रोती-चीखती दर्बार में घुस आई, और बादशाह सलामत के रुबरू जाकर वह धरती चूमकर और हाथ जोड़ कर बोली—

"जहाँपनाह, मिर्जा महमूद मेरी दो मुर्गियाँ ले गए।" लालकिले के बादशाह भंगन की फर्याद से खिन्न होकर बोले, "रो मत, जा, मुर्गियाँ आती हैं।"

भंगन जमीन चूमती उल्टे पाँव लौट गई, शाहजादा मिर्जा महमूद की दरबार में तलबी हुई। वह आँखें नीची किए आ खड़े हुए।

"अरे महमूद, गरीब भंगन की मुर्गियाँ, हाय, हाय।"

बादशाह की आँखें करुणा से गीली हो गईं। वाणी गद्‌गद् हो गई। उन्होंने अली अहमद दारोगा की ओर दृष्टि फेरी, और हुक्म दिया—"दिलवा दो, एक और बढ़ती।"

मिर्जा महमूद ने धरती चूमी। और दारोगा ने उन्हें संग ले जा कर तीन मुर्गियां दिलवा दीं।

तोशाखाने के घड़ियाल ने दस बजाए। विभागों के अधिकारियों ने अपने-अपने बस्ते खोल कर आवश्यक आज्ञाएँ लीं, दस्तखत कराए। ग्यारह बजते ही बादशाह उठे। चोबदारों ने ऊँचे स्वर में जय-जयकार किया। रंगमहल के लिए जसोलिनी दण्ड लिए आगे बढ़ा और पुकार कर कहा—"तरक़्क़ीए इक़बाल, दराजे उम्र" महल में सब सावधान हो गए। अब आगे-आगे बादशाह और पीछे जसोलिनियां, कहारियाँ, कश्मीरनियां, हब्शनें, तुर्कनें मोर्छल करती चलीं। बीच में पुकारतीं—

हुई। अदब होशियार ! अदब होशियार।"

महल में बड़ी बेगम ने खड़े होकर सलाम किया। अमीरों की खातूनों और शाहजादियों ने भी सलाम किया। बादशाह आसन पर बैठें। सबको बैठने का हुक्म दिया। अब कश्मीरन महताब ने जरबफ्त और कमख्वाब के दो कसलों की मुहर तोड़ी। बेगम ने अपने हाथ से भंडा तैयार किया। चाँदी की सुराही से जल लिया और लखनऊ की गंगा जमनी तश्तरी में पेश किया। बादशाह ने भंडा लिया। बेगम ने पान की गिलौरी नीचे चाँदी और ऊपर सोने का वर्क लगा पेश की। इतने में महताब आई। अदब से झुक कर निवेदन किया—"भोजन परसा जाय ?" हुक्म हुआ "अस्तु।"

: २ :

उर्दू-शायरी

मुस्लिम-शासन से पूर्व १२वीं शताब्दी तक भारत की राष्ट्र-भाषा अपभ्रंश थी। जो हिमालय से गोदावरी और सिंध से ब्रह्मपुत्र तक बोली और लिखी जाती थी। अपभ्रंश सम्पूर्ण भारत की सम्मिलित भाषा १३वीं शताब्दी तक रही। हिन्दी के मूर्धन्य कवि तुलसी, सूर, कबीर विद्यापति आदि के प्रेरक अपभ्रंश के ही कवि थे। यही अपभ्रंश आगे चल कर हिन्दवी का रूप धारण करती चली गई। जो उत्तरकाल में नागरी कहाई। पृथ्वीराज चौहान के पतन के बाद जब मुस्लिम आक्राताओं ने भारत में अपने साम्राज्य स्थापित कर लिए—तो विजेता तथा विजित दोनों के काम चलाऊ शब्दों के अदान-प्रदान ने ऐसी मिली-जुली भाषा को जन्म दिया—जिसे हिन्दु और मुसलमान आसानी से समझ सकते थे। १४वीं शताब्दी में खिलजियों के शासनकाल में अमीरखुसरो ने इसे मिली-जुली भाषा का रूप दिया। उन्होंने उसका नाम हिन्दी या हिन्दवी रखा। खुसरो के इस भाषा संगम पर आगे कबीर, जायसी, रहीम,

रसखान आदि सैकड़ों कवियों ने वाणीविलास किया। परन्तु १७वीं शताब्दी के बाद उसमें से एक नई भाषा का जन्म हुआ, जिसे पहले रेख्ता और बाद में उर्दू कहा गया। धीरे-धीरे उर्दू में अरबी और फारसी के शब्दों की बहुतायत होने लगी, तथा बीच-बीच में अरबी-फारसी के व्याकरण के नियमों का भी प्रयोग किया जाने लगा। इसका कारण यह था कि तत्कालीन शासक अरबी-फारसी भाषा-भाषी थे। तथा फारसी राज्य भाषा होने के कारण बहुतेरे हिन्दु राज्याधिकारी भी फारसी पढ़ने लगे थे। इस प्रकार अनेक फारसी, तुर्की, तूरानी तथा अरबी शब्दों का बाहुल्य भाषा में बढ़ता ही चला गया, और उर्दू का कलेवर हिन्दी से प्रथक होता गया। महत्वपूर्ण बात यह थी कि उर्दू का आरम्भ गद्य से न हो कर पद्य से हुआ। आरम्भ में उर्दू के प्रायः सभी कवि अभारतीय थे। जो फारसी में मंजे हुए कवि थे। अतः उन्होंने जो फारसी बहुल कवि पद्धति उर्दू में प्रचलित की—उसी का अनुकरण बाद के भारतीय कवियों ने भी किया। शब्दबाहुल्य ही फारसी का नहीं—छन्दवहर भी उपमा अलंकार भी फारसी ही के रखे। क्योंकि ये उर्दू के प्रारम्भिक कविता भारतीय भाषा और संस्कृति से सर्वथा अज्ञात थे। फारसी-शायरी विलासिता और शृङ्गार में शराबोर थी। भारतीय राजा नवाब बादशाह भी विलासी थे। जो उर्दू कविता के आश्रयदाता थे। उन्हें प्रसन्न रखने को जो अस्वाभाविक व्यभिचार और बाज़ारू इश्क की भरमार उर्दू कविता में हुई। उसने उर्दू कविता को जीवन के सब आदर्शों से नीचे गिरा दिया। पारस्परिक प्रतिद्वन्दिता ने उर्दू कविता में 'हिजो' का आविष्कार किया। और उससे आगे बढ़ कर रंगीन मिज़ाजों ने 'हजल' पर क़दम बढ़ाया जिसमें अश्लीलता की पराकाष्ठा की गई थी। जिससे उर्दू काव्य अतिशयोक्ति वासना और कुत्सा का मूलाधार हो गया। और उसमें राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा क्रान्तिकारी भावनाओं का सर्वथा अभाव हो गया। इन ५००-६०० वर्षों में—जिनमें उर्दू काव्य पनपा, बड़े-बड़े उलट-फेर हुए, क्रान्ति हुई, राज्य पलटे, बादशाहत खत्म हुई, क़त्ले-

ग्राम हुए, परन्तु उर्दू काव्य में कहीं किसी का उल्लेख तक न हुआ। बस, वही बुलबुल, शराब और साकी। वही महफिलो माशूक !

यदि उर्दू काव्य में ये दोष न होते, तो वह भारत की सर्वोच्च भाषा बन जाती। शब्दों की सफाई, मुहावरों की गुलकारियाँ, नाजुक ख्याली और कल्पना की उड़ान, सज-धज, शोखी, अदा, बाँकपन उर्दू भाषा का अद्वितीय है। तिस पर उसका यह गुण—कि दुनिया की सब भाषाओं के तत्सम और तद्भव रूपों को पचा जाना तथा नए शब्दों का गढ़ लेना, असाधारण था।

जिस समय की हम बात कह रहे हैं, दिल्ली उर्दू का मूल केन्द्र बनी थी। दिल्ली को उर्दू पर नाज़ था। परन्तु वास्तव में उर्दू का जन्म हुआ था दक्षिण में। इसका कारण यह था कि वहाँ हिन्दु-मुस्लिम एकता से ही मुस्लिम शासन का सूत्रपात हुआ था। परन्तु जब मुग़ल सल्तनत एड़ियाँ रगड़-रगड़ कर दम तोड़ रही थी। तभी उर्दू शायरी में सुनहरे पँख उगे थे। संक्षेपतः मुग़ल शासन का अस्तंगतकाल उर्दू-काव्य के विकास का सब से बड़ा युग है। इसी युग के पूर्वार्द्ध में मीर, दर्द, सौदा और सोज जैसे रुहेरवाँ शायरे आज़म पैदा हुए। और उत्तरार्ध में ज़ौक, ग़ालिब, नासिख और आतिश जैसे उस्ताद आगे आए। यह वह युग था जब दिल्ली का तख्त डगमगा रहा था। और लखनऊ का नवाब बादशाह घोषित हो चुका था। नवाब ने बादशाह बन कर फैजाबाद से अपनी मसनद हटा कर लखनऊ में क़ायम की थी। और दिल्ली के नामवर कवि नए बादशाह के आश्रय में दिल्ली को छोड़-छोड़ कर लखनऊ जा रहे थे। नए बादशाह का खजाना अभी हीरे-मोतियों से भरपूर था, शेरो-शायरी का उसे शौक़ था, अतः दर्द को छोड़ कर मीर से ले कर एक-एक शायर लखनऊ आ पहुँचे। दिल्ली और लखनऊ की काव्यधारा दो शाखाओं में बँट गईं। दिल्ली की धारा दाखिली थी। लखनऊ की खारिजी। दिल्ली वाले आशिक का और लखनऊ वाले माशूक का वर्णन करते हैं। दाखिली शायरी दिल की और खारजी दिमाग की थी। आगे चल कर उर्दू शायरी

कोरी दर्बारी शायरी रह गई। शायर दर्बारी भांड हो गए। पेट के लिए इज्जत, आबरू और आत्मा का सौदा करने लगे।

फिर भी मीर, मोमिन और दर्द जैसे सुकवि इस समय उर्दू-काव्य को चार चाँद लगा रहे थे। कोमल मनोभावों के प्रकट करने में इन्हें कमाल हासिल था। मीर-ओ-सौदा, मुसहफी-ओ-इन्शा, आतिश-ओ-नासिख और ग़ालिब-ओ-जौक ये सब शायर एक ही वातावरण में उत्पन्न हुए। परन्तु इनके क़लाम में ज़मीन आसमान का अन्तर है। वास्तव में परिस्थिति और कवि-स्वभाव दोनों ही कवि की कविता में प्रतिबिम्बित होते हैं। कविता के अतिरिक्त संसार में जितनी कलाएँ हैं, उनमें कलाकार का व्यक्तित्व छिपा रहता है। अर्थात् अपने जीवन में जोवे नहीं हैं वह सब उनकी कला में प्रकट होता है। परन्तु कवि लाख प्रयत्न करे—उसकी रचना में उसके हृदय का प्रतिबिम्ब आता ही है। इसके अतिरिक्त कवि की रुचि का प्रश्न है। ग़ज़ल, नज़्म, रुबाई, मर्सिये, क़सीदा, मसनवी, मात, हिजो, रेख्ती तथा हजल इनमें से जो जिसे पसन्द हो कहता है। इस युग में दिल्ली में ग़ालिब और अनीस दो महान कवि थे। ग़ालिब ग़ज़ल गोई में अपना सानी नहीं रखते थे और अनीस मर्सिया निगारी में प्रतिद्वन्दि नहीं रखते थे।

परन्तु इन दिनों की शायरी व्यथा—पीड़ा की शायरी थी। खास कर दिल्ली की खारिजी शाइरी। और क्यों न होती भला? मुग़ल बादशाह स्वयं लुटते पिटते रहे—वे प्रजा की रक्षा क्या कर सकते थे। रात दिन की भुखमरी, आक्रमण, लूटमार, कत्ल गारतगरी में पलकर शायरी में पीड़ा होना स्वाभाविक था। दिल्ली का कवि ग़रीब—वेबस और असहाय था। इसलिए वह केवल हाय-हाय, करता रहा। वियोग के गाने गाता रहा। पर लखनऊ की नई बादशाहत थी, दौलत से भरपूर, वहाँ का कवि आशिक था—उसे वस्ल नसीब हुआ। वह शराब पीता था, जवानी का लुत्फ उठाता था, और छेड़-छाड़ उसका रात दिन का शुग़ल था।

लखनऊ की गद्दी उजड़ गई। बादशाह वाजिदअलीशाह मटिया बुर्ज

में अपने दिन पूरे कर रहे थे। लेकिन लखनऊ की गली कूचों में आतिश और नासिख के शागिर्दों ने मुशाइरों की धूम मचा रखी थी। अनीस और दबीर जैसे बाकमाल मर्सियागो उस्तादों के हंगामें अभी भी लखनऊ के गली कूचों में होते रहते थे। इस समय अमीर मीनाई की लखनऊ में तूती बोल रही थी। लोग आपको लखनऊ बज्मे अदब का खुदारा सखुन समझते थे।

नवाब रामपुर भी शायरों के क़द्र दाँ थे। खुद भी कह लेते थे। उन्होंने अमीर मनाई को सादर रामपुर बुलाया। अमीर मीनाई अपने शागिर्द रियाज़ खैराबादी को लेकर वहाँ पहुँचे। वहाँ तो हस्बदस्तूर अरबाबे कमाल का जमघटा लगा था। अमीर मीनाई ने रियाज़ को अहले बज्म से परिचित कराया और स्वयं—खुल्द आशियाँ (नवाब) के पास चले गए। अहले बज़्म में नवाब मिर्ज़ा दाग़ भी मौजूद थे। उन्होंने मुस्कुरा कर कहा—"आप ही सैयद रियाज़ अहमद—'रियाज़' हैं। अमां, तुम को तो यारों का शागिर्द होना था, कहाँ इन फिरंगी मुहल्ली के मौलवी के फन्दे में जा फंसे।"

रियाज़ भी दो टूक जवाब देने वाले थे—बोले—'जनाब, वे मेरे उस्ताद हैं। उनका ज़िक्र ही क्या। आपको दावा हो तो मुझ हेच से दो-दो हाथ हो जाय। बिस्मिल्लाह क़लम दावात मंगवाइए। यहाँ सब अहले कमाल जमा है। सब के सामने—ज़मीन-मुतईन (समस्या पूर्ति) हो जाए।

यह सुन कर नवाब मिर्ज़ा दाग़ के चेहरे का रंग उड़ गया। और उनसे जवाब न देते बना। मौलवी अब्दुलहक खैराबादी भी वहीं बैठे थे। मिज़ाज उनका तेज़ था और रियाज़ के हमवतन अज़ीज और बुजुर्ग भी थे। उन्होंने रियाज़ को डांट कर कहा—"मालूम है किस से मुख़ातिब हो। तुम्हारे उस्ताद के मुहब्बे खास, मुआसर, बिरादर बजां बराबर। इनका अदब और अहतराम करना तुम पर उसी तरह फर्ज है, जिस तरह उस्ताद का। माफी मांगो।"

बेचारे रियाज़ की क्या मजाल, कि मौलवी साहब के सामने चूं करते, उन्होंने माफ़ी मांग ली।

परन्तु यह घटना उनके कलेजे में जख्म कर गई। दिन बीत गए। एक दिन नवाब मिर्ज़ा दाग़ की नई ग़ज़ल अमीर मीनाई की नज़र से गुजरी। अमीर मीनाई के शागिर्दों और बेटों ने इसरार किया—कि हज़रत, इसी ज़मीन में ग़ज़ल कही जाय।

अमीर ने कहा—"दाग़ ने जमीन ही ग़ारत कर दी, अब मेरे फ़िक्र करने का क्या मौका है।"

और शागिर्द तो चुप रह गए। मगर रियाज उस्ताद से रूठ गए। और रात को जब अमीर मीनाई ने उन्हें खाने पर याद किया तो उन्होंने कहला भेजा—कि 'हज़रत' जब तक उसी जमीन में ग़जल न होगी। मैं क़स्म खाता हूं कि निवाला मुंह में न रखूंगा।

बहुत हुज्जत हुई। उस्ताद ने बहुत समझाया—खाना खराब हो रहा है। वे खुद और शागिर्द भूखे बैठे हैं। मगर रियाज़ टस से मस न हुए। आखिर दस्तरखान बढ़वा दिया गया। और अमीर मीनाई और दूसरे सब भूखे ही उठ खड़े हुए। रियाज़ अकड़े बैठे रहे। गर्मी के दिन थे। अमीर मीनाई सहन में इस्तराहत फ़र्माते थे। गिर्द खास शागिर्द और अजीज मूढों पर बैठे थे। खादिम ने चप्पी शुरू की। कुछ देर बाद अमीर मीनाई ने कहा—"लाओ भाई कागज पैन्सिल लाओ। रियाज़ की फर्माइश पूरी करें।" रियाज़ सुनते ही झट काग़ज पैन्सिल ले पास आ बैठे। मिसरा दुहराया गया। और घण्टे सवा घण्टे में गज़ल पूरी करके अमीर मीनाई ने मक्ता लिखवा कर कहा—"लो मिया, अब तो खाना खाओ।"

'हज़रत, आस्तीन का क़ाफिया ग़जल में नहीं है।"

भई रियाज़, तुम बहुत सताते हो। और उन्होंने यह शेर कहा—

क़रीब है यार रोज़े महशर छुपेगा कुश्तों का खून क्यों कर।

जो चुप रहेगी ज़बाने खंज़र, लहू पुकारेगा आस्तीं का ।।

सुनकर रियाज़ उछल पड़े और क़दमों पर लोट गए।

: २ :

ज़फ़र

बहादुर शाह 'ज़फ़र' ने शाही खानदान में जन्म लिया था, और उस तख्त पर बठने का भी उन्हें अवसर मिला—जिस पर बैठ कर उनके पूर्वजों ने तमाम हिन्दुस्तान पर हुकूमत की। परंतु उनकी शक्ति शतरंज के बादशाह के बराबर भी न थी। वास्तव में वह एक पैन्शनयाफ्ता रईस की हैसियत रखते थे और लालक़िले की चहारदीवारी के भीतर भी इनकी हुक्मरानी आवश्यकता से अधिक समझी जाती थी।

इनका जन्म सन् १७•५ में हुआ। इनके पिता अकबर शाह इनसे सदैव नाराज़ रहे। वह अपने दूसरे बेटे को उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे--परंतु अंग्रेज ज़फर के पक्ष में थे। उन्होंने उत्तराधिकार का निर्णय ज़फर के ही पक्ष में दिया। परंतु पिता से उनकी खटपट निरंतर बनी रही, और उनकी सारी जिन्दगी बड़ी बेमजे कटी। जब वह ६२ वर्ष के बूढ़े हो चुके, तब उनके पिता की मृत्यु हुई, और उन्हें सन् १८३७ में बादशाह बनने का अवसर मिला। जवानी में उन्हें अपने वजीफे के ५००) माहवार में गुजर बसर करना पड़ा। उसी में से चार रुपए माहवार वे उस्ताद ज़ौक को देते रहे, और अब, जब बादशाह हुए तो मन के सब बलबले किरकिरे हो गए थे। ज़फर जन्म जात कवि थे। उनकी प्रकृति भावुक थी। उनकी बड़ी अभिलाषा थी—कि अच्छे-अच्छे कलाकारों से अपने दर्बार की ज़ीनत बढ़ाएँ। परंतु किस विरते पर? खजाने में छदाम नहीं। बादशाह होने पर उस्ताद की तनख्वाह तीस रु० माहवार कर दी थी, और कवियों का तो अल्लावेली था। ज़फर ने शाही खानदान के उपयुक्त ही शिक्षा पाई थी। लालकिले की उर्दू ए-मुअल्ला उन्हें बरसात में मिली थी। तबियत का रुझान कविता की ओर था ही। उनकी तबियत

रंगीन थी, और इन्शा और जुरत जैसी शाहरी की ओर उनका रुझान था। अब यदि ग़ालिब और मौमिन जैसा उस्ताद उन्हें मिला होता—तो उनका काव्य भी उर्दू जगत में अपना स्थान रखता। पर उनके दुर्भाग्य से शाहनसीर जैसे उस्ताद उन्हें मिले, जो अटपटे काफियों, रदीफों और मुश्किल ज़मीनों पर गज़लें कहना कमाले शायरी समझते थे। उन्हें न अच्छा उस्ताद मिला, न उनकी अभिलाषाएँ कभी पूरी हुई। इससे उनकी कविता में न तो दिल्ली का सोज़ोगुदाज़ आया, न लखनऊ की रंगीनी। बस, उनकी शायरी अफसुर्दा-सी होकर रह गई। पीछे अवश्य उन्हें उस्ताद ज़ौक़ मिले। पर अब वह समय बीत चुका था, कि उनका ज़ौके सलीम बदला जा सके। मौमिन तो दिल्ली में रहते हुए भी दर्बार में जाते ही न थे। ग़ालिब से मशवरे में सुखन लिया जा सकता था, पर उनकी तबियत का रुझान ग़ालिब के उपयुक्त न था। बस, उनके लिए ज़ौक ही सही उस्ताद थे। क्योंकि वह भी शाहनसीर के शिष्य रह चुके थे। ज़फर बहुत ज्यादा शेर कहते थे, और उन्हें अपनी शायरी पर बड़ा नाज़ था। अपनी सैकड़ों ग़ज़लों में उन्होंने इसका उल्लेख किया है।

: ४ :

उस्तादे शहनशाह

एक तंगीतारीक मकान—जिसकी छोटी-सी अंगनाई में—एक छोटी-सी पुरानी चारपाई बिछी थी। चारपाई से अंगनाई की जो जगह घिर गई थी—उसके दो तरफ इतनी जगह खाली थी कि एक आदमी आ जा सकता था। चारपाई पर कोई बिछौना या दरी न थी, उस खरेरी खाट पर अधेड़ उम्र के एक गंभीर व्यक्ति हाथ में पैंसिल और सामने काग़ज़ रखे रुक-रुक कर कुछ लिख रहे थे। दो चार किताबें चारपाई पर पड़ी थीं। एक दो उनके घुटनों के नीचे दबी थी। घर में बीबी चूल्हा जला रही थी, और धुंआ अंगनाई में भर रहा था। दो बच्चे वहीं बैठे मचल रहे

थे। परंतु इन बुजुर्ग को इन सब बातों से सरोकार न था। इसी वातावरण में बैठ कर लिखने-पढ़ने का अभ्यास इन्हें हो गया था। सरदी, गर्मी, बर्सातें कोई मौसम हो उनकी सब बहार वहीं बैठे गुज़र जातीं थीं। दिल्ली में मेले होते थे, ईद आती थी, शादी और गम दुनिया में थे, परंतु इन्हें इस से कोई सरोकार न था। वे उसी खरेरी चारपाई पर बैठे पैंसिल से काग़ज पर अटक-अटक कर लिखते चले जाते थे। वे बुजुर्ग बादशाह बहादुरशाह के उस्ताद मलिकुश्शुअरा, खाकानिये हिन्द, देहली की ज़बान और मुहावरे के बादशाह ज़ौक थे। जिनकी शायरी की धूम दिल्ली से हैदराबाद तक थी, और जो क़सीदे लिखने में अपना हरीफ नहीं रखते थे।

क़िस्मत ने उन्हें उस्तादे शहनशाह का बुलंद रुतवा दिया। पर यहीं उनके दुर्भाग्य का कारण बना। ज़ौक पुश्तनी कवि न थे। सिपाही के पुत्र थे। महत्वाकांक्षी और भाग्य ने उन्हें किले में पहुँचा दिया। वह अकबर द्वितीय का युग था। बादशाह का तो शायरी से कुछ भी लगाव न था, हाँ शाहज़ादा बहादुर शाह को कविता का था। उनके पास तत्कालीन कवियों का जमघट लगा रहता था। शाहज़ादा खुद 'ज़फर' उपनाम से कविता करते थे। पहले बादशाह नसीर से कविता शुद्ध कराते थे। जब वह हैदराबाद चले गए—तो क़ाजिम अली से इस्लाह लेने लगे। बह भी जब काबुल चले गए तो जौक सामने आए। उन दिनों शाही खानदान में झगड़े बखेड़े चल रहे थे। अकबरशाह बहादुरशाह ज़फर को अपना पुत्र ही नहीं तस्लीम करते थे। मुद्दतों सरकार के हुज़ूर में बाप बेटों का मुक़दमा चला। अंत में ५ हज़ार की जगह ५००) माहवार शाहज़ादा को खर्च के मिलने लगे। अब वह उस्ताद को क्या दें। चार रुपया माहवार उस्ताद की तनख्वाह मुकर्रर हुई जब ज़फर बादशाह हुए तो तनख्वाह पाँच रुपए हो गई। फिर छै से सात और अंत में मुद्दत बाद ३० रुपए माहवार पर गाड़ी रुक गई। अब इसी आय में उस्ताद के खानदान का खर्चा चलता था, उनकी मलिखुश्शुअरा और खाकोनिए हिन्द जैसी सर्वोच्च

उपाधियाँ उनके कुछ भी काम न आ रहीं थी। पर केवल यही बात नहीं कि उन्हें उस्तादे शहनशाह होने पर ग़रीबी का मुँह देखना पड़ा। उनकी कमाले शायरी की भी मिट्टी पलीद हुई।

लालक़िले में कोई भी छोटा बड़ा जश्न हो, उन सब पर उस्ताद ज़ौक को क़सीदे लिखने पड़ते थे। सात बार आठ त्योहार के अनुसार जश्न मनाने के मौके लालकिले में बराबर तलाश किए जाते थे। और इन सब जरूरी और गैर जरूरी मौक़ों पर ज़ौक को जिगर-सोज़ी करनी पड़ती थी। बादशाह के महलों में कोई ख़ुशी हो—और उस्ताद मुबारकवादी न दे—यह भला कैसे हो सकता था। अभिप्राय यह—कि ज़ौक बादशाह के उस्ताद न थे—दर्बारी नकीब थे। इस तरह कसीदे लिखने और बादशाह की ग़ज़ल बनाने को छोड़ ज़ौक को अपनी रुचि के अनुसार कुछ लिखने का समय ही न मिल पाता था। बादशाह की फर्माइश दम लेने की मुहलत न देती थी, फिर बादशाह-सा शागिर्द ? बात में से बात निकालता था। ईज़ाद का बादशाह था। सत्तर बरस का सुखनफ़हम। उसका कहा—-सब इन्हें सम्हालना पड़ता था। वह अपनी ग़ज़ल कभी बादशाह को न सुनाते थे। यदि किसी तरह उस तक पहुँच जाती तो वह उसी ग़ज़ल पर अपनी ग़ज़ल कहता। और उस्ताद अपनी ग़ज़ल में बादशाह का तखल्लुस डाल कर दे देते थे। क़सीदे कहने और ग़ज़लें बनाने ही तक बात न थी। बादशाह की और भी अनगिनत फर्माइशें थी। कभी फ़कीर की सदा पर रीझ गए, कभी फल बेचने वाले के बोल मन को भागए, कभी बिसाती, मनिहारिन, की आवाज पर लोट-पोट हो गए। इन सबकी सदाओं पर फ़िलबन्दी करके ग़ज़लें लिखनी पड़ती थीं, उस्तादे शहनशाह को। इसके अतिरिक्त दर्बारी गवैओं के लिए ध्रुपद, ठुमरी, भैरवी, दादरा लिखना तो घाते में था। इन सब बातों से तंग आकर एक बार उन्होंने कह ही दिया—

'ज़ौक' मुरत्तिव क्योंकि हो दीवाँशिकवए फ़ुर्सत किससे करे।
बांधे गले से हमने अपने आप ज़फर के झगड़े हैं॥

परन्तु यह सारी मुसीबत उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा के लिए सिर ली थी। ज़ौक शायरे आज़म हैं, इसी से बादशाह जैसे सुखन फ़हम ने उन्हें अपना उस्ताद माना है। सर्व साधारण के दिलों में यही धारणा होती थी। ग़ालिब-ओ-मोमिन को वह प्रतिष्ठा नहीं मिली। क्योंकि वे बादशाह के उस्ताद न थे। ग़ालिब अलबत्ता ज़ौक के प्रतिद्वन्दी न थे, पर उनकी समकालीनता ने ज़ौक की ख्याति को ठेस पहुंचाई।

: ५ :

हकीम मोमिन

कूचे चेलान में हकीम आग़ाजान के छत्ते के सामने एक आलीशान मकान था। जिसमें भीतर खूब बड़ा सहन और उसके चारों ओर इमारत बनी थी। दालानों में चांदनी का फर्श था। अन्दर के दालान में बीचोंबीच क़ालीन बिछा था, जिस पर गाव-तकिए लगाए हकीम मुहम्मद मोमिन बैठे थे। सामने हकीम सुखानन्द 'रक़म' और मिर्ज़ा रहीमुद्दीन 'हया' बा अदब दुजानू बैठे हुए थे, ठीक दर्बारी अदब से। किसी को आंख उठाकर देखने और अनावश्यक बोलने का साहस न होता था। हकीम साहब की उम्र चालीस के लगभग होगी। कशीदा कामत, सुर्ख सफ़ैद रंग, बड़ी-बड़ी रौशन आँखें, लम्बी-लम्बी पलकें, खिची हुई भवें, लम्बी सुतवाँ नाक, पतले-पतले होंठ, उन पर पान का खाका जमा हुआ। मिस्सी आलूदा दांत, हलकी-हलकी मूछें, खशखशी डाढ़ी, भरे-भरे डण्ड, पतली कमर, चौड़ा सीना, लम्बी उंगलियाँ, सर पर लम्बे, घुंघराले बाल, काबुलों की शक्ल में—कुछ पुश्त पर और कुछ कन्धों पर पड़े हुए। कान के निकट थोड़े से बालों को मोड़ कर जुल्फें बना लिया गया था। बदन पर शर्बती रंग का नीची चोली का अंगरखा, लेकिन उसके नीचे कुरता न था। और शरीर का कुछ हिस्सा अंगरखे के परदे से दीखता था। गले में स्याह रंग का फीता, उसमें छोटा-सा सुनहरी ताबीज, काकरेजी

दुपट्टे को बल देकर कमर में लपेटा हुआ। और उसके दोनों कोने सामने पड़े हुए। हाथ में पतला-सा खारपश्त, पांव में सुर्ख़ गुलबदन का पायजामा, मुहरियों पर तंग, ऊपर किसी क़दर ढीला। रेशमी और क़ीमती। चौड़ा सुर्ख़ नेफा, अंगरखे की आस्तीन आगे से कटी हुई, कभी लटकती रहती कभी उलटी हुई। सिर पर गुलशन की दुपल्ली टोपी, जिस के किनारों पर बारीक लैस। अगल-बग़ल, शागिर्दों में नवाब शेफ्ता, नवाब अकबर, नवाब नसीम, मीर तसकीन, आही, आशुफ्ता, सालिक, शाहज़ादा कैसर, वहशत, फातमा वेगम, आदि।

मिर्ज़ा रहीमुद्दीन हया ने कहा—'हजरत, यह ज़माना ऐसा है कि शायर ख़ुशामद और भांडपने से किनाराकशी नहीं कर सकता। भूखे पेट और फ़टे हाल एक तो 'मीर' को देखा, जो गर्दन सीधी रख सके, दूसरे आप।"

हकीम साहब ने कहा—"ख़ुदा झूठ न बुलवाए, यह वह फिसलती ज़मीन है, जिस पर ग़ालिब जैसे आन के पक्के शायर भी क़दम जमा कर न रख सके।"

"ज़ौक की तो बात ही क्या, जो गुलामी की बेड़ियों में जकड़े हुए है।"

"लेकिन साहब, ग़ालिब तो ज़ौक की तरह चापलूस नहीं।"

"ठीक है, लेकिन उनकी फजूलखर्ची, मयनोशी, और मुफलिसी उनके स्वामिमान् को क़ायम नहीं रहने देती।"

"ज़ौक़ तो मुफ़लिसो वेदस्तोप बादशाह को लूटना चाहते हैं, और ग़ालिब यह हसरत दिल में छुपाए बैठे हैं।"

हकीम सुखानन्द 'रक्म' ने कहा—खुदा की शान है कि आपने आज तक किसी रईस की शान में क़सीदा नहीं लिखा।

"अजी कैसा क़सीदा ? मैं तो किसी को हिजो के काबिल भी नहीं समझता। आप तो जानते ही हैं—कि रामपुर, टोंक, भोपाल, जहांगीरा-

बाद कपूरथला, आदि रियासतों से बुलावा आया, मगर मैंने मंजूर नहीं किया।"

"बजा फर्माया। लेकिन 'नासिख' का दीवान छपकर जब से दिल्ली आया है। ग़ालिब उनके खारजी रंग में लिख रहे हैं।"

"कुछ दिन यह खारजी रंग मुझ पर भी सवार रहा। पर मैंने तो इसे तर्क कर दिया। मुझे तो अपना मखसूस रंग ही पसन्द है।"

"तो हजरत, उर्दू शायरी को अब मीर के बाद आप ही पर नाज़ है। हुज़ूर जिस जिगरसोजी से ग़ज़ल लिखते हैं, वह आपही का हिस्सा है।"

"तो भई, मैं तो न तसव्वुफ़ के पास फटकता हूँ, न फ़लसके के फेर में पड़ता हूँ। मैं तो गजल का जो असली मौज़ू इन्सानी मुहब्बत है—उसी में तवा आज़माई करता हूँ। न मैं इश्कहकीकी के चक्कर में, न नासहाना-वाज़ के फेर में, मैंने तो महज इन्सानी जज्वये इश्क के हर पहलू को नज्म किया है।"

"और वह इस खूबी से कि जिसकी मिसाल नहीं। जिस सकरी गली में ग़ालिब जैसों का दम घुटता है, उसमें हज़रत ने तबियत की वे—वे जौलानियाँ दिखाई है और कल्पनाओं की उड़ाने भरी हैं कि आज दिल्ली का कोई शायर हमसरी न कर सकेगा। हुजूर, असलूवे अदा और कुदरते-बयान के बादशाह हैं।

इस पर हकीम साहब ने एक फर्माइशी क़हकहा लगाया।

अभी क़हकहे की गूंज खत्म भी नहीं हुई थी कि दो तरुणों ने इस मजलिस में अदब से क़दम रखा। जिनमें एक थे नवाब मिर्जादाग़। उम्र कोई २४-२५ वर्ष, सिंगरफी रंग, बड़ी-बड़ी आँखें, जिनमें लाल डोरे, सिर पर लैसदार मखमली टोपी। जामदानी का अंगा, और पतले ओठों में अहंमन्यता और विलास की झलक। आगे चलकर दाग प्रसिद्ध कवि हुए। पर अभी वे बछेड़े ही थे। इनके पिता नवाब शमशउद्दीन खाँ, लुहारू रियासत के नवाब जियाउद्दीन खाँ नैयर के बड़े भाई थे। ये छै वर्ष के

ही थे कि इनकी माता ने बादशाह बहादुरशाह के पुत्र शाहज़ादा मिर्जा मुहम्मद सुलतान उर्फ 'फ़खरू' से विवाह कर लिया था और 'शौक़त महल' का खिताब पाया था। अब दाग़ की गिनती भी शाहज़ादों में की जाती थी। वह लालकिले में शाहज़ादों के साथ शिक्षा पा रहे थे। उस्ताद ज़ौक के शागिर्द थे, शाही ठाठ से रहते और घुड़सवारी के शौकीन थे, शेरोशायरी का शौक इन्हें बचपन ही से लग गया था। हकीम मुहम्मद मोमिन को भी ये उस्तादों में ही मानते थे। अभी इनके दूसरे पिता मिर्ज़ा फ़खरू का भी देहान्त हो गया था।

दाग़ ने पहुँच कर पहले हकीम साहब का आदाब बजाया, फिर दूसरे बुजुर्गों को तसलीमात अर्ज की। हकीम साहब ने गम्भीर होकर कहा—मियाँ साहबज़ादे, सुनकर निहायत अफसोस हुआ कि तुम्हारे वालिद—मिर्जा फ़खरू इन्तकाल कर गए, अभी उनकी उम्र ही क्या थी। भई बेगम शौकतमहल साहिबा से हमारी ओर से बहुत-बहुत हमदर्दी कर देना।

"हज़रत, अब तो आप जैसे बुजुर्गों का साया ही मुझ हकीर के सर पर है। दाग़ नाचीज़ का जो ऐज़ाज-व-इनायत इलाही हासिल हुआ, वह महसूदे आलम होने का वाइस है।"

"लेकिन साहबजादे, हम तो तुम्हें आली होसला और जिन्दादिल शायर समझते हैं। इतमीनान रखो कि क़स्सामें अज़ल ने वो शानो-शौकत और शुहरत तुम्हारे लिए मखसूस कर रक्खी है, कि जिस पर हर फरदों वशर को नाज हो सकता है। इतमीनान रखो मिया, एक दिन हिन्दुस्तान के हर शहर के कूचओ बाज़ार में तुम्हारी ग़ज़लें अखावे—निशान के दिलों को गरमाएँगी, और रंगीन तवअ सामइने को वज्द में लाएँगी। तुम्हारी ज़बान की फ़साहत, सादगी और बयान की शोखी और बांकपन माशाअल्लाह ऐसा है जो आम पसन्द और दिलचस्प है।"

"हुज़ूर ने अपनी जबाने मुबारक से जो फर्माया, वही मेरी बेवहा दौलत है। आपने हुक्म किया था, इसलिए मैं अजीजमन चांद को खिद-

मत में हाज़िर लाया हूं ।"

हकीम साहब ने आँखें उठाकर देखा। चाँद फर्श का एक कोना दबाए सिकुड़ा बैठा था। हकीम साहब की नज़र मिलते ही उसने उठ कर आदाब बजाया। हकीम साहब ने मुस्करा कर कहा—मिया साहब-जादे, वहाँ क्यों बैठे हो। यहाँ ज़ाजम पर आकर बैठो।"

"हुजूर हलालखोर हूँ। यही क्या कम है कि आपकी मुझ नाचीज पर ऐसी नज़रे इनायत है।"

'लाहौल वलाकू ? अमाँ—यह क्या कुफ्र है। खुदा के बन्दे सब बराबर। यह ऊँच-नीच तो हिन्दुओं में है और तिस पर तुम साहिबे-सुखन हो। मिर्जा ने हरचन्द तुम्हारी तारीफ की—इसी से देखने का शौक हुआ। तुम आए, ऐन खुशी हुई। यहाँ पास आकर बैठो।"

चाँद सकुचाता हुआ-सा ज़रा और आगे बढ़कर मिर्ज़ा दाग़ के पीछे बैठ गया।

इस हलालखोर के बच्चे चाँद की ओर सब शागिर्द और शाइर रश्क की नज़र से देखने लगे। जो हकीम साहब अच्छे-अच्छों को मुँह न लगाते थे, उन्होंने इस हलालखोर को मसनद के पास बैठने की इज्जत दी थी। कुछ देर चुप रहने के बाद मिर्ज़ा रहीमुद्दीन हया ने मुस्कुरा कर कहा—"मिया साहबज़ादे, तुम्हारी उस्ताद जोहरा के क्या हाल-चाल हैं ? कभी उन्हें भी इस बज्मेंअदब में ले आना।"

"हुजूर, वो उस्ताद होती हैं मेरी, और ज्यादा क्या कहूँ।"

"खैर, तो मेरा ख्याल है, अब तो तुम माशाअल्लाह दर्बारी अदब सीख गए। अब कब जिल्लेसुभानी बादशाह सलामत के दर्बार में तुम्हारी पेशी है ?"

"इसी ईद के जश्न के दिन हुज़ूर।"

"वल्लाह, हम भी देखेंगे।"

मिर्ज़ा दाग़ बीच ही में बोल उठे। उन्होंने कहा—"जनाब, ईद पर ही क्या मौसूफ है, आप जब चाहें तभी चाँद का जल्वा देख सकते हैं।

किसी दिन यहीं सही, चाँदनी रात में।"

हकीम साहब ने एक फ़र्शी क़हक़हा लगाया। उसी समय एक शागिर्द ने क़ागज़ हाथ में लिए डरते-डरते दुजानू बैठ कर उस्ताद को आदाब बाजाया, और सब से फुर्दतर बैठ गया। हंसी-क़हक़हे एकदम बन्द हो गए, सन्नाटे का आलम। इसलाह शुरू हुई। शागिर्द ने काँपती आवाज़ से शेर पढ़ा। दूसरा पढ़ा, तीसरा पढ़ा। हकीम साहब बिगड़ कर फर्माते गए—आगे चलो जी। अब शेर में ज़रा नुक़्स देखा, त्योरियाँ चढ़ गईं, बरस पड़े। यह क्या साहब, ज़रा फिर पढ़िए ? सुभान अल्लाह, यह आप ने लिखा है। यह मलामत और दूसरों की मौजूदगी में। शागिर्द पानी-पानी। जैसे तैसे ग़ज़ल खत्म हुई। बीच-बीच में हकीम साहब की त्यौरियों में बल पड़ जाते, बार-बार पहलू बदलते। इधर तकिया लगाओ। फिर पढ़ो। क्या मिसरा है, क्या लख़ बन्दिश है। अजी ये इस्लाह के लिए थोड़े ही आते हैं, हमारा इम्तिहान लेते हैं।

शागिर्द ग़ज़ल खत्म कर चुपचाप बैठ गया। खिदमतगार ने ख़ाना लगाने की इत्तला दी। और हकीम साहब सब दोस्तों मुसाहिबों और शागिर्दों के साथ ख़ाने को उठ खड़े हुए।

: ६ :

नौशे मिया

सारी दुनिया आज जिन्हें ग़ालिब के नाम से जानता और मानती है, उन दिनों—दिल्ली में वो नौशा-मिया के नाम से मशहूर थे। आगरे के पीपल मण्डी मुहल्ले में आज भी काला—महल के नाम से एक बड़ी हवेली किसी क़दर खस्ता हालत में है। यह हवेली किसी जमाने में राजा गजसिंह जोधपुर वालों की थी। आजकल यह इमारत सेठ लखमीचन्द की मिलकियत है और इसमें लड़कियों का स्कूल है। इसी हवेली में मिर्ज़ा ग़ालिब का जन्म हुआ था। हवेली के दर्वाज़े की संगीन बारहदरी पर

ग़ालिब अपनी चढ़ती जवानी के दिनों में निशस्त रखते थे। इसी इमारत के पास खटिया वाली हवेली और शलीमशाह के तकिए के पास दूसरी हवेली और ज़रा उससे आगे बढ़ कर गडरियों वाला कटरा है, और एक कटरा काश्मीरन वाला कहाता है। इसी कटरे के कोने पर यह महाकवि अपने बचपन में अपने लंगोटिया-यार राजा बलवानसिंह से पतंग लड़ाया करते थे। तब इनका असल नाम असदुल्ला खां ही कह कर सब पुकारते थे। आगरे में रहते हुए उन्हें अनेक आलिमों के चरणों में बैठ कर ज्ञानोपार्जन करना पड़ा। आरम्भिक शिक्षा उन्होंने मौलवी मुहम्मद मुअज्ज़म से प्राप्त की। फिर मुल्ला अब्दुस्समद ईरानी ने उन्हें फारसी का चस्का लगाया। मुल्ला अब्दुस्समद फारसी के प्रकाण्ड पण्डित थे। उस समय मिर्ज़ा असदुल्ला खां की उम्र १४ ही साल की थी। उस समय गुलाब खाना मुहल्ला—जहाँ मिर्ज़ा का बचपन गुज़रा—फारसी भाषा का केन्द्र था। तेरह साल की उम्र ही में उनका विवाह दिल्ली के प्रसिद्ध शाइर—नवाब इलाही खां मारूफ की ग्यारह वर्षीया कन्या उमराव बेग़ से हो गया। इसके दो-तीन साल बाद वह दिल्ली अपनी सुसराल ही में आ कर बस गए। उनके ससुर न केवल चोटी के कवि ही थे—वे पहुँचे हुए फकीर और सूफी भी थे। उन्हीं की सोहबत में मिर्ज़ा असदुल्ला खां को शाइरी और आध्यात्मवाद का चस्का लग गया। नवाब इलाही बख़्शं का बड़ा नाम-दबाव था। उनके रिश्ते की वजह से मिर्ज़ा को क़िले और शहर में सब कोई नौशामिया कहने लगे। और अब, जिस समय का हम यहाँ उल्लेख करते हैं, उनकी उम्र साठ साल को पार कर गई थी—पर दिल्ली में ये अभी नौशेमिया ही बने हुए थे। दिल्ली में इनका सान्निध्य अपने समय के दिग्गज विद्वान मौलवी फ़ज़ल हक़ खैराबादी से हुआ। जिसने उनके पाण्डित्य में चार चाँद लगा दिए।

मिर्ज़ा नस्ल से तुर्क थे, और उनकी आकृति में तुर्कीपन झलकता था। जवानी में वह एक सुन्दर युवा थे। चौड़ा-चकला सीना, लम्बा क़द, सुडौल, इकहरा जिस्म, भरे-भरे हाथ पैर, किताबी चेहरा, माथा चौड़ा,

उठी हुई नाक, घनी और लम्बी पलकें, बड़ी-बड़ी बादामी आँखें, सुर्ख और सफेद रंग, जिसमें शराब ने एक नई रंगत पैदा कर दी थी। छोटी-सी छटी हुई डाढ़ी, चेहरे पर व्यंग-मिश्रित हास्य मुद्रा।

अलस्सुबह नोशा मिया जल्दी-जल्दी ख़त बना कर तैयार हुए। कपड़े बदले और फ़ीनस मंगाई। और चले दिल्ली कालेज को फारसी, अरबी के अध्यापक बन कर। नौकरी का पहला ही दिन था। उन दिनों दिल्ली में फारसी के तीन चोटी के उस्ताद माने जाते थे, उनमें प्रमुखता मिर्ज़ा को दी गई थी। इस वक्त मिर्ज़ा की आर्थिक अवस्था बहुत खराब थी। मिर्ज़ा की सवारी लेफ्टिनेन्ट गवर्नर मिस्टर टाम्सन के बंगले पर पहुँची। इत्तला करा कर आप पालकी ही में बैठे रहे। साहब के असिस्टेन्ट ने कहा—"आइए।"

"जब तक साहब मेरे इस्तक़बाल को यहाँ नहीं आते—मैं कैसे पालकी से उतरूं।"

जवाब लेफ्टिनेन्ट गवर्नर तक भी पहुंचा। सब बात सुनकर मिस्टर टाम्सन बाहर आए। हंसते हुए हाथ मिलाया—और कहा—"मिर्ज़ा साहब, आप रस्मी मुलाक़ात के लिए नहीं आए हैं। नौकरी के लिए आए हैं। ऐसी हालत में स्वागत तकल्लुफ का खयाल दिल में न लाइए। बेतक़ल्लुफ चले आया कीजिए।"

नोशेमिया कुछ देर नीची निगाह किए खड़े रहे, फिर कहा—"किब्ला, मैं तो यह समझता था कि सरकारी नौकरी से कुछ इज्ज़त बढ़ेगी। यह तो अभी पहला ही दिन है कि रंग ही दूसरा नजर आता है। बन्दे का ऐसी नौकरी को दूर ही से सलाम।"

वह पलट कर पालकी में जा बैठे और कहारों से कहा—"लौट चलो।"

अभी पालकी चौक में बेगम के बाग़ के फाटक तक पहुँची ही थी कि लाला महेशदास जोहरी ने अपनी दूकान से झांका। देखा—मिर्ज़ा की

सवारी जा रही हैं। दौड़कर कहारों को इशारे से रोका—और आगे बढ़ कर कहा—

'कैसी नालायकी है—कि किब्ला बरसों में तो आप मेरी दूकान के आगे होकर गुजर रहे हैं। और मैं हूँ कि इस्तक़बाल के लिए खड़ा न रहा।"

मिर्ज़ा साहब, मुस्कुराए। पालकी से उतर कर दुकान की ओर बढ़ते हुए बोले—"मुआफ करना मेरी जान, मुझे तुम्हारी दुकान का खयाल ही न रहा। मगर इस वक्त मिज़ाज ज़रा तुर्श हो रहा है।"

'तो चलिए दुकान में, बैठ कर सुस्ताइए। कुछ कहिए कुछ सुनिए।"

मिर्ज़ा दुकान में जाकर मसनद पर बैठ गए। लाला महेशदास ने कहा—"कहां से सवारी आ रही है?"

"अजी, नौकरी करने गया था। मगर अस्तीफ़ा देकर आ रहा हूँ।"

"अयेहए, आज ही नौकरी और इस्तीफ़ा। आज ही था मिलन-दिन और आज ही हो गई विदाई।"

"मेरी जान, तीन साल पापड़ बेले। कलकत्ता तक दौड़ लगाई मगर पैंशन न मिलनी थी—न मिली। सोलह साल मुक़दमा चला—चलो खैर सल्ला। अब रहा क़र्जे का तूमार और बाक़ी उम्र। सो यह उम्र अब क़र्जा चुकाने में कटेगी। मिर्जा मुहम्मद सुलतान फ़खरू मर ही गए। खुदा उन्हें जन्नत दे, जब तक ज़िंदा रहे चार सौ सालाना देते रहे। अब वह भी खत्म। बादशाहे अवध वाजिद अलीशाह पांच सौ सालाना भेजते थे, वह भी खत्म हुए। अब सोचा—यह सौ रुपये माहवार की नौकरी है, कर लूं। सो—उसे भी सलाम कर आया।"

"लेकिन हुआ क्या?"

"होता क्या। मैं पहुंचा, और इत्तला कराई तो लेफ्टिनेन्ट गवर्नर इस्तक़बाल को बाहर आए ही नहीं। जब आए तो फर्माने लगे—नौकरी हैं, चले आया कीजिए। भला देखो तो अभी पहला ही दिन, और इज्ज़त खत्म। बस आखिरी सलाम कर आया।"

"तो अब पालकी को रुखसत कीजिए। दोपहर हो रहा है, धूप में तेज़ी आ रही है। हो जाय शतरंज की एक दो बाजी। क्या खयाल है।"

"खयाल अच्छा है। लेकिन शतरंज नहीं—चौसर हो। और बाजी बदकर हो। हमारे इलाके में एक नया थानेदार आया है, उस मर्दूद ने यह हंसी खुशी का सामान मुसीबत बना दिया है। उस मूंजी नेउस दिन मेरे घर पर छापा मार कर मुझे दोस्तों के साथ गिरफ्तार करके चालान कर दिया। दो सौ रुपए जुर्माना देकर अदालत से छुट्टी हुई। अब आज वह रक़म तुम से बाज़ी जीत कर वसूल करूंगा।"

"आइए फिर, देखा जायगा।"

लाला महेशदास ने एक तकिया उनकी ओर सरकाया. नौकर इतनी ही देर में फ़ालसे का शर्बत बना लाया। शर्बत पीकर चौसर जमी और बाजी पर बाजी लगने लगी। जब दो सौ रुपया मिर्ज़ा के सामने ढेर लग गए, तो आपने पॉसे फेंक कर कहा—अब बस। इतने ही चाहिए।

महेशदास ने भी हंस कर कहा—"खैर, इस बार आप जीते, अब की बार मेरी बारी है। सूद दर सूद समेत वसूल करूंगा।"

"तो मेरी जान, यह तो तुम्हारा धन्धा ही है। खैर, अब यह कहो खाने में कितनी देर है।"

"खाना तैयार है। खा कर ज़रा आराम फर्माइए, फिर ज़रा शाम को आंखें सेकने चलेंगे।"

"कहाँ ?"

"अमीर जान के कोठे पर।"

"वह तो अलगनी पर डालने लायक हैं।"

"तो उन से क्या ? एक लौंडिया आई है।"

"क्या देख चुके हो ?"

"अभी नहीं, पर सुना है। ठाठ बड़े बांके हैं। अच्छों-अच्छों की दुआ क़ुबूल नहीं होती। नाक नकशा क़यामत का पाया है, उस पर नमक, ज़ामा-ज़ेबी, शोखी-शरारत..........।"

"बस, बस इतना ही काफ़ी है।"

"तो खाना लगवाऊँ।"

"नेकी और पूँछ-पूँछ।"

खाना लगा। और दोनों दोस्तों ने खाया। आप सोचते होंगे। एक हिन्दू और दूसरा मुसलमान। वह सौ साल पुराना ज़माना—छूत-छात। जी हाँ, सोलह आना छूत-छात। लाला महेशदास पक्के वैष्णव, खाने में मूँग की दाल और मंड़ा, मूँग की मुंगोडिया रसेदार, वेढ़वी और खीर, कुछ अचार और मिठाइयाँ, ताजा खरबूजे। साथ बैठ कर खाने से परहेज नहीं। खाना आरम्भ हुआ। मिर्जा ने कहा—"कल यूसुफ अलीखाँ आए थे, हीरासिंह उनके साथ थे। सुना—मेरठ का हाल बेहाल है। सिपाही उबल रहे हैं।"

"क़िले का क्या हाल है, यह कहिए।"

"वही शेरो सुख़न, शराब, बुलबुल, गुल और साक़ी। बाकी सब खैर-सल्ला। मगर लाला, दाल में इस क़दर घी क्यों खाते हो, इसे पचाने को किसका पेट लाऊँ।"

"यह सिरके का अदरख चखिए, अभी सब हज्म हो जायगा।"

"खाक हज्म हो जायगा। घर पर तो बस एक रोटी का छुलका सालन में भिगोकर लेता हूँ।"

"लेकिन किले का कुछ और भी हाल चाल बताइए।"

"मिर्ज़ा जवाँबख़्त के साले विलायत अलीबेग़ आए हुए हैं, वह उन्हें फिरंगियों के खिलाफ भर्रे पर चढ़ा रहे हैं।"

"ठहरे कहाँ हैं, एक बार मिलना चाहता हूँ।"

"सआदत खाँ के कटरे में, जनरल की बीबी की हवेली में क़याम किया है।"

"आप तो किबला रामपुर जाने वाले थे।"

"जाकर ही तो आया हूँ। नवाब साहब बहुत इसरार करते रहे। बरसात के आमों का भी लालच देते रहे। लेकिन माहे मुबारक रमजान में

मस्जिद जामा की कभी तरावीज नागा हुई है ? सोमवार को रमज़ान का चांद है। उसी दिन से हर सुबह को हामिद अली खाँ की मस्जिद में जाकर मौलवी जाफर अली साहब से कुरान सुनूंगा। शब को मस्जिद जाकर तरावीज पढूंगा। वक्ते सोम महताब बाग में जाकर रोज़ा खोलूंगा और सर्द पानी पीऊंगा।"

लाला महेशदास ने हँसकर कहा—"शुक्र है, अभी सोमवार में तीन दिन हैं। एक माँडा और लीजिए।"

"बस, अब वेसन मंगाओ।"

मिर्ज़ा साहब ने खाने से हाथ खींच लिया। बेसन से हाथ धोए, पान की गिलोरी खाई और मसनद पर उठंग गए। खिदमदगार ने मिट्टी का काग़ज़ी हुक्का पेश किया। मिर्ज़ा ने कश लगाया। मुश्की खमीरी तमाखू की महक कमरे में फैल गई।

: ७ :

अमीरजान के कोठे पर

लाला महेशदास की टमटम पर शाम को दोनों दोस्त सवार होकर अमीर जान के कोठे पर पहुँचे। देखते ही अमीर जान ने उठकर पहले मिर्जा साहब को और बाद में लाला महेशदास को सलाम किया। दोनों मसनद पर बैठे। अमीर जान ने उगालदान ज़रा आगे सरका कर पान दान उठाया। सामने बैठकर वह छालियाँ कतरने लगी। सरौते के साथ उसकी जबान भी चलती जाती थी—मि. ा साहब की ओर देखकर उसने कहा—

"अल्ला मिर्जा साहब, आप तो हमें भूल ह गए।"

"मुझे क्या मालूम—कि आप किस खोह में रहती हैं।"

"बहुत बार इरादा किया, एक बार जाकर सलाम कर आऊँ, मगर हिम्मत न हुई। उस दिन आपकी एक गज़ल सुनी तो तबीयत अभी तक बेचैन है।"

"खुदा खैर करे, कहाँ सुनी, कौन-सी ग़ज़ल।"

"जोहरा के कोठे पर चाँद मियां गा रहे थे।"

"चांद मिया कौन ?"

"उनके शागिर्द हैं, क्या आप नहीं जानते। उनका तो उर्दू ए मुअल्ला तक शोर है। सुना है, ईद के जलसे पर बादशाह सलामत उनकी ग़ज़ल सुनेंगे।"

ओह, समझा, मगर वो तो जौक के शागिर्द है। फिर मेरी गजल क्यों गा रहे थे ?"

"यह मैं क्या जानूं, सोजभरी आवाज, और आपकी गजल, मुखज्जह होना ही था।"

"देखो मेरी जान, ग़ायवाना तारीफ़ अच्छी नहीं। साफ कहो।"

"आपके सर की कसम, वियाज़ न जाने कहाँ गुम हो गई। तभी पूरी गजल लिख ली थी। बस मतला याद रहा।"

"मतला क्या था ?"

"अर्ज करती हूँ—

नक्श फ़रियादी है किसकी शोखिए तहरीर का।
क़ागज़ी है पैरहन—हर पैकरे तस्वीर का॥

इसी वक्त ख़िदमदग़ार ने हुक्का ला कर मिर्ज़ा साहब के सामने रख दिया। अमीर जान ने दो बीड़े बना कर पेश किए। लाला के लिए कहार बाज़ार से पान बनवा कर लाया। लाला ने कहा—

"हम तो तब जाने बी अमीरन—कि पूरी ग़ज़ल अभी नौशेमियां पढ़ें।"

"बस, आप के हमले शुरू हो गए ?"

"ए, तो क्या हुआ।"

"तकलीफ मुआफ कीजिएगा नौशेमियां, वह ग़ज़ल ज़रा पढ़ दीजिए, लाला का दिल रह जाय।"

"माफ़ तो कुछ न होगा। न मैं ग़ज़ल पढ़ूंगा। शौक़ है तो आओ किसी दिन।"

"बस, देख ली तुम्हारी बी अमीर जान, बात तो बस किरकिरी हो गई।"

"नौशेमियां, लौंडी को इन लाला के सामने तो धेले की तीन न करो।"

"खैर, सुनो—

नक़्श फ़रियादी है, किसकी शोख़िए तहरीर का।
क़ाग़ज़ी है पैहरन पैकरे तस्वीर का॥

"वाह, क्या नाज़ुक ख्याली हैं।"

क़ावे क़ावे सख्त जानी हाय तन्हाई न पूछ।
सुवह करना शाम का लाना है जूए शीर का॥
जज़्बए बे इख्तियारे शौक़ देखा चाहिए।
सीनए शमशीर से बाहर है दम शमशीर का॥

"हाय, हाय, भई नौशेमिया, क्या रंग निकाला हैं।"

"अजी, मोती बखेरे हैं।"

"मेरी जान, शेर सुनो, अर्ज़ करता हूँ"—

आग ही—दामे शुनीदन जिस क़दर चाहे बिछा।
मुद्दआ अन्क़ा है—अपने आलमे तक़रीर का॥
बस कि हूँ 'ग़ालिब' असीरी में भी आतिश ज़ेर पा।
मूए आतिश दीदा है हल्क़ा मेरी जंजीर का॥

"वाह, क्या क़माल है, नौशेमियां। हुक्म हो तो हाथ चूम लूं?"

"चूमा-चाटी बाद में करती रहना, पहले लाला महेशदास की मुरादें पूरी कर दो।"

"लाला क़सूर हुआ, पहले नहीं पूछा, माफ कीजिए।"

"आप के लिए मुज़ाइक़ा नहीं। खैर सोहब, वह आप का माल कहाँ है?"

"अख्खाह, तो यों कहिए—मोती खरीदने आए हैं।"

"खरीद की बात परख के बाद।"

"अल्ला रे अल्ला, एक ही कांइयाँ है आप।"

"ले अब टालिए ना, बुलवाइए।"

"और बेबाकी की सनद हासिल कीजिए।" मिर्जा साहब ने हुक्के में एक कश खींचते हुए वाक्य पूरा किया।

"लाला महेशदास जोर से हंस दिए। बेचारी अमीर जान झेंप कर रह गई। झेंपते हुए कहा—"बस, रहने दीजिए। आप हाशिया न चढ़ाइए।"

"लीजिए पान नोश फर्माइए।" मिर्जा साहब ने पान मुँह में ठूस कर हुक्के में दम लगाया। लाला महेशदास ने कहा—

"आप दम लगा रहे हैं और हमारा दम निकल रहा है।"

"तो बी अमीर ज़ान, ज़रा दम दिलासा दीजिए।"

बी अमीर जान ने लौंडी को इशारा किया और गौहर नपे-तुले पैर रखती आई। झुककर आदावर्ज की। गुलाबी रंग, आँखें जैसे मोती कूट बनाई थीं। सुडौल हाथ पाँव कर नूर के साँचे में ढले अंग-प्रत्यंग, गोल कलाइयाँ, क़यामत की जामाजेबी, दिल फरेब अदा, भोलेपन से मिली-जुली, बैठी तो जैसे एक शमा रोशन हो गई।

लाला महेशदास ने पूछा—"अजी नाम तो बताओ, ज़रा याद कर लें।"

नौची ने शर्माते हुए कहा—"गौहर"

उन दिनों दिल्ली में गौहर के नाम का जादू फैल चुका था। बुलंदशहर, मेरठ, कोयल तक के लोग उसकी मिहफिलों की शोभा बढ़ाते थे। नवाब साहब झज्झर, लुहारू, वल्लभगढ़ के राजा उस पर फिदा थे। रात-रात भर मिहफिल जमती। सुबह टोकरों बासी फूलों के हार महतर बटोरता।

गौहर ने एक ठुमरी गाई। लाला महेशदास चुपचाप बैठे सुनते रहे। अभी ठुमरी के बोल चल ही रहे थे कि लाला महेशदास ने इशारा

किया। नौची उठ कर उनके सामने गई। पाँच अशर्फियाँ उसके हाथ पर रख कर महेशदास उठ खड़े हुए। उन्होंने बी अमीरन से कहा—बी अमीरन, बुरा न मानना, अभी लौंडिया मिहफिल जमाने के काबिल नहीं। उसे जरा तालीम दो।" उन्होंने फिर मिर्जा की ओर देखकर कहा—"चलिए नौशे मियाँ।"

: ८ :

रमजान

रोजे के दिन। जामा मस्जिद पर आदमियों का जमघट। जाबजा लोग गुट बनाऐ बैठे थे। कहीं कुरान के दौर हो रहे हैं। कहीं कुरान सुनाने वाले हाफिज एक दूसरे को आयतें सुना रहे हैं। कहीं सूफी साधू अद्वैत-अनलहक की चर्चा कर रहे हैं। कहीं मंतिख और हदीस की चर्चा हो रही है। दो आलिम इल्मी बहस कर रहे हैं। दस बीस मजे में ध्यान लगाए सुन रहे हैं। कहीं कोई तस्बीह घुमा रहा है। उंगलियों पर तस्बीह के दाने जैसे-जैसे सरकते है, वैसे ही उसके होंठ भी फड़क रहे हैं। बहुत सैलानी इधर से उधर मटरगश्ती कर रहे हैं।

इसी तरह दिन बीत गया। रोजा खोलने का समय आ गया। अब सैकड़ों थाल विविध पकवानों से भरे चले आ रहे हैं। मुजाबिर लोग उन्हें लोगों में बांट रहे हैं। श्रद्धालु सद्‌गृहस्थ थालों पर थाल भेज रहे हैं। उनका अन्त नहीं है। शाही महल से भी भिन्न-भिन्न स्वादिष्ट पकवानों से भरी किश्तियां चली आ रहीं हैं। महल्ले-महल्ले से भरे थाल चले आ रहे हैं। किले की प्रत्येक बेगम—प्रत्येक राजकुमारी अपने-अपने थाल भेज रही हैं। शहर के सब अमीर उमरा अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार थाल भेज रहे थे। उनका ताता लग रहा था। थालों की संख्या सैकड़ों तक पहुंच रही थी। और यह रोज का काम था। प्रत्येक अमीर कोशिश करता था कि उसका थाल दूसरों से बढ़ कर रहे। थालों पर

भिन्न-भिन्न रंग के रेशमी रूमाल और उनकी जरी की झालरें भी एक से एक बढ़ चढ़-कर थीं।

लालकिले से सैकड़ों फकीरों को भोजन भेजा जा रहा था। शाहजादियाँ और बेगमें इस काम में एक दूसरे से होड़ ले रहीं थी।

: ६ :
ईद

आज उनत्तीसवाँ रोजा है। जो चांद की खबर सब से पहले लावेगा, उसे शरई साक्षी के विश्वास पर पाँच मोहरें और एक जोड़ा ईनाम दिया जावेगा। इसी से सहरी के बाद बीस सांडनी सवार, जिन की सांडनियाँ पचास-पचास साठ-साठ कोस का धावा मारती थीं, दिल्ली से चारों दिशाओं को चल पड़े और आठ-आठ नौ-नौ मंजिल पर जाकर पड़ाव किए। सांडनी सवार जंगल में, शहर वाले कोठों पर, स्त्रियाँ ममटियों पर इस पर आज दिन छिपने में अभी देर है, पर लाखों आँखें आकाश को ताक रही हैं।

सूर्यास्त हुआ, बादशाह सलामत दीवाने आम की छत पर आ रौनक अफरोज हुए। यहीं आज हफ्तारी रोजा खोला जायगा। कोरे-कोरे मटके, सोधी-सोधी सुराहियाँ, कागजी आबखोरे पंक्तियों में चुने रखे हैं, धुले धुलाए। बड़े-बड़े हंडों में जस्त की कुलफियाँ और मटकैने मलाई और दूध से भरे रखे हैं। फालसे, खरबूजे, पिश्ते, बादाम की बर्फियां थालों में आरस्ता हैं। फिर दुनियाँ भर की मिठाईयां, कचौरियाँ, समोसे, दालमोठ, सेम के बीज, कल्मी बड़े, फुलकियाँ, दही बड़े किश्तियों में संजोए रक्खे हैं। परन्तु आज हफ्तार पर किसी की नजर नहीं हैं। नजर है चाँद पर। बस चाँद पर।

बादशाह ने सफ बाँध कर नमाज पढ़ी। और चाँद को देखने उठ खड़े हुए। चारों ओर से एक मर्मर शब्द संहस्त्रों कण्ठों से निकला—

"अल्लाह बिस्मिल्लाह।" खाले में पाँच मुहरें, एक बीड़ा, दो थान गुलबदन, के एक थान जरबक्त का मौजूद है। जो सब से पहले चाँद देखेगा उसे यह पुरस्कार मिलेगा।

आख़िर चाँद दिखाई दिया। यह था ईद का चाँद। यह जवान ईद थी। मुजरे आरम्भ हुए। जो सामने आया झुक कर सलाम की। लाहौरी दर्वाजे से ग्यारह तोपैं दगीं। नौबत खाने पर धोंसे पर चोट पड़ी। जामा मस्जिद के हौज पर बत्तीस गोले छूटे, शहर को ईद की खबर मिल गई। और सारी दिल्ली ईद की तैयारी में संलग्न हो गई। ईद की खुशियाँ तो मझले रोज से ही शुरू हो चुकी थीं। घर साफ किए गए थे। कमरे दालान, अंगनई दरीचों पर सफेदी की गई थी। फर्श धोए जा चुके थे। दर्जियों और धोबियों की चाँदी थी। काम की भीड़ से होश न था। सलेमशाही जूते वालों की दुकानों पर गाहक टूटे पड़ते थे। सिवैयाँ घर टूट रहीं थीं। खातूनें अपनी कोमल कलाईयों को हवाई चूड़ियों से आरस्ता कर चुकी थीं। मनिहारियाँ दाँतों में मिस्सी की धड़ जमाए, पान की गिलौरियों कचरती हुई ठसक से चूड़ियाँ पहनातीं और गहरे इनाम लेती जा रही थीं। मालामाल हो रहीं थीं। घर-घर आनन्द उत्सव मनाए जा रहे थे। बच्चों की खुशी का ठिकाना न था। सबको नए वस्त्र मिले थे। साँझ को ही नई जूतियाँ पहनी गई थीं। उन्हें वे सिराने रख कर सोए थे। लड़कियाँ अपनी गोटे किनारे की पोशाकें देख-देख कर फूली न समातीं थीं। कल वे ईद की पोशाक पहनेंगी। उन्हें भूख-प्यास भला कहाँ? बस पोशाक को निहार रही हैं। माँ खाने को कहती हैं, मगर लड़की ने मंहदी लगाई है। वह कह रही है—"अम्मी! हमने तो मंहदी रचाई है। हम से खाना न खाया जायगा।"

रात बीती। अजान की बांग सुनाई पड़ी। गृहिणी हड़बड़ा कर उठ खड़ी हुई, चूल्हा जला और सिवैयाँ, छुहारे, खांड निकाली, चूल्हे पर सिवैयों का पानी चढ़ाया। प्रातः की नमाज अदा हुई और सिवैयाँ तैयार। घर साफ किया। फर्श फराश किया। कपड़े बदले—और मियाँ, बीबी,

बच्चे सब चले ईदगाह की ओर। लौटे तो मिठाईयाँ, खिलौने, तरकारियाँ खरीद कर। अब ईदियाँ शुरू हुई। किसी को पाँच, किसी को एक रुपया किसी को अठन्नी, चवन्नी, दुअन्नी। दिन भर चला यही सिलसिला। शाम को भाई अपनी छोटी बहनों के घर और बाप अपनी बेटियों के घर ईदियाँ देने गए।

मनिहारिन घर में आयी। घर में प्रवेश करते ही बहुओं ने खड़े हो कर झुक कर सलाम किया। बेटियों ने सलामें की। माँ का संकेत पाते ही बहू ने सिवैयां, कचौरियाँ, मिठाई मनिहारिन के सामने रक्खी। मनिहारिन ने खाया, पानी पिया, कुल्ली की। बीबी ने दो बीड़ा पान बनाया, जर्दा दिया। मनिहारिन ने गिलौरियाँ मुँह में ठूसीं और असीस दी—"बूढ़ सुहागन सांई जीएँ—बच्चे जिएँ।"

बीबी ने अढ़ाई रुपए बटुए से निकाल कर सामने रखे, और कहा—"लो बुआ, अपना नेग।" मनिहारिन ने चूड़ियाँ तो पाँच आने की ही पहनाईं थीं, पर इस वख्त तिनक कर पीछे हटी और कहा—"वाह बेगम! अढ़ाई कैसे? हमेशा तो इस ड्योढ़ी से पांच मिलते रहे और इस बार तो अल्लाह खैर करे, तुम्हारी हसना सुसराल से पहली बार आई हैं। इस की ईद भी लूंगी।" बेगम ने एक अठन्नी और बढ़ाई—तो मनिहारिन और बिगड़ गई। उसने कहा—हये-हये। सब खर्चे तो पूरे हुए, मुए मेरे ही दो रुपए काट रही हो। ना-ना, बड़ी बेगम तो कभी हुज्जत करती ही न थीं। बेटियाँ बहू सब चुप। मियाँ भी चुप। बेगम ने एक रुपया और बढ़ाया और कहा—"बस करो, अल्लाह ने चाहा तो बकरीद पर कसर निकाल दूंगी।" मनिहारिन ने कहा, "ऐ बीबी! तुम्हारी जूतियों के तुफैल से बच्चों की ईद हो जाती है। खुदा सलामत रक्खे—बुढ़िया का मान रख लेती हो। बूढ़ सुहागन—दूधों नहाओं, पूतों फलो।"

यह हुई दिल्ली की ईद। अब चलिए लालकिले में। चाँद हो गया। इनाम बंट चुके। महलों में रात भर धूम रही। इक्कीस तोपों से चाँद की सलामी हुई। मोदीखाने, तोशाखाने के दरोगा अपने-अपने समान

की फिहरिस्त बनाने में परेशान। शाहजादियाँ बुजुर्गों को चाँद का आदाबर्ज कर रही हैं। छः घड़ी रात रही तो किले से तम्बू और छोलदारियों के छकड़े ईदगाह की ओर चले।

शामियाने तने, तम्बू लगे, डेरे पड़े। फौजदार खाँ फीलखाने के दरोगा आए और हुक्म दिया—"हाथी रंगो।" मौलाबक्श हाथी रंगा गया। शाही खिलअत तैयार हुआ। शाहजादियाँ मंहदी बेगमात चूड़ी में लगी हैं। चार बजे ईद की तोप दगी। बादशाह उठे। गुस्ल किया, शाही पौशाक पहनी, फिर मोती मस्जिद में आ नमाज पढ़ी और जवाहरखाबे में तशरीफ लाए। ताज पहना, गले में मोतियों का हार। खासाबरदार ख्वाजासराओं ने दस्तरखान बिछाया। बादशाह ने एक चम्मच सिवैयाँ और एक टुकड़ा छुहारा खाकर इफ्तसार किया। इसके बाद सूखा निवाला और मसूर की दाल। कुल्ली की, पाना खाया, खड़े हुए। रखवालियों ने पुकारा—"अल्ला रसूल की अमान" तरपचियों ने नफीरी बजाई। सवारी का हुक्म हुआ। बादशाह बाहर आए। दोनों तरफ खड़ी फौजों ने सलामी दी। फौजदार खाँ ने हाथी लगाया। हबशियों ने हवादान लगाया, बादशाह हवादान में बैठे। बाजे बजने लगे और बादशाह दीवाने आम में पहुँचे। अहलकारों ने कोर्निशें कीं। बादशाह हाथी पर सवार हुए। इक्कीस तोपों की सलामी छूटी। तलवारों की छाँह और बाजों की धूम-धाम में बादशाह किले से बाहर चले—पालकी में शहजादे, घोड़ों पर अमीर, बीच में बादशाह का हाथी, आगे पीछे फौज। शाही जुलूस ईदगाह की ओर चला। 'हुक्मे आम' की पुकार हुई—"कोई प्रार्थी-दुखिया आए, और अपनी विपता सुनाए।" लाहोरी दर्वाजे तक चांदी के फूल गरीबों और फकीरों को लुटाए गए। आगे का रास्ता तंग था। नकारा खत्म। खैरात खत्म। मेला यहीं से शुरू। तुरई, गुब्बारे, कल का घोड़ा, तीतरी, किश्ती और न जाने क्या-क्या खिलौने बिक रहे हैं। बच्चे मचल रहे हैं।

ईदगाह आई। शाही हाथी रुका। बादशाह नीचे उतरे और ईदगाह

में प्रविष्ट हुए। तकबीर आरम्भ हुई। नीयत बांधी, दुग्राना पढ़ा, सलाम फेरा और नमाज खत्म हुई। अब खुतवे का समय आया। शाही हुक्म होते ही तोशेखाने का दरोगा आगे बढ़ा। किश्ती में खिलअत के सात कपड़े और जड़ाऊ परतला इमाम साहब को पेश किया गया। बनारसी दुपट्टा उनकी कमर में बांधा गया। तलवार कमर से लगाई गई। इमाम साहब ने कुल्ले पर हाथ रख कर खुतबा पढ़ा। बादशाह का नाम आते ही उपस्थित जन में 'आमीन' का नाद उठा। खुतबा खत्म हुआ। पचास रुपए नकद इमाम को बख्शे गए। बादशाह हवादान में बैठ कर किले में आए।

बादशाह दर्बारे खास में तख्त पर बैठे। कम्पनी के रेजीडेंट ने आगे बढ़ नर नजर पेश की, कोर्निश की। फिर दूसरी भेंट हुई। इनाम बटे, बारह की तोप चली।

बादशाह जनान खाने में आए। बेगमात ने भेंट दी, भोजन का समय हुआ, धौंसे पर चोट पड़ी। देग का लंगर लुटा। ईद का खाना बटा, ईदियाँ दी गईं। बादशाह दस्तरखान पर बैठे।

रात हुई। ईद की रात। किले के चप्पे-चप्पे कोने-कोने पर कंदीलें जगमगा रहीं थीं। बृक्षों पर कुमकुमे लटक रहे थे। मोती मस्जिद के कंगूरों पर अबरक की लालटेने जड़ी थीं। नाच रंग, संगीत में लालकिला चौथी की दुलहिन बन रहा था।[१]

: १० :

जश्ने ईद

दीवाने आम दुलहिन बना हुआ था। क़ालीन का फर्श, जरदोजी के पर्दे, दीवारों और दरवाजों पर फूलों की सजावट, मोतियों के गजरों की सुगन्ध से वातावरण भरपूर है। इत्र के कुरावे लुढ़ाये गए हैं। अमीर और

१—आधारित।

रईस शहर के बड़े लोग अपने-अपने पद के अनुसार दस्तबस्ता खड़े हैं। सामने ज़िल्लेइलाही तख्तेहुमा पर रौनक अफरोज हैं। मियाना क़द, जिस्म काही, दुबला-पतला, बादामी चेहरा, बड़ी बड़ी विलासी आँखें, ग़ालों की हड्डियाँ उभरी हुई। सुतवाँ नाक, मौज़ू दहाना, गेंहुआ रंग, छरेरी डाढ़ी, चेहरे से जलाल टपकता है। इस वक्त बादशाह की शाही सजधज नहीं है। हरे कमख्वाब का एक फेर का पायजामा, ढाका की मलमल का कुरता, उसके ऊपर जामादार की खफ्तान, सिर पर कारचोबी चोगोसिया टोपी है। पीछे और दाँएँ बाएँ चार चोबदार सब्ज खिड़कीदार पगड़ियाँ बाँधे नीची सब्ज बानात की चिकने पहने सुर्ख़ शाल रूमाल कमर से लपेटे हाथों में गंगा जमनी आसा मोरछल लिए खड़े हैं।

जब सब नजरें गुजर चुकीं—बादशाह ने मिरज़ा ग़ालिब की तरफ चश्मे-इन्तखाब फर्माई। मिर्जा आदाब बजा लाते हैं। और कसीदा पढ़ते हैं।

हाँ महे नौ सुने हम उसका नाम।
जिसको तू झुक के कर रहा है सलाम।
कौन है जिसके दर पै नासिया सा—
है महोमिहरो ज़ोरा ओ बहराम।
तू नहीं जानता तो मुझसे सुन
नाम शहन शाहे बुलन्द मुक़ाम
किब्लए चश्मो दिल बहादुर शाह।
मज़हरे जुल जलाल वाला कराम।
क़ातवे हुक्म ने बमूजबे हुक्म—
इस रक़म को दिया तराज़े दवाम्।
है अज़ल खानिए आगाज़
हो अबद तक रसाइए अंजाम।

बादशाह सलामत ने खुश होकर खलते हफ्त पारचा अपने हाथ से दिया। मिरज़ा मुजरा करते हुए आए, क़दम छुए। इशारा चश्म पाते

ही उस्ताद ज़ौक—पीरो मुर्शद अर्ज़ करता हूँ, कह कर अपना क़सीदा पढ़ने लगे :—

जश्ने बहादुर शाह रोज़े अलवोजा है।
है इसलिए वहज्रत फ़िज़ा नूरे शहर रंगे शफ़क।
वो खुशरवे रोशन गौहर जिसको खजल हो देखकर
माहो सुरैया वा सुहानूरे सहर रंगे शफ़क।
रोशन वियानी से तेरी शीरी कलामी से तेरी
शर्मिन्दा होता है सवा नूरे सहर रंगे शफ़क।
ऐ आफताब इज्जोंशां तेरी जवीं से हैं अयां।
नूरे यकीं रंगेहिना नूरे सहर रंगे शफ़क।
साक़ी मये इशरत के भर सागर कि है इस रंग पर–
आबो हवा जाए फिज़ा नूरे सहर रंगे शफ़क।

उस्तादे शाह ने क़सीदा खत्म किया—तो सुभान अल्ला की आवाज़ चारों तरफ से आने लगी—बाहवाहे खुसरवी खिलते पारचा अता हुआ। इसके बाद चाँद की पुकार हुई। सबकी नज़र इस नौजवान हलालखोर के बच्चे की ओर उठ गई। उसने आगे बढ़कर जमीन तक झुक कर तख्त को चूमा। बादशाह को कोर्निश की और जमीन चूमी. उस्ताद का इशारा पाकर अपनी गज़ल पढ़ी। गज़ल का दर्द भरा तड़पता हुआ मजमून। चाँद की सोज़ भरी कांपती आवाज। सुनने वाले सक्ते की हालत में हो गए। बादशाह सलामत ने खिलअत पारचा इनायत किया। और शाहजादों के बराबर खड़ा किया। अर्जवेगी पुकारा—दरबार बर्खास्त। बादशाद हवादार पर सवार हुए और महल में दाखिल हुए। जसोलिनी ने आवाज दी—खबरदार हो, हवादार चाँदी के तख्त के बराबर कर दिया गया। मलिके दौरां और शाहर्ज़ादियों ने नजरें गुजारीं, बादशाह के हाथ से भारी-भारी दुपट्टे इनाम में पाए। नाच-गाना शुरू हुआ, गुल अंदाम ने गत भरी, यह मालूम हुआ कि आसमान से परी उतर पड़ी। नाच खत्म

हुआ, तो शमशाद बाई ने बादशाह का बनाया हुआ बहार का खयाल शुरू किया।

सकल बन फूल रही सरसों,
अमवा मेरे टेसू फूले, कोयल बोले डार डार।
और गोरी करत सिंगार, मालीना गरवा ले आईत रसों।
सकल बन फूल रही सरसों।
तरह-तरह के फूल लगाए, ले गरवा हाथन में आए।
निज़ामुद्दीन के दरवाज़े पर, आवन कह गए शौक रंग,
और बीत गए बरसों, सकल बन फूल रही सरसों।

शमशाद बाई गा चुकी तो दिलेर ख़ानम ने नृत्य करके हुज़ूर की ग़ज़ल सुनाई—

दिया अपनी खुदी को जो हमने मिटा,
वह परदा बीच में था न रहा।
रहा परदे में अब न वह परदा नशीं,
कोई दूसरा तेरे सिवा न रहा।
हमें सागरे वादा के देने में—करे देर जो साक़ी तो हाय गज़ब।
कि ये अहदे निशात ये दौरे तख्त न रहेगा जहाँ में सदा न रहा।

: ११ :

नौ मई

बड़ी सख्त गर्मी थी। सुबह ही से आसमान में धुंध भर रही थी। रात-भर आंधी चली थी, और अब तूफान के सूचक काले बादल घिरते आ रहे थे। सूरज धूल गर्द और बादलों में छिपा हुआ था। बड़ा ही मनहूस-सा दिन था।

साढ़े सात बज रहे थे। मेरठ के तीसरे देशी रिसाले के कमाण्डर कर्नल कारमाइल स्मिथ जल्दी-जल्दी वर्दी कस रहे थे। उनका खास

खिदमतगार ब्रजमोहन उनकी सहायता कर रहा था। कर्नल की आयु चालीस के लगभग थी। वह खूब लम्बे-तगड़े आदमी थे। उनके चेहरे पर घमण्ड और सख्ती स्पष्ट थी। उनकी मोटी ठोड़ी उनके आग्रही स्वभाव की परिचायक थी। वर्दी पर तग़मे लटका कर उन्होंने ब्रजमोहन की ओर हाथ फैला कर कहा—"हमारा पिस्टल दो, और देखो—कि वह भरा हुआ है या नहीं ?" इतना कह कर उन्होंने अपनी कमर पेटी में लगी तलवार की मूठ पकड़ कर, जरा म्यान से बाहर निकाला, और फिर उसे म्यान में कर लिया। इसी समय ब्रजमोहन ने पिस्टल उन्हें पेश करते हुए कहा—"हुजूर, एकदम लैस हैं।"

"ऑल राइट !" इतना कह कर कर्नल ने पिस्टल कमर पेटी में लगाई। और एक चुरुट सुलगाई। इसी समय एक एडजुटेंट ने आ कर हड़बड़ाते हुए—कर्नल को सलाम किया और कहा—"कर्नल, कैप्टन की आज्ञा है कि आज इस वक्त परेड न की जाय। क्योंकि समूची रेजीमेंट में कारतूस के मामले को ले कर उत्तेजना फैली हुई है। और छै की छै रेजीमेंट ऐसी ही मनोवृत्ति में हैं। मामला बहुत गम्भीर हैं। यदि सावधानी से काम न लिया गया, तो आधे घण्टे में सारी रेजीमेंट विद्रोही हो जायगी।"

कर्नल ने एक लम्बा कश चुरुट का लिया। और उसका धुआँ आकाश की ओर फेंकते हुए कहा—"कैप्टन को हमारा सलाम बोलो, और उनसे कहो—कि घबराने की कोई बात नहीं है। मेरठ सब तरह सुरक्षित है। यहाँ विद्रोह भड़कने की ज़रा-भर आशंका नहीं है। क्योंकि यह उन थोड़ी-सी छावनियों में से एक है, जहाँ सभी किस्म की यूरोपियन सेना की टुकड़ियाँ काफी संख्या में मोजूद हैं। सिपाहियों की धमकी में आ कर परेड स्थगित करना कायरता होगी। टम क्या बोला ब्रजमोहन ? उन्होंने अपने मुँह लगे खिदमतगार की ओर मुँह कर के कहा।

ब्रजमोहन जात का खटीक था। वह बड़ा दुष्चरित्र आदमी था। उसे इन्फ्रेन्ट्री से चोरी के जुर्म में बर्खास्त किया जा चुका था। परन्तु

अब वह कर्नल का विश्वासपात्र बना हुआ था। उसने कहा—"हुजूर, इतमीनान रखिए कि जल्द फौज का हरेक आदमी इन कारतूसों को इस्तेमाल करेगा। इसके अलावा ये बदमाश हिन्दू ही कारतूसों की बाबत ऐसी गन्दी बात सोचते हैं, मुसलमान नहीं।"

"टुम ठीक बोला, ब्रजमोहन, अमारा इन्फेन्ट्री में सब मुसलमान हाय। इसलिए उसने एडजुडेण्ट की ओर मुखातिब हो कर अंग्रेज़ी में कहा—हमारा यह प्रदर्शन न तो अस्वाभाविक है, न अनुचित।"

एडजुडेन्ट सैल्यूट कर के चला गया। ब्रजमोहन ने सलाम कर के कहा—"हुजूर, इसके सिवा एक बात यह भी तो है—कि सरकारी रुआब भी तो कायम रहना चाहिए।"

"अंग्रेज सरकार का रुआब ज़रूर कायम रहेगा। चल, अमारा घोरा लाओ।"

"यस सर", कह कर ब्रजमोहन चला गया।

घोड़े पर सवार हो कर कर्नल स्मिथ परेड मैदान में पहुँचे। जहाँ ८५ अपराधी सवार सफ बाँधे चुपचाप खड़े थे। उनके सामने तोपखाना था। सब तोपों का मुँह सिपाहियों की ओर था। और तोपची अंग्रेज हाथों में बत्ती लिए तोप दाग़ने को मुस्तैद खड़े थे। उनके पीछे गोरी पल्टन राइफल ताने मुस्तैद खड़ी थी। दूसरी ओर छावनी के छहों देशी रेजीमेन्टों को उन सिपाहियों को अपमानित होते दिखाने के लिए बुलाया गया था। इन पच्चासी गुनाहगार सिपाहियों में ३६ हिन्दू और ५९ मुसलमान थे। मैदान में भयानक सन्नाटा था, सूरज की तेज धूप इन पच्चासी सिपाहियों के चेहरे पर पड़ रही थी। उस धूप की चमक में वे तांबे की मूर्ति से लग रहे थे। उनके चेहरों पर दृढ़ता थी। और आँखों में क्रोध की चिनगारियाँ निकल रही थीं। उन्हें यह ज्ञात नहीं था कि एक क्षण बाद क्या होने वाला है। उनमें कुछ तो बूढ़े हो गए थे। उन्होंने अपने अंग्रेज साथियों के साथ भयंकर युद्धों में लड़ कर कितने ही तग़मे जीते थे। वे उनकी छाती पर लटक रहे थे। कुछ ऐसे भी वीर

इनमें थे—जिन्होंने काबुल की लड़ाई के कठिन दिनों में मांड पी कर दिन बिताए थे और भात गोरे सैनिकों को दे दिया था। इन सब की आयु का अधिकांश अंग्रेजों के लिए लड़ने में बीत चुका था। कर्नल स्मिथ घोड़े पर चढ़ा ही चढ़ा एक बार पूरी पंक्ति में घूम गया। उसने एक-एक के चेहरों को ध्यान से देखा, जो घृणा और क्रोध से तमतमा रहे थे। फिर वह तेजी से घोड़ा बढ़ा कर सिपाहियों से सौ गज दूर जा खड़ा हुआ।

बिगुल बजा और अपराधी सिपाहियों के सामने खड़ी गोरी सेना ने पैंतरा बदला। उन्होंने बंदूकों पर संगीनें चढ़ा लीं। जैसे उन्हें अभी धावा मारने का हुक्म मिलने वाला हैं। गर्मी और धूप से इन सिपाहियों के मुँह भी तप कर लाल हो रहे थे। पर वे अचल पर्वत की चट्टान की भाँति खड़े थे। दूसरा बिगुल बजा, और एडजुटेन्ट पंक्ति के सामने आया। उसने हाथ का खरीता खोला और उच्च-स्वर से उसे पढ़ा—उसने एक-एक के नाम और उनकी सैनिक-संख्या घोषित की, और कहा—तुम सब को अनुशासन भंग के अपराध में नौकरी से बर्खास्त किया जाता है। उसने नाम ले-लेकर कुछ को कालेपानी की, कुछ को बीस-पन्द्रह और दस-दस वर्ष की सपरिश्रम कैद की सजा की घोषणा कर दी। परन्तु फिर कहा—विचारकों ने सिफारिश की है कि कुछ सिपाहियों की दीर्घकालीन सेवा और अच्छे आचरणों पर विचार कर के यदि उन्हें महज़ अफवाहों का शिकार समझा गया तो उनकी सजाएँ हल्की हो जाएंगी।"

फर्मान जेब में रख कर उसने अपनी तलवार नंगी कर ली। और कड़क कर कहा—"अपराधियो, सीधे खड़े हो जाओ।" तुरन्त उसके पीछे चार गोरे सार्जन्ट हाथों में पिस्टल लिए आ खड़े हुए। एडजुटेन्ट गवर्नरी चाल चलता हुआ सैनिकों के पास गया। हवलदार मातावदल की वर्दी पर चार तग़मे लटक रहे थे, जो उसने काबुल, पंजाब और बर्मा की लड़ाइयों में वीरता प्रदर्शन कर के प्राप्त किए थे। एडजुटेन्ट ने खींच कर वे चारों तग़मे तोड़ लिए और हट कर फिर अपनी जगह आ खड़ा हुआ। यहाँ आ कर उसने हुक्म दिया—"अपराधियो ! अपनी-अपनी वर्दी उता

दो, सिर्फ जूते पहने रहो।"

पच्चासी जवानों ने यन्त्रचालित की भाँति अपनी वर्दियाँ उतार कर चुपचाप नीचे रख दीं। उनके भीतरी वस्त्र और अंग शराबोर हो रहे थे। और बहुतों के माथे से पसीना चू रहा था। बहुतों की आँखों में आँसू भरे थे। पर उन्होंने एक शब्द भी मुँह से नहीं कहा।

बिगुल तीसरी बार बजा, और एडजुटेन्ट ने फर्मान एक बार हाथ में ले कर उसका कुछ अंश पढ़ा और हुक्म दिया—"इन कैदियों को हथकड़ी और बेड़ियों में जकड़ दिया जाय।"

लुहारों का दल बेड़ियाँ, हथौड़े और संडासी लिए आगे बढ़े। उन्होंने एक-एक के पैरों में बेड़ियाँ और हाथों में हथकड़ियाँ कस दीं। बहुत देर तक यह काम होता रहा। सारी सेना पत्थर की मूर्ति की भाँति अपने वीर-साथियों का यह भयंकर अपमान देख रही थी। सूरज अब मध्यम-काश में पहुँच चुका था। उसकी प्रखर किरणें प्रत्येक पुरुष के मस्तक को तपा रही थीं।

बिना किसी प्रतिवाद के उन्होंने बेड़ियाँ पहन लीं। पर हवलदार मातावदल ने अपने जूते उतार कर अपने दोनों हाथों में ले लिए। उसने कहा—"भाइयो, यह भी हमारा एक पुराना हथियार है। इसे हाथ में ले लो, शायद इसकी जरूरत पड़ जाय। सब कैदियों ने अपने-अपने जूते उतार कर हाथ में ले लिए।"

अब उन्हें जेलखाने ले जाने की आज्ञा हुई, गोरी पल्टन उन्हें घेर कर ले चली। मातावदल हवालदार जब कर्नल स्मिथ के सामने से गुजरा—जो इस समय भी पिस्टल हाथ में लिए घोड़े पर तना बैठा था। तो उस हवलदार ने लाल-लाल आँखों से उसे घूर कर कहा—"हरामजादा दोजखी कुत्ता।" और अपने हाथ का जूता जोर से उसकी ओर फेंका। परन्तु इसी समय गोरे सिपाहियों ने उसे संगीनों की नोक पर आगे को धकेल दिया।

धीरे-धीरे ये सिपाही जेल भेज दिए गए। और उनके दूसरे साथी

खून के आँसू बहाते अपनी बैरक में लौट आए। इस समय मध्याह्न का प्रखर सूर्य तप रहा था।

: १२ :

काला-इतवार

मेरठ की छावनी उस समय ब्रिटिश सेना की सबसे बड़ी छावनी थी। यहाँ यूरोपीय और भारतीय दोनों ही सैनिक रहते थे। पैदल पल्टन में हिन्दू अधिक थे और सवारों में मुसलमान। मेरठ में क्रान्ति का सबसे पहला विस्फोट होगा—यह चर्चा दबी जबान सर्वत्र सैनिक छावनियों में चल रही थी और सभी की नज़र मेरठ पर थी। अक्सर लोग मेरठ की चर्चा करते, वहाँ का हाल-चाल पूछते रहते थे। उन दिनों समाचार-पत्रों में मेरठ के सम्बन्ध में रहस्यमय शीर्षक छपा करते थे। अप्रैल का मास भय, आशंका और अटकलों का मास था। छावनियों में, बाजारों में लोग निकट भविष्य की क्रान्ति की चर्चाएँ किया करते थे। लोग चौकन्ने थे। व्यापारी लोग अब कारोबार में पूंजी फसाने में घबराते थे। कल क्या होगा—यही सबकी जबान पर था। प्रतिदिन कोई न कोई उत्तेजना की बात उठ खड़ी होती थी। प्रसिद्ध बात थी कि कई बार सेना में विद्रोह हुआ और चुपचाप दबा दिया गया। लोग नई-नई झूठी सच्ची कहानियाँ गढ़ते और यार लोग उन पर रंग चढ़ा कर उन्हें विचित्र रूप देते थे। दिन पर दिन लोग अंग्रेजों के कुचक्र की नई-नई व्याख्याएँ करते थे। किसी अंग्रेज़ को बाजार में निकलता देख कर भाँति-भाँति की अपमान जनक इशारे किए जाते थे। कारतूसों के सम्बन्ध में जितनी सर-गर्मी मेरठ में दिखाई गई उतनी अन्यत्र कहीं नहीं। अन्त में २४ अप्रैल को तीसरी घुड़ सवार पल्टन ने नए कारतूसों को कड़ाबीन में डालने से इन्कार कर दिया। उनका कोर्ट मार्शल हुआ। प्रधान सेनापति की आज्ञा से देशी फौजी अदालत द्वारा मामला चलाया गया। ब्रिटिश कानून के न्याय का एक यह भी आदर्श माना जाता है कि अपराधी के भाई-बन्द

ही उसका न्याय करें। किन्तु भारतीय सिपाही देशी फौजी अदालत को अन्याय का एक उपकरण मानते थे। क्योंकि यह अदालत गोरे स्वामियों के संकेत के अनुसार ही निर्णय देती थी। इस देशी अदालत में एक अंग्रेज अफसर भी था। जिसे सुपरिटेन्डेट अफसर का ओहदा दिया गया था। उसकी सलाह और क़ानूनी जानकारी का प्रभाव सभी सदस्यों पर था। कैदियों ने अपने को निर्दोष बताया, पर उनसे कोई जिरह नहीं की गई। उन्होंने एक स्वर से लेफ्टीनेन्ट मेलबिले क्लार्क के अभियोग को असत्य बताया। फिर भी उन्हें अपराधी घोषित करके उन्हें काले पानी से लेकर १० वर्ष तक कठोर कारावास का दण्ड दिया गया।

परन्तु अदालत का निर्णय सर्व सम्मति से नहीं हुआ। १५ व्यक्तियों में से केवल एक ने ही असहमति प्रकट करने का साहस किया। परन्तु दंडाज्ञा में यह शिफारिश की गई कि उनकी दीर्घ-कालीन सेवा और अच्छे आचरण का ख्याल रखा जाय। डिविज़नल कमाण्डर जनरल हेविट आराम पसन्द आदमी था। उसने उन सिपाहियों की सजा में कोई कमी नहीं की—न भावी वातावरण पर ध्यान दिया। उसने केवल ११ सिपाहियों की सज़ा उनकी उम्र के विचार से कम कर दी।

जनवरी ही में कारतूसों के सम्बन्ध में सेनाओं में असंतोष फैलना आरंभ हो गया था। परंतु कम्पनी की सरकार ने सिपाहियों को समझाने-बुझाने की अपेक्षा दबाने से काम लिया। एक विदेशी सरकार यह सहन नहीं कर सकती कि उसकी शान को बट्टा लगे। क्योंकि वह उसी को अपनी प्रतिष्ठा समझती है। अफसरों ने सिपाहियों की भावना की कुछ भी परवाह नहीं की। सिपाहियों के प्रति नर्मी दिखाने का अर्थ सरकार की कमजोरी समझा गया। परिणाम स्वरूप बैरकपुर, अम्बाला, अवध और मेरठ में अपार घटनाएँ धटित हुई।

हथकड़ी बेड़ियों से जकड़े हुए कैदियों को सुरक्षित रूप से साधारण जेल में पहुंचा दिया गया। गर्मी का लम्बा दिन बीतता चला गया। आने वाले तूफान का कोई चिन्ह नहीं प्रकट हुआ। शाम को सिपाही रोज

की तरह बाजार में मटर गश्ती को निकले। दुकानें खुलीं थी, और सब काम पूर्ववत् हो रहा था। सड़कों, चौरस्तों पर भीड़-भाड़ चहल-पहल नित्य के जैसी ही थी। अभी पाँच ही बजे थे—कि एक वावर्ची लड़का सिपाही लाईन की ओर दौड़ता हुआ आया। वह ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला कर कहता जा रहा था—खबरदार रहो। खबरदार रहो। रेजीमेन्ट के हथियारों पर कब्जा करने के लिए तोपचियों की टुकड़ी और बन्दूकधारी पल्टनें आ रहा हैं। इस घोषणा से सिपाही भौचक रह गए। सुबह उनकी आँखों के आगे जो हुआ था--वही उनके साथ होने बाला है। यह उन्हें भास गया। वे सब सुबह ही विद्रोह करने को आमादा थे। परन्तु गोपाल पाण्डे के संकेत से वे ३१ मई तक रुक गए थे। परन्तु अब वे एकदम अधीर और उत्तेजित हो—जो चहाँ जैसी स्थिति में था—बैरकों की ओर भागे। न वे वर्दियों मैं थे, न हथियार लिए थे। इस समय अत्म रक्षा और आत्म सम्मान ही की भावना सर्वोपरि उनके मस्तिष्क में थी। तीसरी घुड़सवार सेना के जवान जल्दी-जल्दी वर्दी पहन और बन्दूकें लेकर एक जत्था बना कर अपने साथियों को छुड़ाने पुराने जेलखाने की ओर तेजी से रवाना हो गए।

२०वीं नेटिव इन्फेन्ट्री परेड़ के मैदान में एकत्रित हो गई। और फिर शस्त्रागार में घुस गई। ग्यारहवी नेटिव इन्फेन्ट्री में भी उत्तेजना फैल गई। बाजार की दुकाने धड़ा-धड़ बन्द होने लगीं। दुकानदार भीतर से द्वार और सिटकनियाँ बन्द करके दुकानों के भीतर ही घुस बैठे। यह खबर आज की तरह शहर में फैल गई। और शहरी गुण्डे धड़ा-धड़ बाज़ारों को लूटने लगे।

इस समय राइफ़ल्स के सिपाही चर्च परेड़ के लिए तैयार हो रहे थे। लेफ्टिनेन्ट गफ़ ड्यूटी पर जाने के लिए शन्तिपूर्वक वर्दी पहन रहे थे। दोनों पादरी चर्च जा चुके थे। ग्रेटहेड दम्पति चर्च जाने की तैयारी में थे। लेफ्टिनेन्ट मैकेंजी अपने बंगले में आराम कुर्सी पर पड़े इतमीनान से अध्ययन कर रहे थे। मिस मैकेन्जी और श्रीमती क्रेगी शाम की प्रार्थना

में भाग लेने जा रहीं थी।

सिपाही लाइन से हो हल्ला सुन कर गफ़ घोड़े पर सवार हो बीसवीं नेटिव इन्फैन्टी के परेड़ मैदान की ओर भागा। उसने सैनिक बैरक के पास पहुँच कर देखा—कि उनकी झोपड़ियां धांय-धांय जल रही हैं। और सिपाही गोला-बरूद सब कब्जे में करके वेतहाशा चीख पुकार कर के एक दूसरे को नाम ले लेकर ज़ोर-ज़ोर से पुकार रहे हैं। अपनी बन्दूकों को वे हवा में उछाल-उछाल कर उन्मत्त की भाँति नाच रहे थे। गफ़ यह देखकर भय भीत हो गया। उसने सेना को आदेश दिया। पर किसी ने उसकी बात नहीं सुनी। उसे अपनी जान का खतरा उपस्थित हो गया और वह गोरा बैरकों की ओर भागा। राह में उसे ग्रेटहेड दम्पति मिले। उन्हें उसने सांवधान किया। इसी समय मैकेंजी भी घोड़े पर सवार होकर वहाँ आ पहुँचा। इस समय सड़कें घुड़सवार सैनिकों से भरी हुई थीं। कैप्टिन क्रेग्री भी उन्हें यहीं आ मिले। दोनों अफ़सर घोड़े दौड़ाते हुए परेड़ के मैदान की ओर भागे। और अफ़सर भी परेड़ के मैदान में आ आकर एकत्र हो रहे थे। परन्तु कर्नल कारमाईकेल अपने मातहत लोगों को रेजीमेन्ट की देख-भाल करने का आदेश दे, पहले कमिश्नर के पास गए, फिर ब्रिग्रेडियर के पास और फिर जनरल कमांडिग के पास। उसने तोपखाने की कमान मेजर टोम्स को सम्हलाई। जोन्स ब्रिग्रेडियर आर्चडेल विल्सन, और दूसरे उच्च अफसरों के साथ कर्नल स्मिथ जनरल कमांडिग हेविट के गिर्द जमा थे। हेविट सत्तर बरस का बूढ़ा आदमी था। और इस समय वह बहुत घबराया हुआ था। उसके सभी घुड़सवारों को घुड़सवारी न आती थी। बन्दूकचियों को गोला-बारूद देर से मिला था। यह किसी को पता न था कि विद्रोही कहाँ है। क्योंकि वे सर्वत्र फैल गए थे और शहरी गुण्डों की भीड़ उनके साथ मिल गई थी। इन सब बातों से हेविट घबरा गया।

अब रेजीमेन्ट के अनेक अफसर परेड़ के मैदान में पहुंच चुके थे। उन में कुछ सिपाहियों को समझा-बुझा रहे थे। पर उनकी कोई बात नहीं सुनी

जा रही थी। सिपाही बराबर शोर मचा-मचा कर गालियाँ बक रहे थे। कुछ अंग्रेज अफसरों से कह रहे थे—"भागो-भागो अब कम्पनी का राज हमेशा के लिए खत्म हो गया।"

जब तीसरी घुड़सवार सेना के सवार पुरानी जेल की ओर चले गए। तो बीसवीं नेटिव इन्फेंट्री परेड़ के मैदान में रह गई। कुछ देर बाद ग्यारहवीं नेटिव इन्फेन्ट्री भी आ गई। इसी समय उसका कमान्डर फिनिस घोड़ा दौड़ाता हुआ वहाँ आया। उसने उच्च स्वर से सिपाहियों से नमक हलाल बने रहने की अपील की। इसी समय तीसरी घुड़सवार सेना का सैनिक घोड़ा दौड़ाता आया। उसने चिल्ला कर कहा—"हमने जेल को तोड़ डाला, और अपने साथियों को निकाल लिया। जेल के अफसर और पुलिस भी हमारे साथ है। मारों इन फिरंगियों को।" अभी उसका वाक्य पूरा भी न हुआ था, कि एक धड़ाका हुआ और कर्नल फिनिस वहीं ढेर हो गया। यह देख कर अंग्रेज अफसर वहाँ से भाग गए। बीसवी और ग्यारहवीं पलटनों के सिपाहियों ने मिलकर अब छावनी के अंग्रेज़ों के बंगलों में आग लगानी आरम्भ की। उन्होंने अपनी झोपड़ियाँ भी स्वाहा कर दीं। सूर्यास्त होते-होते सारी छावनी धांय-धांय जलने लगी। चीखते चिल्लाते अंग्रेज़ स्त्री बच्चे इधर से उधर भागते नज़र आने लगे।

: १३ :

विद्रोह फैला

मेरठ का यह विस्फोट आकर्षक और अकल्पित था। जैसे ग्रीष्म का अंधड़ आया और चला गया।

जब तीसरी घुड़ सवार सेना के सिपाही जेल के फाटक पर पहुँचे, तो जेल के बार्डर-जेलर और पुलिस वाले सब उनका मुँह ताकते रह गए। जेल में घुसकर उन्होंने अपने साथियों की बेड़ियाँ काट डाली, और उन्हें लेकर वे हल्ला मचाते हुए बाहर आए। इन लोगों ने यद्यपि अन्य

कैदियों को नहीं छेड़ा था। परन्तु इस अव्यवस्था से लाभ उठा कर जेल के बहुत से पुराने और मशहूर खूनी डाकू भी उनके साथ निकल भागे। ये सब क्रोध और घृणा से भरे हुए चीखते-चिल्लाते बैरक की ओर झपटे। इस समय तक बैरक में अन्धेर मचा हुआ था। छावनी और बंगले धाँय-धाँय जल रहे थे। क्रेग्री के बंगले के निकट मिसेज चैम्बर्स रहती थी। वह गर्भवती थी। घर पर वह अकेली थी, उसे इन उत्तेजित सिपाहियों ने टुकड़े-टुकड़े कर डाला। इससे यूरोपियन अफसरों में आतंक छा गया। मिसेज़ क्रेग्री और मिसेज मेकन्ज़ी गिरजे से लौट रहीं थी। उन्हें बड़ी ही कठिनाई से उनके साईस ने बचा कर उनके बंगले तक पहुँचाया। इसी समय उत्तेजित भीड़ ने बंगले को घेर लिया। मेकैन्ज़ी भी इस समय वहाँ आ पहुँचा। उसने एक दुस्साहस किया, वह रोती हुई स्त्रियों को बंगले के फाटक पर ले आया और सिपाहियों को पुकार कर कहा—"ये स्त्रियाँ तुम्हारी शरण हैं और इनका जीवन तुम्हारे हाथ में है।" सिपाही भावुकता में आ गए। उन्होंने चिल्ला कर कहा,—"उनकी हम रक्षा करेंगे।"

इस समय तक इन सिपाहियों का कोई संगठन न था। उनकी छोटी-छोटी टुकड़ियाँ बनी हुई थी। जो छावनी के इर्द-गिर्द चीखती-चिल्लाती घूम रही थी। वे नहीं जानते थे कि वे क्या करें। मेरठ में उनका रहना खतरे से खाली न था। क्योंकि वहाँ इस समय भी १५०० शस्त्र सज्जित यूरोपियन सेना थी। कुछ सिपाहियों का चित्त अभी भी डाँवा-डोल था। वे नहीं जानते थे कि वे कहाँ जाय और क्या करें। वे लोग छोटी-छोटी टुकड़ियों में बँट कर सुरक्षा की खोज में निकल पड़े। कुछ लोग उसी दिन रुहेलखण्ड की ओर चल दिए, कुछ हापुड़ और कुछ बागपत की सड़क पर चल दिए। परन्तु अधिकांश लोग दिल्ली और गुड़गाँव की ओर चल दिए।

पौ फटते-फटते वे मुराद नगर जा पहुँचे। यहाँ से आम सड़क छोड़ वे गाँवों की ओर बिखर कर दिल्ली की ओर बढ़ते गए।

सुबह होते-होते भीड़ छट गई। नया दिन विध्वंस के चिन्ह लेकर

आया। छावनी के बंगले जो कलतक गुलज़ार थे—आज राख का ढेर बन चुके थे। अभी तक उनमें से चिनगारियाँ निकल रहीं थी। रेवरेण्ड टी० स्मिथ और रोटन अपने मृत साथियों को दफ़नाने में व्यस्त थे। ग्यारहवीं इन्फेन्ट्री के कुछ सिपाही अभी भी बन्दूकें लिए हुए बचे-खुचे अंग्रेज अफ़-सरों के बंगले और स्त्री बच्चों की रक्षा कर रहे थे। कमिश्नर को जमादार गुलाब खां ने बड़े साहस-पूर्ण तरीके से ग्रेटहेड दम्पति को जलती छत के नीचे से भस्म होने से बचाया था। बख्तावर चौकीदार ने मिसेज़ मेकडानल्ड को बचाना चाहा था, पर दुर्भाग्यवश वह सफल न हो सका। नसीबन आया—उनके रोते-कलपते बच्चों को बहला रही थी। मिसेज कोर्टनी के बंगले पर तीसरी घुड़सवार सेना के कुछ सैनिक अब भी मुस्तैद खड़े थे। असगर अली ने अपने बंगले के ईसाई किराएदारों की जान बचाने में अपनी जान जोखिम में डाल दी थीं।

उपद्रव आरम्भ होते ही जर्नल हैविट ने जल्दबाजी के लिए स्मिथ। की भर्त्सना करते हुए जल्दी-जल्दी सुरक्षा के कुछ प्रबन्ध किए थे। वह बूढ़ा यद्यपि घबरा गया था। पर उसने राइफल सेना की एक टुकड़ी को कलक्टर की कचहरी में ख़जाने की रक्षा में तैनात कर दिया था विल्सन तोपख़ाने और शेष राइफल सेना को साथ लेकर परेड मैदान की ओर गया था। पर उस समय तक वहाँ से विद्रोही सिपाही चले गए थे

: १४ :

धन्नासिंह कोतवाल

इन दिनों धन्नासिंह गूजर मेरठ का कोतवाल था। अभी उसे थाने में आए थोड़े ही दिन हुए थे। बड़ी-बड़ी मूछें, भारी देगची के बराबर चेहरा, मोटी देहाती आवाज और बेलगाम जबान। उन दिनों थानेदार अपने शहर के लाटसाहब होते थे। धन्नासिंह की जबान पर मन-मन-भर वजन की गंदी गालियाँ तैयार रहती थीं। मोंढ़े पर बैठे हुक्का गुड़गुड़ाना,

गालियाँ बकना, हर शख्स को संदेह की नजर से देखना धन्नासिंह का स्वभाव था। इस वक्त छावनी और शहर में बदअमनी फैली हुई थी। यह बात नहीं कि शहर कोतवाल धन्नासिंह को उसका कुछ पता नहीं। उसके गुर्गे बहुत थे। वे न केवल राईरत्ती खबर धन्नासिंह के कानों में पहुंचाते रहते थे। धन्नासिंह के इशारे से सब कुछ कर गुजरने में समर्थ थे। हकीकत यह थी कि मेरठ गूजरवाड़ा नहीं तो गूजरवाड़े का मुख्य द्वार था। धन्नासिंह ने तीसरे पहर हीं विद्रोह का संकेत पा कर गाँवों में संदेश भेज दिए थे। और दिन छिपते-छिपते चारों ओर के गूजर मेरठ को लूटने आने लगे थे। इस समय जहाँ छावनी और बैरकों में आग और कत्ल के खेल हो रहे थे। शहर में गूजर और शहरी गुंडे मोटे-मोटे लठ लिए शहर को लूट रहे थे। राह-बाट में जो मिल जाता, उसे लूट-पाट कर मार डाला जाता था। जगह-जगह मरे और अधमरे आदमी पड़े थे। बाजार तो तीसरे पहर ही बन्द हो चुके थे। लोग घरों में भीतर से सांकल-कुन्डा चढ़ाए बैठे थे। कोई इक्का-दुक्का आदमी ही घर से बाहर निकलने का साहस कर सकता था। कहीं घायल चीख रहे थे। बहुत से घरों में से रोने-पीटने की आवाज़ें आ रही थीं। लेकिन शहर कोतवाल धन्नासिंह मज़े में मोंढ़े पर बैठे खमीरी तमाखू के मज़े ले रहे थे। वह इस वक्त बहुत खुश थे। जमादार मुबारक उनके बगल में खड़ा चिलम में फूंक लगा रहा था। उसने हंस कर कहा—

"हुजूर, जेल तो टूट गई।"

"चलो अच्छा हुआ। ये सौरे फिरंगी अब कहाँ जाएँगे।"

"सब मौत के घाट उतार दिए जाएँगे। छावनी धाय-धाय जल रही है। तीन साहब और दो मेम साफ कर दी गईं।"

"शहर का क्या हाल है?"

"शहर की भी हवा गर्म है।"

"चलो अच्छा ही है, ये सौरे पतली दाल खाने वाले बनिए, व्याज का रुपया खा-खा कर बहुत मोटे हो गए थे।"

"अब सब कीं तोंदें छट जाएँगी।"

"लेकिन उस्ताद, मेरी थानेदारी बदनाम न हो।"

"मजाल है हुज़ूर, सारा शहरी मामला तो हुज़ूर की बिरादरी वालों ही के हाथ में है।"

"चलने दो, देखा जायगा।" उन्होंने हुक्के में कश लगाया। इतने ही में मेरठ के डिप्टीकलक्टर वज़ीर अली खां लपकते हुए बदहवास थाने में आ बरामद हुए। थानेदार उछल कर मोढ़े पर से उठ खड़े हुए। उन्होंने अंग्रेजी ढंग पर डिप्टी साहब को सलाम किया। थाने के सब सिपाही भी चुस्त हो कर खड़े हो गए। डिप्टी साहब खानदानी रईस थे। हाल ही में मुरादाबाद से बदल कर आए थे। कमसिन और नाज़ुक बदन भी थे। उन्होंने कहा—

"अमा थानेदार साहब !"

"हुज़ूर का इकबाल बुलन्द, हुक्म," उन्होंने फिर से अंग्रेजी सलाम भुकाया।"

"शहर का क्या हाल-चाल है ?"

"सब ठीक-ठाक है हुज़ूर।"

"ठीक-ठाक कहाँ है। बदअमनी फैली है। बाबू बीरबल का मकान लूट कर उसमें आग लगा दी गई है और कैलाशचन्द्र घोष की राशन की दुकान लुट गई है।"

"कहाँ ? थाने में तो कोई रपट नहीं लिखवाई गई।"

"जेल टूट गई, कैदी निकल भागे।"

"तो गुलाम ने भी नायब को एक दस्ता हथियार-बन्द सिपाही दे कर उधर भेज दिया है।"

"शहर में अमन कायम होना चाहिए।"

"हुज़ूर, जरूर होना चाहिए।"

"तो भई इन्तजाम करो।"

"बहुत अच्छा हुजूर, आप आराम कीजिए, ताबेदार कारे सरकार के लिए मुस्तैद हैं।"

"लेकिन शहर लुट रहा है।"

"मैं अभी जा कर देखता हूँ।"

"ये लुटेरे कौन हैं?"

"सब बदमाश ही होंगे हुजूर।"

"उन्हें गिरफ्तार करो।"

"बहुत अच्छा हुजूर।" और थानेदार साहब अपनी ही मूछों में हँसते हुए वर्दी कस घोड़े पर सवार हो शहर की ओर चल दिए। नजीर अली डिप्टी साहब उनका मुँह ताकते खड़े रह गए।

: १५ :

ब्राह्मण का आत्मयज्ञ

सतीचन को जिस समय ८५ सवारों को बेडियाँ पहना कर जेल ले जाया जा रहा था। और हज़ारों सैनिक और नागरिक इन सेनिकों का अपमान आँखों में लोहू के आँसू भरे देख रहे थे। इन नागरिकों की भीड़ में एक गुसाइँ भी था। इसके शरीर पर भगवा वस्त्र, एक हाथ में कमंडल और दूसरे में मजबूत डंडा था। शरीर उसका काला था, उसकी काली डाढी से घिरा चेहरा बड़ा भयानक प्रतीत होता था। वह सब आदमियों से लम्बा था। उसकी आँखें लाल हो रही थीं। लोग शोर मचा रहे थे, रो रहे थे, या वकवाद कर रहे थे, परन्तु यह पुरुष लोहे के खम्भे की भाँति चुपचाप खड़ा था। जब सब कैदी जेल भेज दिए गए और सब सिपाही भी बैरकों में चले गए तो यह वैरागी सब से विपरीत दिशा में बेगमाबाद की ओर चल पड़ा। मालूम होता था—उसके पैर लोहे के बने थे, वह इतना तेज चल रहा था कि कोई साँडनी सवार भी उसका मुकाबला नहीं कर सकता था। दो-तीन कोस चल कर एक गाँव

के किनारा कुएँ के पास वह ठहर गया। कुछ देर नीम की छाँह में बैठ ठण्डा पानी वरहे से पिया। इसी सयय दो पुरुष एक घोड़ा लेकर वहाँ आए। दोनों पुरुषों के सिर पर बड़े-बड़े मुडासे इस तरह बंधे थे कि उनका सारा ही मुँह छिप गया था। वैरागी ने आंखों के संकेत से कुछ बातें उनसे की और घोड़े पर सवार होकर वह खेतों और पगडंडियों की राह दिल्ली की ओर दौड़ चला। यह पुरुष गोपाल पाँण्डे था।

एक पहर रात बीत चुकी थी जब वह दिल्ली पहुँचा। पुल के चौकीदारों ने उसे रोका—पर चमचमाता रूप देख तथा साधु-महन्त समझ चला जाने दिया छावनी पहुँचते-पहुंचते उसे आधी रात बीत गई। परंतु यहाँ उसकी प्रतीक्षा हो रही थी। सूबेदार शोभासिंह की बैरक में ५-६ सैनिक उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे, उनसे उसने बहुत सी बातें की। बातें करते-करते भोर हो गया।

परन्तु यह किसी को भी पता न था कि पल्टन के तीन सिपाही उस गुसाईं की मुखवरी कर रहे थे। इस बार भी उसकी मुखविरी की गई और अफ़सरों ने छिप कर सब बातें सुन लीं।

भोर के तड़के ज्यों ही वह सूबेदार शोभासिंह के बैरक से निकला। संगीनों पर उसे घेर लिया गया, और तत्क्षरण उस फाँसी पर लटका दिया गया। सूबेदार शोभासिंह को भी गिरफ्तार कर लिया गया। उसका कोर्ट मार्शल हुआ।

गुसाईं को पेड़ पर लटका कर फाँसी दी गई थी। फाँसी से उतार कर उसकी लाश ज़मीन पर डाल दी गई, जो दिन भर वहीं पड़ी रही। सिपाही यह देख कर गुस्से से लाल हो रहे थे। सायंकाल को उसे महतर के द्वारा घसिटवा कर जलवा डाला गया। साहस करके कई अफसरों ने उसकी लाश माँगी—परन्तु उन सबको गिरफ्तार कर लिया गया। इस से दिल्ली छावनी में क्रोध, अशान्ति और घृरणा का एक अनोखा नया वातावरण छा गया। और सिपाहियों का खून खौलने लगा। सिपाहियों

ने आपस में कहा—भाइयो, यह ब्राह्मण का आत्मयज्ञ है, यह हमारे कल्याण के लिए हुआ है। अब तो हमें इस ब्राह्मण को दक्षिणा देनी है।

: १६ :

दिल्ली की ओर

मेरठ की १४०० गोरों की पल्टन और तोपखाना तीसरे पहर होते न होते परेड के मैदान में मोर्चा जमा कर चाक चौबन्द हो गया। परन्तु इस समय तक तो विद्रोही सवार और पैदल सिपाही दिल्ली की राह चल दिए थे। तीसरी घुड़सवार समूची पल्टन चाँदनी रात में इस तरह सरपट घोड़े दौड़ाती दिल्ली की ओर दौड़ी जा रही थी, मानो किसी मुहिम पर धावा किया जा रहा है। उन्हीं के पीछे पैदल पल्टन के सिपाही भी लम्बे-लम्बे डग भरते जा रहे थे। उनके हृदय उत्साह, उद्वेग के साथ-साथ आशंका से भी भरे हुए थे। इस समय केवल एक ही आकाँक्षा उनके हृदय में थी—कि भारत की भूमि पर एक भी अंग्रेज जिन्दा न रहने पाए। परन्तु न तो उनके पास कोई योजना थी। न संगठन। न उनका कोई नेता और सरदार था। वे नहीं जानते थे कि संगठन का महत्व क्या है। वे केवल उत्साह में भरे दिल्ली की ओर बढ़े चले आ रहे थे, और उनकी नजर और आशा डगमगाते मुग़ल तख्त की ओर थी। भारतवर्ष के इतिहास में दिल्ली का नाम चमत्कार से खाली नहीं है। इन विद्रोही सैनिकों के मन में इतनी बात तो थी कि दिल्ली का नष्ट गौरव फिर स्थापित होना चाहिए। वे इसके अतिरिक्त और कुछ सोच ही न सकते थे—कि बूढ़े बादशाद बहादुर शाह को फिर से शहन्शाही की गद्दी पर बैठाया जाय। परन्तु इसकी सफलता की प्रथम सीढ़ी तो तय थी कि भारत के प्रत्येक स्थान से सेना दिल्ली पहुँचे, और नियत तिथि पर जो जहाँ है—ब्रिटिश सत्ता का जुआ उत्तार फैंके। परंतु मेरठ के ये उतावले जवान इस बात के महत्व को नहीं जानते थे।

मेरठ में १५०० गोरी पल्टन सब तरह के हथियारों से लैस तैयार थी। इसके अतिरिक्त उसके पास भारी तोपखाना भी था, जो गोरों ही के मातहत था। अतः वे जल्दी से जल्दी मेरठ से दूर चले जाना चाहते थे। मेरठ के विपरीत दिल्ली में यूरोपियन सिपाही नहीं थे। दिल्ली के कुछ सिपाही अफसरों ने मेरठ की सैनिक अदालत में भाग लिया था। यद्यपि उन्होंने सिपाहियों को अभियुक्त ठहराया था—पर मन उनका क्षोभ से भरा हुआ था।

मेरठ के मुख्य सेनाधिकारियों ने इस समय मूर्खता और कायरता की हद कर दी थी। उन्होंने नगर के अंग्रेजों की रक्षा का कोई बंदोबस्त नहीं किया। गोरी पल्टन तोपखाना लिए परेड के मैदान में डटी खड़ी थी और विद्रोही सिपाही रातों रात ३२ मील का धावा मार कर दिल्ली की ओर बढ़े चले आ रहे थे। कुल मिला कर दो हजार सवार और पैदल थे। जो हर-हर महादेव, और दीन-दीन चिल्लाते बढ़े चले आ रहे थे। इनमें बहुतों ने प्रधान सड़क छोड़ दी थी, वे पगडंडियों और खेतों में होकर चले आ रहे थे। यद्यपि उन्हें पीछा करने का बहुत अंदेशा था, परन्तु मेरठ के मूर्ख अधिकारियों ने पीछा करने का कोई यत्न नहीं किया था।

: १७ :

जमुना तीरे

एक पहर रात बाकी थी। एक-दो तारे टिमटिमा रहे थे। पूर्व में आकाश पर सफेदी छा रही थी। इस समय कुछ सवार जमना के उस पार ढाके के जंगल में पहुँचे। ये सब रातों-रात चले आ रहे थे। इनमें कुछ ऊँघ रहे थे। परन्तु एक नवयुवक सब से आगे अपना घोड़ा बढ़ाए दूर तक सामने दृष्टि किए चल रहा था। एकाएक सामने जमना और उसके उस पार लालकिले की परछाईं देख कर वह चीख पड़ा—उसने अपने पीछे

ग्राने वाले ग्रधेड़ साथी से कहा—

"हवलदार, होशियार हो जाग्रो, दिल्ली ग्रा गई।"

हवलदार जोगीराम ऊंघ रहा था। उसने ग्रांख खोल कर कहा—"कहाँ ?"

"देखते नहीं, सामने जमना है। उस पार लाल किले की परछाईं।"

"तो दोस्त, घोड़े रोक दो ग्रौर बंदूकें भर लो। बेहतर है कि जरा ठहर जाग्रो ग्रौर साथियों को भी ग्रा लेने दो।"

"लेकिन हम यह कैसे कह सकते हैं कि दिल्ली में हमारा कैसा स्वागत होगा ? मुमकिन है पुल पर ही मुठभेड़ हो जाय। इसके ग्रलावा ग्रभी दिन निकलने में भी देर है। ग्रंधेरे ही में पुल पर कब्जा कर लेना ग्रच्छा है।"

फिर भी कुछ ग्रौर साथियों को ग्रा लेने दो। उनके पास तोपखाना भी है। न होगा तो हम पुल पर तोपें लगा देंगे।"

"ग्रजी, इससे ग्रच्छा तो यह होगा कि हम तत्काल ग्रागे बढ़ कर पुल पर कब्जा कर लें। वहाँ मार-काट हुई तो हम पांच-सात जन ही मारे जाएंगे। पीछे ग्राने वाले इससे सावधान हो जाएंगे।"

"लेकिन तोपखाना ग्राने की इन्तजारी करना ग्रच्छा है।"

"मान लो उसके ग्राने में दोपहर हो गया ?"

"हमें कुछ देर तो प्रतीक्षा करनी चाहिए।"

"नहीं, हवलदार, हमें तुरन्त ग्रागे बढ़ना चाहिए, उसने ग्रपने साथी तरुण की ग्रोर देखा, जो ग्रब ग्रागे बढ़ ग्राया था। उससे उसने कहा—"तुम क्या कहते हो झम्मसिंह ?"

"तुम्हारी बात ठीक है। हमें धावा बोल देना चाहिए।"

"तो देखो हम सात हैं। हम-तुम दो ग्रादमी ग्रागे चलें। हम से एक तीर के फासले पर हवलदार जोगीराम बंदूक से लैस रहे। उनके पीछे ग़नी ग्रौर वहीद बंदूकें तैयार रखें। हम पांचों ग्रपनी जान पर खेल कर पुल पर कब्जा कर लेंगे। हमें उम्मीद है—वहाँ हमें पाण्डेजी मिल

जाएंगें। फिर जैसा होगा देखा जायगा। पर यदि हमें सफलता न मिले तो हमारे दो साथी यहीं जंगल में छिपे रहें, और पीछे आने वालों को सावधान कर दें।"

तरुण का नाम नसीर अहमद था। उसकी आयु अभी बाईस के लगभग होगी। भीगती हुई मसें, भरा हुआ वक्ष, तेज काली आखें और कसरती जिस्म। उसका साथी झम्मनसिंह भी उसी की आयु का तरुण था। वह जाट था और दिल्ली के पास अलीपुर गाँव का रहने वाला था। ये दोनों तरुण अपनी-अपनी बंदूकें भर तथा कंधे पर रख कर आगे बढ़े। उनके पीछे हवलदार जोगीराम और उसके पीछे दो और सैनिक।

जमुना किनारा आ गया। पुल को देख कर जोगीराम ने कहा—"ठहरो।"

"किस लिए हवलदार ?"

"मुझे आगे चलने दो।"

"क्यों ?"

"तुम जवान हो, अभी तुम्हें दुनिया देखनी है। तुम्हारी बहुडिया तुम्हारी राह देख रही होगी। मैं फक्कड़ हूँ। जोरू न जाता अल्ला मियाँ से नाता।"

जोगीराम हँस पड़ा। वह रोहतक का जाट था। पर नसीर ने कहा—"मैं पठान हूँ चचा, इन बातों को रहने दो। आगे घोड़ा मेरा ही रहेगा।"

"चलो फिर जवान, देखा जायगा।"

"पाँचों वीरों ने पुल पर घोड़े छोड़ दिए। किसी ने ललकारा—"कौन जा रहा है। पहले राहदारी का परवाना बनवाओ।"

"तुम कौन हो ?"

"मैं मीर बहरी हूं।"

"तो तुम अपना काम देखो। हम से न उलझो।" नसीर ने जवाब दिया और घोड़ा बढ़ाया।

"कहता हूँ आगे न बढ़ो। हुक्म नहीं है।"

"हम किसी का हुक्म नहीं मानते।"

मीर बहरी ने चिल्ला-चिल्ला कर सिपाहियों को पुकारा। ५-७ सिपाही तलवारें ले कर दौड़ पड़े। सब ने सिपाहियों को रोक लिया।

नसीर अहमद ने तलवार सूंत ली और झम्मनसिंह भी तलवार लेकर उसके बग़ल में खड़ा हो गया। नसीर ने हवलदार से पुकार कर कहा—"हवलदार चचा, अभी गोली मत चलाना।" और दूसरे ही क्षण उसने चुंगी के एक चपरासी का सिर भुट्टा-सा उड़ा दिया।

चपरासी के मरते ही सब सिपाही भाग उठे। पाँचों वीर पुल पार कर चुंगी-घर के पास पहुँचे। तब तक पुल पर हँगामा देख कर बहुत लोग इकट्ठे हो गए थे। आगे-आगे झम्मनसिंह चल रहा था। एक तिलंगे ने बढ़ कर गोली दाग दी। झम्मनसिंह वहीं ढेर हो गया।

अब तो नसीर बफरे हुए बाघ की भाँति तिलंगों पर टूट पड़ा। हवलदार ने चुंगी अफसर को गोली मार दी, और चुंगी की सब रकम कब्जे में कर के चुंगी-घर में आग लगा दी, और कलकत्ता दरवाज़े की ओर बढ़े।

यह सब धमाचौंकड़ी देख—बहुत जमुना स्नानार्थी तमाशाई इकट्ठे हो गए। वे भाँति-भाँति की बातें करने और शोर मचाने लगे। इसी समय उन्होंने देखा—पुल पर मेरठ की ओर से टिड्डी-दल के समान सवार धंसे चले आ रहे हैं। उनके साथ तोपखाना भी है। यह देख मीर बहरी ने पुल की नाव का ताला खोल दिया। और साहब कलक्टर को इत्तला करने कचहरी की ओर तावड़तोड़ भागा।

कुल मिला कर दो हज़ार सवार और पैदल हर हर महादेव और दीन दीन का नारा बुलंद करते जमना-पुल पार कर दिल्ली में घुसे चले आ रहे थे। दिल्ली में हलचल मच गई।

बरा-साब

दिल्ली के चीफ कमिश्नर साइमन फ्रजर बरा-साब के नाम से प्रसिद्ध थे। वह उस रात बड़ी देर तक क्लब में शराब पीते और ब्रिज खेलते रहें थे। दिल्ली के कलक्टर हचिन्सन और खानबहादुर जकाउल्लाह से उनकी गर्मागर्म बाजी लग रही थी। फ्रेजर साहब जीत रहे थे और शराब की झोंक में एक अच्छा-सा गीत मोटी आवाज में गुनगुना रहे थे। झज्झर के के नवाब साहब के दीवान काशीप्रसाद पास बैठे कभी उन्हें, कभी इन्हें अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों से खुश कर रहे थे। पास ही एक आराम-कुर्सी पर बड़े आराम से पड़े हुए प्रसिद्ध अन्वेषक मुन्शी मोहनलाल अपने जिगरी दोस्त अंग्रेज ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट से धीरे-धीरे खुश-गप्पियाँ उड़ाते जाते थे, और सुगन्धित वर्जानिया सिगरेट का धुआँ फैंकते जाते थे। ज्वाइन्ट मेजिस्ट्रेट भी पैग की चुस्कियाँ लेकर मज़े में हकला-हकला कर मोहनलाल से उनकी लन्तरानियाँ सुन रहे थे।

चाँदनी रात की बयार थी। तमाम दिन सख्त गर्मी रही। और इस वक्त हवा ज़रा ठण्डी थी। लान खूब प्रशस्त था। और बैरा खानसामा तत्परता से साहब लोगों और साहब नुमा हिन्दुस्तानियों की तवाजा में इधर से उधर दौड़ रहे थे।

मु-शी मोहनलाल ने कहा—"मैंने कुछ उड़ती हुई सी खबर सुनी है कि मेरठ में १९वीं देशी पल्टन के हथियार छीन कर और उन्हें हथकड़ी बेड़ी पहना कर जेल भेज दिया गया है।"

"हो सकता है। बदमाश सिपाही को सज़ा मिलना मुनासिब है।"

"आम अफवाह है कि दो हजार बेड़ियाँ तैयार की गई हैं और सभी हिन्दुस्तानी सिपाहियों के हथियार रखवा लिए जाएँगे।"

"यस, यस, हो सकता है।" ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट ने लापरवाही से कहा। परन्तु मोहनलाल की बात फ्रेजर साहब ने भी सुन ली। आखिरी

पत्ता फेंकते हुए उन्होंने कहा—"टुम क्या बोला मुन्शी मोहनलाल।

"हुजूर, मैं यह कह रहा था कि आसार अच्छे नहीं हैं। कुछ बुरी खबरें इधर उधर से आ रही हैं। हमें होशियार रहना चाहिए।"

इस पर झज्झर नवाब के दीवान काशी प्रसाद ने जरा तीखी निगाहों से मुन्शी की ओर देखकर कहा—"मुन्शी मोहनलाल तो हमेशा बेपर की ही उड़ाया करते हैं।

फ्रेजर ने हँसते हुए कहा—"ओ, यस, तुमारा हिदुस्तान गर्म मुल्क है। यहाँ दिमाग में बहुत बातें फर्जी पैदा हो जाती है।"

"लेकिन हुजूर, मुझे कुछ खबरें मिली हैं।"

"नानसेन्स, हम इन वाहियात अफवाहों की परवाह नहीं करता", फ्रेजर पत्ते फैंक कर उठ खड़े हुए। गिलास की शराब खत्म कर उन्होंने एक सिगार सुलगाया, और दिल्ली के कलक्टर हचिन्सन से कहा—"फिक्र मत करो हचिन्सन, आज तुम हारे हो, कल जीतोगे। जाओ सोओ। और तुम खान बहादुर, ज्यादा घाटे में नहीं रहे।"

"थोड़ा घाटा तो हुआ हुजूर, कल उसकी कसर निकालूंगा। उम्मीद है। कल तो हुजूर ज़रूर तशरीफ लाएंगे।"

"ओ, ज़रूर, विल ज़रूर, बुलड़ाग कुत्ते की तरह हवा में गूंज भरते हुए वे हंस पड़े और धीरे-धीरे वहाँ से चल दिए।

बंगले पर पहुँचते ही उनके बैरा ने इत्तला दी—हुजूर, पहाड़गंज के थानेदार मैनुद्दीन हसन बड़ी देर से मुलाक़ात करने के लिए बैठे हैं।"

"इस वक्त मुलाक़ात नहीं होगी" उन्होंने बैरा को कपड़े उतारने का आदेश दिया। बैरा ने जूते के फीते खोलते हुए कहा—"हजूर, थानेदार ने एक चिट्ठी दी है। कहता है—बहुत जरूरी है।" बैरा ने चिट्ठी उनके हाथ में थमा दी। लेकिन उसे टेबुल पर फैंक कर साहब बहादुर पलंग पर दराज हो गए। बैरा ने जाकर थानेदार को बैरंग लौटा दिया।

: ९६ :

लाल-सोमवार

ग्यारह मई का सोमवार का प्रभात एक मनोरम प्रभात था। रात भर ठण्डी हवा चली थी, और दिल्ली वाले प्रसन्न मुद्रा में अपने-अपने काम में लगे थे। जमुना स्नानार्थियों की भीड़ जमुना की ओर जा रही थी। लालकिले से जमुना घाट तक उनका ताँता लगा था। उनमें स्त्री-पुरुष-बालक बूढ़े और तरुण सभी कोई थे। खरबूजों की बहार थी। जमुना की रेती में उगे हुए ताजे खरबूजों के ठौर-ठौर ढेर लगे थे। चौड़े-चौड़े झब्बों में हरे-हरे केले के पत्तों पर ताजा-ताजा ककड़ी के रवे रखे हुए कुजड़े ललकती दिल्ली की ज़बान में—"ताज़ा ये ककड़ियाँ ले लो—लैला की उंगलियाँ लेलो" की सदा लगा रहे थे। जमुना स्नान करके लौटती हुई स्त्रियाँ और पुरुष ककड़ी खरबूजों पर टूटे पड़ रहे थे। मोल-भाव करते थे, और अंगोछे में बाँध कर ले जा रहे थे।

कालेज और कचहरी उन दिनों सुबह ही लगते थे। कलक्टर के इजलास में थानेदार मेनुद्दीन हसन ने एक फौजदारी मामला पेश किया था। कलक्टर हिचन्सन हकला- हकला कर उनसे जिरह कर रहे थे।

इसी समय मीर बहरी घबराया हुआ आया, और उसने कलक्टर को सूचना दी—"हुजुर, मेरठ के कुछ घुड़ सवार पुल से उतर कर शहर में घुसे आ रहे हैं। उन्होंने चुंगी के मुंशी को मार कर महसूल का रुपया लूट लिया है, और चुंगी घर में आग लगा दी है, और अब वे मुस्लिमपुर की सड़क वाले साहब के बँगले में आग लगा रहे हैं। मैंने पुल के किनारे कीं नाव के ताले खोल दिये थे कि वे आगे न बढ़ सकें, और अब हुज़ूर के इजलास पर इत्तला करने भागा आ रहा हूँ।"

साहब कलक्टर बहादुर यह समाचार सुन कर थोड़ी देर मुंह पर क़लम रखे. सोचते रहे, फिर उठ कर बग़ल के कमरे में इजलास करते हुए. ज्वाइंट मैजिस्टेट के पास पहुंचे, और सब हाल सुना कर सलाह

मश्विरा करते रहे। इसके बाद कलक्टर हिचंनसन तो घोड़े पर सवार हो साहब कमिश्नर के बंगले की ओर दौड़ चले। और ज्वाइन्ट मैजिस्ट्रेट ने खजाने पर पहुँच कर खजाने के पहरे पर तयनात गारद को हथियार बन्द होने का हुक्म दिया। गारद ने फौरन बन्दूकों में गोलियाँ भर लीं। इसके बाद ज्वाइन्ट मैजिस्ट्रेट ने तमाम कचहरी पर तयनात पुलिस को हथियार बन्द कर दिया। ज्वाइन्ट मैजिस्ट्रेट ने अपने तथा कलक्टर के बीवी बच्चों को–जो कचहरी के नीचे ही बेला रोड पर रहते थे, बुला भेजा तथा आधी गारद काश्मीरी दर्वाजे पर भिजवा दी। उसी समय सेशन जज लीवास भी आ गए, और कुछ देर कचहरी का चक्कर लगाते रहे। फिर अपने बंगले में चले गए। हेचिन्सन साहब दबादब घोड़ा दौड़ाए जा रहे थे। राह में मुंशी जीवन लाल अपनी पालकी में बैठे किलेदार कैप्टिन डंगलस को अपनी डायरी सुना कर कचहरी आ रहे थे। उन्हें देख कर कलक्टर हेचिन्सन ने घोड़ा रोक कर कहा—

"मुँशी जीवन लाल, क्या तुमने कुछ सुना, कुछ बदमाश सवार जमुना पार कर शहर में घुस आए हैं। उन्होंने चुंगी घर लूट कर उसमें आग लगा दी है।"

मुन्शी जीवन लाल ने पालकी से उतर कर साहब को सलाम झुकाया और कहा—"बड़ी खराब बात है हुजूर, मगर मैंने तो कुछ भी नहीं सुना।

मैं तो कप्तान डगलस को डायरी सुना कर आप की खिदमत में आ रहा हूँ। लेकिन आते-आते यह मैंने देखा—कि कुछ तुर्क सवार मुसमन बुर्ज के नीचे झरोखे के सामने इकट्ठे हो रहे हैं। मैं नहीं जानता वे कौन हैं।"

"खैर, तो मुन्शी, तुम अभी कप्तान डगलस के पास चले जाओ, और उनसे कहो—कि किले की हिफाजत का बन्दोबस्त करें। इसके बाद जमना पुल पर जाकर पता लगाओ कि मामला क्या है—"इतना कह कर साहब कलक्टर बहादुर घोड़ा दौड़ाते हुए साहब कमिश्नर के बंगले की

ओर दौड़ गए। मुन्शी जीवन लाल सलाम करके पालकी में बैठ वापस लौट चले।

कमिश्नर साइमन साहब अभी अपने बिस्तर ही में थे। रात उन्होने ज़रा गहरी ढाली थी। इसलिए उनका सिर दर्द कर रहा था। कलक्टर से यह खबर सुनकर वह बिस्तर से उछल कर खड़े हो गए। मेज पर पड़े रात के खत पर उनकी नजर गई। उसे खोल कर पढ़ा और गुस्सा होकर वह खत कलक्टर की ओर फेंक कर कहा—"खुदा की मार मुझ पर, जो रात मैंने इस मूंजी खत को नहीं पढ़ा। यह देखो—इसमें थानेदार ने साफ लिखा है कि—सवार मेरठ से आ रहे हैं" कलक्टर ने पत्र पर, एक नज़र डाली और कहा—"इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए, लेकिन शायद अभी भी हम कुछ कर सकेंगे। आप झटपट तैयार हो जाइए। मैंने खजाना और कोर्ट की सुरक्षा की व्यवस्था कर ली है।"

'क्या यह भी सम्भव है कि ये बदमाश लुटेरे हम साहब लोगों पर भी हाथ डालेगे ?"

"कुछ नहीं कहा जा सकता, लेकिन अब हमें सबसे प्रथम स्त्रियों और बच्चों की सुरक्षा का प्रबन्ध करना मुनासिब है।"

"यू आर राइट मिस्टर हिचन्सन, वी मस्ट हरी।"

फ्रेजर साहब ने जल्दी-जल्दी कपड़े पहने। उन्होंने अर्दली को हुक्म दिया कि झज्झर के सब सवार हमारे साथ चलने को तैयार हो जाय। अर्दली हुक्म की तामील को दौड़ चला। और इसके कुछ देर बाद ही साहब कमिश्नर बहादुर और कलक्टर दोनों दो घोड़े की गाड़ी में मेगज़ीन की ओर दौड़ चले। उनके पीछे अर्दली और झज्झर के नवाब के सवार।

: २० :

कलकत्ता दर्वाज़े से

जमना का पुल पार करके और चुंगी के अधिकारी को मौत के घाट उतार कर तथा चुंगी घर को लूट और आग लगा कर ये पाँच वीर ज्यों ही आगे बढ़े—कि उन्हें एक अंग्रेज अधिकारी सामने नज़र आया। इसका नाम टाड था। वास्तव में वह इंजिनीयर था—पर दिल्ली में लोग उसे सड़क वाला साब कहते थे। इस समय वह मेरठ की तार लाइन का निरीक्षण कर रहा था—जो खराब हो गई थी।

सिपाहियों के अभिप्राय को वह कुछ भी नहीं समझा, और अपना काम करता रहा। पर जब उन्होंने चुंगी घर में आग लगाई—तो वह उनके पास जाकर उन्हें धमकाने लगा। सिपाहियों ने तत्काल उसे गोली मार दी। दिल्ली में यह सबसे पहिला सफ़ेद खून था। इस अंग्रेज को मारकर सिपाही उन्मत्त की भाँति उसका सिर काट और उसे भाले पर लटका कर उसके बँगले तक चले गए, जो पास ही था और उसमें भी आग लगा दी।

अब वे कलकत्ता दर्वाज़े की ओर बढ़े। इस समय तक कलक्टर हचिन्सन वहाँ आ पहुँचे थे। उन्होंने कलकत्ता दर्वाज़ा बन्द करा दिया और वह तथा कमिश्नर फ्रेजर दोनों खड़े दूरबीन से जमुना के पुल पर आते हुए सवारों की पंक्ति को देख रहे थे।

ज्यों ही सिपाही टाड का सिर भाले पर लटकाए वहाँ पहुंचे—साहब कमिश्नर और कलक्टर दोनों ही भाग खड़े हुए, उनके भागते ही द्वार के रक्षक संतरियों ने द्वार खोल दिया। सिपाही बर्साती नदी के वेग से किले की ओर अग्रसर हुए।

इस समय तक सिपाहियों का एक दल मुसम्मन बुर्ज के झरोखे के नीचे आ खड़ा होकर शोर-गुल मचा रहा था। वे बादशाह के दर्शन करना चाहते थे। भीड़ और शोर क्षण-क्षण में बढ़ता जा रहा था, और

जमुना के पुल को पार करते हुए सिपाहियों का तांता बँधा हुआ था। शहर में तहलका मचा हुआ था, जो सुनता था—दौड़ा आता था। ऐसे तमाशाइयों की भारी भीड़ बढ़ती जा रही थी।

: २१ :

किले में हलचल

अभी सुबह के आठ ही बजे थे। सूरज का चमकीला प्रतिबिम्ब जमुना के जल में हिचकोले खा रहा था। बादशाह अभी इबादत खाने में थे। इस वक्त झरोखे से भीड़-भाड़ देख और शोर गुल सुनकर बादशाह ने अपने मुख्तार गुलाम अब्बास को तलब किया। उसके आने पर कहा—"देखो, ये कौन हैं, किसके नौकर हैं, और क्या चाहते हैं।" गुलाम अब्बास ने हाथ बाँध कर कहा—"हुजूर, ये सवार मेरठ से आए हैं और चाहते हैं—कि मज़हब की हिफाजत में अंग्रेजों से लड़ें।"

"तो इन्हें शोर करने से रोक दो और फौरन कप्तान डगलस के पास जाकर इतला कर दो और उनसे मुसासिब बन्दोवस्त करने को कह दो।"

गुलाम अब्बास सिजदा करके चला गया। बादशाह ने एक गुलाम को हुक्म दिया—"दर्वाजा बन्द कर दो और ज्योंही कप्तान डगलस हाजिर आएँ उन्हे हमारे हुजूर में पेश करो।" गुलाम ने जमीन चूमी और दर्वाजा बन्द करके नंगी तलवार हाथ में लेकर वहीं बैठ गया। बादशाह मसनद पर बैठकर तस्वीह फेरने लगे। उनका दिल धड़क रहा था। भाँति-भाँति के विचार उनके मन में उठ रहे थे। थोड़ी देर बाद गुलाम अब्बास ने हकीम अहसानुल्ला खाँ के साथ आकर इत्तला दी कि कप्तान डगलस हाजिर आए हैं।

बादशाह यह सुनते ही मसनद से उठे और लकड़ी टेकते हुए अपने खास कमरे से बाहर आए। कप्तान डगलस को देखते ही उन्होंने कहा—

"क्या आपको मालूम है कि यह क्या मामला है ? ये फौजी सवार आए हैं और अपनी मनमानी करना चाहते हैं।"

कप्तान डगलस ने अर्ज की—"जिल्ले सुभानी किसी बात का अन्देशा न करें, और खास बैठक का दर्वाज़ा खुलवा दें कि जिसमें मैं उनसे मुँह दर मुँह बात कर सकूं।"

"नहीं मैं, आपको ऐसा हरगिज़ न करने दूंगा, वे लोग कातिल हैं। ऐसा न हो कि तुम्हारे साथ भी कोई बदसलूकी कर बैठें।"

"हुजूर, आप मुतलक खौफ न करें। सिर्फ बैठक का दर्वाज़ा खोलने का हुक्म दे दें।"

बादशाह ने डगलस का हाथ पकड़ लिया और कहा—"नहीं, नहीं, मैं ऐसा नहीं कर सकता।"

इस पर हकीम अहसानुल्ला ने कहा—"अगर आपको बात ही करनी है तो बरामदे से कर लीजिए।" वह डगलस का हाथ पकड़ कर दीवाने खास और कमरा शाही के बीच वाले कटहरे में ले गए। वहाँ से उन्होंने देखा—तीस-चालीस सवार जमा हैं। कुछ के पास नंगी तलवारें हैं, कुछ पिस्तौल और कारतूस हाथ में लिए हैं। पुल की ओर से आने वाले सिपाहियों की कतार लगी हुई थी। पैदल भी थे—सवार भी। बहुतों के सिर पर गठरियाँ थीं।

कप्तान डगलस ने ललकार कर कहा—"खबरदार, इधर न आना, इधर शाही बेगमात के कमरे हैं। तुम यहाँ खड़े होकर बादशाह सलामत की तौहीन कर रहे हो।

सिपाही यह सुन कर राजघाट की ओर चल दिए। कप्तान डगलस और हकीम अहसानुल्ला खाँ फिर बादशाह की सेवा में आ उपस्थित हुए। हकीम साहब ने कहा—"जिल्ले सुभानी, डर की कोई बात नहीं है। वे लोग चले गए हैं।"

"ताहम कप्तान डगलस, आप क़िले और शहर के सब दर्वाजे बन्द कर दीजिए, और आप हकीम साहब, एहतियातन एक सांडनी सवार तेज़ रफ्तार

से अभी एक रुक्क-ए-खास के साथ आगरा लेफ्टिनेन्ट गवर्नर साहब बहादुर के पास हमारी ओर से इस अम्र का रवाना कर दीजिए कि मेरठ के बिगड़े हुए सवार दिल्ली पहुँच गए हैं और बदअमनी पर आमादा हैं।"

कप्तान डगलस और हकीम साहब तसलीमात अर्ज करके चले गए।

हकीम अहसानुल्ला खाँ आगरे साँड़नी सवार भेजकर अभी दीवाने खास में आकर बैठे ही थे—कि कप्तान डगलस का एक खिदमदगार दौड़ा हुआ आया। उसके हाथ में एक रुक्का था। उसने रुक्का हकीम साहब को देकर कहा—"आपके नाम का यह रुक्का है।" हकीम साहब ने रुक्का पढ़ा, उसमें उन्हें तुरन्त बुलाया गया था। हकीम साहब ने पूछा–"कप्तान साहब कहाँ हैं ?"

"क़लीद खाने में हैं।"

हकीम अहसानुल्ला और ख्वाजा अब्बास तेज़ी से क़लीद खाने की ओर चल दिए—पर वहाँ जाकर उन्होंने सुना कि कप्तान बँगले में गए हैं।

दोनों कप्तान डगलस के बँगले की ओर चले। कप्तान का बँगला किले के लाहौरी दरवाज़े के बगल ही में था। कप्तान तीसरे कमरे में बैठे कुछ महत्व पूर्ण कागज़ात छाँट रहें थे। वहीं उनके पास दिल्ली के कमिश्नर साइमन फ्रेजर भी बैठे थे। कप्तान डगलस और हकीम साहब में कुछ आवश्यक बात-चीत हुई। डगलस ने अब्बास से कहा—"हुजूरे-अकदस से मेरी ओर से अर्ज कर दो कि कुछ सिपाही और तोपें मेरे बंगले की हिफाजत के लिए भेज दें।"

दिल्ली के कमिश्नर फ्रेजर भी ख्वाजा अब्बास के साथ हो लिए। फ्रेजर के हाथ में एक तलवार थी। उनके साथ और एक अंग्रेज था उसके एक हाथ में बंदूक और दूसरे में पिस्तौल थी।

ख़बर पाते ही बादशाह अपने कमरे से बाहर निकल आए। अब्बास ने उनकी सेवा में डगलस की प्रार्थना निवेदन कर दी, बादशाह ने सुनते ही उस वक्त जितनी भी फौज उस वक्त उपस्थित थी, सब अफसरों और दो तोपों सहित डगलस के बंगले पर भेज दी।

इसी समय हकीम अहसानुल्ला आ गए। उन्होंने कहा—"कप्तान डगलस ने दो पालकियों के लिए भी प्रार्थना की है। जिससे लेडियों को—जो उनके मकान में है, हरमसरा में ले आया जाय।"

बादशाह ने हकीम साहब को ही इसका बन्दोवस्त करने का हुक्म दे दिया। साथ ही यह भी हिदायत कर दी कि पालकी उठाने के लिए विश्वासी कहार जाँच कर भेजे जांय, और वे सवारियों को सीधे रास्ते न लाकर बाग के पीछे से चक्कर देकर लाएँ। जिससे इस अम्र का पता किसी को न लगे।

पालकियां भेज दी गईं।

: २२ :

राजघाट की राह से

कप्तान डगलस की ललकार के बाद कुछ सिपाही तो वहाँ से राजघाट दर्वाज़े की ओर चले गए। और कुछ वहीं खड़े शोर मचाते रहे। राजघाट द्वार खुला था। सिपाही उसमें घुसकर दरियगंज में जा पहुँचे। उन्होंने एक सिरे से अंग्रेजों के बंगलों को आग लगाना और जो अंग्रेज सामने आया उसी को मारना आरम्भ कर दिया। सब बंगले धांय-धांय जलने लगे। जो अंग्रेज आग से बचने को बाहर निकलता, वह मौत के घाट उतार दिया जाता। जगह-जगह अंग्रेजों की लाशें पड़ी दौड़ते भागते लोगों के पैरों रूँधी जाने लगी—सिपाही—'मारो फिरंगियों को' 'बादशाह की जय' के नारे लगाते आगे बढ़े।

सिकन्दर साहब की कोठी के नीचे पहुँच कर उन्होंने देखा—एक अंग्रेज हाथ में तलवार लिए बेतहाशा भागा जा रहा है। उस के पीछे कुछ तिलंगे बंदूकों की बाढ़ दागते भागे। साहब मर कर वहीं ढेर हो गए। अब शहर की जनता भी उनके साथ हो ली। किसी के हाथ में लकड़ी, किसी के हाथ में पलंग की पट्टी, किसी हाथ में बांस का टोटा, ये लोग भागते

हुए अंग्रेजों का पीछा करते हुए जीनत बाड़े की ओर से नहर की तरफ उन्हें खदेड़े लिए जा रहे थे।

नसीरगंज के मदान की ओर फखरुल मस्जिद के सामने बीस-पचीस तिलंगे खड़े मस्जिद की ओर संकेत कर रहे थे। वहाँ कुछ गोरे छिपे थे। सिपाहियों की भीड़ मस्जिद में घुस पड़ी और सबको काट डाला।

आगे बढ़कर उन्होंने देखा—गिरजा घर के सामने और हाकिन्स की कोठी के नीचे २०० तुक घुड़ सवार और तिलंगे खड़े थे। वे चिल्ला-चिल्ला कर कह रहे थे—'बताओ अंग्रेज कहाँ है।' जो कोई पता बताता या इशारा करता—वे उसके साथ हो लेते और अंग्रेज को घसीट लाते, फिर गोली मार देते। भारतीय ईसाई भी गोरों के साथ मारे जा रहे थे। एक-एक कोठी आग लगाने से प्रथम लूटी गई। फिर उसमें आग लगा दी गई। अंग्रेजों की सपरिवार हत्या कर दी गई। मस्जिद नवाब अली खाँ से आगे फिकसन साहब मरे पड़े थे—ये कमश्नरी कोर्ट के चीफ रीडर थे। किसी मसखरे ने एक विस्कुट भी उनके मुँह के पास रख दिया था। एक शताब्दी के परिशोध का दिल्ली में भयानक तांडव नृत्य हो रहा था। दिल्ली के नागरिक जिसे जो हाथ लगा—वही शस्त्र लेकर घर से निकल पड़े थे। जो अंग्रेज मिलता सीधा मौत के घाट उतार दिया जाता। अनेक दलों के नेताओं ने नागरिकों की टोलियाँ बना ली थीं जो शहर में घूम रही थी। इन्होंने दिल्ली से जैसे अंग्रेजों का नामो-निशान मिटाने का निश्चय कर दिया था।

ग्यारह बजे दिल्ली कालेज लूटा गया। बारह बजे दिल्ली बैंक घेर लिया गया, और बैंक के मैनेजर वासफोर्ड और उसके पूरे कुटुम्ब को मौत के घाट उतार दिया गया। इसके बाद वे दिल्ली गजट के छापेखाने की ओर झपटे, मेरठ के विद्रोह का संवाद वहाँ कम्पोज हो रहा था। सिपाहियों ने टाइप को नष्ट कर दिया। मशीनों को तोड़ डाला। ईसाई कर्मचारियों को मार डाला, प्रेस में आग लगा दी।

शहर में ज्योंही सिपाही पहुँचे। तो सड़कों पर तमाशाइयों की भीड़

लग गई। लोग कहने लगे—धर्म की रक्षा के लिए ये सिपाही अंग्रेजों को मार कर दिल्ली आए हैं। सहानुभूति और उत्साह की लहर एक बार नागरिकों के हृदय में दौड़ गई। गर्मी के दिन थे। देखते-ही देखते चाँदनी चौक और फैज बाजार के लाला लोगों ने प्याऊ और पौसालाएँ खोल दीं। खांड की बोरियाँ पानी के भारी-भारी जेन्डालों में उड़ेली जाने लगी। बताशे और औले टबों में घुलने लगे—और नागरिक बुला-बुला कर इन सिपाहियों को शर्बत पिलाने लगे। परन्तु हुर्दंग बढ़ता ही गया, और धीरे-धीरे भीड़ अनियन्त्रित होती गई। इससे भयभीत होकर दूकानदार अपनी-अपनी दुकानें बन्द करने लगे। बहुत से हुल्ड़बाज भी सिपाहियों में आ मिले।

: २३ :

प्रिन्सिपल टेलर

दिल्ली कालिज का प्रिंसिपल टेलर बड़ा कट्टर ईसाई था। वह बहुधा एक मिशनरी की तरह भोले-भाले लोगों को बहकाया करता था। बहुत लोगों को उसने ईसाई बना लिया था। वह बड़ा धनी किंतु महा कंजूस था। लगभग दो लाख रुपया उसका कलकत्ते और दिल्ली के बैंक में जमा था। उसके कुछ बड़े-बड़े बंगले छावनी में थे। जिनका काफ़ी किराया आता था। यह रुपया उसने बड़े यत्न से जमा किया था। वह केवल एक आना या छै पैसे प्रतिदिन अपने भोजन पर खर्च करता था। बाकी सब रुपया बैंक में जमा करता था। उसे रात-दिन जब भी अवकाश मिलता, बैंक का हिसाब-किताब जोड़ता रहता। वह कपड़े भी तभी पहनता था, जब कालेज या किसी सभा-सोसाइटी में उसे जाना होता था।

प्रातः ६ वजे से साढ़े आठ बजे तक कालेज खुला रहा। अभी विद्यार्थी अपनी-अपनी पोथी लिए इधर से उधर अपनी कक्षाएँ बदल ही रहें थे—कि सात आठ लाला लोग दौड़ते-हांफते कालेज के अहाते में

घुस आए। वे अपने-अपने लड़कों से कह रहे थे—'चलो, जल्दी घर चलो। अंग्रेजों का अमल गया। सवार उन्हें मार रहे हैं।' लड़कों में बड़ी गड़बड़ी फैल गई। अव्यवस्था और शोर गुल सुनकर प्रिंसिपल टेलर बाहर निकले आए। अभी वह लड़कों को डांट-फटकार ही रहे थे—कि मेगज़ीन का चपरासी मेगज़ीन के अधिकारी का पत्र लाया। पत्र में लिखा था—"खतरा है' आप सब अंग्रेज अध्यापकों के साथ मेगजीन आ जायँ।"

पत्र पढ़ते ही प्रिन्सिपल तेजी से अपने कमरे में चले गए। जल्दी-जल्दी उन्होंने अपने तीन अंग्रेज सहकारियों से परामर्श किया। फिर प्रोफेसर रामचन्द्र को कुछ आदेश दिये और कालेज की छुट्टी कर दी। वे चारों तत्काल मेगजीन की ओर चले दिए।

अभी उन्हें वहाँ से गए कुछ ही मिनट हुए थे, कि सिपाही कालेज के कम्पाउण्ड में घुस आए। उन्होंने कालेज की लाइब्रेरी में घुसकर उसे लूटना आरम्भ कर दिया। अरबी, फारसी, उर्दू की पुस्तकों के गट्ठर बाँध बाँध कर लुटेरे उन्हें मौलवियों, विद्यार्थियों और पुस्तक विक्रेताओं के पास बेचने को चल दिए। कुछ विद्यार्थी भी इस लूट में सम्मिलित हो गए। और अच्छी-अच्छी पुस्तकें छाँट-छाँट कर उन्होंने अपने घरों का रास्ता लिया।

जब मेगजीन जब उड़ा दिया गया तो टेलर किसी तरह गिरते-पड़ते अपने कालेज के बूढ़े खानसामा की कोठरी में पहुँचे। इस समय उनका बुरा हाल था। उनके कपड़े फटकर चिथड़े हो गए थे, और सारा शरीर झुलस कर स्याह हो गया था। उन्हें पहचानना कठिन था। बूढ़े खानसामा ने उन्हें उनके पुराने मित्र मौलवी मुहम्मद बाकर के घर पहुंचा दिया। मौलवी साहब ने उन्हें रात भर इमामबाड़े के तहखाने में छिपा रखा। परंतु लोगों को पता लग गया। टेलर से बहुत लोग खार खाते थे। वे उसकी जान के गाहक बने थे। अन्त में मौलवी बाकर ने उन्हें भारतीय वेश-भूषा में बाहर निकाल दिया। वहाँ से निकलते ही वह

पहचान लिए गए। और मार डाले गए। दिन भर उनकी लाश बीच राह में पड़ी रही। किसी ने उस पर एक नजर भी न डाली।

: २४ :

लालक़िले में

दिल्ली में इस समय कोई गोरी सेना न थी। ३८, ५४, और ७४ नम्बर की हिन्दुस्तानी सेना थी। तोपखाने में एक सौ आठ गोलंदाज थे, कुल मिला कर साढ़े तीन हजार सिपाही दिल्ली में थे।

अंग्रेज अफसरों को जब विद्रोही सैनिकों का शहर में घुस आने और लूट-पाट, कत्ल और आग लगाने का समाचार मिला तो उन्होंने जल्दी-जल्दी परेड के मैदान में इस समूची सेना को खड़ा किया। उनके सामने स्वामी भक्ति और नमक हलाली की महत्ता के भाषण दिए गए। ५४ नं० पल्टन के अफसर कर्नल रिप्ले ने अपनी सेना को मेरठ के विद्रोही सिपाहियों पर आक्रमण करने के लिए तैयार होने का आदेश दिया। उसने कहा—

"बहादुर सिपाहियो" हमें तुम्हारी बहादुरी, नमक हलाली और स्वामी-भक्ति पर पूरा भरोसा है, इन मेरठ के भगोड़े सिपाहियों को मार भगाओ जवानो।"

सिपाहियों ने जवाब दिया—"ज़रा हमें उनके दर्शन तो कराइए फिर हम देखेंगे।"

कर्नल ने कहा—"शाबास, शाबास, हमें तुमसे स्वामी-भक्ति की ऐसी ही उम्मीद है।" उसने आगे बढ़कर एक-एक की पीठ ठोकी। और उन्हे मार्च का हुक्म दिया। जब यह पल्टन मेरठ की सेना के सामने पहुँची तो ५४ नं० पल्टन ने उन्हें अभिवादन किया। उन्होंने ज़ोर का एक नारा बुलन्द किया—"अंग्रेजी राज को मिटा दो। बादशाह सलामत की जय। फिरंगियों को मारो।"

कर्नल रिप्ले हक्का-बक्का होकर यह सब देखता रह गया। उसने बौखला कर कहा—"यह सब क्या है ?"

पर अभी पूरी बात उसके मुँह से नहीं निकली थी कि—उस पर गोलियों की बौछार बरस गई, और वह मर कर वहीं ढेर हो गया। अब वे सब—राह बाट में मिलते अंग्रेजों को मौत के घाट उतारते किले की तरफ चले। रास्ते में और सिपाही भी उनमें मिल गए। तोपखाना भी उन्होंने साथ ले लिया और वे सब किले में घुस गए। उनके साथ नागरिकों की बड़ी भीड़ भी किले में घुस चली। वे सब चिल्ला रहे थे—"बादशाह की जय।" भीड़ को भीतर बढ़ी आते देख, कमिश्नर फ्रेजर दीवाने खास की ओर लपका, इसी समय पास खड़े—नजुल बेग ने तलवार उसके गाल में घुसेड़ दी।

फ्रेजर गिर कर छटपटाने लगा। उसकी चीख सुनकर कलक्टर हचिसन उधर को लपका, उसके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले गए। उनकी लाशों को पैरों से रौंधते हुए बिगड़ैल सिपाही सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर की मंजिल में रहने वाले जेनिंग्स और उसके परिवार के कमरे की ओर चले। भीतर से द्वार बन्द था। उसे बल पूर्वक तोड़ दिया गया। जेनिंग्स, उसकी लड़की, तथा एक मिहमान तलवार के घाट उतार दिए गए। इसी समय सिपाहियों की नजर भागते हुए किलेदार कैप्टिन डगलस पर पड़ी। 'भेजो इसको नरक में', यह कह कर कई सिपाहियों ने उस पर बन्दूकें तान दी, और क्षण भर में वह मर कर ढेर हो गया। अब ये सब किले में घुस चले।

: २५ :

बादशाह के रूबरू

बादशाह हकीम अहसानुल्ला से धीरे-धीरे बात कर रहे थे कि नकीब ने इत्तला दी कि कप्तान डगलस कमिश्नर फ्रेजर और कलक्टर

हचिन्सन क़त्ल कर दिए गए।

बादशाह यह सुनकर बिना कुछ जवाब दिए भीतर चले गए।

इसी समय शोर मचाते हुए पैदल और घुड़ सवार सिपाही किले में घुस आए। वे सब बेतरतीबी से फैल रहे थे, और बन्दूकों तथा पिस्तौलों का फायर हवा में कर रहे थे। शहनशाहे हिन्द की जानकारी में यह पहिला ही अवसर था, जब सशस्त्र भीड़ ने उनके महल की पवित्रता को भंग किया। जिस दीवाने खास और महल में उच्च राज पुरुष—यहाँ तक कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एजेण्ट भी घोड़े से उतर कर बड़े अदब से प्रवेश करते थे, वहाँ अब ये घुड़ सवार निर्द्वन्द उत्पात मचा रहे थे। इस समय शाम हो रही थी। बादशाह के पास उनके तमाम शाहज़ादे मिर्जा मुग़ल, मिर्जा खिजिर, मिर्जा और सुलतान अबूबकर सब हाजिर थे। सबके मन में अपनी-अपनी नई उमंगे थीं, और वे अपने-अपने मनसूबे गांठ रहे थे। जोश उनमें खूब था—पर दूर-दर्शिता का अभाव था। उनके सामने उनके पुराने नामी गरामी घराने की फिर से प्रतिष्ठा का सुयोग आ रहा था। फिर भी उनके दिल दहल रहे थे। वे सोच रहे थे कि क्या कारण है कि मेरठ की गोरी पल्टन ने अब तक इन भगोड़ों का पीछा नहीं किया। वे यह निर्णय नहीं कर पा रहे थे—कि वे इन विद्रोहियों का साथ दें या नहीं।

सूरज छिप रहा था। उसकी लाल-लाल छाया शाही—महलात और दीवाने खास के संगमर्मर को सुर्ख-रू कर रही थी। बादशाह ने अन्ततः निर्णय कर लिया।

हुज़ूरे अक़दस ने पगड़ी बांधी। कमर में तलवार लगाई। और धीरे-धीरे पैदल ही दीवाने खास में तशरीफ ले आए। सब शाहजादे, हकीम अहसानुल्लाह खां, ख्वाजा अब्बास और खास खिदमतग़ार इस समय उन की सेवा में थे।

बादशाह ने दीवाने खास के दरवाजे पर खड़े होकर हकीम अहसानुल्लाह खां को हुक्म दिया—कि सिपाही घोड़े से उतर पड़ें,

खामोश रहें, और उनके सरदार आगे हमारी खिदमत में हाजिर आएं। अहसानुल्लाह ने बादशाह की आज्ञा सिपाहियों को सुना दी। सिपाही तत्काल घोड़ों से उतर कर चुपचाप सफबांध कर खड़े हो गए। उनके सरग़ना दो सूबेदारों ने आगे बढ़कर बादशाह के सामने जा ज़मीन चूमी। बादशाह ने हकीम अहसानुल्लाह के द्वारा उनसे बातचीत की। बादशाह ने पूछा—"तुम कौन हो, और हमारे हुजूर से क्या चाहते हो।"

"हम मेरठ के सिपाही है। हमारे धर्म पर आघात हुआ है। और हम अपने अंग्रेज अफसरों को मार कर हुज़ूरे अकसद की खिदमत में हाजिर आए हैं।"

"लेकिन हमारे हुज़ूर में आने का तुम्हारा मक़सद क्या है।"

"आप हमारे पीरो मुर्शद हैं, हमारे बादशाह हैं। दीनो दुनिया के मालिक हैं। आप हमारे सिर पर हाथ रखें और न्याय करें।"

"मुझे बादशाह कौन कहता है। मैं तो एकान्तवासी फ़कीर हूं। मुझे तकलीफ देने तुम क्यों आए।"

"जब तक हुज़ूरे अकदस हमारे शरीक नहीं होते—हम मुर्दा हैं, हम कुछ नहीं कर सकते।'

"लेकिन न मेरे पास खजाना है कि तुम्हें तनख्वाह दूं। न फौज है कि तुम्हारी मदद करूं। न राज्य है कि तुम्हें नौकर रखूं, मैं कुछ नहीं कर सकता, मुझसे कुछ मदद की उम्मीद मत करो।"

"हुज़ूरे अकदस सिर्फ हमारे सिरों पर हाथ रख दें, हम यही चाहते हैं। हम हिन्दुस्तान भर के अंग्रेजों का खज़ाना लूट कर आप के कदमों में डाल देंगे।"

"लेकिन हमारी ताकतें महदूद है।"

"जल्ले-सुभानी, हमने मेरठ के अंग्रेजों को करारी हार दी हैं। फिर दिल्ली तो आप ही की है। इस वक्त पेशावर से दिल्ली तक सभी सैनिक आपके हुक्म की राह ताक रहे हैं। फिरंगियों की गुलामी की बेड़िया तोड़ फैंकने को समूचा हिन्दुस्तान तैयार है। आप अपने मुबारक

हाथों में आज़ादी का झण्डा उठाइए। तमाम हिन्दुस्तान उसके नीचे इकट्ठा होकर लड़ेगा।"

बादशाह ने कुछ जवाब नहीं दिया। वे कांपते पैरों से कुर्सी पर आकर बैठ गए। दोनों सूबेदारों ने सहमते-सहमते उनके क़दमों में घुटनो के बल बैठ कर सिर झुकाया। बादशाह ने अपना दस्ते मुबारक उनके सिर पर रखा। वे प्रसन्न हो पीछे को हट गए, और फिर एक-एक कर सब सैनिक आते गए, घुटनों के बल बादशाह के चरणों में बैठकर आशीर्वाद लेते गए।

इसी समय तोपों की गड़गड़ाहट से दशों दिशाएँ गूंज उठी। विद्रोही नेता शहनशाहे हिन्द को सलामी दे रहे थे।

: २६ :

मेगज़ीन का धड़ाका

मेग़ज़ीन शहर ही में शाही महल के निकट था। लेफ्टिनेन्ट जार्ज विलोलाई उसका अध्यक्ष था। उसके आधीन केवल ९ अंग्रेज सिपाहियों का दस्ता तथा कुछ हिन्दुस्तानी सिपाही और कर्मचारी थे। लेफ्टिनेन्ट विलोलाई एक तेजस्वी और कर्मवीर पुरुष था। मेरठ से सहायता की आशा में वह अन्तिम क्षण तक मेगज़ीन की रक्षा करता रहा। सेना के प्रधान कार्यालय से उसका सम्बन्ध टूट गया था। देशी तिलंगे उसे छोड़ कर भाग खड़े हुए और विद्रोहियों में मिल गए। शहर में अब एक भी अंग्रेज जीवित न था।

अलस्सुबह सर थियोफिलस मेटकाफ मेगज़ीन में आए, उन्होंने लेफ्टिनेन्ट विलोलाई से कहा—"दो तोपें निकालो, जमुना का पुल उड़ाना आवश्यक है।"

"लेकिन पुल तो पार किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त तोपें खींचने को बैल कहाँ हैं?" लेफ्टिनेन्ट ने चिंता से कहा।

अभी सरमेंटकाफ सोच हो रहे थे—कि विद्रोही सिपाहियों के एक दस्ते ने आकर शाही फर्मान दिखाकर कहा—"बादशाह का हुक्म है, मेगज़ीन हमारे ताबे करो।"

इस पर लेफ्टिनेन्ट ने कड़क कर कहा—"ऐसा नहीं हो सकता।"

"तो हम किले से सीढ़ियाँ लाकर फसीलों पर कूद पड़ेंगे।"

"इसका नतीजा तुम्हें भोगना पड़ेगा।"

"लेकिन तुम जिन्दा न रहोगे।"

"जिन्दा तुम भी न रहोगे। जीते जी मेगज़ीन पर कोई हाथ नहीं रख सकता।"

इसी समय सीढ़ियां लेकर बहुत से सिपाही आ गए। सीढ़ियां फसीलों पर लगा दी गईं। सिपाही उन पर चढ़ गए। यद्यपि छावनी से सहायता की कोई आशा न थी। पर सरमेंटकाफ सहायता लाने के लिए छावनी दौड़ गए।

मेगज़ीन का सदर दर्वाजा बन्द था। और भीतर अपने नौ सिपाहियों के साथ लेफ्टिनेन्ट विलोवाई अपना कर्तव्य पालन करने को तैयार बैठे थे। बाहर बंदूकें चल रहीं थी, परंतु उनका जवाब देना व्यर्थ था। इस समय मेगज़ीन में कुछ अंग्रेज परिवार भी शरणापन्न थे।

तीसरे पहर की तोप दगी। इसी समय बागी सिपाही दो तोपें ले आए और मेगज़ीन के द्वार पर लगा दीं। तथा दीवार की सुरंग में आग लगा दी। लेफ्टिनेन्ट ने अंतिम आदेश दिया। भयंकर धड़ाके के साथ मेगजीन उड़ गई। सारी दिल्ली कांप उठी। जहां जिसका पैर उठा भागने लगा। ऐसा प्रतीत हुआ—कि भयंकर भूकम्प आया हो। आकाश तक अंधेरा छा गया। दीवारों के पत्थर पक्षियों की भाँति उड़ते देखे गए। उनके साथ मरे हुए व्यक्तियों के अंग प्रत्यंग भी हवा में उड गए।

लेफ्टिनेन्ट बिलोवाई और उसके पांच साथी किसी तरह जीवित निकल भागे। इनके नाम फारेष्ट, रेनर, बकलेशा और स्टुअर्ट थे। लेफ्टिनेन्ट

विलोवाई मेरठ की ओर भागे जा रहे थे। तभी एक गांव वालों की भीड़ ने उन्हें मार डाला।

: २७ :

शाहे बजीफ़ा खार

दिल्ली के जगद्विख्यात तख्त पर मुग़लों का वंशधर बहादुरशाह नाम को तो अब भी बादशाह कहलाता था। पर वास्तव में वह बादशाह तो क्या—एक साधारण रईस की बराबरी भी न कर सकता था। फिर भी उसके और उसके दर्बारियों के दिमाग में पूर्वजों की याद ताज़ा थी। बादशाह की हुकूमत इस समय महल और किले के बाहर तो थी ही नहीं, किले में भी अंग्रेजी नियंत्रण था। परम्परा के अनुसार अब भी उसे बहुत सम्मान प्राप्त था, बादशाह के पद की मर्यादा और गौरव ऐसा था कि छोटे और बड़े सब कोई उसके प्रति श्रद्धा से अवनत रहते थे। बादशाह का निर्वाह अब केवल अंग्रेजों की दी हुई पेंशन से होता था—परंतु सब लोग अभी तक यही समझते थे कि यह पेंशन बादशाह के प्रति सम्मान की सूचक है। परंतु वास्तविक स्थिति यह न थी। वास्तविक बात यह थी—कि उसकी बादशाहत अब केवल अंग्रेजों की कृपा पर ही निर्भर थी, और अंग्रेज उसे शाहे बजीफा खार कहते थे। फिर भी आम जनता यह समझती थी कि वही बाबर और अकबर का वास्तविक उत्तराधिकारी है, और देश के शासकों का स्वामी भी वही है। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भी बड़ी सावधानी से बादशाह को उत्तराधिकार और प्रभुसत्ता के भ्रम को अब तक कायम रखा था। कुछ समय पूर्व तक कम्पनी के उच्च अफसर उस रस्मो रिवाज का पूरी तौर पर पालन करते रहे थे, जिसके कि उसके पूर्वज अपने साम्राज्य काल में आदी थे। गवर्नर जनरल और उसके प्रतिनिधि नंगे पैर दर्बार में शाही तख्त के सामने हाजिर होते और अदब से बादशाह को नजर पेश करते थे। ये सारी

स्मृतियां अभी ताजा थीं। बादशाह अब भी परंपरागत ढंग से दर्बार करता था और खिलअतें बाँटता था। बादशाह जो कुछ कहता था उसकी एक विज्ञप्ति बाकायदा पहिले ही की तरह घोषित की जाती थी। ये घोषक नकीब कहाते थे। कुछ देशी रियासतों में अब भी बादशाह के सिक्के चालू थे। इस प्रकार अतीत मुगल साम्राज्य का जीवित अवशेष यह बादशाह अब भी विदेशी प्रभुओं का खतरा बना हुआ था। क्योंकि वह कानूनी अधिकार का प्रतिनिधि था और एकमात्र उसी के आधार पर कम्पनी सरकार के विरुद्ध सशस्त्र प्रतिरोध का समर्थन किया जा सकता था। कम्पनी सरकार इस खतरे को जानती थी। उसने बड़ी चतुराई से भारत के सभी प्रमुख राजवंशों को खत्म किया था, और उनके कानूनी उत्तराधिकारियों को गद्दी से हटाकर दूर-दूर के स्थानों पर रख दिया था। पेशावा को—जिसका समूचा मराठा मण्डल भक्त था, उत्तर भारत के एक सर्वथा अज्ञात गाँव बिठूर में रक्खा था। टीपू के उत्तराधिकारियों को बैल्लौर से कलकत्ता ले आया गया था। रणजीतसिंह के लड़के को एक ब्रिटिश द्वीप में रखा गया था। इन कामों में अंग्रेज इस बात की व्यवस्था बड़ी सावधानी से करते थे—कि कहीं कोई गड़बड़ी न होने पाए। परंतु यह मुगलों का टिमटिमाता चिराग़—बूढ़ा बादशाह मुहम्मदशाह अपने बाप दादों ही की राजधानी में शाहजहाँ के महल में ही रह रहा था। हकीकत में बात यह थी कि अभी तक कम्पनी की सरकार को ऐसी आवश्यकता पड़ती रही थी, और इस प्रचलित धारणा से लाभ उठाया जा रहा था—कि दिल्ली का बादशाह ही भारत का सार्वभौम सम्राट् है। परंतु अब, जब कि बंगाल और कर्नाटक में कंपनी की शक्ति सुदृढ़ हो गई। और मराठा तथा सिख शक्तियों का पतन हो गया था, दिल्ली की राजतंत्रीय सत्ता की कोई राजनैतिक उपयोगिया रही ही न थी। वास्तव में अब वह एक वैधानिक असंगति ही थी—कि कानूनी देश का शासक तो कोई और हो, और देश की वास्तविक सरकार किन्हीं दूसरों के हाथ में हो। इसलिए अंग्रेजों के लिए अब यह अत्या-

वश्यक था कि शाही खिताब और तख्त का अस्तित्व खत्म कर दिया जाय, और शाही परिवार को दिल्ली से हटा दिया जाय।

बहादुर शाह को उसके पिता ही की भाँति बादशाह और ग़ाजी की उपाधि मिली थी। इस समय जनता भी बिना साम्राज्य के सम्राट् को देखने की आदी हो चुकी थी। वे बेचारे बूढ़े भावुक और कवि बहादुर शाह अब इस योग्य कतई न रह गए थे—कि वह किसी ध्येय के लिए खड़े हो सकें। साधारण समय में भी यह बादशाह केवल यही कर सका कि अपने दर्बार की शानो-शौकत बनाए रखने की उसने चेष्टा की। न उसमें अपने पूर्वजों जैसा साहस था न क्षमता। उसका दर्बार उसके पिता के काल ही से घरेलू षडयन्त्रों और दूषित चरित्र के व्यक्तियों से परिपूर्ण था। इससे वह अंधविश्वासों का भी एक हद तक दास था। हसन अस्करी उसका अध्यात्मिक गुरु था, जो वास्तव में एक पक्का धूर्त आदमी था। बादशाह और उसके परिवार के लोग अपने अतीत गौरव के सपने देखा करते थे, परंतु बहादुर शाह ने अपने जीवन में एक काम भी अब तक ऐसा न किया था कि जिससे अंग्रेजों की राह में बाधा खड़ी हो। वह बार-बार कम्पनी से अपना भत्ता बढ़ाने की ज़िद करता, और हर बार अंग्रेज यही जवाब देते कि यदि वह अपना खिताब और महल छोड़ दे तो भत्ता बढ़ाया जा सकता है। उसके बुढ़ापे की औलाद जवाँबख्त अभी नाबालिग था—बादशाह उसे ही अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। यह शाहज़ादा जीनत महल के गर्भ से पैदा हुआ था। परंतु दूसरी बेगमों से उत्पन्न उसके और बड़े-बड़े बेटे थे, जो खिताब के प्रकृत अधिकारी थे। पर बादशाह गाहे व गाहे इस माँग पर जोर देता रहता था, और अंग्रेज ऐसे जोड़ तोड़ लगाते रहते थे—कि बादशाह को राजी करें कि वह पुराने शाही खिताब छोड़ कर लाल किला खाली कर दे, और कुतुब में अपने महल में जा रहे। पर बहादुरशाह ऐसा करने को राजीही न होता था। अंग्रेज भी अब अधिक दिन तक इस हास्यास्पद स्थिति को कायम रहना बर्दाश्त न कर सकते थे—कि उनकी स्थिति अब

भी बादशाह के एक दर्बारी की रहे। परंतु वे इसके लिए बल प्रयोग नहीं कर सकते थे, क्योंकि कम्पनी का संचालक मण्डल और नियन्त्रण बोर्ड इससे सहमत न था, इसलिए अंग्रेज अब बादशाह की मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने शाहजादा मिर्जा फखरुल्मुल्क से गुपचुप यह समझौता कर लिया था—कि बादशाह की मृत्यु के बाद उसे शाही परिवार का प्रधान मान लिया जायगा, और उसे शाहज़ादा का खिताब दे दिया जायगा। लेकिन उसे किला—जहाँ से शहर यमुना और शस्त्रागार पर निगरानी रहती थी. खाली करना होगा। इसी प्रकार दिल्ली दर्बार के अब इने-गिने दिन रह गए थे। बहादुर शाह की मृत्यु के बाद शाहजहां और आलमगीर के अयोग्य उत्तराधिकारियों को अपने पूर्वजों के किले से निकाल दिया जाना निश्चत था।

: २८ :

नवाब माशूक महल

इस वक्त बादशाह की उम्र बयासी साल की हो चुकी थी। उनकी न शारीरिक स्थिति ही ऐसी थी, न मानसिक ही, कि राज्य, रियासत या सल्तनत के पेचीदे मामलों में कुछ कर-धर सकें। औरसच पूछा जाय तो अब न रियासत थी, न सल्तनत। लाल किले की संगेमर्मर की दीवारें उन्हें चारों ओर से घेरे हुई थीं। वह अपने एकान्त वक्त में बैठे नजमें लिखने में खुश थे। इस समय तक उनके चार दीवान तैयार हो चुके थे।

शेर कहने की उन्हें हविस भी बहुत थी। उल्टा सीधा—अन्धा-धुन्ध कहे जाते थे, और उस सब काठ-कवाड़े की काट-छांट संशोधन करना पड़ता था उस्ताद ज़ौक को। जो सच पूछिए तो उनके लिए एक सरदर्दी थी, पर उस्तादे शाही का लोभ ऐसा था—कि ज़ौक उसे छोड़ न सकते थे। एक तौर पर बादशाह के शेरों का काया पलट ही उन्हें करना पड़ता था। अपनी कविता सुनाने की भी बादशाह को बीमारी थी।

जिन्हें बादशाह को खुश रखना होता था उन्हें, उनकी कविता सुननी और उसे कविता की बादशाह कहनी पड़ती थी।

फिर भी एक सब से बड़ी उलझन जो उन्हें परेशान कर रही थी, युवराज पद पर किसी पुत्र की नियुक्ति की थी। किसे युवराज बनाया जाय, इसका निर्णय नहीं हो पाता था। इस समय दुर्भाग्य से लाल किला, फूट, षड़यन्त्र, कलह, अनाचार, अशान्ति और अंधेरगर्दी का अखाड़ा बना हुआ था। सब मनमानी कर रहे थे, वेगमों और शहजादों में चखपख चलती रहती थी, बादशाह की कानी कौड़ी के बराबर भी कोई आन न मानता था, इस वातावरण में बादशाह दुखी और परेशान रहते थे, एक कविता ही ऐसी चीज थी, जिसे गुनगुनाने, सुनने, लिखने में उन्हें राहत मिलती थी। कविता के बाद अलबत्ता वेग़म ज़ीनत महल एक दूसरी शय थीं, जिस पर बादशाह का मन था 'वृद्धस्य तरुणी भार्या प्राणेभ्योपि गरीयसी' का मामला था। वेगम ज़ीनत महल उनकी बुढ़ापे की चहेती सबसे नई वेग़म थीं, अभी वह जवान थीं, दबंग भी थी, एक तौर पर किले में बादशाह की नहीं, वेगम जीनत महल की ही चलती थी।

मुग़ल खानदान में बादशाह जहांगीर ने जब नूरजहां से शादी की थी, तो नूरजहां ने खानदाने शाही में एक जबर्दस्त परिवर्तन कर दिया था, नूरजहाँ बड़ी दबंग, बुद्धिमती, महत्वाकांक्षिणी और दृढ़ मस्तिष्क की औरत थी। बादशाह ने एक तौर पर उसे आत्म समर्पण कर दिया था 'एक सेर शराब और आधा सेर गोश्त, बादशाह का और सारी सल्तनत नूरजहाँ की।' नूरजहाँ सल्तनत के हर काम में दखल देती, सब फर्मान अहक़ाम—शाही दस्तखतों से जो ज़ारी होते—वे नूरजहाँ के ही होते थे। एक प्रकार से नूरजहां के विवाह के बाद जहाँगीर जब तक ज़िन्दा रहा, लगभल सारी ही सल्तनत का संचालन हरम में बैठी, नूरजहाँ चलातीं थी। इसके लिए उसने महल में भी वैसी ही स्त्री मुत्सद्दी, अफसर, वजीर आदि बनालीं थीं। जैसी बाहर पुरुषों का अमला था। नूरजहां के बाद भी मुग़ल अन्तःपुर राजनीति—और सल्तनत की खटपट का एक हद तक

केन्द्र बना रहा। और यह ढर्रा तब तक चलता रहा, जब तक कि नादिर शाह ने मुग़ल हरम की सारी इज्जत आबरू, रुतबा, परदा, शानशौकत धूल में न मिला दी। और अब, जब तख्त पर बयासी बरस का बूढ़ा बादशाह अपने दिन पूरे कर रहा था, साम्राज्य, सल्तनत सब अंग्रेजों के हाथ जा चुकी थी, बेगम जीनत महल राजनीति में पूरा दखल रखतीं, और हर बात में टांग अड़ातीं थी। बादशाह उसकी बातों में दखल देते ही न थे, अतः शाही खानदान के सब छोटे बड़े बेग़म और बादशाह से खार खाते, उनकी काट करते, अपना उल्लू सीधा करते, और अपनी अपनी डफली और अपना अपना राग अलापते थे। मज़ेदार बात यह थी, कि अब न सल्तनत थी, न राज्य सत्ता, न खज़ाने में धेला। बादशाह महज एक उजड़े हुए रईस की ज़िंदगी बिताते थे। पर युवराज पद के लिए अब भी मुगल महल में वही जोश खरोश था—जो कभी जहांगीर और शाहजहां के ज़माने में रहता था।

इस समय युवराज का पद सब फसादों की जड़ बना हुआ था। बेगम जीनत महल की जोड़-तोड़ की एक और बेगम क़िले में थीं। उन का नाम था—'नवाब माशूक महल'। मिर्जा फ़खरुलमुल्क और मिर्जा जवांवक्त में दंगल था। मिर्जा फ़खरुल मुल्क बादशाह का बड़ा बेटा था। योग्य और सुन्दर भी था। मिलन-सार था, इस लिए उसके समर्थक भी बहुत थे। यहां तक—कि अंग्रेज भी उन्हीं के पक्ष में थे। नवाब माशूक महल इस दल की मुखिया थीं। नवाब माशूक महल बेगम साहिबा मिर्जा फ़खरुल्मुल्क की खाला भी होती थीं। परंतु मिर्जा जवांवक्त अपनीं माता जीनत महल के ऊपर कूदते थे। जो बादशाह की चहेती बेगम थी। बादशाह का बस चलता तो जवांवक्त को अपने जीवन काल में ही तख्त पर बैठा देते। पर इस काम में अंग्रेज सब से प्रबल बाधक थे। वह तो यह ठाने ही बैठे थे कि 'चिराग गुल और पगड़ी गायब' बादशाह मरें तो बादशाहत का भी जनाजा उठे। किन्तु लाल क़िले में मिर्जा जवां वक्त के साथ सारे बर्ताव युवराज के समान बर्ते जाते

थे। केवल दो बातों की कसर थी। एक यह—कि उनकी वली अहद की तनख्वाह शाहीं खजाने में जमा रहती थी, दूसरे—अंग्रेज उनके साथ युवराज का क़ायदा—नहीं मानते थे। इस खींच तान में मिर्जा फ़खरुल मुल्क के पक्षपातियो को बड़े-बड़े नुकसान पहुंचे। नवाब माशूक महल ने जो बादशाह की नजर फिरी देखी—तो बीमारी का बहाना करके आबोहवा बदलने के बहाने से लाल किला छोड़ कर राहत-गाह में आ रहीं। यहाँ आने का अभिप्राब अंग्रेजों से मिल कर साठ-गाँठ करना तथा निर्द्वन्द्व षडयन्त्र चलाना था। राहत गाह, काश्मीरी दर्वाजे के करीब एक बड़ा शाही महल था। परंतु किले में आना-जाना जारी रखा। परंतु अपना सब समान-मालमता धीरे-धीरे राहत गाह में उठवा मंगाया। दो-एक वर्ष बाद यह झगड़ा खत्म हुआ, परन्तु माशूक महल राहत गाह में ही रहतीं रहीं। सुबह नाश्ता करके लाल किले चली जाती। और अशर की नमाज राहत गाह में आकर पढ़तीं। रात को वहीं सोतीं।

नवाब माशूक महल भी बड़े जोड़-तोड़ की और हौंसले वाली औरत थीं। उनका मददगार और सलाहकार एक गुलाम था, जिसका नाम इब्राहीम था। वह पढ़ा-लिखा समझदार और खटपटी आदमी था। अंग्रेजी भी जानता था। उम्र उसकी कोई चालीस वर्ष की थी। वह कोई सुन्दर और प्रभाव शाली आदमी न था, किंतु बड़ा मिठबोला, विनम्र और काम निकालने में होशियार था। वह फैजबाजार में एक पुराने मकान में रहता था। मकान बहुत लम्बा-चौड़ा था, वास्तव में वह नवाब माशूक महल की ही पुरानी हवेली थी, जो अब बिल्कुल खस्ता हो गई थी। रहने लायक उसमें मुश्किल से दो-तीन कमरे बचे थे। सारा मकान वीरान और खण्डहर था। माशूक महल ने वह मकान रहने के लिए इब्राहीम को दे दिया था। उसका अपना सगा तो कोई न था, पर नाते-रिश्ते के दस पाँच आदमी आ जुटे थे, जो करते-धरते कुछ न थे, इसी की कमाई खाते थे। इब्राहीम खुले दिल से खर्च करता था। असल बात यह थी—कि बेगम माशूक महल भी शाह खर्च थी। फिर खटपटी कामों

में अनाप शनाप खर्चा तो होता ही है। इब्राहीम उनका राजदां और नाक का बाल बना था, अतः वह जिस क़दर रुपया मांगता, उसे बेगम दे देती थी, और उससे हिसाब-किताब भी कुछ न लेती थीं। परंतु इब्राहीम भी जो हाथ में आता खर्च कर देता—बचा कर न रखता था। इस तरह उसके नातेदार भी खुश थे। वे दिन भर बैठे हुक्का गुड़-गुड़ाते, ताश चौसर खेलते, या कबूतर बाजी, पतंग बाजी करते और दोनों वक्त सालन रोटी खाते। समझिए इमली के पत्ते पर डंड पेलते थे।

: २६ :

साहब की जान

जिस दिन अंगूरी बाग में आकर मेरठ के सिपाहियों ने डेरा डाला, और क़िलेदार को मार कर उसका बंगला जला डाला—उस दिन नवाब माशूक महल लाल क़िले में आई हुई थीं। उन्होंने जो यह माजरा देखा तो किले में ही ठहर गईं। दूसरे दिन सुबह होते ही उन्होंने इब्राहीम को तलब किया, और हुक्म दिया—"कि राहतगाह से रत्ती-रत्ती सामान किले में उठा लाओ। और राहतगाह में ताला डाल दो।"

बेअन्दाज़ सामान था। बीस छकड़े दिन भर में चार फेरे करते थे—यह चौथा दिन था। और अब आखिरी खेप रवाना हो रही थी। छकड़े लाद कर और उन्हें रवाना करके इब्राहीम दो नौकरों के साथ धीरे-धीरे बातें करता हुआ किले की ओर चला आ रहा था। अभी दो घड़ी दिन बाकी था। सूरज की तिरछी किरनें इधर-उधर बिखर रही थीं। सड़क पर अभी से सन्नाटा छाया हुआ था। अभी नमाज़ मग़रब में आधे घण्टे की देर थी। देहली शहर, शाम का वक्त, रोजे के दिन, चौराहे पर आदमज़ात का पता नहीं। बदमाशों के डर से लोग अभी से किवाड़ बन्द कर के घरों में घुस बैठे थे। कभी यहाँ कन्धे से कन्धा छिलता था। वे लोग सहमे-से, चौकन्ने हो इधर-उधर देखते—और धीरे-धीरे बातें

करते कदम बढ़ाए चले जा रहे थे। अभी ये लोग मुहसन खाँ के कटरे से चल कर उस मैदान को पार कर ही रहे थे— जो कालेज और मेगजीन के बीच में था। तभी उनकी नजर सड़क पर पड़ी कुछ लाशों पर गई। तीन लाशें थीं, और तीनों अंग्रेज थे। सन्ध्या के बढ़ते हुए अन्धकार में वे लाशें बड़ी डरावनी लग रही थीं। डूबते हुए सूरज की किरनें उन पर पड़ रही थीं—जिस से उनके चेहरे पर जमा हुआ खून चमक रहा था। बड़ा ही भयानक दृश्य था।

इब्राहीम ने कहा—"तौबा तौबा, न जाने क्या होने वाला है। अमा, यह तो नादिरशाही कत्ले आम से भी बढ़ गया।"

एक खिदमतगार ने सहमी हुई नजर उन लाशों पर डाली, और कहा—"न जाने बादशाह शाहजहाँ ने किस बदवक्त में इस मनहूस शहर की नींव डाली है, कि आए दिन एक न एक हंगामा बरपा होता ही रहता है। कोई पूरी सदी इस शहर में अमन की नहीं गुजरी।"

दूसरे ने कहा—"खुदा खैर करे, ऐसा मालूम होता है कि शहर पर अब कोई ग़जब गिरने वाला है।"

इब्राहीम ने एक बार फिर उन मुर्दों की ओर देखा, और कहा—"बढ़े चलो, हमें इन झमेलों से क्या मतलब, इफतार का वक्त करीब है, और किला अभी दूर है।'

उन्होंने कदम बढ़ाए। अभी ये पनचक्कियों से जरा इधर ही थे, कि पीछे से किसी के आने की आहट मालूम हुई। उन्होंने सहम कर पीछे का ओर देखा—एक लम्बे कद का आदमी—लपकता चला आ रहा था। तीनों ने तलवारें सूँत लीं। और जल्दी-जल्दी पन-चक्कियों से उतरने लगे। उस आदमी ने हाथ उठा कर इन्हें ठहरने का इशारा किया, तीनों ठिठक गए, पर डर से उनका बुरा हाल था। पास आकर उसने सलाम किया। दौड़ते आने के कारण उसका साँस फूल रहा था, होठों पर पपड़ी जमी थी, वह आदमी बहुत घबराया हुआ था। इब्राहीम ने देखा—कोई ३०-३५ साल का जवान आदमी है, लेकिन दुबला-पतला, हाथ में उसके कोई

हथियार नहीं था, सिर पर उसके अंग्रेजों के अरदलियों का-सा साफा बंधा था, तथा कमर में चपरास बंधी थी। वह इतना घबराया हुआ और डरा हुआ था कि उसके मुँह से बड़ी देर तक बात ही नहीं निकली—इब्राहीम ने कहा—"तुम कौन हो और हम से क्या चाहते हो, झट-पट कहो—हमें ज़्यादा फ़ुर्सत नहीं है।"

"खुदा के लिए, खुदा के लिए—दोस्तो, तलवार म्यान में रख लो, खुदा गवाह है मैं दोस्त हूँ। एक सच्चा मुसलमान, जैसे तुम हो। मेरी हालत पर तरस करो—मेरी मदद करो।"

"लेकिन तुम चाहते क्या हो ?"

"जरा वहाँ तक चलिए"। उसने लाशों की तरफ इशारा किया।

"हम क्यों चलें"। इब्राहीम ने तलवार ऊँची करके कहा।

"मैं रोहतक के जंट मजिस्ट्रेट नोबल साहब का अर्दली हूं। मेरा नाम करीम बख्श है, मैं बहादुर गढ़ का रहने वाला हूँ—जात का पठान हूँ।"

"लेकिन हम से तुम क्या चाहते हो ?"

"हमारे साहब बहादुर छुट्टी लेकर विलायत जा रहे थे, पर दिल्ली आकर बीमार पड़ गए। वह एक बंगले में ठहरे थे। इतने में ग़दर हो गया। आज चौथा दिन है—इन लोगों ने उन्हें पकड़कर कश्मीरी दरवाजे में गारद में बन्द कर दिया था। बीमार होने के कारण वह भाग न सके। वहाँ और भी अंग्रेज कैद थे। आज बदमाशों ने सब कैदियों को खड़ा कर के गोली से उड़ा दिया। हमारे साहब भी जख्मी होकर गिर गए—मगर अभी जिन्दा हैं। मेरी आप से इल्तजा है कि आप से हो सके तो उनकी जान बचाइए। आप को सवाब होगा।"

"फिरंगी की जान बचाने से सवाब कैसे होगा ?"

"हमारे साहब बड़े खुदा तरस और ग़रीब परवर हैं। वे हैं तो अंग्रेज, लेकिन शरीफ और नेक मिज़ाज, रहम दिल अफसर है। रोहतक वालों से पूँछिए, बीसियों बेवाओं का वजीफा क़ायम किया है। मजबूरन जुर्माना करते हैं फिर अपने पास से सरकार में भर देते हैं।"

"तो हमें इस से क्या ? फिरंगी काफिर हैं, हिन्दु मुसलमानों के दुश्मन हैं।"

"साहब, ऐसा मत कहिए। ये नमक हराम, पाज़ी, बदज़ात तिलंगे कहाँ के ईमानदार हैं ? किस क़दर लूट-खसोट, मार-काट मचा रखी है। शहर में अंधेर मचा रखा हैं। इसके खिलाफ अंग्रेज बहादुर और ईमानदार हैं। अपने अदल इन्साफ से मुल्क में अमन फैला रहे हैं।"

"लेकिन अब उनके दिन लद गए।"

"हज़रत, इस ख्याल में न रहिए, जब उनकी फौज गोले बर्साएगी, ये वज्ज़ात तिलंगे लुटेरे भागते ही नज़र आएँगे। अन्त के तन्त फिरंगियों का ही राज होगा।"

"लेकिन तुम हमारे पीछे क्यों पड़े हो।"

"आप का बड़ा दर्जा होगा। साहब की जान बचा लीजिए साहब।"

करीम बख्श इब्राहीम के पैरों पर गिर पड़ा।

इब्राहीम ने कहा—"म्या, यह तो बताओ, यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि तुम्हारे साहब अभी ज़िन्दा हैं।"

"आप के आने के थोड़ी देर पहिले तक लाशों पर धूप थी। और लाशें तो बिलकुल सफेद पड़ गई हैं, पर हमारे साहब के चहरे पर सुर्खी है। इसके अलावा मैंने उनके जिस्म में हरकतें भी देखी हैं। जब तिलंगों ने गोली चलाई तो मैं पास ही छिपा था। उनके चले जाने पर मैं सब की नज़र बचा कर मस्जिद से पानी की बदनी उठा कर उनके पास रख आया था। तब मैंने देखा था, सांस चल रही थी। जख्म की बावत तो मैं कह नहीं सकता, पर उन में जान ज़रूर है। लिल्लाह ज़रा चलकर देख लीजिए।"

"देख लेने ही से क्या होगा, यह इल्लत बांधें या अपना काम करें।"

"हज़रत, साहब में जान वाकी हो, तो आप उन्हें अपनी हिफ़ाज़त में लीजिए, शायद बच जाएं। मैं हूं तो चार कौड़ी का प्यादा, और आपके सामने अर्ज़ करना गुस्ताखी है, मगर जनाब, यह कोई दिन का गुल-गपाड़ा

है, अगर साहब आपके तुफैल से बच गए, तो देखना—कैसे-कैसे सुलूक करते हैं।

इब्राहीम ने दोनों नौकरों से पूछा—"भई, क्या सलाह है।"

"हम तो आपके हुक्म के साथ हैं।"

"तो भई, हम सब रोज़े से हैं, राज़दारी का हलफ़ लें। यह राज़ किसी से न कहें।"

सब ने हलफ़ लिया, चारों आदमी लौट कर लाशों के पास गए। इब्राहीम ने देखा, साहब का शरीर गर्म था, परन्तु शरीर खून से इस क़दर लतपत हो गया था, कि ज़ख्म का पता न लगता था। झुटपुटा हो गया था, भीषण सन्नाटा था। सड़क पर चिड़िया का पूत न था, पत्ता भी खड़कता तो वे चौंक उठते, जैसे सारी दुनियां मर चुकी थी, केवल यही चार आदमी ज़िन्दा बचे थे। इब्राहीम ने अपने साथियों की मदद से साहब को हाथों हाथ उठा लिया, उसने अपनी शेरवानी उतार कर उन के ऊपर डाल दी और वह तेज़ी से उन्हें उठा कर एक तरफ को चल दिए।

: ३० :

इब्राहीम के घर में

इब्राहीम के घर उसकी एक दूर के रिश्ते की फूफी थी। वह बूढ़ी और बहरी थी। उसका एक लड़का था, जो फौज में नौकर था, और जब तब आकर उसे कुछ दे दिला जाता था। इब्राहीम को बेगम माशूक महल ने जो मकान रहने को दिया हुआ था, वह लम्बा-चौड़ा तो बहुत था, पर था खस्ता हाल। ले देकर उसमें दो-तीन कमरे ऐसे थे—जिनमें रहा जा सकता था। एक में तो फूफी ने दखल किया हुआ था। दूसरे में खाना पीना और घर गिरस्ती का सब समान था। तीसरे में इब्राहीम खुद रहता था।

नोबुल साहब को इब्राहीम ने इसी कमरे में लाकर रक्खा। अभी तक नोबुल साहब बेहोश थे, यह नहीं कहा जा सकता था कि वह बचेंगे भी या नहीं। इब्राहीम ने दोनों नौकरों को बिदा किया और करीम बख्स की मदद से थोड़ा पानी गरम करके साहब का शरीर धोया। उन्हें दो गोलियाँ लगीं थीं पर ज़ख्म एक ही गहरा था, और उसमें गोली घुसी हुई थी। किसी जर्राह को बुलाना खतरे खाली न था, विशेषकर इस समय रात में कौन जर्राह आ सकता था। इब्राहीम थोड़ी-बहुत मरहम पट्टी जानता था, इल्म तिब और नजूम में भी उसे दखल था। उसने छुरी की नोक से गोली निकाली और जख्म में मरहम लगाकर पट्टी बाँध दी। एक बधना पानी और दो रोटी मकई की लाकर करीम बख्स को दिया और कहा—मिया, ये रोटियां खाकर पानी पिओ, और खामोश यहाँ बैठो—जब तक मैं लौट कर न आऊँ। मुझे अभी एक जगह जाना जरूरी है। यह कह कर उसने कमरे का बाहर से ताला लगा दिया, जैसा कि वह हमेशा किया करता था, और तेजी से वहाँ से चल दिया।

: ३१ :

शाह हक़ानी की खानकाह

इब्राहीम के मकान से कोई दो फर्लांग के अन्तर पर शाह हक़ानी की खान काह थी। शाह साहब बड़े पहुंचे हुए फ़कीर थे। दिल्ली के सभी हिन्दू मुसलमान उनकी आन मानते थे। हजारों विलायतियों को उनकी मैयत थी। सौ-पचास भक्त जन उनका उपदेश सुनने को हर समय खान काह में उपस्थित रहते थे। शाह साहब बहुत बूढ़े थे। उनका शरीर काला, कद लम्बा और दुबला-पतला था। उनकी डाढ़ी और सिर के बाल ही नहीं—शरीर के रोम कूप भी सफेद थे। वे एक तहमद कमर में बांधे एक चटाई पर दुजानू बहुधा घण्टों चुपचाप बैठे रहते। या तो अरबी में बात चीत करते या टूटी-फूटी उर्दू बोल लेते थे।

इब्राहीम से शाह साहब का परिचय था। वह जानते थे कि इब्राहीम शाही नौकर है, नवाब माशूक महल बेगम का विश्वस्त नौकर है। नवाब माशूक महल बेगम भी शाह साहब की मुरीद थी, और कभी-कभी शाह साहब की खिदमत में जाती आती रहतीं थी। पर वह बहुधा इब्राहीम के द्वारा ही शाह साहब से सलाह मश्वरे लेती रहती थीं। किले के मामलों से शाह साहब को बहुत दिलचस्पी थी। अतः उन्हें वहां की बात-चीत और राजनीति का बहुत ज्ञान था। पर वह नवाब माशूक महल के हिमायती थे, और उनका यह निश्चित मत था कि दिल्ली के वालिए तख्त शाहजादा मिर्जा जवाँबख्त न हो कर मिर्जा फखरुलमुल्क को ही होना चाहिए।

इब्राहीम ने सोचा—चलकर शाह साहब से सलाह करनी चाहिए। एक अंग्रेज को घर में छिपा कर इब्राहीम परेशान हो गया था, वह ऐसी कोई इल्लत अपने साथ बांधने को राजी न था। कल न जाने क्या हो—भंडा फूटने पर उसी का काम न तमाम कर दिया जाय। उसका न कोई ऐसा यार दोस्त था, न राजदाँ था, जो समय पर उसकी मदद कर सके।

उसने शाह साहब को ही अपना राजदां बनाने की ठानी। उसे विश्वास था कि वह भेद न खोलेगे। वह सीधा खानकाह की ओर हो लिया।

यद्यपि इस समय तक एक पहर रात बीत चुकी थी। पर खानक़ाह आदमियों से खचाखच भरा था। असल बात यह थी कि सरगनाय-बागियान खानकाह के उलमा से जहाद के फतवे पर मुहर कराने आए थे। और इस समय शाह से हुज्जत हो रही थी। शाह हकानी नहीं मानते थे। और अंग्रेजों से लड़ने को—ग़दर-फसाद फिल अर्ज कहे जाते थे। पर बागियों के सरगना लोग भी जिद बांध कर बैठे थे। शाम ही से हुज्जत हो रही थी, न शाह साहब मानते थे, न ये बागीयों के सरदार टलते थे। इस भीड़-भाड़ में इब्राहीम का शाह साहब तक पहुँचना सम्भव ही न था। भीड़ में दिल्ली और मेरठ के बागी सिपाही, दिल्ली—के चोर

उचक्के, उठाईगीर, वेफ़िक्रे, बदमाश, शरीफजादे, सभी लोग थे। उन दिनों दिल्ली में सोता कौन था। सब अपनी-अपनी धुन में रहते थे।

इब्राहीम भी इस भीड़ में मिल गया। और शाह साहब से दो-दो बात करने का मौका ढूंढ़ने लगा। धीरे-धीरे रात बीतने लगी। और वह थक कर एक कोने में पड़ रहा। उसे नींद आ गई। वह दिन भर का थका था, अतः खूब सोया। जब शाह साहब ने उसे जगाया तो उसने देखा, भीड़-भाड़ खत्म हो गई है। शाह साहब अकेले ही है। उन्होंने कहा—"अय भले मानुस, अब तू भी अपने घर जा।"

"क्या सब फसादी चले गए?"

"हाँ।"

"आपने जहाद के फ़तवे पर मुहर कर दी।"

"कैसे कर सकता था बन्दे खुदा, मैं समझता हूं अंग्रेज अभी इस मुल्क से नहीं जाएँगे। और इस तहरीक से दिल्ली पर तवाही आएगी।"

"हज़रत, मैं एक राज़ अर्ज करने आया हूँ।"

"क्या वेगम का काम है।"

"जी नहीं, लेकिन काम मेरा भी नहीं है। खुदा का काम है।"

"तो बन्दे-खुदा कह—क्या बात है।"

इब्राहीम ने सब क़िस्सा सुना कर कहा—"सुना है, साहब कोई बड़ा अफ़सर है। यकीन है, उसकी जान बच गई, और अंग्रेजों की बिपता टल गई तो इस सिले में बहुत अच्छा सलूक वे करेंगे, इनाम—इलाक़ा मिलेगा।"

"तू ने इसी लालच से उसकी जान बचाई है।"

"हज़रत, सच तो यही है।"

"तो लानत है तुझ पर। तू हमारे हुज़ूर में इसे खुदा का काम बताता है। जा दूर हो जहाँ से।"

इब्राहीम ने औलिया के पैर पकड़ लिए। उसने कहा—"हज़रत, दिल की बात सच-सच कह दी, अब आप को हुक्म दें वही करूँगा।"

"अय नेक वक्त, नेकी कर और कुए में डाल। इन्सान की जान बचाना, और उसकी मुसीबत में कन्धा देना इन्सान का सब से बड़ा फर्ज है। मुसीबत ज़दा, दोस्त हो चाहे दुश्मन, उसे पनाह में लेना खुदा का काम है, सवाब का काम है।"

"तो क्या मैं उस अंग्रेज को घर में छिपा रखूं।"

"तू ने उसकी जान बचाने का नेक इरादा किया है, बस, उसकी जान की हिफ़ाजत में कोई दकीका बाकी न रख।"

"और यदि इससे मेरे ऊपर कोई मुसीबत आए ?"

"तो खुशी से झेल ले।"

"इससे क्या होगा ?"

"खुदा खुश होगा। जा अपना काम कर।"

इब्राहीम ने फ़कीर के पैर चूमें और उठकर अपने घर की ओर चल दिया।

: ३२ :

पिंजरे का पंछी

नोबल साहब को इब्राहीम के घर रहते एक महीना बीत रहा था। उनके जख्म भर गए थे। परंतु हल्का-हल्का सिर दर्द रहता था। उनके पास एक पाई न थी। न काई यार-दोस्त सहायक था। अंग्रेज दिल्ली छोड़ कर भाग गए थे। कुछ मार डाले गए थे। नोबल साहब, गरीब, मुहताज, घायल, असहाय, लाचार इब्राहीम के रहमो करम पर पड़े थे। जीवन उनका संकट में था। बचने की आशा धुंधली थी। कहाँ जायँ, क्या करें यह समझ नहीं पाते थे। उनकी पत्नी और बच्चे किस हालत में हैं, तथा जीवित हैं भी या नहीं—यह नहीं कहा जा सकता था। फिर भी वह धैर्य से इस संकट की स्थिति को पार कर रहे थे वह यद्यपि शरणागत थे। फिर भी एक अफसर अंग्रेज थे—इब्राहीम और करीम खां

दोनों ही उनसे दबकर रह रहे थे। इब्राहीम का अंग्रेजों से बहुत साबका पड़ा था। और वह एक प्रकार से अंग्रेज पसन्द आदमी था। जब नोब्लिल साहब को नींद न आती तो आधी-आधी रात तक वह इब्राहीम से बातें करते रहते। बातों का मूल विषय यह बग़ावत होता। नोबिल साहब इसे बग़ावत कहते—तथा विद्रोही सिपाहियों को बाग़ी कहते थे। बग़ावत क्यों हुई कहाँ तक उसका विस्तार होगा। क्या हिन्दुस्तानियों में यह ताकत है कि वे अंग्रेजों को मार भगाएँ। रजवाड़ों में कौन-कौन बिगड़ सकता है, इन्हीं विषयों पर नोबल साहब विवेचना करते रहते थे—बादशाह को वह—शाहेबज़ीफाखार कहते थे। वे बड़ी गम्भीरता से गोरखों और अफगानों के सम्बन्ध में विचार प्रकट करते थे कि ये शाहेबज़ीफा खार से मिल सकते हैं या नहीं। क्या कोई रियासत ऐसी इस समय है जो हिन्दुस्तान की शाहन शाही करने योग्य हो। अन्त में वह कहते—कि यह केवल सिपाहियों की आकस्मिक कग़ावत है। अंग़ेज अपने दोस्तों की बदौलत उसे दबा देंगे, और अपने दोस्तों और दुश्मनों के साथ मुनासिब तौर पर पेश आएँगे।

कभी-कभी नोबल साहब देर तक यह विचारते रहते—कि क्या रियासत उन बाग़ी सिपाहियों का साथ देंगी? निस्संदेह वे अंग्रेजों से बहुत नाराज है अंग्रेजों एक प्रकार से उन्हें गुलामी के बंधन में बांधे रहते हैं। पर फिर वह यह भी सोचते कि इस गुलामी के बंधन को समझने की राजनीतिक और सामरिक योग्यता कितनी रियासतों में हैं। इन सब गम्भीर बातों पर विचार करते हुए उनके माथे पर की लकीरें गहरी हो जातीं। कभी वह हिंदू-मुसलमानों के धार्मिक विचारों पर ऊहापोह करते—जो इस विद्रोह का मूलकरण कहा जा। सकता था और मुसलमान इसे बग़ावत जहाद कह कर पुकारते थे, इन सब बातों पर विचार करते-करते नोबल साहब हिन्दुस्तान के रहन-सहन, संस्कृति रस्मो-रिवाज के संबंध में बहुत से प्रश्न इबाहीम से करते थे। कभी इब्राहहीम इंग्लेंड के हाल-चाल पूछता—

इस तरह जब दिल्ली में खून खराबी हो रही थी—अंग्रेजों पर विपदा आ रही थी, यह अंग्रेज अफसर एक मुसलमान के घर में छिपा बैठा, भूत और भविष्य के ताने-बाने बुनता रहता था। वह कभी अपने कष्ट की बात नहीं करते थे। इब्राहीम और करीम खाँ दोनों ही उनकी सेवा सुश्रुषा यत्न से करते, तथा उन्हें इस तरह तसल्ली देते रहते थे। परन्तु नोबल कभी-कभी यह सोच कर अधीर हो जाते थे—कि वह इस आड़े वक्त में अपनी कौम की कोई सेवा नहीं कर सकते थे। इसी तरह दिन बीतते जाते थे।

: ३३ :

सत्तावन की आग

सत्तावन की आग दिल्ली में धाँय-धाँय जल रही थी। दिल्ली में लूट-पाट और खून-खराबी का बाजार गर्म था। विद्रोही शहर में घुस आए थे। जुम्मा मस्जिद में जगह-जगह चूल्हे बने हुए थे, सिपाही रोटियाँ पका रहे थे। कहीं घोड़ों का दाना दला जा रहा था। जाबजा घास के अम्बार लगे थे। शाहजहाँ की वह जगद्विख्यात जामा मस्जिद अस्तबल बन चुकी थी। अंग्रेजों की कोठियों में आग लगाई जा रही थी। औरत बच्चे जो जहाँ मिलता, काट डाले जा रहे थे। अनेक अंग्रेज अफसर चेहरे पर कालिख पोत, हाथ पैर रंगे, फटे-चिथड़े पहन जहाँ जिसका सींग समाए भाग रहे थे। सड़कों पर, घोड़ों, बग्घियों, पालकियों और पैदलों की भरमार थी। चारों तरफ से बन्दूकों की आवाज आ रही थी। घायल कराह रहे थे। सारे बाजार बन्द, गलियों में सन्नाटा, सब घर बन्द। नित नया कोतवाल बदला जाता था। विद्रोही, जहाँ जो मिलता लूट लेते थे। शाही खजाने में धेला न था। न बादशाह का हुक्म कोई मानता था, न शाहजादों की पूँछ थी। गोलों से शहर खंडर हो गया था। लोगों के मकानों

में गोलियां इतनी भरी थीं कि लड़के उन्हें ढेर-ढेर जमा करते थे। मैग-जीन फटने से उसका सामान टोपी, बन्दूक। तलवार और संगीन लोग उठा-उठा कर अपने घर ले गए थे। खलासियों ने रुपए के तीन सेर के हिसाब से तोल-तोल कर हथियार बेचे थे। ताम्बे की चादरें रुपए की तीन सेर और बन्दूक आठ आने की बिक रही थी। अच्छी से अच्छी संगीन को तो कोई पूछता ही न था। विद्रोही नगर में किसी की आन न मानते थे। जिन्हें लूट में गहरा माल हाथ लगा था, वे जंगलों में भाग गए थे। दाम माँगने पर दुकानदार मार डाला जाता था। लुटेरों के पास इतना लूट का माल जमा हो गया था, कि वे उसके बोझ के कारण कूच ही नहीं कर सकते थे। वे रुपयों की मुहर बदलवाते थे। इसलिए उन दिनों दिल्ली में १६) की मुहर २४-२५) में बिक रही थी।

: ३४ :

डगमग दिल्ली

दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि उस दिन शहर में वही देशी पैदल पल्टन तैनात थीं, जो कुछ दिन प्रथम बर्मा जाने से इन्कार कर चुकी थी। इस समय जहाँ यूनिवर्सिटी भूमि है, वहाँ उन दिनों राजपुर ग्राम था, उसी स्थान पर अंग्रेजों की सैनिक छावनी थी। ब्रिग्रेडिर ग्रब्ज को विद्रोह का पता देर में लगा। जब ५४वीं पैदल रेजीमेन्ट को लेकर कर्नल रिप्ले काश्मीरी दर्वाजे तक आ पहुँचा—तो उसे सिपाहियों ने वहाँ गोली से उड़ा दिया। इस घटना ने दिल्ली के भाग्य का फैसला कर दिया। मेजर राबर्ट ने बहुत जोर मारा कि वह ७४ वीं रेजीमेन्ट को काबू में रखें, पर न रख सके। शाम को जब ३८ वीं पल्टन ने अपने अफसरों को गोली से उड़ाना आरम्भ किया—तो फिर अफसरो में भगदड़ मच गई। शहर में न कोई अंग्रेज जीवित बचा न भारतीय ईसाई। एक-एक ईसाई को खोज कर गोली से उड़ा दिया गया। बहुत से अंग्रेज स्त्री-पुरुष किशनगढ़ के राजा

की कोठी में छिपे रहे, परन्तु पीछे वे सब मार डाले गए। फिर भी कुछ लोग दिल्ली से बच कर भाग निकले। ज्वाइन्ट मैजिस्ट्रेट सर थियोफिलस मेंटकार्फ इसी तरह बच निकले। कुछ लोगों ने प्लेग स्टाफ में शरण लीं। पर वहाँ भी उनकी स्थिति सुरक्षित न थी। तब रात के अंधेरे में जहाँ जिसका सींग समाया भाग निकला। कुछ लोग मेरठ पहुंचे, कुछ अम्बाला और करनाल। दिन में ये लोग जंगल में छिप जाते और रात को सुनसान टेढ़े-मेढ़े पगडंडियों पर चलते रहते थे। गाँवों के कुछ कृपालु लोग इन्हें खाना-पानी देते, परन्तु बहुधा गूजर-रँगड़ उन्हें लूट पीट लेते थे।

लाला ठाकुरदास दिल्ली जेल के जेलर थे। उन्होंने शाम तक कैदियों को किसी तरह रोक रक्खा, किंतु जब पहरेदार अनुशासन भंग करने लगे तो उन्हें भागना पड़ा। जेल के सब कैदी भाग खड़े हुए। लश्कर के दो एंग्लो इंडियन नवयुवकों द्वारा अम्बाला, लाहौर, रावलपिंडी और पेशावर को यह खबर किसी तरह बड़ी मुश्किल से भेजी गई कि—"मेरठ से सिपाही आ गए हैं और वे सब कुछ जला रहे हैं। श्री टाड़ और बहुत से योरोपीय मारे गये हैं। शरण खोजनी चाहिए।" बस यही खबर दिल्ली की पंजाब पहुँच पाई।

कुछ सप्ताहों के लिए सिपाहियों को अकेला छोड़ दिया गया। मेरठ से कोई विरोध प्रदर्शन नहीं हुआ था। अन्यत्र कहाँ क्या हो रहा है इसका कुछ पता ही न चलता था। बादशाह की स्थिति दयनीय थी। वह तो अब इस बात के आदी थे कि दूसरे लोग उनके लिए हर चीज़ का इंतजाम करें। परंतु अब उन्हें सिपाहियों के खाने पीने और रसद की व्यवस्था करनी पड़ी थी। हकीम अहसानुल्ला खाँ उनके विश्वास पात्र सलाहकार थे। परन्तु अनुशासन का उन्हें भी कोई अनुभव न था। वह शान्ति-प्रिय आदमी थे। इसके अतिरिक्त न उन्हें सिपाहियों पर विश्वास न सिपाहियों का उन पर। फिर उन्हें यह भी विश्वास था कि आज नहीं तो कल अंग्रेज अवश्य आएँगे। बिगड़ने वाली बात में अगुआ बनने से कोई लाभ नहीं है।

बारह तरीख को बादशाह ने दर्बार किया। उसमें शहर के गण्यमान मुसलमानों को बुलाया गया। आमन्त्रित जनों में झज्झर के नवाब के एक चचा भी थे। उस सबसे एक शासन-परिषद बनाने को कहा गया। शहर में कानून और व्यवस्था स्थापित करनी तथा सिपाहियों को अनुशासन में रखना और नए सिपाही भरती करना था। इस समय गुण्डे लोग योरोपियनों तथा ईसाइयों को ढूंढ़ निकालने के बहाने शहर के धनीमानी जनों को तंग करते थे, शहर में अव्यवस्था का पूरा राज था। दुकानें बंद थीं। काम-काज ठप, खजाना खाली था। यह भारी काम सम्हालने की शक्ति किसी में न थी। न इस समय दिल्ली में कोई तेजस्वी-साहसी और प्रतिभाशाली आदमी था। कोई आदमी अपने सिर दायित्व लेने को तैयार न था। प्रत्येक आदमी ने परिषद में काम करने से इनकार कर दिया। अन्त में बहुत हुज्जत के बाद एक गवर्नर नियुक्त किया गया। मिर्ज़ा मुग़ल को प्रधान सेनापति बनाया गया। अन्य शाहजादों को बड़े-बड़े सैनिक पदों पर नियुक्त किया गया। परन्तु ये शाहजादे भी बादशाह की तरह सर्वथा अयोग्य और निकम्मे थे। निरंकुश सिपाहियों को काबू में रखना इनके बूते की बात न थी।

दर्बार के बाद बादशाह हाथी पर बैठ कर बाजारों में निकले। लोगों से कहा—कि वे अपना काम-काज करें, लेकिन व्यापारियों को अभयदान देना उनके बूते से बाहर था।

किले के बगीचों में सिपाही डेरा डाले पड़े थे। वे सब शान्ति-प्रिय लोगों के लिए खतरा बने हुए थे। बादशाह जैसे-जैसे आगे बढ़ते थे—घर-घर से चीख-पुकार, फरियाद आ रही थी। जिन योरोपिनों को मार डाला गया था, उनके आश्रितों ने बादशाह के हाथी को घेर लिया। वे उनसे अमन की प्रार्थना कर रहे थे, और बादशाह का काफिया तंग था। शांति की कोई तुक यहां न बैठ रही थी।

बादशाह किले में लौट आए। सिपाहियों को समझाया-बुझाया। गुस्सा किया, गद्दी तक छोड़ देने की धमकी भी दी, परंतु इसका कुछ भी

सहायता न निकला। इस प्रकार मुगलों का यह अन्तिम उत्तराधिकारी क्रान्तिकारी योजना का नेतृत्त्व करने में सर्वथा अयोग्य, असफल प्रमाणित हुआ।

नए प्रशासकों के सामने बड़ी कठिनाइयाँ थीं। सूझ-बूझ वाले लोग सेनापति और बादशाह से सहयोग करने को तैयार थे। वे अंग्रेजी तोर तरीकों के विरोधी थे, पर पश्चिमी विचार धारा से प्रभावित थे। सब अव्यवस्था दूर करने के लिए, एक 'कोर्ट' की नियुक्ति की गई। जिसके दस सदस्य थे। छै सैनिक व्यवस्थापक और चार नागरिक व्यवस्थापक। सेनापति को असीम अधिकार थे, पर वह नितान्त अयोग्य व्यक्ति था। यद्यपि यह लोक तन्त्री संगठन था, पर निर्जीव, निष्प्राण। दिल्ली के पतन तक यह समिति काम करती रही, पर इसका प्रभाव न सेना पर था, न सैनिक अधिकारियों पर। फलतः अराजकता नगर में वैसी ही बनी रही।

दिन बीतते गए और बादशाह पर एक के बाद एक नई-नई मुसीबतें आती गईं। मई का महीना बीतते-बीतते तो दिल्ली लूट-पिट कर पामाल हो गई। सिपाही बेगम जीनत महल पर शक करते थे कि अंग्रेजों से मिली हैं। बादशाह ने दिल्ली के आस-पास के जिमींदारों से सेना को रसद देने को कहा—पर इस समय वे दिल्ली को लूटने में लगे थे। किसी तरह शहर के बैंक मालिकों ने बादशाह के दबाव से एक लाख रुपया एकत्र किया। परंतु इस अल्प रकम से क्या होता था। सिपाहियों ने निरुपाय हैदराबाद के रईस को लूट लिया। फिर तो शहर के धनिकों को अंग्रेजों का मित्र कह-कहकर निचोड़ा जाने लगा। मई खतम होते-होते रोहतक से पौने दो लाख रुपया आया, परंतु स्थिति कुछ भी नहीं सुधरी अहसानुल्लाखाँ भी अंग्रेजों से मिले हैं, सिपाही यह बात खुल्लमखुल्ला कहते थे।

दिल्ली और मेरठ के सिपाहियों में भी एकता न रही। इस प्रकार फूट, कलह, स्वार्थ और अनुशासनहीनता के कारण—सिपाही संगठित न हो सके। अंग्रेज असावधान थे और विद्रोहियों को काफी समय अव-

श्यम्भावी आक्रमण की तैयारी का मिला था, परंतु उन्होंने यह स्वर्ण सुअवसर योंही खो दिया। मई मास खत्म होते-होते विद्रोही सेना में फूट पड़ गई। सब अपनी-अपनी डफली और अपना-अपना राग अलापने लगे। काले वर्ग सेना का विरोधी हो गया। शाहजादों की मनमानी, अन्धेर गर्दी को रोकना बादशाह के बूते के बाहर की बात हो गई। इस प्रकार दिल्ली का बवंडर दिल्ली ही को डगमग करने लगा।